सिरि भगवंत भूदबलि भडारय पणीदो

महाबंधो

[महाधवल सिद्धान्त-शास्त्र]

चउत्थो पदेसबंधाहियारो

[चतुर्थ प्रदेशबन्धाधिकार]

पुस्तक ६

भारतीय ज्ञानपीठ

मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला : प्राकृत ग्रन्थांक-८

सिरिभगवंतभूदबलिभडारयपणीदो

महाबंधो

[महाधवल सिद्धान्तशास्त्र]

चउत्थो पदेसबंधाहियारो

[चतुर्थ प्रदेशबन्धाधिकार]

हिन्दी अनुवाद सहित

पुस्तक ६

सम्पादन-अनुवाद

पं. फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

4673

भारतीय ज्ञानपीठ

द्वितीय संस्करण : १९९९ □ मूल्य : १४०.०० रुपये

भारतीय ज्ञानपीठ

(स्थापना : फाल्गुन कृष्ण ९, वीर नि. सं. २४७०, विक्रम सं. २०००, १८ फरवरी, १९४४)

स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवी की पवित्र स्मृति में
स्व० साहू शान्तिप्रसाद जैन द्वारा संस्थापित
एवं
उनकी धर्मपत्नी स्व० श्रीमती रमा जैन द्वारा संपोषित

मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला के अन्तर्गत प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड़, तमिल आदि प्राचीन भाषाओं में उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन-साहित्य का अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन तथा उनका मूल और यथासम्भव अनुवाद आदि के साथ प्रकाशन हो रहा है। जैन-भण्डारों की सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, कला एवं स्थापत्य पर विशिष्ट विद्वानों के अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमाला में प्रकाशित हो रहे हैं।

●

ग्रन्थमाला सम्पादक (प्रथम संस्करण)

डॉ. हीरालाल जैन एवं डॉ. आ. ने. उपाध्ये

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
१८, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-११० ००३

मुद्रक : नागरी प्रिंटर्स, दिल्ली-११० ०३२

भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित

Moortidevi Jain Granthamala : Prākrita Grantha No. 8

MAHĀBANDHO

[MAHĀDHAVALA SIDDHĀNTAŚĀSTRA]

of

Bhagavanta Bhūtabalī

[CHATURTHA PRADEŚA-BANDHĀDHIKĀRA]

Vol. VI

Edited and Translated by

Pt. Phoolchandra Siddhantashastri

4673

BHARATIYA JNANPITH

Second Edition : 1999 ☐ Price : Rs. 140.00

BHARATIYA JNANPITH

Founded on Phalguna Krishna 9, Vira N. Sam. 2470 ● Vikrama Sam. 2000 ● 18th Feb. 1944

MOORTIDEVI JAIN GRANTHAMALA

Founded by
Late Sahu Shanti Prasad Jain
In memory of his late Mother Smt. Moortidevi
and
promoted by his benevolent wife
late Smt. Rama Jain

In this Granthamala Critically edited Jain agamic, philosophical,
puranic, literary, historical and other original texts
available in Prakrit, Sanskrit, Apabhramsha, Hindi,
Kannada, Tamil etc., are being published
in the respective languages with their
translations in modern languages.
Also
being published are
catalogues of Jain bhandaras, inscriptions, studies,
art and architecture by competent scholars,
and also popular Jain literature.

●

General Editors (First Edition)

Dr. Hiralal Jain & Dr. A.N. Upadhye

Published by
Bharatiya Jnanpith
18, Institutional Area, Lodi Road, New Delhi-110003

Printed at : Nagri Printers, Delhi-110032

All Rights Reserved by Bharatiya Jnanpith

प्राथमिक

हर्षकी बात है कि गत वर्ष महाबन्धकी पाँचवीं जिल्द प्रकाशित होनेके पश्चात् लगभग एक ही वर्षमें यह छठी जिल्द प्रकाशित हो रही है। अब इसके पश्चात् महाबन्धको सम्पूर्ण होनेमें केवल एक और जिल्दकी कमी रही है। उसका भी मुद्रण-कार्य चालू है और आशा की जा सकती है कि वह भी शीघ्र पूर्ण होकर प्रकाशमें आ जायगी। जिस तत्परताके साथ यह जैन-साहित्यका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और महान् कार्य सम्पन्न हो रहा है, उसके लिए ग्रन्थके विद्वान् सम्पादक पं० फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री तथा भारतीय ज्ञानपीठके अधिकारी व कार्यकर्ता हमारे व समस्त जिज्ञासु संसारके धन्यवादके पात्र हैं।

महाबन्धमें वर्णित प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश इन चार प्रकारके कर्मबन्धोंमेंसे प्रथम तीन का वर्णन पूर्व प्रकाशित पाँच जिल्दोंमें समाप्त हो चुका है। प्रस्तुत जिल्दमें प्रदेशबन्ध अधिकारका एक भाग सम्मिलित है। शेष भाग अगली जिल्दमें पूर्ण होकर इस ग्रन्थराजकी समाप्ति हो जायगी।

कर्मसिद्धान्त जैन दर्शनकी प्रधान वस्तु है। वह उसका प्राण कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। इस विषयका सर्वाङ्गपूर्ण सुव्यवस्थित विस्तारसे वर्णन जैसा इन ग्रन्थोंमें पाया जाता है, वैसा अन्यत्र कहीं नहीं। इसी गौरवके अनुरूप इन ग्रन्थोंकी समाजमें और धर्मायतनोंमें प्रतिष्ठा होगी ऐसा हमें पूर्ण विश्वास है।

इन ग्रन्थोंका स्वाध्याय सरल नहीं है। विषयकी गूढ़ताके साथ-साथ पाठ-रचना भी अपनी विलक्षणता रखती है। पाठक देखेंगे कि अधिकांश स्थलोंपर पूरा पाठ न देकर प्रतीक शब्दोंके आगे बिन्दियाँ रख दी गई हैं। यह इसलिए करना पड़ा है कि नहीं तो ग्रन्थका विस्तार द्विरुक्तियों द्वारा बहुत बढ़ जाता। पाठकोंकी सुविधा और ग्रन्थके सौष्ठवकी दृष्टिसे यदि पाठ पूरे करके ही प्रकाशित होते तो बहुत अच्छा था। तथापि मूल पाठकी इस कमीकी पूर्ति विद्वान् सम्पादकने अपने अनुवाद द्वारा कर दी है। आशा है कि इस अनुवादकी सहायतासे कर्मसिद्धान्तसे परिचित पाठकोंको विषयके समझनेमें तथा यदि वे चाहें तो मूलके पाठोंका लुप्त पाठ अनुमान करनेमें विशेष कठिनाई न होगी। सम्पादकने जो विषय-परिचय आदिमें दे दिया है उससे ग्रन्थको हस्तामलकवत् समझनेमें सुविधा होगी।

ग्रन्थकी सम्पादन-सामग्री वही रही है जो पूर्वके भागोंमें और सम्पादन-शैली आदि भी तदनुसार ही। जैसा 'सम्पादकीय' में कहा गया है ताम्रपत्र प्रतिका पाठ तो सम्पादकके सन्मुख रहा है, किन्तु मूल ताड़पत्रोंका पाठ नहीं। संकेत स्पष्ट है कि ताम्रपत्र प्रतिका पाठ भी ताड़पत्रोंके पाठके सोलहो आने अनुकूल नहीं है। उसमें जो उस मूल प्रतिसे जानबूझकर पाठ-भेद किये गये हैं, या जो प्रमादसे स्खलन हो गये हैं उनका संकेत व परिमार्जन वहाँ नहीं किया गया। इस प्रकार ताड़पत्र प्रतिसे एक बार पूरे पाठके मिलानकी आवश्यकता शेष है। हम आशा करते हैं कि इस त्रुटिकी पूर्तिका आयोजन अगले भागके समाप्त होते ही किया जायगा, जिससे कि इस प्रकाशनमें पूर्ण प्रामाणिकता आ जाय और इन ताड़पत्रोंकी शब्द-रचनाकी दृष्टिसे हमारी चिन्ता मिट जाय।

इन बातोंके सम्बन्धमें हमारा जो मत है उसे हम अगले भागके वक्तव्यमें विस्तारसे व्यक्त करेंगे।

हीरालाल जैन
आ० ने० उपाध्ये
ग्रन्थमाला सम्पादक

सम्पादकीय

प्रदेशबन्ध षट्खण्डागमके छठे खण्डका चौथा भाग है। इसका सम्पादन व अनुवाद लिखकर प्रकाशन योग्य बनानेमें लगभग एक वर्ष लगा है। इसके सम्पादनके समय हमारे सामने दो प्रतियाँ रही हैं—एक प्रेसकापी और दूसरी ताम्रपत्र प्रति। मूल ताडपत्र प्रतिको हम इस बार भी नहीं प्राप्त कर सके। फिर भी जो भी सामग्री हमारे सामने रही है,उससे सम्पादन कार्यमें पर्याप्त सहायता मिली है और बहुत कुछ स्खलित अंशोंकी पूर्ति एक दूसरी प्रतिसे होती गई है। प्रकाशित हुए मूल ग्रन्थके देखनेसे विदित होगा कि इतना सब करनेपर भी बहुत स्थल ऐसे भी मिलेंगे जहाँ पाठको जोड़नेकी आवश्यकता पड़ी है। इस भागमें ऐसे छोटे-बड़े प जो ऊपरसे जोड़े गये हैं सौसे अधिक हैं। हमने इन पाठोंको जोड़ते समय मुख्य रूपसे स्वामित्वके आधारसे विचार करके ही उन्हें जोड़ा है। पर वे जोड़े हुए अलग दिखलाई दें. इसके लिए हमने उन्हें [ ] चतुष्कोण ब्रैकेटमें अलगसे दिखला दिया है।

यों तो अनुभागबन्धके प्रारम्भिक व मध्यके अंशके एक-दो ताड़पत्र नष्ट हो गये हैं। पर प्रदेशबन्धमें नष्ट हुए ताड़पत्रोंकी वह मात्रा काफी बढ़ गई है। इन ताड़पत्रोंके नष्ट होनेसे कई प्ररूपणाएँ स्खलित हो गई हैं जिसकी पूर्ति होना असम्भव है। बहुत प्रयत्न करनेके बाद भी त्रुटित हुए बड़े अंशोंकी यथावत् पूर्ति नहीं की जा सकती है, इसलिए हमने उन्हें वैसा ही छोड़ दिया है। हाँ,जहाँ एकादि शब्द या वाक्यांश स्खलित हुआ है, उसकी अनुसन्धानपूर्वक पूर्ति अवश्य कर दी गई है और टिप्पणीमें त्रुटित अंशको दिखला दिया गया है। इस भागमें त्रुटित हुए बड़े अंशोंके लिए देखिए पृष्ठ ४८, ८२, १५४ और १८२।

महाबन्धके प्रदेशबन्ध प्रकरणमें ऐसे तीन स्थल मिलते हैं जहाँ 'पवाइज्जंत'और अन्य उपदेशका स्पष्टरूपसे मूलमें निर्देश किया गया है। प्रथम उल्लेख भुजगार अनुयोगद्वारके अन्तर्गत मूल प्रकृतियोंकी अपेक्षा एक जीवकी अपेक्षा कालप्ररूपणामें किया गया है। वहाँ कहा गया है—

'अवट्ठि० पवाइज्जंतेण उवदेसेण ज० ए०, उ० एक्कारससमयं। अण्णेण पुण उवदेसेण ज० ए०, उ० पण्णारससम०।'

सात कर्मोंके अवस्थितपदका पवाइज्जंत उपदेशके अनुसार जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल ग्यारह समय है। परन्तु अन्य उपदेशके अनुसार जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पन्द्रह समय है।

दूसरा उल्लेख उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट सन्निकर्ष प्रकरणके समाप्त होनेपर नाना प्रकृतिबन्धके सन्निकर्षके साधनके लिए जो निदर्शन पद दिया है उसके प्रसंगसे आया है। वहाँ लिखा है—

'पवाइज्जंतेण उवदेसेण मूलपगदिविसेसेण कम्मस्स अवहारकालो थोवो। पिंडपगदिविसेसेण कम्मस्स अवहारकालो असंखेज्जगुणो। उत्तरपगदिविसेसेण कम्मस्स अवहारकालो असंखेज्जगुणो।.........उवदेसेण मूलपगदिविसेसो आवलियवग्गमूलस्स असंखेज्जदिभागो। पिंडपगदिविसेसो पलिदोवमवग्गमूलस्स असंखेज्जदि०। उत्तरपगदिविसेसो पलिदोव० असंखेज्जदि०।'

'पवाइज्जंत'उपदेशके अनुसार मूलप्रकृति विशेषकी अपेक्षा कर्मका अवहारकाल स्तोक है। पिण्डप्रकृतिविशेषकी अपेक्षा कर्मका अवहारकाल असंख्यातगुणा है। उत्तरप्रकृति विशेषकी अपेक्षा कर्मका अवहारकाल असंख्यातगुणा है।...उपदेशके अनुसार मूलप्रकृतिविशेष आवलिके वर्गमूलका असंख्यातवां भागप्रमाण है। पिण्डप्रकृतिविशेष पल्योपमके वर्गमूलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। उत्तरप्रकृतिविशेष पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

तीसरा उल्लेख भुजगारविभक्तिके अन्तर्गत उत्तरप्रकृतियोंका एक जीवकी अपेक्षा कालका निर्देश करते हुए किया गया है यह उल्लेख प्रथम उल्लेखके समान है, इसलिए यहाँ उसका अलगसे निर्देश नहीं किया है।

पूर्व भागोंके समान हमें इस भागको व्यवस्थित करनेमें सहारनपुरनिवासी बन्धुद्वय श्रीयुक्त पं० रतनचन्द्रजी मुख्तार और श्रीयुक्त नेमिचन्द्रजी वकीलका सहयोग मिलता रहा है, इसलिए हम उनके आभारी हैं।

कर्मसाहित्यका विषय बहुत गहन और अनेक भागों व उपभागोंमें बँटा हुआ है। वर्तमान कालमें उसके गहन अध्ययन-अध्यापनकी व्यवस्था एक प्रकारसे विच्छिन्न हो गई है, इसलिए महाबन्धके सम्पादन, संशोधन और अनुवादमें सम्भव है हमसे अनेक त्रुटियाँ रह गई हों। हमें आशा है पाठक उनके लिए हमें क्षमा करेंगे। और जहाँ कहीं कोई त्रुटि उनके ध्यानमें आवे, उसकी सूचना हमें अवश्य ही देनेकी कृपा करेंगे।

फूलचन्द्र सि० शा०

विषय-परिचय

यह महाबन्धका अन्तिम भाग प्रदेशबन्ध है। इसमें प्रत्येक समयमें बन्धको प्राप्त होनेवाले मूल और उत्तर कर्मोंके प्रदेशोंके आश्रयसे मूल प्रकृतिप्रदेशबन्ध और उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्धका विचार किया गया है। किन्तु दोनोंके विचार करनेका क्रम एक होनेसे यहाँ एक साथ ग्रन्थके हार्दको स्पष्ट किया जाता है।

भागाभागसमुदाहार—मूलमें सर्व प्रथम आठ कर्मोंका बन्ध होते समय किस कर्मको कर्मपरमाणुओंका कितना भाग मिलता है,इसका विचार करते हुए बतलाया गया है कि आयुकर्मको सबसे स्तोक भाग मिलता है। उससे नामकर्म और गोत्रकर्मको विशेष अधिक भाग मिलता है। उससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मको विशेष अधिक भाग मिलता है। उससे मोहनीय कर्मको विशेष अधिक भाग मिलता है। तथा उससे वेदनीय कर्मको विशेष अधिक भाग मिलता है। इसका कारण क्या है इस बातका निर्देश करते हुए वहाँ लिखा है कि आयु कर्मका स्थितिबन्ध स्वल्प है, इसलिए उसे सबसे थोड़ा भाग मिलता है। वेदनीयके सिवा शेष कर्मोंमें जिसकी स्थिति दीर्घ है, उसे बहुत भाग मिलता है और वेदनीयके विषयमें यह लिखा है कि यदि वेदनीय न हो तो सब कर्म जीवको सुख और दुःख उत्पन्न करनेमें समर्थ नहीं हैं, इसलिए उसे सबसे अधिक भाग मिलता है। श्वेताम्बर कर्म प्रकृति की चूर्णिमें सकारण बँटवारेका यही क्रम दिखलाया गया है। सात प्रकारके और छह प्रकारके कर्मोंका बन्ध होते समय भी बँटवारेका यही क्रम जानना चाहिए। मात्र यहाँ जिस कर्मका बन्ध नहीं होता उसे भाग नहीं मिलता है,इतनी विशेषता है।

उत्तर प्रकृतियोंमें कर्म परमाणुओंका बँटवारा करते समय बतलाया है कि आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध होते समय जो ज्ञानावरणीय कर्मको एक भाग मिलता है, वह चार भागोंमें विभक्त होकर आभिनिबोधिकज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण और मनःपर्ययज्ञानावरण इन चार कर्मोंको प्राप्त होता है। यहाँ जो सर्वघाति प्रदेशाग्र है,वह भी इसी क्रमसे बँट जाता है। केवलज्ञानावरण सर्वघाति प्रकृति है, इसलिए उसे केवल सर्वघाति द्रव्य ही मिलता है, किन्तु देशघाति प्रकृतियोंको दोनों प्रकारका द्रव्य मिलता है। दर्शनावरणमें तीन देशघाति और छह सर्वघाति प्रकृतियाँ हैं। इसलिए देशघाति द्रव्य देशघातियोंको और सर्वघाति द्रव्य देशघाति और सर्वघाति दोनों प्रकारकी प्रकृतियोंको मिलता है। यहाँ जिनका बन्ध होता है उनमें यह बँटवारा होता है। वेदनीय कर्ममें जब जिसका बन्ध होता है, तब उसे ही समस्त भाग मिलता है। मोहनीय कर्मको जो देशघाति भाग मिलता है उसके दो भाग हो जाते हैं—एक कषायवेदनीयका और दूसरा नोकषायवेदनीयका। इनमेंसे कषायवेदनीयका द्रव्य चार भागोंमें और नोकषायवेदनीयका द्रव्य बन्धके अनुसार पाँच भागोंमें विभक्त हो जाता है। तथा मोहनीय कर्मको जो सर्वघाति द्रव्य मिलता है उनमेंसे एक भाग चार संज्वलन कषायोंमें और दूसरा एक भाग बारह कषायोंमें और मिथ्यात्वमें विभक्त हो जाता है। अपने बन्ध समयमें आयु कर्मको जो भाग मिलता है वह जिस आयुका बन्ध होता है, उसीका होता है। नामकर्मको जो भाग मिलता है,उसके बन्धके अनुसार गति, जाति, शरीर आदि रूपसे अलग अलग विभाग हो जाते हैं। गोत्र कर्ममें जिसका बन्ध होता है, उसे ही समान भाग मिलता है। तथा अन्तराय कर्मको मिलनेवाला द्रव्य पाँच भागोंमें बँट जाता है। इस प्रकार

यह उत्तर प्रकृतियोंमें भागाभाग जानना चाहिए। श्वेताम्बर कर्मप्रकृतिकी चूर्णिमें भी इसका विचार किया गया है, पर वहाँ सर्वघाति द्रव्यका बँटवारा सर्वघाति और देशघाति दोनों प्रकारकी प्रकृतियोंमें होता है, इसका उल्लेख देखनेमें नहीं आया। यहाँ दो बातें खास रूपसे ध्यान देने योग्य हैं—एक तो यह कि बन्धको प्राप्त होनेवाले द्रव्यमें सर्वघाति द्रव्य अनन्तवें भागप्रमाण और देशघाति द्रव्य अनन्त बहुभाग प्रमाण होता है। दूसरी यह कि चौबीस अनुयोगद्वारोंके अन्तमें अल्पबहुत्व अनुयोग द्वारमें ज्ञानावरणादि की उत्तर प्रकृतियोंमें मिलनेवाले द्रव्यका अल्पबहुत्व बतलाया है, इसलिए उसे ध्यानमें रखकर द्रव्यका बँटवारा करना चाहिए।

चौबीस अनुयोगद्वार

भागाभागसमुदाहारका कथन करनेके बाद चौबीस अनुयोगद्वारोंके अर्थपदके रूपमें मूलमें दो गाथाएँ आती हैं। ये दोनों गाथाएँ साधारणसे पाठ-भेदके साथ श्वेताम्बर कर्मप्रकृतिमें भी उपलब्ध होती हैं (देखो बन्धनकरण गाथा २५, २६)। इनमेंसे प्रथम गाथामें सब द्रव्यके अनन्तवें भागप्रमाण सर्वघाति द्रव्यको अलग करके देशघाति द्रव्यका ज्ञानावरण और दर्शनावरणकी देशघाति उत्तर प्रकृतियोंमें तथा पाँच अन्तराय प्रकृतियोंमें बँटवारा दिखलाया गया है। और दूसरी गाथामें मोहनीयके देशघाति द्रव्यके दो भाग करके उनमेंसे एक भाग बँधनेवाली चार संज्वलनोंको और दूसरा भाग पाँच नोकषायोंको दिलाया गया है। वेदनीय, आयु और गोत्रके विषयमें यह व्यवस्था दी है कि इनमेंसे जिस कर्मकी जिस प्रकृतिका बन्ध होता है उसे बँटवारेका द्रव्य मिलता है। यहाँ गाथामें नामकर्मके विषयमें कोई उल्लेख नहीं किया है। इसप्रकार इस अर्थपदको देकर उसके अनुसार चौबीस अनुयोगद्वारोंके जाननेकी सूचना की है। वे चौबीस अनुयोगद्वार ये हैं—स्थानप्ररूपणा, सर्वबन्ध, नोसर्वबन्ध, उत्कृष्टबन्ध, अनुत्कृष्टबन्ध, जघन्यबन्ध, अजघन्यबन्ध, सादिबन्ध, अनादिबन्ध, ध्रुवबन्ध, अध्रुवबन्ध, स्वामित्व, एक जीवकी अपेक्षा काल, अन्तर, सन्निकर्ष, नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व। आगे चौबीस अनुयोगद्वारोंका कथन समाप्त होनेपर भुजगार, पदनिक्षेप, वृद्धि, अध्यवसान समुदाहार और जीवसमुदाहारका व्याख्यान किया गया है, इसलिए यहाँ इसी क्रमसे इन सबका परिचय दिया जाता है—

स्थानप्ररूपणा—इस अनुयोगद्वारके दो भेद हैं—योगस्थानप्ररूपणा और प्रदेशबन्धप्ररूपणा। योगस्थानप्ररूपणामें पहले उत्कृष्ट और जघन्य योगस्थानोंका चौदह जीवसमासोंके आश्रयसे अल्पबहुत्व व प्रदेशअल्पबहुत्वका विचार करके दश अनुयोगद्वारोंके आश्रयसे योगस्थानोंका विशेष विचार किया है। वे दश अनुयोगद्वार ये हैं—अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणा, वर्गणाप्ररूपणा, स्पर्धकप्ररूपणा, अन्तरप्ररूपणा, स्थानप्ररूपणा, अनन्तरोपनिधा, परम्परोपनिधा, समयप्ररूपणा, वृद्धिप्ररूपणा और अल्पबहुत्व।

वीर्य-विशेषके कारण मन, वचन और कायके निमित्तसे आत्मप्रदेशोंमें जो चञ्चलता उत्पन्न होती है उसे योग कहते हैं। यद्यपि सर्व आत्मप्रदेशोंमें वीर्यान्तराय कर्मका क्षयोपशम आदि एक समान होता है, पर यह चञ्चलता सब आत्मप्रदेशोंमें एक समान नहीं होती; किन्तु आत्माके जो प्रदेश मुख्यरूपसे व्यापाररत होते हैं उनमें वह सर्वाधिक पाई जाती है और उनसे लगे हुए प्रदेशोंमें कुछ कम पाई जाती है। इसप्रकार यद्यपि चञ्चलता तो सर्व आत्मप्रदेशोंमें पाई जाती है, पर वह उत्तरोत्तर हीन-हीन होती जाती है; इसलिए जीवके सब प्रदेशोंमें योगका तारतम्य स्थापित होकर एक योगस्थान बनता है। उदाहरणार्थ किसी मनुष्य के झुककर एक हाथसे पानीसे भरी हुई बाल्टीके उठानेपर उस हाथके आत्मप्रदेशोंमें विशेष खिंचाव होता है। यहाँ हाथके सिवा शरीरके अन्य अवयवगत आत्मप्रदेश भी यद्यपि उस कार्यमें योगदान दे रहे हैं, पर उनमें वह खिंचाव उत्तरोत्तर हीन-हीन होता जाता है; इसलिए कार्यरूपमें परिणत हाथके आत्मप्रदेशोंसे

जितनी योगशक्ति अनुभव की जाती हैं; उतनी अन्यत्र नहीं । यही कारण है कि आत्माके सब प्रदेशोंमें योगशक्तिकी हीनाधिकता उत्पन्न होकर वह सब मिलकर एक स्थान बनाती है । यहाँ योगस्थानप्ररूपणामें दस अनुयोगद्वारोंके आश्रयसे मुख्यरूपसे इसी बातका विचार किया गया है । पहले अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणा में प्रत्येक आत्मप्रदेशमें योगशक्तिके कितने अविभागप्रतिच्छेद होते हैं, यह बतलाया गया है । वर्गणाप्ररूपणा में कितने अविभागप्रतिच्छेदोंकी एक वर्गणा होती है यह बतलाया गया है । स्पर्धकप्ररूपणामें कितनी वर्गणाओंका एक स्पर्धक होता है, यह बतलाया गया है । अन्तरप्ररूपणामें एक स्पर्धककी अन्तिम वर्गणासे दूसरे स्पर्धककी प्रथम वर्गणामें अविभागप्रतिच्छेदोंकी अपेक्षा कितना अन्तर होता है, इस बातका निर्देश किया गया है । स्थानप्ररूपणामें कितने स्पर्धक मिलकर एक योगस्थान बनता है, यह बतलाया गया है । अनन्तरोपनिधामें जघन्य योगस्थानसे लेकर उत्कृष्ट योगस्थान तक प्रत्येक योगस्थानमें कितने स्पर्धक बढ़ते जाते हैं, यह बतलाया गया है । परम्परोपनिधामें जघन्य योगस्थानके स्पर्धकोंसे कितने योगस्थान जानेपर वे दूने होते जाते हैं, यह बतलाया गया है । समयप्ररूपणामें उत्कृष्टरूपसे चार, पाँच, छह, सात, आठ, सात, छह, पाँच, चार, तीन और दो समय तक अवस्थित रहनेवाले कितने योगस्थान हैं, इसका विचार किया गया है । वृद्धिप्ररूपणामें लगातार कौन वृद्धि या हानि कितने कालतक हो सकती है, इस बातका विचार किया गया है । अल्पबहुत्वप्ररूपणामें अलग-अलग कालतक अवस्थित रहनेवाले योगस्थानोंका अल्पबहुत्व दिखलाया गया है । इन दस अनुयोगद्वारोंका विशेष खुलासा मूलके अनुवादमें विशेषार्थ देकर किया है, इसलिए वहाँसे जान लेना चाहिए । स्थानप्ररूपणाका दूसरा भेद प्रदेशबन्धस्थानप्ररूपणा है । इसमें यह बतलाया गया है कि जो योगस्थान हैं, वे ही प्रदेशबन्धस्थान हैं । किन्तु ज्ञानावरणादि प्रकृति विशेषके कारण वे विशेष अधिक हैं ।

सर्व-नोसर्वप्रदेशबन्ध—ज्ञानावरणादि कर्मोंका प्रदेशबन्ध होने पर वह सर्वबन्धरूप है या नोसर्वबन्धरूप है, इसका विचार इन दोनों अनुयोगद्वारोंमें किया गया है । जब सब प्रदेशबन्ध होने पर उसे सर्वबन्ध कहते हैं और जहाँ उससे न्यून प्रदेशबन्ध होता है उसे नोसर्वबन्ध कहते हैं । मात्र यह ओघ और आदेशसे दो प्रकारका है, इसलिए मूल और उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा जहाँ जो सम्भव हो वहाँ उसे घटित कर लेना चाहिए ।

उत्कृष्ट-अनुत्कृष्टप्रदेशबन्ध—ज्ञानावरणादिका प्रदेशबन्ध होने पर वह उत्कृष्टरूप है या अनुत्कृष्टरूप, इसका विचार इन दो अनुयोगद्वारोंमें किया गया है । जहाँ मूल और उत्तर प्रकृतियोंका ओघ और आदेशसे यथासम्भव उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होता है, वहाँ उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध कहलाता है और मूल व उत्तर प्रकृतियोंका इससे न्यून प्रदेशबन्ध होता है वह अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध कहलाता है ।

जघन्य-अजघन्यप्रदेशबन्ध—ज्ञानावरणादि मूल व उत्तर प्रकृतियोंका प्रदेशबन्ध होने पर वह जघन्य है या अजघन्य, इसका विचार इन दो अनुयोगद्वारोंमें किया गया है । बन्धके समय ओघ और आदेशसे यथासम्भव सबसे कम प्रदेशबन्ध होने पर वह जघन्य प्रदेशबन्ध कहलाता है और उससे अधिक प्रदेशबन्ध होने पर वह अजघन्य प्रदेशबन्ध कहलाता है ।

सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुवप्रदेशबन्ध—इन चारों अनुयोगद्वारोंमें जो उत्कृष्ट आदि चार प्रकारका प्रदेशबन्ध बतलाया गया है वह सादि आदि किस रूप है, इस बातका विचार किया गया है । मूल व उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा इसका विशेष खुलासा हमने विशेषार्थके द्वारा उस प्रकरणके समय किया ही है, इसलिए वहाँसे जान लेना चाहिए । संक्षेपमें उनकी संदृष्टि इस प्रकार है—

कर्म	उत्कृष्ट	अनुत्कृष्ट	जघन्य	अजघन्य
ज्ञानावरण मूल व उत्तर प्रकृतियाँ	सादि-अध्रुव	सादि आदि चार	सादि-अध्रुव	सादि-अध्रुव
दर्शनावरण मूल व छह उत्तर प्रकृतियाँ	सादि-अध्रुव	सादि आदि चार	सादि-अध्रुव	सादि-अध्रुव
स्त्यानगृद्धि आदि तीन	सादि-अध्रुव	सादि-अध्रुव	सादि-अध्रुव	सादि-अध्रुव
वेदनीय मूल	सादि-अध्रुव	सादि आदि चार	सादि-अध्रुव	सादि-अध्रुव
उत्तर प्रकृतियाँ	सादि-अध्रुव	सादि-अध्रुव	सादि-अध्रुव	सादि-अध्रुव
मोहनीय मूल व मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और सात नोकषाय	सादि-अध्रुव	सादि-अध्रुव	सादि-अध्रुव	सादि-अध्रुव
बारह कषाय, भय और जुगुप्सा	सादि-अध्रुव	सादि आदि चार	सादि-अध्रुव	सादि-अध्रुव
आयु मूल व उत्तर प्रकृतियाँ	सादि-अध्रुव	सादि-अध्रुव	सादि-अध्रुव	सादि-अध्रुव
नामकर्म मूल	सादि-अध्रुव	सादि आदि चार	सादि-अध्रुव	सादि-अध्रुव
नामकर्म की सब उत्तर प्रकृतियाँ	सादि-अध्रुव	सादि-अध्रुव	सादि-अध्रुव	सादि-अध्रुव
गोत्रकर्म मूल	सादि-अध्रुव	सादि आदि चार	सादि-अध्रुव	सादि-अध्रुव
गोत्रकर्म की उत्तर प्रकृतियाँ	सादि-अध्रुव	सादि-अध्रुव	सादि-अध्रुव	सादि-अध्रुव
अन्तरायकर्म मूल व उत्तर प्रकृतियाँ	सादि-अध्रुव	सादि आदि चार	सादि-अध्रुव	सादि-अध्रुव

स्वामित्वप्ररूपणा—इसमें ओघ और आदेशसे मूल व उत्तर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और जघन्य प्रदेशबन्धके स्वामीका निर्देश किया गया है। यहाँ इसे संदृष्टि देकर दिखलाया जाता है—

मूल प्रकृतियोंका ओघसे उत्कृष्ट व जघन्य स्वामित्व

मूल प्रकृतियाँ	उत्कृष्ट स्वामित्व	जघन्य स्वामित्व
छह मूल प्रकृ०	छह कर्मोंका बन्ध करनेवाला उपशामक व क्षपक	प्रथम समयमें तद्भवस्थ हुआ जघन्य योगसे युक्त और जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला भी कोई सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त
मोहनीय कर्म	सात कर्मोंका बन्धक, उत्कृष्ट योगसे युक्त और उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला कोई सम्यग्दृष्टि व मिथ्यादृष्टि संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त	"
आयु कर्म	आठ कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगवाला कोई सम्यग्दृष्टि व मिथ्यादृष्टि चारों गतिका संज्ञी पर्याप्त जीव।	क्षुल्लक भवके तृतीय त्रिभागके प्रथम समयमें विद्यमान, जघन्य योगसे युक्त और जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला कोई सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीव

उत्तर प्रकृतियोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका उपशामक और क्षपक सूक्ष्मसाम्पराय जीव; निद्रा, प्रचला, छह नोकषाय और तीर्थंकर प्रकृतिका सम्यग्दृष्टि जीव; अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कका असंयतसम्यग्दृष्टि जीव, प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका देशसंयत जीव, संज्वलनचतुष्क और पुरुषवेदका उपशामक और क्षपक अनिवृत्तिकरण जीव, असातावेदनीय, मनुष्यायु, देवायु, देवगति, वैक्रियिकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयका सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि संज्ञी पर्याप्त जीव; आहारकद्विकका अप्रमत्तसंयत जीव तथा शेष प्रकृतियोंका मिथ्यादृष्टि संज्ञी पर्याप्त जीव उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तथा नरकायु, देवायु और नरकगतिद्विकका असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव; देवगतिचतुष्क और तीर्थंकर प्रकृतिका असंयतसम्यग्दृष्टि जीव; आहारकद्विकका अप्रमत्तसंयत जीव और शेष प्रकृतियोंका तीन मोड़ोंमें से प्रथम मोड़ेमें स्थित सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीव जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। मात्र तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका जघन्य प्रदेशबन्ध आयुबन्धके समय कराना चाहिए। यहाँ यह सामान्यरूपसे स्वामित्वका निर्देश किया है। जो अन्य विशेषताएँ हैं वे मूलसे जान लेनी चाहिए। मात्र जो उत्कृष्ट योगसे युक्त है, और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धके साथ कमसे कम प्रकृतियोंका बन्ध कर रहा है वह उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी होता है। तथा जो जघन्य योगसे युक्त है और जघन्य प्रदेशबन्धके साथ अधिकसे अधिक प्रकृतियोंका बन्ध कर रहा है वह जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी होता है। प्रत्येक प्रकृतिके उत्कृष्ट और जघन्य प्रदेशबन्धके समय इतनी विशेषता अवश्य जान लेनी चाहिए।

कालप्ररूपणा—इस अनुयोगद्वारमें ओघ व आदेशसे मूल व उत्तर प्रकृतियोंके जघन्य और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धके कालका विचार किया गया है। उदाहरणार्थ ज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध दसवें गुणस्थानमें होता है और वहाँ उत्कृष्ट योगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है, इसलिए इसका

जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। तथा इसके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धके तीन भङ्ग प्राप्त होते हैं—अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त। अनादि-अनन्त भङ्ग अभव्योंके होता है, क्योंकि उनके द्वितीयादि गुणस्थानोंकी प्राप्ति सम्भव न होनेसे वे सर्वदा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करते रहते हैं। अनादि सान्त भङ्ग जो केवल क्षपकश्रेणीपर आरोहण करके मोक्ष जाते हैं उनके सम्भव है, क्योंकि उनके अनादिसे अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होने पर भी दसवें गुणस्थानमें उसका अन्त देखा जाता है। और सादि सान्त भङ्ग ऐसे जीवोंके होता है जिन्होंने उपशमश्रेणिपर आरोहण करके उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध किया है। यहाँ इस सादि-सान्त भङ्गका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध एक समयके अन्तरसे सम्भव है, इसलिए तो यहाँ अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्यकाल एक समय कहा है और उपशमश्रेणिके आरोहणका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है, इसलिए यहाँ अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण कहा है। यह तो ज्ञानावरणके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धके कालका विचार है। इसके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धके कालका विचार इसप्रकार है—सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीव भवके प्रथम समयमें इसका जघन्य प्रदेशबन्ध करता है, इसलिए इसके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इसके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्यकाल एक समय कम क्षुल्लकभवग्रहण प्रमाण है, क्योंकि उक्त जीव प्रथम समयमें जघन्य प्रदेशबन्ध करके पर्यायके अन्ततक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता रहा और मरकर पुनः सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त होकर भवके प्रथम समयमें जघन्य प्रदेशबन्ध करने लगा, यह सम्भव है। और इस अजघन्य प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल दो प्रकारसे बतलाया है। प्रथम तो असंख्यात लोकप्रमाण कहा है सो इसका कारण यह प्रतीत होता है कि कोई जीव इतने कालतक सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त पर्यायमें न जाकर निरन्तर अजघन्य प्रदेशबन्ध करता रहे यह सम्भव है। दूसरे यह काल जगश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण कहा है सो यह योगस्थानोंकी मुख्यतासे जानना चाहिए। तात्पर्य यह है कि प्रथम उत्कृष्ट कालमें विवक्षित पर्यायके अन्तरकी मुख्यता है और दूसरे उत्कृष्ट कालमें विवक्षित योगस्थानके अन्तरकी मुख्यता है। इस प्रकार यहाँ ओघसे ज्ञानावरणके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धके कालका विचार किया। अन्य मूल व उत्तर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धके कालका विचार ओघ और आदेशसे इसी प्रकार मूलके अनुसार कर लेना चाहिए।

अन्तरप्ररूपणा—इस अनुयोगद्वारमें ओघ और आदेशसे मूल व उत्तर प्रकृतियोंके उत्कृष्टादिके अन्तरकालका विचार किया गया है। उदाहरणार्थ—ज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध एक समयके अन्तरसे भी सम्भव है और कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन कालके अन्तरसे भी सम्भव है, इसलिए इसके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण कहा है। तथा इसके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्यकाल एक समय होनेसे यहाँ इसके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कहा है और उपशान्तमोहमें अन्तर्मुहूर्त कालतक ज्ञानावरणका बन्ध नहीं होता, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। यहाँ ताड़प्रतिके दो पत्र नष्ट हो गये हैं। इस कारण तिर्यञ्चगतिके अन्तरप्ररूपणाके अन्तिम भागसे लेकर अन्तरप्ररूपणाका बहुभाग, सन्निकर्ष, नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन और काल ये अनुयोगद्वार नहीं उपलब्ध होते। परन्तु उत्तर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और जघन्य प्रदेशबन्धके सन्निकर्ष अनुयोगद्वारके मध्यके कुछ त्रुटित भागको छोड़कर अन्तर काल, सन्निकर्ष और नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय आदिका प्रतिपादन करनेवाले ये अनुयोगद्वार यथावत् उपलब्ध होते हैं। इसलिए यहाँ उन अनुयोगद्वारोंकी दिशाका ज्ञान करानेके लिए उनके आधारसे परिचय दिया जाता है।

सन्निकर्षप्ररूपणा—सन्निकर्षके दो भेद हैं—स्वस्थान सन्निकर्ष और परस्थान सन्निकर्ष। स्वस्थान सन्निकर्षमें प्रत्येक कर्मकी विवक्षित एक प्रकृतिके साथ बन्धको प्राप्त होनेवाली उसी कर्मकी अन्य प्रकृतियोंके

सन्निकर्षका विचार किया जाता है और परस्थान सन्निकर्षमें विवक्षित प्रकृतिके साथ बन्धको प्राप्त होनेवाली सब उत्तर प्रकृतियोंके सन्निकर्षका विचार किया जाता है। यतः यह प्रदेशबन्धका प्रकरण है, अतः यहाँ उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध और जघन्य प्रदेशबन्धके आश्रयसे स्वस्थान और परस्थान सन्निकर्षके दो-दो भेद करके विचार किया गया है। उसमें भी पहले उत्कृष्ट स्वस्थान सन्निकर्ष और उत्कृष्ट परस्थान सन्निकर्षका विचार करके बादमें जघन्य स्वस्थान सन्निकर्ष और जघन्य परस्थान सन्निकर्षका विचार किया गया है। उदाहरणस्वरूप आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरणका नियमसे उत्कृष्ट बन्ध करता है। यह उत्कृष्ट स्वस्थान सन्निकर्षका एक उदाहरण है। इसीप्रकार ओघ और आदेशसे सब सन्निकर्ष घटित करके बतलाया गया है।

यहाँ उत्कृष्ट सन्निकर्षके अन्तमें सन्निकर्षकी सिद्धिके कुछ उदाहरण देते हुए मूल प्रकृतिविशेष, पिण्डप्रकृति विशेष और उत्तर प्रकृति विशेषका परिमाण आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाकर 'पवाइज्जमाण' और 'अपवाइज्जमाण' उपदेशके अनुसार इन तीन विशेषोंके अल्पबहुत्वका निर्देश किया है।

भङ्गविचयप्ररूपणा—उस अनुयोगद्वारमें ओघ और आदेशसे सब मूल व उत्तर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट व जघन्य प्रदेशबन्धके भङ्गोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा विचार किया गया है। उसमेंसे मूलप्रकृतियोंकी अपेक्षा भङ्गविचय प्रकरण नष्ट हो गया है, यह हम पहले ही सूचित कर आये हैं। ओघसे उत्तरप्रकृतियोंकी अपेक्षा इस प्रकरणको प्रारम्भ करते हुए सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका भङ्ग मूल प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाले जीवोंके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र नरकायु, मनुष्यायु और देवायु इन तीन आयुओंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाले जीवोंके आठ-आठ भङ्ग जाननेकी सूचना की है। आगे वह ओघप्ररूपणा जिन मार्गणाओंमें सम्भव है, उनमें ओघके समान जाननेकी सूचना की है और जिनमें विशेषता है, उनमें उसका अलगसे निर्देश किया है। ओघसे जघन्य भङ्गविचयको प्रारम्भ करते हुए नरकायु, मनुष्यायु और देवायु ये तीन आयु, वैक्रियिकषट्क, आहारकद्विक और तीर्थंकर इनके जघन्य और अजघन्य भङ्गविचयका भङ्ग उत्कृष्ट प्ररूपणाके समान जाननेकी सूचना की है। तथा शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य प्रदेशोंके बन्धक और अबन्धक नाना जीव हैं, यह बतलाया है। यह ओघप्ररूपणा है। यह जिन मार्गणाओंमें सम्भव है उनमें ओघके समान जाननेकी सूचना की है और शेष मार्गणाओंमें विशेषताके साथ भङ्गविचयका निर्देश किया है।

भागाभागप्ररूपणा—मूल प्रकृतियोंकी अपेक्षा भागाभागप्ररूपणा भी नष्ट हो गई है। उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा ओघसे भागाभागका निर्देश करते हुए तीन आयु, वैक्रियिक छह और तीर्थङ्कर प्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव इनका बन्ध करनेवाले जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण बतलाये हैं। आहारकद्विकका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव संख्यात बहुभागप्रमाण बतलाये हैं। तथा इनके सिवा शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव अनन्तवें भागप्रमाण और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव अनन्त बहुभागप्रमाण बतलाये हैं। आगे जिन मार्गणाओंमें यह ओघप्ररूपणा सम्भव है उनमें ओघप्ररूपणाके समान जाननेकी सूचना करके शेष मार्गणाओंमें जो विशेषता सम्भव है उसका निर्देश किया है। जघन्य भागाभागका निर्देश करते हुए बतलाया है कि आहारकद्विकका भङ्ग तो उत्कृष्टके समान है और शेष प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं। आदेशसे सब मार्गणाओंमें सामान्यसे इसीप्रकार जाननेकी सूचना करके संख्यातसंख्यावाली मार्गणाओंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग आहारकशरीरके समान जाननेकी सूचना की है।

परिमाणप्ररूपणा—मूल प्रकृतियोंकी अपेक्षा प्रतिपादन करनेवाली यह प्ररूपणा भी नष्ट हो गई है। उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा ओघसे परिमाणका निर्देश करते हुए बतलाया है कि तीन आयु और वैक्रि-

यिक छहका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं। आहारकद्विकका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं। तीर्थङ्कर प्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं। तथा शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव अनन्त हैं। यह ओघप्ररूपणा जिन मार्गणाओंमें सम्भव है उनमें ओघके समान जाननेकी सूचना करके शेष मार्गणाओंमें जहाँ जो विशेषता है, उसका अलगसे निर्देश किया है। ओघसे जघन्य परिमाणका निर्देश करते हुए बतलाया है कि तीन आयु, नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं। देवगतिद्विक, वैक्रियिकद्विक और तीर्थंङ्कर प्रकृतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं। आहारकद्विकका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं। तथा शेष प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव अनन्त हैं। आगे जिन मार्गणाओंमें यह ओघप्ररूपणा बन जाती है, उनमें ओघके समान जाननेकी सूचना करके शेष मार्गणाओंमें अपनी-अपनी बन्ध-प्रकृतियोंकी अपेक्षा अलगसे परिमाणका निर्देश किया है।

क्षेत्रप्ररूपणा—मूल प्रकृतियोंकी यह प्ररूपणा भी त्रुटित है। ओघसे उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा निर्देश करते हुए बतलाया है कि तीन आयु, वैक्रियिकषट्क, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र सर्वलोकप्रमाण है। आगे जिन मार्गणाओंमें यह ओघप्ररूपणा सम्भव है, उनमें ओघके समान जाननेकी सूचना करके शेषमें अलगसे विधान किया है। जघन्य क्षेत्रका विधान करते हुए बतलाया है कि ओघसे तीन आयु, वैक्रियिक छह, आहारकद्विक और तीर्थंङ्कर प्रकृतिका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा शेष प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र सर्वलोकप्रमाण है। यह प्ररूपणा भी जिन मार्गणाओंमें सम्भव है, उनमें ओघके समान जाननेकी सूचना करके शेषमें उसका अलगसे विधान किया है।

स्पर्शनप्ररूपणा—मूल प्रकृतियोंकी यह प्ररूपणा भी नष्ट हो गई है। ओघसे उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा निर्देश करते हुए बतलाया है कि पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, मनुष्यगति, चार जाति, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, त्रस, बादर, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार अन्य प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका अपने-अपने स्वामित्वके अनुसार स्पर्शन कहा है। तथा सब मार्गणाओंमें भी अपनी-अपनी बन्ध योग्य प्रकृतियोंका आश्रय लेकर स्पर्शन कहा है। जघन्य स्पर्शनका निर्देश करते हुए जो प्रकृतियाँ एकेन्द्रियसे लेकर चतुरिन्द्रिय तकके जीवोंके नहीं बँधती हैं उनका स्पर्शन अपने स्वामित्वके अनुसार अलग-अलग बतलाया है और शेष प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन सर्वलोक बतलाया है। केवल मनुष्यायुके स्पर्शनमें कुछ विशेषताका निर्देश किया है। यहाँ मार्गणाओंमें भी इसी प्रकार अपनी अपनी-विशेषताके अनुसार स्पर्शनका निर्देश किया है।

नाना जीवोंकी अपेक्षा काल—मूल प्रकृतियोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट कालप्ररूपणा तो नष्ट हो गई है। मात्र जघन्यकाल प्ररूपणा उपलब्ध होती है। आठों मूलप्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध योग्य सामग्रीके सद्भावमें सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव करते हैं, इसलिए नाना जीवोंकी अपेक्षा इनके जघन्य और

अजघन्य प्रदेशबन्धका काल सर्वदा पाये जानेसे वह सर्वदा कहा है। इसी प्रकार मार्गणाओंमें भी अपने-अपने स्वामित्वके अनुसार कालका विचार किया है। उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट कालका विचार करते हुए जिन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध संख्यात जीव करते हैं, उनकी अपेक्षा उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल सर्वदा है, यह स्पष्ट ही है। नरकायु, मनुष्यायु और देवायुका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध असंख्यात जीव करते हैं, इसलिए इनके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। तथा इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए इसका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। अब रहीं शेष प्रकृतियाँ सो इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध असंख्यात जीव और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध अनन्त जीव करते हैं, इसलिए इनके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल सर्वदा कहा है। यह ओघप्ररूपणा जिन मार्गणाओंमें बन जाती है उनमें ओघके समान जाननेकी सूचना करके शेष मार्गणाओंमें अलगसे कालका निर्देश किया है। जघन्य कालप्ररूपणाका निर्देश करते हुए तीन आयु, वैक्रियिकषट्क, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य और अजघन्य प्रदेश बन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अपने-अपने स्वामित्वके अनुसार बतला कर शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका काल सर्वदा कहा है, क्योंकि इनका जघन्य प्रदेशबन्ध सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव करते हैं। तथा इनका अजघन्य प्रदेशबन्ध यथासम्भव एकेन्द्रियादि सब जीवोंके सम्भव है। यह ओघप्ररूपणा जिन मार्गणाओंमें सम्भव है, उनमें ओघके समान जाननेकी सूचना करके शेषमें जहाँ जो विशेषता है उसका अलगसे निर्देश किया है।

नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर—जघन्य और उत्कृष्टके भेदसे अन्तर प्ररूपणा भी दो प्रकार की है। ओघसे मूल प्रकृतियोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तरकालका कथन करते हुए बतलाया है कि आठों कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेश बन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका अन्तर काल नहीं है। उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा भी यही काल है। आगे यह ओघ प्ररूपणा जिन मार्गणाओंमें बन जाती है, उनमें ओघके समान जाननेकी सूचना करके शेष मार्गणाओंमें जहाँ जो विशेषता है उसका अलगसे निर्देश किया है। ओघसे मूल प्रकृतियोंकी अपेक्षा जघन्य प्ररूपणाका निर्देश करते हुए बतलाया है कि आठों कर्मोंके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है। उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा निर्देश करते हुए तीन आयु, वैक्रियिकषट्क, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग उत्कृष्टके समान बतलाकर शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। आगे यह ओघप्ररूपणा जिन मार्गणाओंमें बन जाती है, उनमें ओघके समान जाननेकी सूचना करके शेषमें जहाँ जो विशेषता है उसका अलगसे निर्देश किया है।

भावप्ररूपणा—सब प्रकृतियोंका बन्ध औदयिक भावसे होता है, इसलिए यहाँ सब मूल और उत्तर प्रकृतियोंका जघन्य और उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका औदयिक भाव कहा है।

अल्पबहुत्वप्ररूपणा—अल्पबहुत्वके दो भेद हैं—स्वस्थान अल्पबहुत्व और परस्थान अल्पबहुत्व। मूल प्रकृतियोंमें स्वस्थान अल्पबहुत्व सम्भव नहीं है, इसलिए इनका जघन्य और उत्कृष्ट दोनों प्रकारका परस्थान प्रदेश अल्पबहुत्व ही कहा है। उत्तर प्रकृतियोंका स्वस्थान और परस्थान दोनों प्रकारका अल्पबहुत्व सम्भव है, क्योंकि यहाँ प्रत्येक कर्मके अलग-अलग अनेक भेद हैं, इसलिए प्रत्येक कर्मकी अवान्तर प्रकृतियोंका स्वस्थान अल्पबहुत्व बन जाता है और सब कर्मोंकी अवान्तर प्रकृतियोंको एक पंक्तिमें रखने पर उनमें परस्थान अल्पबहुत्व भी बन जाता है। यह प्रदेशबन्धका प्रकरण है और प्रदेशबन्ध दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। इसलिए यहाँ यह दोनों प्रकारका अल्पबहुत्व उत्कृष्ट प्रदेश बन्धकी अपेक्षा भी ओघ और आदेशके अनुसार घटित करके बतलाया है और जघन्य प्रदेशबन्धकी अपेक्षा भी ओघ और आदेशके अनुसार घटित करके बतलाया है। इस अल्पबहुत्वके कारणका

निर्देश ग्रन्थके प्रारम्भमें भागहार प्ररूपणाके समय बतला ही आये हैं, इसलिए उसे ध्यानमें रखकर और स्वामित्वको ध्यानमें रखकर इसकी योजना करनी चाहिए। कर्मोंके घाति-अघाति तथा घाति कर्मोंके देश-घाति और सर्वघाति होनेसे किसी कर्मको कम और किसी कर्मको अधिक प्रदेश मिलते हैं, इसे भी इस प्रकरणमें ध्यान रखना चाहिए।

भुजगारबन्ध

इस प्रकरणमें भुजगार पद उपलक्षण है। इससे भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्य इन चारोंका बोध होता है। अनन्तर पिछले समयमें अल्प प्रदेशोंका बन्ध करके अगले समयमें अधिक प्रदेशोंका बन्ध करना यह भुजगारबन्ध है। अनन्तर पिछले समयमें अधिक प्रदेशोंका बन्ध करके वर्तमान समयमें कम प्रदेशोंका बन्ध करना यह अल्पतर बन्ध है। अनन्तर पिछले समयमें जितने प्रदेशोंका बन्ध किया है, अगले समयमें उतने ही प्रदेशोंका बन्ध करना यह अवस्थित बन्ध है और अबन्धके बाद बन्ध करना यह अवक्तव्यबन्ध है। यहाँ इसका तेरह अनुयोगद्वारोंके आश्रयसे कथन किया गया है। वे तेरह अनुयोगद्वार ये हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व, काल, अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व।

यहाँ आठ मूल प्रकृतियोंकी अपेक्षा नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय प्रकरणका प्रारम्भके और अन्तके कुछ अंशको छोड़कर शेष अंश नष्ट हो गया है। कारण कि यहाँका एक ताड़पत्र गल गया है। इसी प्रकार ताड़पत्रके तीन पत्र गल जानेसे उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा अन्तर प्ररूपणाका अन्तका कुछ भाग, नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय और भागाभाग ये तीन प्रकरण भी नष्ट हो गये हैं।

समुत्कीर्तनामें ओघ और आदेशसे मूल और उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा पूर्वोक्त भुजगार आदि चारों पदोंमेंसे किसके कौन सम्भव हैं, इस बातका निर्देश किया गया है। स्वामित्वमें ओघ और आदेशसे उनका स्वामी बतलाया है। कालप्ररूपणामें उनके कालका और अन्तर प्ररूपणामें अन्तरका विचार किया गया है। इसी प्रकार आगे भी जिस प्रकरणका जो नाम है, उसके अनुसार ओघ और आदेशसे विचार किया गया है। यहाँ मूल प्रकृतियोंकी अपेक्षा ओघसे अवस्थित पदके कालका निर्देश करते हुए दो प्रकारके उपदेशोंका स्पष्टरूपसे उल्लेख किया है—एक 'पवाइज्जंत' उपदेश और दूसरा अन्य उपदेश। 'पवाइज्जंत' उपदेशके अनुसार ओघसे आयुके बिना सात मूल कर्मोंके अवस्थित पदका उत्कृष्ट काल ग्यारह समय और अन्य उपदेशके अनुसार पन्द्रह समय कहा गया है। ओघसे उत्तर प्रकृतियोंके कालका निर्देश करते हुए भी इन दो उपदेशोंका उल्लेख किया है। वहाँ चार आयुओंके सिवा शेष सब प्रकृतियोंके अवस्थित पदका उत्कृष्ट काल 'पवाइज्जंत' उपदेशके अनुसार ग्यारह समय और अन्य उपदेशके अनुसार पन्द्रह समय बतलाया है।

पदनिक्षेप

भुजगार अनुयोगद्वारमें भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यपदके आश्रयसे मूल और उत्तर प्रकृतियोंके समुत्कीर्तना आदिका विचार किया जाता है, यह पहले बतला आये हैं। किन्तु वे भुजगार आदि पद उत्कृष्ट भी होते हैं और जघन्य भी होते हैं, इस बातका विचारकर यहाँ इस अनुयोगद्वारमें भुजगारके उत्कृष्ट वृद्धि और जघन्य वृद्धि ये दो भेद करके, अल्पतरके उत्कृष्ट हानि और जघन्य हानि ये दो भेद करके तथा अवस्थितपदके उत्कृष्ट अवस्थान और जघन्य अवस्थान ये दो भेद करके विचार किया गया है। अवक्तव्यपदके ये उत्कृष्ट और जघन्य भेद सम्भव नहीं हैं, इसलिए यहाँ इसकी अपेक्षा न तो ये भेद किये गये हैं और न इसकी अपेक्षा विचार ही किया गया है। इस प्रकार उक्त बीजपदके अनुसार पदनिक्षेपके समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पबहुत्व ये तीन अनुयोगद्वार कहकर प्रत्येकके उत्कृष्ट और जघन्य ये दो-दो भेद कर दिये गये हैं। उत्कृष्ट समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पबहुत्वमें ओघ और आदेशसे मूल और उत्तर

प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थानका विचार किया गया है। तथा जघन्य समुत्कीर्तना, जघन्य स्वामित्व और जघन्य अल्पबहुत्वमें ओघ और आदेशसे मूल और उत्तर प्रकृतियोंकी जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि और जघन्य अवस्थानका विचार किया गया है।

यहाँ एक ताड़पत्रके गल जानेसे मूलप्रकृतियोंकी अपेक्षा स्वामित्वके अन्तका बहुभाग और अल्पबहुत्व तथा वृद्धि अनुयोगद्वारके अल्पबहुत्वके अन्तके अंशको छोड़कर शेष सब प्रकरण नष्ट हो गये हैं। इसीप्रकार उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्वामित्वका निर्देश करते हुए आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी इन तीन मार्गणाओंकी प्ररूपणाके मध्यमें ताम्रपत्र मुद्रित प्रतिमें यह सूचना दी गई है—[क्रमागतताडपत्रस्यात्रानुपलब्धिः। अक्रमयुक्तमन्यं समुपलभ्यते।] अर्थात् क्रमागत ताड़पत्रकी यहाँपर अनुपलब्धि है। अक्रमयुक्त अन्य ताड़पत्र उपलब्ध हो रहा है। वैसे प्रकरणकी सङ्गति बैठ जाती है, इसलिए यह कह सकना कठिन है कि क्रमाङ्कके अन्तरको सूचित करनेके लिए यहाँ सूचना दी गई है या यह सूचना देनेका अन्य कोई कारण है।

यहाँ समुत्कीर्तनामें ओघ और आदेशसे मूल और उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा किसके उत्कृष्ट वृद्धि आदि और जघन्य वृद्धि आदि सम्भव हैं इस बातका निर्देश किया गया है। तथा स्वामित्वमें उनका स्वामित्व और अल्पबहुत्वमें अल्पबहुत्व बतलाया गया है।

वृद्धि

पहले पदनिक्षेपमें उत्कृष्ट वृद्धि आदि और जघन्य वृद्धि आदि पदोंके आश्रयसे विचार कर आये हैं। यहाँ इस अनुयोग द्वारमें उत्कृष्ट और जघन्य भेद न करके अपने अवान्तर भेदोंकी अपेक्षा वे वृद्धि और हानि जितने प्रकारकी हैं उनके आश्रयसे तथा अवस्थित और अवक्तव्यपदके आश्रयसे ओघ और आदेशसे मूल व उत्तर प्रकृतियोंका साङ्गोपाङ्ग विचार किया गया है। इसके अवान्तर अनुयोगद्वार तेरह हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व, काल, अन्तर, नानाजीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व।

वृद्धिपद उपलक्षण है। इससे वृद्धि, हानि, अवस्थित और अवक्तव्य इन सबका ग्रहण होता है। इन चारोंके अवान्तर भेद बारह हैं। यथा अनन्तभागवृद्धि, अनन्तभागहानि, असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागहानि, संख्यातगुणवृद्धि, संख्यातगुणहानि, असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि, अवस्थित और अवक्तव्य। यहाँ इन पदोंकी अपेक्षा समुत्कीर्तना आदि तेरह अनुयोगद्वारोंका आलम्बन लेकर और आदेशसे मूल व उत्तर प्रकृतियोंका विचार किया गया है।

समुत्कीर्तनामें मूल व उत्तर प्रकृतियोंके कहाँ कितने पद सम्भव हैं यह बतलाया गया है। स्वामित्वमें मूल व उत्तर प्रकृतियोंके किन पदोंका कहाँ कौन स्वामी है यह बतलाया गया है। इसी प्रकार आगे भी जिस प्रकरणका जो नाम है उसके अनुसार विचार किया गया है।

यह तो हम पहले ही सूचित कर आये हैं कि मूल प्रकृतियोंकी अपेक्षा वृद्धि-अनुयोगद्वारका कथन करनेवाला प्रकरण ताड़पत्रके गल जानेसे प्रायः सबका सब नष्ट हो गया है, उत्तर प्रकृतियोंका विवेचन करनेवाला ही यह प्रकरण उपलब्ध होता है।

अध्यवसानसमुदाहार

अध्यवसानसमुदाहारके दो भेद हैं—प्रमाणानुगम और अल्पबहुत्व। प्रमाणानुगममें योगस्थानों और प्रदेशबन्धस्थानोंके प्रमाणका निर्देश करते हुए बतलाया है कि जितने योगस्थान हैं उनसे ज्ञानावरण कर्मके प्रदेशबन्धस्थान संख्यातवें भागप्रमाण अधिक हैं। कारणका निर्देश करते हुए बतलाया है कि आठ

प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाले जीवको सब योगस्थान प्राप्त होते हैं। सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाले जीवके जो उत्कृष्ट होता है उसमेंसे आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाले जीवका उत्कृष्ट योगस्थानका कुछ भाग शेष बचता है, इसलिए आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवालेसे सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवालेके विशेष प्राप्त होता है। तथा इसी प्रकार सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवालेसे छह प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने वालेके विशेष प्राप्त होता है। यही कारण है कि यहाँ पर योगस्थानोंसे ज्ञानावरणके प्रदेशबन्धस्थान संख्यातवें भागप्रमाण अधिक कहे हैं। यहाँ ज्ञानावरण कर्मके आश्रयसे जो व्याख्यान किया है उसी प्रकार अन्य कर्मोंके आश्रयसे जानना चाहिए। मात्र आयुकर्मके योगस्थान समान होते हैं। यह मूल प्रकृतियों की अपेक्षा विचार हुआ। उत्तरप्रकृतियोंकी अपेक्षा इसीप्रकार प्रत्येक प्रकृतिका आलम्बन लेकर योगस्थानों और प्रदेशबन्ध स्थानोंके प्रमाणका अलग-अलग विचार किया गया है। तथा अल्पबहुत्वमें इन योगस्थानों और प्रदेशबन्ध स्थानोंके मूल व उत्तरप्रकृतिकी अपेक्षा अल्पबहुत्वका विचार किया गया है।

जीवसमुदाहार

इस अनुयोगद्वारके भी दो भेद हैं—प्रमाणानुगम और अल्पबहुत्व। प्रमाणानुगममें पहले चौदह जीव समासोंके आश्रयसे जघन्य और उत्कृष्ट योगस्थानोंके अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा करके बादमें उन्हीं चौदह जीव समासोंके आश्रयसे जघन्य और उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध स्थानोंके अल्पबहुत्वका कथन किया गया है।

अल्पबहुत्वके जघन्य, उत्कृष्ट और जघन्योत्कृष्ट ये तीन भेद करके ओघ और आदेशसे सब मूल व उत्तरप्रकृतियोंके प्रदेशोंके अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा इन प्रकरणोंमें की गई है।

* * *

विषय-सूची

मङ्गलाचरण	१
प्रदेशबन्धके दो भेदोंका नाम-निर्देश	१
मूल प्रकृति प्रदेशबन्ध	**१-८७**
भागाभागसमुदाहार	१-२
चौबीस अनुयोगद्वारोंका नामनिर्देश	३
स्थानप्ररूपणा	**३-१०**
स्थानप्ररूपणाके दो भेद	३
योगस्थानप्ररूपणा	**३-१०**
योग-अल्पबहुत्व	३-४
प्रदेश-अल्पबहुत्व	४
योगस्थानप्ररूपणाके दस भेद	५
अविभाग प्रतिच्छेद प्ररूपणा	५
वर्गणाप्ररूपणा	५
स्पर्धकप्ररूपणा	६
अन्तरप्ररूपणा	६
स्थानप्ररूपणा	७
अनन्तरोपनिधा	७
परम्परोपनिधा	८
समयप्ररूपणा	९
वृद्धिप्ररूपणा	९-१०
अल्पबहुत्व	१०
प्रदेशबन्धस्थानप्ररूपणा	**१०**
सर्व-नोसर्व-प्रदेशबन्धप्ररूपणा	**१०-११**
उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धप्ररूपणा	**११**
जघन्य-अजघन्य प्रदेशबन्धप्ररूपणा	**१२**
साद्यादि प्रदेशबन्धप्ररूपणा	**१२-१३**
स्वामित्वप्ररूपणा	**१४-२८**
स्वामित्वके दो भेद	१४
उत्कृष्ट स्वामित्व	१४-२२
जघन्य स्वामित्व	२२-२८
कालप्ररूपणा	**२८-४५**
कालके दो भेद	२८
उत्कृष्ट काल	२८-३४
जघन्य काल	३४-४५
अन्तरप्ररूपणा	**४५-४८**
अन्तरके दो भेद	४५
उत्कृष्ट अन्तर (त्रुटित[1])	४५-४८
नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल	४९
अन्तरप्ररूपणा	**५०-५१**
अन्तरके दो भेद	५०
उत्कृष्ट अन्तर	५०
जघन्य अन्तर	५१
भावप्ररूपणा	**५१**
भावके दो भेद	५१
उत्कृष्ट भाव	५१
जघन्य भाव	५१
अल्पबहुत्वप्ररूपणा	**५२-५३**
अल्पबहुत्वके दो भेद	५२
उत्कृष्ट अल्पबहुत्व	५२
जघन्य अल्पबहुत्व	५२-५३
भुजगारबन्ध	**५३-७९**
अर्थपद	५३
भुजगारके १३ अनुयोगद्वारोंकी सूचना	५३
समुत्कीर्तना	५३-५४
स्वामित्व	५४-५५
काल	५५-५७
अन्तर	५७-६५
नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय	६५-६६
भागाभाग	६६-६७
परिमाण	६७-६९
क्षेत्र	६९-७०
स्पर्शन	७१-७३
काल	७३-७५
अन्तर	७६-७७
भाव	७७
अल्पबहुत्व	७८-७९

---

[1] जघन्य अन्तर, सन्निकर्ष, नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन और उत्कृष्ट काल भी त्रुटित।

पदनिक्षेप ७९-८२
पदनिक्षेपके तीन भेद ७९
समुत्कीर्तना ७९
समुत्कीर्तनाके दो भेद ७९
उत्कृष्ट समुत्कीर्तना ७९
जघन्य समुत्कीर्तना ७९
स्वामित्व ८०-८२
स्वामित्वके दो भेद ८०
उत्कृष्ट स्वामित्व (त्रुटित[1]) ८०-८२
वृद्धिबन्ध ८२-८३
अल्पबहुत्व (त्रुटित) ८२-८३
अध्यवसानसमुदाहार ८३
अध्यवसानसमुदाहारके दो भेद ८३
प्रमाणानुगम ८३
अल्पबहुत्वानुगम ८३
जीवसमुदाहार ८४-८७
जीवप्रमाणानुगम ८४
अल्पबहुत्वानुगम ८४-८७
उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्ध ८७-३६९
भागाभागसमुदाहार ८७-८९
अर्थपद ८९
२४ अनुयोगद्वारोंकी सूचना ८९
स्थानप्ररूपणा ९०
सर्व-नोसर्व प्रदेशबन्ध आदि प्ररूपणां ९०-९१
साद्यादिप्रदेशबन्धप्ररूपणा ९१
स्वामित्वप्ररूपणा ९२-१३४
स्वामित्वके दो भेद ९२
उत्कृष्ट स्वामित्व ९२-११३
जघन्य स्वामित्व ११३-१३४
कालप्ररूपणा १३४
कालके दो भेद १३४
उत्कृष्ट काल (त्रुटित[2]) १३४-१५४
अन्तरप्ररूपणा १५४-१७७
जघन्य अन्तर १५४-१७७
सन्निकर्ष प्ररूपणा १७८
सन्निकर्षके दो भेद १७८
स्वस्थान सन्निकर्षके दो भेद १७८
उत्कृष्ट स्वस्थान सन्निकर्ष[3] १७८-१९०
जघन्य स्वस्थान सन्निकर्ष १९०-२०७
परस्थान सन्निकर्षके दो भेद २०७
उत्कृष्ट परस्थान सन्निकर्ष २०७-२०९
जघन्य परस्थान सन्निकर्ष २०७-३५०
भङ्गविचयप्ररूपणा ३५०-३५३
भङ्गविचयके दो भेद ३५०
उत्कृष्ट भङ्गविचय ३५०-३५२
जघन्य भङ्गविचय ३५२-३५३
भागाभागप्ररूपणा ३५४-३५६
भागाभागके दो भेद ३५४
उत्कृष्ट भागाभाग ३५४-३५५
जघन्य भागाभाग ३५५-३५६
परिमाणप्ररूपणा ३५६-३६९
परिमाणके दो भेद ३५६
उत्कृष्ट परिमाण ३५६-३६२
जघन्य परिमाण ३६२-३६९

---

[1] जघन्य स्वामित्व और अल्पबहुत्व तथा वृद्धिबन्धसम्बन्धी अल्पबहुत्वके कुछ अंशको छोड़कर शेष अनुयोगद्वार भी त्रुटित। [2] जघन्य काल, उत्कृष्ट अन्तर व जघन्य अन्तर का प्रारम्भिक अंश भी त्रुटित। [3] मध्यमें, बहुत अंश त्रुटित, देखो पृ० १८२

सिरि-भगवंतभूदबलिभडारयपणीदो

महाबंधो

चउत्थो पदेसबंधाहियारो

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

१. यो सो पदेसबंधो सो दुविहो—मूलपगदिपदेसबंधो चेव उत्तरपगदिपदेसबंधो चेव ।

१ मूलपयडिपदेसबंधो

२. एत्तो मूलपगदिपदेसबंधे पुव्वं गमणीयो भागाभागसमुदाहारो । अट्ठविधबंधगस्स आउगभागो[1] थोवो । णामा-गोदेसु भागो विसेसाधियो । णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइगाणं भागो विसेसाधियो । मोहणीयभागो विसेसाधियो । वेदणीयभागो विसेसाधियो । केण कारणेण आउगभागो[2] थोवो ? अट्ठसु कम्मपगदीसु आउगे ट्ठिदिबंधो थोवो । एदेण कारणेण आउगभागो थोवो । सेसाणं वेदणीयवज्जाणं कम्माणं यस्स दीहा ट्ठिदी तस्स भागो बहुगो । वेदणीयस्स पुण अण्णं कारणं । यदि वेदणीयं ण भवे तदो

अरिहन्तोंको नमस्कार हो, सिद्धोंको नमस्कार हो, आचार्योंको नमस्कार हो, उपाध्यायोंको नमस्कार हो और लोकमें सर्व साधुओंको नमस्कार हो ।

१. प्रदेशबन्ध दो प्रकारका है—मूलप्रकृतिप्रदेशबन्ध और उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्ध ।

१ मूलप्रकृतिप्रदेशबन्ध

२. यहाँसे मूलप्रकृतिप्रदेशबन्धमें भागाभागसमुदाहारका सर्व प्रथम विचार करते हैं। वह इस प्रकार है—आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाले जीवके आयुकर्मका भाग सबसे स्तोक है। इससे नाम और गोत्रकर्मका भाग विशेष अधिक है। इससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मका भाग विशेष अधिक है। इससे मोहनीय कर्मका भाग विशेष अधिक है और इससे वेदनीय कर्मका भाग विशेष अधिक है।

शंका—आयुकर्मको स्तोक भाग क्यों मिलता है ?

समाधान—क्योंकि आठ कर्मोंमें आयुकर्मका स्थितिबन्ध स्तोक है, इससे आयुकर्मको स्तोक भाग मिलता है।

वेदनीयके सिवा शेष कर्मोंमें जिसकी स्थिति अधिक है उसको बहुत भाग मिलता है। परन्तु वेदनीयको अधिक भाग मिलनेका अन्य कारण है। यदि वेदनीय कर्म न हो तो सब कर्म

---

[1] ता० प्रतौ आउगभावो (गो) इति पाठः ।
[2] ता०प्रतौ आउगभावो (गो) आ० प्रतौ आउगभावो इति पाठः ।

सव्वकम्माणि वि जीवस्स ण समत्था सुहं वा दुक्खं वा उप्पादेदुं[1]। एदेण कारणेण वेदणीए भागो बहुगो। एदेण कारणेण सव्वकम्माणं उवरिल्लं[2]।

३. सत्तविधबंधगस्स वि णामा-गोदेसु भागो थोवो। णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइगाणं भागो विसे०। मोहणीए भागो विसे०। वेदणीए भागो विसे०।

४. छव्विहबंधगस्स वि णामा-गोदेसु भागो थोवो। णाणाव०-दंसणा०-अंतराइगाणं भागो विसे०। वेदणीए भागो विसे०।

जीवको सुख या दुःख उत्पन्न करनेमें समर्थ नहीं हैं। इस कारण वेदनीयको सबसे बहुत भाग मिलता है। तथा इसी कारण से सब कर्मोंके ऊपर वेदनीयका भागाभाग प्राप्त होता है।

३. सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाले जीवके भी नाम और गोत्र कर्मका भाग स्तोक है। इससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मका भाग विशेष अधिक है। इससे मोहनीय कर्मका भाग विशेष अधिक है और इससे वेदनीय कर्मका भाग विशेष अधिक है।

४. छह प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाले जीवके भी नाम और गोत्रकर्मका भाग स्तोक है। इससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मका भाग विशेष अधिक है और इससे वेदनीय कर्मका भाग विशेष अधिक है।

विशेषार्थ—गुणस्थान भेदसे बन्ध चार प्रकारका होता है—आठ प्रकृतिक बन्ध, सात प्रकृतिक बन्ध, छह प्रकृतिक बन्ध और एकप्रकृतिक बन्ध। एकप्रकृतिक बन्ध उपशान्तमोह आदि तीन गुणस्थानोंमें होता है। किन्तु जब एकप्रकृतिक बन्ध होता है,तब बँटवारेका प्रश्न ही नहीं उठता, इसलिए मूलमें इसका उल्लेख नहीं किया है। छह प्रकृतिक बन्ध सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें होता है। तथा सात प्रकृतिक बन्ध प्रथमादि नौ गुणस्थानोंमें और आठ प्रकृतिक बन्ध प्रथमादि सात गुणस्थानोंमें आयुबन्धके काल में होता है। इसलिए पिछले इन तीन प्रकार के बन्धोंमेंसे अपने-अपने योग्य स्थानोंमें जब जो बन्ध होता है तब बन्धको प्राप्त होनेवाले कर्म प्रदेशोंका विभाग किस क्रमसे होता है,यह कारणपूर्वक यहाँ बतलाया गया है। आठ कर्मोंका जितना स्थितिबन्ध होता है उनमें आयुकर्मका स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है, क्योंकि इसका जघन्य स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तेतीस सागर है। इसलिए इसमें निषेक-रचना सबसे अल्प है। यही कारण है कि इसे बन्धके समय सबसे अल्प भाग मिलता है। नाम और गोत्रकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध बीस कोड़ाकोड़ी सागर है, इसलिए इन दोनों कर्मों को समान भाग मिलकर भी आयुकर्मके भागसे बहुत मिलता है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय का स्थितिबन्ध तीस कोड़ाकोड़ी सागर है, इसलिए इन तीन कर्मोंको परस्पर समान भाग मिलकर भी नाम और गोत्रकर्मके भागसे बहुत मिलता है। यद्यपि वेदनीय कर्मका स्थितिबन्ध भी तीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है, तथापि सुख-दुःखके निमित्तसे इसकी निर्जरा सर्वाधिक होती है; अतः इसे मोहनीय कर्मसे भी अधिक द्रव्य मिलता है। मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर है, अतः इसे ज्ञानावरणादिके द्रव्यसे बहुत द्रव्य मिलता है। तात्पर्य यह है कि वेदनीय कर्मके सिवा जिस कर्मके अपने-अपने स्थितिबन्धके अनुसार जितने निषेक होते हैं,उसी हिसाबसे उस कर्मको द्रव्य मिलता है। मात्र यह विवक्षा वेदनीय कर्मपर लागू नहीं होती, इसका कारण पहले दे ही आये हैं।

---

[1] ता० प्रतौ उप्पादेदु०त्ते इति पाठः। [2] ता०प्रतौ अवरिद्धं इति पाठः।

चदुवीसअणियोगद्दाराणि

५. एदेण अट्ठपदेण तत्थ इमाणि चदुवीसं अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति। तं जहा—ठाणपरूवणा सव्वबंधो णोसव्वबंधो उक्कस्सबंधो अणुक्कस्सबंधो जहण्णबंधो अजहण्णबंधो एवं याव अप्पाबहुगे त्ति। भुजगारबंधो[1] पदणिक्खेओ वड्ढिबंधो अज्झवसाणसमुदाहारो जीवसमुदाहारो त्ति।

ट्ठाणपरूवणा

६. ट्ठाणपरूवणदाए तत्थ इमाणि दुवे अणियोगद्दाराणि—योगट्ठाणपरूवणा पदेसबंधपरूवणा चेदि। योगट्ठाणपरूवणदाए सव्वत्थोवा सुहुमस्स अपज्जत्तयस्स जहण्णगो जोगो। बादरस्स अपज्जत्तयस्स जहण्णगो योगो असंखेँज्जगुणो। बेइं०-तेइं०-चदुरिं०-पंचिंदि०-असण्णि-सण्णिअपज्जत्तयस्स जहण्णगो योगो असंखेँज्जगुणो। सुहुमएइंदियअपज्ज० उक्क० योगो असंखेँज्जगुणो। बादरएइंदियअपज्ज० उक्क० योगो असंखेँज्जगुणो। सुहुमएइंदियपज्ज० जहण्णगो योगो असं०गुणो। बादरएइंदिय०पज्ज० जह० योगो असं०गुणो। सुहुम०पज्ज०उक्क० असं०गुणो। बादर०पज्ज० उक्क० असं०गुणो।

चौबीस अनुयोगद्वार

५. इस अर्थपदके अनुसार यहाँ ये चौबीस अनुयोगद्वार होते हैं। यथा—स्थानप्ररूपणा, सर्वबन्ध, नोसर्वबन्ध, उत्कृष्ट बन्ध, अनुत्कृष्ट बन्ध, जघन्य बन्ध और अजघन्य बन्धसे लेकर अल्पबहुत्व तक। तथा भुजगारबन्ध, पदनिक्षेप, वृद्धिबन्ध, अध्यवसानसमुदाहार और जीवसमुदाहार।

विशेषार्थ—यहाँ चौबीस अनुयोगद्वारोंका निर्देश करते समय प्रारम्भके सात और अन्तका एक गिनाया है। मध्यके शेष ये हैं—सादिबन्ध, अनादिबन्ध; ध्रुवबन्ध, अध्रुवबन्ध, स्वामित्व, एक जीवकी अपेक्षा काल, अन्तर, सन्निकर्ष, नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर और भाव। आगे इन चौबीस अनुयोगद्वारोंका आश्रय लेकर प्रदेशबन्धका विचार कर पुनः उसका भुजगारबन्ध, पदनिक्षेप, वृद्धि, अध्यवसानसमुदाहार और जीवसमुदाहार इन द्वारा और इनके अवान्तर अनुयोगद्वारोंके आश्रयसे विचार किया गया है।

स्थानप्ररूपणा

६. स्थानप्ररूपणामें ये दो अनुयोगद्वार होते हैं—योगस्थानप्ररूपणा और प्रदेशबन्धप्ररूपणा। योगस्थानप्ररूपणामें सूक्ष्म अपर्याप्त जीवके जघन्य योग सबसे स्तोक है। इससे बादर अपर्याप्त जीवके जघन्य योग असंख्यातगुणा है। इससे द्वीन्द्रिय अपर्याप्त, त्रीन्द्रिय अपर्याप्त, चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त, पञ्चेन्द्रिय असंज्ञी अपर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय संज्ञी अपर्याप्त जीवके जघन्य योग उत्तरोत्तर असंख्यातगुणा है। इससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवके उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है। इससे बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवके उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है। इससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवके जघन्य योग असंख्यातगुणा है। इससे बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवके जघन्य योग असंख्यातगुणा है। इससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवके उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है। इससे बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवके उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है। इससे द्वीन्द्रिय

---

[1] ता० प्रतौ भुयागारबंधो इति पाठः।

बेइं०-तेइं०-चदुरिं०- पंचिं०-असण्णि-सण्णिअपज्जत्तयस्स उक्क० असं०गुणो। तस्सेव पज्जत्तयस्स जह० योगो असं०गुणो। तस्सेव पज्ज० उक्क० असं०गुणो। एवमेॅक्केॅक्कस्स जीवस्स योगगुणगारो पलिदोवमस्स असंखेॅज्जदिभागो।

७. पदेसअप्पाबहुगे त्ति। सव्वत्थोवा सुहुम०अपज्ज० जहण्णयं पदेसग्गं। बादर०-अपज्ज० जह० पदे० असं०गु०। बेइं०-तेइं०-चदुरिं०-पंचिं०असण्णि-सण्णि अपज्ज० जह० पदे० असं०गु०। एवं यथा योगअप्पाबहुगं तथा णेदव्वं। णवरि विसेसो एवमेॅक्केॅक्कस्स पदेसगुणगारो पलिदो० असंखेॅज्जदिभागो।

एवं अप्पाबहुगं समत्तं।

अपर्याप्त, त्रीन्द्रिय अपर्याप्त, चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त, पञ्चेन्द्रिय असंज्ञी अपर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय संज्ञी अपर्याप्त जीवके उत्कृष्ट योग उत्तरोत्तर असंख्यातगुणा है। इससे इन्हीं पर्याप्त जीवोंके जघन्य योग उत्तरोत्तर असंख्यातगुणा है। इससे इन्ही पर्याप्त जीवोंके उत्कृष्ट योग उत्तरोत्तर असंख्यातगुणा है। इस प्रकार यहाँ एक-एक जीवके योगका गुणकार पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

विशेषार्थ—मन, वचन और कायका आलम्बन लेकर जीवमें जो आत्मप्रदेशपरिस्पंद रूप शक्ति उत्पन्न होती है उसे योग कहते हैं। यह योग आलम्बनके भेदसे तीन प्रकारका है—मनोयोग, वचनयोग और काययोग। यह सामान्य लब्ध्यपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवसे लेकर सयोगिकेवली तक सब संसारी जीवोंके उपलब्ध होता है। उसमें भी सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त जीवके यह सबसे जघन्य होता है और संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवके उत्कृष्ट होता है। बीच में जीवसमासके भेदसे जघन्य और उत्कृष्ट योग किस क्रमसे होता है, यह मूलमें बतलाया ही है।

७. प्रदेशअल्पबहुत्वका विचार करनेपर सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवके जघन्य प्रदेशाग्र सबसे स्तोक हैं। इनसे बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवके जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणे हैं। इनसे द्वीन्द्रिय अपर्याप्त, त्रीन्द्रिय अपर्याप्त, चतुरिन्द्रिय, अपर्याप्त, पञ्चेन्द्रिय असंज्ञी अपर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय संज्ञी अपर्याप्त जीवके जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणे हैं। इस प्रकार आगे योग अल्पबहुत्वके समान यह अल्पबहुत्व जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि एक-एक जीवके प्रदेशगुणकार पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

विशेषार्थ—पहले योगअल्पबहुत्व का कथन कर आये हैं। प्रदेशअल्पबहुत्व उसीके समान है। यहाँ प्रदेशअल्पबहुत्वसे उत्तरोत्तर कितने गुणे प्रदेशोंका बन्ध होता है, यह बतलाया गया है। सबसे जघन्य योग सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकके होता है, अतएव इस योगसे इसी जीवके सबसे जघन्य प्रदेशबन्ध होता है। इससे बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकके जघन्य योग असंख्यातगुणा होता है, इसलिए सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकके जितने कर्म परमाणुओंका बन्ध होता है उनसे असंख्यातगुणे कर्मपरमाणुओंका बन्ध होता है। पहले योग अल्पबहुत्व बतलाते समय असंख्यातगुणेमें असंख्यात पदका अर्थ पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग लिया गया है, यह कह आये हैं। वैसे ही इस अल्पबहुत्व में भी असंख्यातगुणेमें असंख्यात पदका अर्थ पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग लेना चाहिए। इस प्रकार संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त तक उत्तरोत्तर असंख्यातगुणा प्रदेशबन्ध होता है, ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये।

इस प्रकार अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

योगट्ठाणपरूवणा

८. योगट्ठाणपरूवणदाए तत्थ इमाणि दस अणियोगद्दाराणि—अविभागपलिच्छेदपरूवणा वग्गणापरूवणा फद्दयपरूवणा अंतरपरूवणा ठाणपरूवण। अणंतरोवणिधा परंपरोवणिधा समयपरूवणा वड्ढिपरूवणा अप्पाबहुगे त्ति।

९. अविभागपलिच्छेदपरूवणदाए एक्कमेक्कम्हि जीवपदेसे केवडिया अविभागपलिच्छेदा ? असंखेज्जा लोगा अविभागपलिच्छेदा। एवडिया अविभागपलिच्छेदा।

१०. वग्गणपरूवणदाए असंखेज्जा लोगा योगअविभागपलिच्छेदा एया वग्गणा भवंदि[1]। एवं असंखेज्जाओ वग्गणाओ सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्तीओ।

योगस्थानप्ररूपणा

८. योगस्थानप्ररूपणामें ये दस अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं—अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणा, वर्गणाप्ररूपणा, स्पर्धकप्ररूपणा, अन्तरप्ररूपणा, स्थानप्ररूपणा, अनन्तरोपनिधा, परम्परोपनिधा, समयप्ररूपणा, वृद्धिप्ररूपणा और अल्पबहुत्व।

९. अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणामें जीवके एक-एक प्रदेशमें कितने अविभागप्रतिच्छेद होते हैं ? असंख्यात लोकप्रमाण अविभागप्रतिच्छेद होते हैं। इतने अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं।

विशेषार्थ—बुद्धिद्वारा शक्तिका छेद करने पर सबसे जघन्य शक्त्यंशकी वृद्धिका नाम प्रतिच्छेद संज्ञा है। यह वृद्धि अविभाज्य होती है, अतः इसे अविभागप्रतिच्छेद कहते हैं। प्रकृतमें योगशक्ति विवक्षित है। जीवके प्रत्येक प्रदेशमें इस योगशक्तिके देखने पर वह असंख्यात लोकप्रमाण प्रतिच्छेदोंसे युक्त योगशक्तिको लिये हुये होता है। यद्यपि यह योगशक्ति किसी जीवप्रदेशमें जघन्य होती है और किसी जीवप्रदेशमें उत्कृष्ट, पर अविभागप्रतिच्छेदोंकी अपेक्षा विचार करने पर वह असंख्यात लोकप्रमाण अविभागप्रतिच्छेदोंको लिये हुए होकर भी जघन्यसे उत्कृष्टमें असंख्यातगुणे अविभागप्रतिच्छेद होते हैं। उदाहरणार्थ—एक शुक्ल वस्त्र लीजिये। उसके किसी एक अवयवमें कम शुक्लता होती है और किसीमें अधिक। जिस प्रकार उस वस्त्रमें शुक्लगुणका तारतम्य दिखाई देता है, उसी प्रकार जीवके प्रदेशोंमें भी योगशक्तिका तारतम्य दिखाई देता है। इससे विदित होता है कि इस तारतम्यका कोई कारण होना चाहिए। यहाँ तारतम्यका जो भी कारण है उसीका नाम अविभागप्रतिच्छेद है। इन अविभागप्रतिच्छेदोंके क्रमसे वर्गणा कैसे उत्पन्न होती है, आगे इसी बातका विचार किया जाता है।

१०. वर्गणाप्ररूपणाकी अपेक्षा योगके असंख्यात लोकप्रमाण अविभागप्रतिच्छेद मिलकर एक वर्गणा होती है। इस प्रकार असंख्यात वर्गणाएँ होती हैं, क्योंकि ये जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण होती हैं।

विशेषार्थ—पहले हम प्रत्येक प्रदेशगत योगके अविभागप्रतिच्छेदोंका विचार कर आये हैं। उत्तरोत्तर वृद्धिरूप ये अविभागप्रतिच्छेद सभी जीव प्रदेशोंमें उपलब्ध होते हैं। कारण कि योग सब प्रदेशोंमें समान रूपसे नहीं उपलब्ध होता। उदाहरणार्थ दाहिने हाथसे वजन उठाने पर इस हाथके प्रदेशोंमें जितना अधिक खिंचाव दिखाई देता है, उतना खिंचाव कंधेके पासके प्रदेशोंमें नहीं दिखाई देता। तथा कंधेके प्रदेशोंमें जितना खिंचाव दिखाई देता है, उतना खिंचाव शरीरके अन्य अवयवोंके प्रदेशोंमें नहीं प्रतीत होता। इसलिये सब जीवप्रदेशोंमें योगशक्तिकी हीनाधिकताके कारण उसका तारतम्य किस क्रमसे उपलब्ध होता है, यह विचार करना पड़ता

---

[1] प्रत्योः भवन्ति इति पाठः।

११. फद्दयपरूवणदाए असंखेंज्जाओ वग्गणाओ[1] सेडीए असंखेंज्जदिभागमेंत्तीओ एयं फद्दयं भवदि। एवं असंखेंज्जाणि फद्दयाणि सेडीए असंखेंज्जदिभागमेंत्ताणि।

१२. अंतरपरूवणदाए एँक्केँक्कस्स फद्दयस्स केवडियं अंतरं ? असंखेंज्जा लोगा अंतरं। एवडियं अंतरं।

है और इसी विचारके परिणामस्वरूप योगका निरूपण अविभागप्रतिच्छेद, वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक और योगस्थान इत्यादि अधिकारों द्वारा किया जाता है। अविभागप्रतिच्छेदोंका विचार तो किया ही है। वे जितने जीवप्रदेशोंमें समानरूपसे पाये जाते हैं उन जीव प्रदेशोंकी वर्गणा संज्ञा है। पुनः इनसे आगेके जीवप्रदेशोंमें एक अविभागप्रतिच्छेद अधिक पाया, इसलिये इन जीवप्रदेशोंकी दूसरी वर्गणा बनती है। पुनः इनसे आगेके जीव प्रदेशोंमें दो अधिक अविभागप्रतिच्छेद पाये जाते हैं, इसलिये इन जीव प्रदेशोंकी तीसरी वर्गणा बनती है। इस प्रकार एक-एक अविभागप्रतिच्छेद अधिकके क्रमसे उत्तरोत्तर चौथी आदि वर्गणाएँ बनती हैं जो जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण होती हैं। इस प्रकार वर्गणाओंका विचार किया। आगे स्पर्धकका विचार करते हैं—

११. स्पर्धकप्ररूपणाकी अपेक्षा असंख्यात वर्गणाएँ, जो कि जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण होती हैं, मिलकर एक स्पर्धक होता है। इस प्रकार असंख्यात स्पर्धक होते हैं, क्योंकि ये जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण होते हैं।

विशेषार्थ—पहले जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण वर्गणाओंका विचार कर आये हैं। उन सब वर्गणाओंका समुदाय प्रथम स्पर्धक होता है। इसी प्रकार अन्य-अन्य जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण वर्गणाओंका अन्य-अन्य स्पर्धक बनता है और ये सब स्पर्धक भी मिलकर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण होते हैं। इस प्रकार स्पर्धकोंका विचार कर आगे इनके अन्तरका विचार करते हैं—

१२. अन्तरप्ररूपणाकी अपेक्षा एक-एक स्पर्धकके बीच कितना अन्तर होता है ? असंख्यात लोकप्रमाण अन्तर होता है। इतना अन्तर होता है।

विशेषार्थ—पहले हम जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण अन्य-अन्य वर्गणाएँ मिलकर एक-एक स्पर्धक बनता है, यह बतला आये हैं। वहाँ हमने यह भी बतलाया है कि एक-एक स्पर्धकके भीतर जितनी वर्गणाएँ होती हैं, उनमें प्रथम वर्गणासे लेकर अन्तिम वर्गणा तक प्रत्येक वर्गणामें एक एक अविभागप्रतिच्छेद बढ़ता जाता है। उदाहरणार्थ प्रथम स्पर्धकमें चार वर्गणाएँ हैं और प्रथम वर्गणाके जीवप्रदेशोंमें पाँच-पाँच अविभागप्रतिच्छेद पाये जाते हैं. तो दूसरी वर्गणाके जीवप्रदेशोंमें छह-छह, तीसरी वर्गणाके जीवप्रदेशोंमें सात-सात और चौथी वर्गणाके जीव प्रदेशोंमें आठ-आठ अविभागप्रतिच्छेद पाये जावेंगे। अब विचार इस बातका करना है कि क्या जैसे प्रथम स्पर्धककी प्रत्येक वर्गणामें एक-एक अविभागप्रतिच्छेद अधिक पाया जाता है, उसी प्रकार प्रथम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेदोंसे दूसरे स्पर्धककी प्रथम वर्गणामें एक अधिक ही अविभागप्रतिच्छेद पाया जावेगा या इनके बीच कोई अन्तर है और यदि अन्तर है तो वह कितना है ? इसी प्रश्नका उत्तर देनेके लिये यह अन्तर प्ररूपणा आई है। इसमें बतलाया गया है कि एक-एक स्पर्धकके बीच असंख्यात लोकप्रमाण अन्तर है। इसका आशय यह है कि अनन्तरपूर्व स्पर्धककी अन्तिम वर्गणामें जितने अविभागप्रतिच्छेद होते हैं उनसे असंख्यात लोकप्रमाण अविभागप्रतिच्छेदोंका अन्तर देकर आगेके स्पर्धककी प्रथम वर्गणामें

---

[1] आ० प्रतौ असंखेज्जदिवग्गणाओ इति पाठः।

१३. ठाणपरूवणदाए असंखेंज्जाणि फद्दयाणि सेडीए असंखेंज्जदिभागमेंत्ताणि जहण्णयं जोगट्ठाणं भवदि। एवं असंखेंज्जाणि योगट्ठाणाणि सेडीए असंखेंज्जदिभागमेंत्ताणि।

१४. अणंतरोवणिधाए जहण्णजोगट्ठाणे फद्दयाणि थोवाणि। विदिए योगट्ठाणे फद्दयाणि विसेसाधियाणि। तदिए योगट्ठाणे फद्दयाणि विसे०। एवं विसे० विसे० याव उक्कस्सए योगट्ठाणे त्ति। विसेसो पुण अंगुलस्स असंखेंज्जदिभागमेंत्ताणि फद्दयाणि।

अविभागप्रतिच्छेद होते हैं। उदाहरणार्थ प्रथम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके प्रत्येक प्रदेशमें आठ-आठ अविभागप्रतिच्छेद हैं, इसलिए यहाँ असंख्यात लोकका प्रमाण चार मानकर इतना अन्तर देकर द्वितीय स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके प्रत्येक प्रदेशमें तेरह-तेरह अविभागप्रतिच्छेद होंगे। इसी प्रकार आगे सब स्पर्धकोंमें अन्तर दे-देकर उनकी वर्गणाओंके उक्त प्रकारसे अविभागप्रतिच्छेद होते हैं। आगे इन स्पर्धकोंके आधारसे स्थानकी उत्पत्ति कैसे होती है, यह बतलाते हैं—

१३. स्थानप्ररूपणाकी अपेक्षा असंख्यात स्पर्धक, जो कि जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण होते हैं, मिलकर जघन्य योगस्थान होता है। इस प्रकार असंख्यात योगस्थान होते हैं, क्योंकि उनका प्रमाण जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

विशेषार्थ—पहले हम जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्धकोंका निर्देश कर आये हैं। वे सब स्पर्धक मिलकर एक जघन्य योगस्थान होता है। यह सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक एक जीवसम्बन्धी योगस्थान है। इसी प्रकार अन्य अन्य जीवोंके सब प्रदेशोंमें रहनेवाली योगशक्तिके आश्रयसे अन्य-अन्य योगस्थानकी उत्पत्ति होती है। इस हिसाबसे सब योगस्थानों की परिगणना करने पर वे जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण होते हैं। यहाँ प्रश्न यह है कि जबकि एक-एक जीवके आश्रयसे एक-एक योगस्थान बनता है और जीव अनन्तानन्त हैं, ऐसी अवस्थामें अनन्तानन्त योगस्थान होने चाहिए; न कि जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण। समाधान यह है कि जीव अनन्तानन्त होकर भी योगस्थान जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण ही होते हैं, क्योंकि एक जीवके जो योगस्थान होता है, अन्य बहुतसे जीवोंके वही योगस्थान सम्भव है। उदाहरणस्वरूप साधारण वनस्पतिको लीजिये। साधारणवनस्पतिके एक-एक शरीरमें अनन्तानन्त निगोद जीव रहते हैं, जिनके आहार और श्वासोच्छ्वास आदि समान होते हैं। वे एक साथ मरते हैं और एक साथ उत्पन्न होते हैं, अतः इन जीवोंके समान योगस्थानके होनेमें कोई बाधा नहीं आती। इसी प्रकार अन्य जीवोंके भी समान योगस्थानोंका प्राप्त होना सम्भव है; अतः जीवराशिके अनन्तानन्त होने पर भी योगस्थान सब मिलाकर जगश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण ही होते हैं, यह सिद्ध होता है। अब आगे इन योगस्थानोंमें समान स्पर्धक न होकर उत्तरोत्तर अधिक स्पर्धक होते हैं, यह बतलाते हैं—

१४. अनन्तरोपनिधाकी अपेक्षा जघन्य योगस्थानमें स्पर्धक सबसे थोड़े होते हैं। इनसे दूसरे योगस्थानमें स्पर्धक विशेष अधिक होते हैं। इनसे तीसरे योगस्थानमें स्पर्धक विशेष अधिक होते हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट योगस्थानके प्राप्त होने तक वे उत्तरोत्तर विशेष अधिक होते हैं। यहाँ विशेषका प्रमाण अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्धक है।

विशेषार्थ—एक योगस्थानमें कुल स्पर्धक जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण होते हैं, यह हम पहले बतला आये हैं। इस हिसाबसे सब योगस्थानोंमें वे उतने-उतने ही होते होंगे यह शंका होती है, अतएव इस शंकाका परिहार करनेके लिये यह अनन्तरोपनिधा अनुयोगद्वार

१५. परंपरोवणिधाए जहण्णगे योगट्ठाणे फद्दगेहिंतो सेडीए असंखेँज्जदिभागं गंतूण दुगुणवड्ढिदा। एवं दुगुण० दुगुण० याव उक्कस्सए योगट्ठाणे त्ति। एयजोगदुगुणवड्ढिट्ठाणंतरं सेडीए असंखेँज्जदिभागो। णाणाजोगदुगुणवड्ढिट्ठाणंतरं पलिदोवमस्स असंखेँज्जदिभागो। णाणाजोगदुगुणवड्ढिट्ठाणंतराणि 'थोवाणि। एयजोगदुगुणवड्ढिट्ठाणंतरं असंखेँज्जगुणं।

आया है। इसमें बतलाया गया है कि सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तकके भवके प्रथम समयमें होनेवाले जघन्य योगस्थानमें जितने स्पर्धक होते हैं,उनसे द्वितीय योगस्थानमें वे अंगुलके असंख्यातवें भाग अधिक होते हैं। आगे इसी क्रमसे संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकके प्राप्त होनेवाले योगस्थान तक वे उत्तरोत्तर अधिक-अधिक होते जाते हैं। अब यहाँ यह देखना है कि वे उत्तरोत्तर अधिक-अधिक कैसे होते जाते हैं। बात यह है कि जघन्य योगस्थानके प्रत्येक स्पर्धककी प्रत्येक वर्गणामें जितने जीवप्रदेश होते हैं, उनसे द्वितीयादि योगस्थानोंके प्रत्येक स्पर्धककी प्रत्येक वर्गणामें वे उत्तरोत्तर हीन-हीन होते हैं, क्योंकि अधिक-अधिक योगशक्तिवाले जीवप्रदेशोंका उत्तरोत्तर न्यून-न्यून प्राप्त होना स्वाभाविक है और इसलिये प्रथमादि योगस्थानोंके स्पर्धकोंसे द्वितीयादि योगस्थानोंके स्पर्धकोंकी उत्तरोत्तार संख्या बढ़ती जाती है। इस प्रकार अन्तरोपनिधाका विचारकर परम्परोपनिधाका विचार करते हैं—

१५. परम्परोपनिधाकी अपेक्षा जघन्य योगस्थानमें जो स्पर्धक हैं, उनसे जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थान जाकर स्पर्धकोंकी दूनी वृद्धि होती है। इस प्रकार उत्कृष्ट योगस्थानके प्राप्त होने तक दूनी-दूनी वृद्धि जाननी चाहिए। एकयोगद्विगुणवृद्धिस्थानान्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण है और नानायोगद्विगुणवृद्धिस्थानान्तर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तदनुसार नानायोगद्विगुणवृद्धिस्थानान्तर स्तोक हैं और इनसे एकयोगद्विगुणवृद्धिस्थानान्तर असंख्यातगुणे हैं।

विशेषार्थ—पहले अनन्तरोपनिधामें यह बतलाया था कि जघन्य योगस्थानके स्पर्धकोंसे दूसरे योगस्थानमें तथा इसी प्रकार आगे-आगे सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्धकोंकी वृद्धि होती जाती है। अब यहाँ इस अनुयोगद्वारमें यह बतलाया गया है कि इस प्रकार एकसे दूसरेमें, दूसरेसे तीसरेमें और तीसरे आदिसे चौथे आदिमें स्पर्धकोंकी वृद्धि होती हुई वह जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थान जाने पर दूनी हो जाती है। तात्पर्य यह है कि प्रथम योगस्थानमें जितने स्पर्धक होते हैं, उनसे जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण योगस्थान आगे जाने पर वहाँ अन्तमें प्राप्त होनेवाले योगस्थानमें वे दूने हो जाते हैं। पुनः यहाँ अन्तमें प्राप्त होनेवाले योगस्थानमें जितने स्पर्धक होते हैं, उनसे जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण योगस्थान जाने पर वहाँ अन्तमें प्राप्त होनेवाले योगस्थानमें वे दूने हो जाते हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट योगस्थानके प्राप्त होने तक यह दूने-दूने स्पर्धक होने का क्रम जान लेना चाहिये। इस प्रकार जहाँ-जहाँ जाकर स्पर्धकोंकी दूनी-दूनी वृद्धि हुई,ऐसे स्थानोंका यदि योग किया जाय तो वे पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होते हैं। ये नानाद्विगुणवृद्धिस्थान हैं और यह तो बतला ही आये हैं कि जघन्य योगस्थानमें जितने स्पर्धक हैं,उनसे जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण योगस्थान जानेपर वहाँ जो योगस्थान प्राप्त होता है उसमें दूने स्पर्धक होते हैं। ये एकयोगद्विगुणवृद्धिस्थान हैं। इसलिए एक योगद्विगुणवृद्धिस्थान जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण होते हैं,यह सिद्ध ही है। अएतव नानाद्विगुणवृद्धिस्थानोंका अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण होनेसे वह थोड़ा है और एक योगद्विगुणवृद्धिरूप दो योगस्थानोंके मध्य योगस्थानोंका यदि अन्तर अर्थात् व्यवधान लिया जाय तो वह जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है।

१६. समयपरूवणदाए चदुसमइगाणि जोगट्ठाणाणि सेडीए असंखेँज्जदिभागमेँत्ताणि। पंचसमइगाणि जोगट्ठाणाणि सेडीए असंखेँज्जदिभागमेँत्ताणि। एवं छस्सम० सत्तसम० अट्ठसम०। पुणरपि सत्तसम० छस्सम० पंचसम० चदुसम०। उवरिं तिसम० विसमइगाणि जोगट्ठाणाणि सेडीए असंखेँज्जदिभागमेँत्ताणि।

१७. वड्ढिपरूवणदाए अत्थि असंखेँज्जभागवड्ढि-हाणी संखेँज्जभागवड्ढि-हाणी संखेँज्जगुणवड्ढि-हाणी असंखेँज्जगुणवड्ढि-हाणी। तिण्णि वड्ढि-हाणी केवचिरं

अतएव यह कहा है कि नानाद्विगुणवृद्धिस्थानान्तर थोड़ा है और एकयोगद्विगुणवृद्धिस्थानान्तर उससे असंख्यातगुणा है, क्योंकि एक पल्योपममें जितने समय होते हैं, उससे जगश्रेणिके आकाश प्रदेश असंख्यातगुणे होते हैं।

१६. समयप्ररूपणाकी अपेक्षा चार समयवाले योगस्थान जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। पांच समयवाले योगस्थान जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। इसी प्रकार छह, सात और आठ समयवाले तथा पुनः सात समयवाले, छह समयवाले, पाँच समयवाले, चार समयवाले और इनसे ऊपरके तीन समयवाले तथा दो समयवाले योगस्थान अलग-अलग जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं।

विशेषार्थ—ये पहले जो जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण योगस्थान बतलाये हैं, उनमें से सबसे जघन्य योगस्थानसे लेकर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण योगस्थान चार समयकी स्थितिवाले हैं। उनसे आगे जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण योगस्थान पाँच समय की स्थितिवाले हैं। उनसे आगे जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण योगस्थान छह समयकी स्थितिवाले हैं। उनसे आगे उतने ही योगस्थान सात समयकी स्थितिवाले हैं। उनसे आगे उतने ही योगस्थान आठ समयकी स्थितिवाले हैं। पुनः उनसे आगे उतने ही योगस्थान सात समयकी स्थितिवाले हैं। उनसे आगे उतने ही योगस्थान छह समयकी स्थितिवाले हैं। उनसे आगे उतने ही योगस्थान पाँच समयकी स्थितिवाले हैं। उनसे आगे उतने ही योगस्थान चार समयकी स्थितिवाले हैं। उनसे आगे उतने ही योगस्थान तीन समय की स्थितिवाले हैं और उनसे आगे उतने ही योगस्थान दो समयकी स्थितिवाले हैं। इन योगस्थानोंका यह उत्कृष्ट अवस्थितिकाल कहा है। जघन्य अवस्थितिकाल सबका एक समय है। यहाँ चार आदि समयकी अवस्थितिवाले सब योगस्थान यद्यपि जगश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण कहे हैं, फिर भी उनमें आठ समयवाले योगस्थान सबसे थोड़े हैं। इनसे दोनों ओरके सात समयवाले योगस्थान परस्परमें समान होते हुए भी असंख्यातगुणे हैं। इनसे दोनों पार्श्वके छह समयवाले योगस्थान परस्परमें समान होते हुए भी असंख्यातगुणे हैं। इनसे दोनों पार्श्वके पाँच समयवाले योगस्थान परस्परमें समान होते हुए भी असंख्यातगुणे हैं। इनसे दोनों पार्श्वके चार समयवाले योगस्थान परस्पर में समान होते हुए भी असंख्यातगुणे हैं। इनसे तीन समयवाले योगस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे दो समयवाले योगस्थान असंख्यातगुणे हैं। ये तीन समयवाले और दो समयवाले योगस्थान यवमध्यके ऊपर ही होते हैं, नीचे नहीं होते। इस प्रकार समयप्ररूपणा करनेके बाद अब वृद्धिप्ररूपणा करते हैं।

१७. वृद्धिप्ररूपणाकी अपेक्षा असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानि है, संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानि है, संख्यातगुणवृद्धि और संख्यातगुणहानि है तथा असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानि है। इनमें से तीन वृद्धियों और तीन हानियोंका कितना काल

कालादो होदि ? जहण्णेण एगसमयं, उक्क० आवलि० असंखेॅज्ज० । असंखेॅज्जगुणवड्ढि-हाणी केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण एगसमयं, उक्क० अंतोमुहुत्तं ।

१८. अप्पाबहुगे त्ति सव्वत्थोवाणि अट्ठसमइगाणि योगट्ठाणाणि । दोसु वि पासेसु सत्तसमइगाणि जोगट्ठाणाणि दो वि तुल्लाणि असंखेॅज्जगुणाणि । दोसु वि पासेसु छस्समइ० दो वि तु० असं०गु० । दोसु वि पासेसु पंचसमइ० दो वि तु० असं०गु० । दोसु वि पासेसु चदुसमइगाणि जोगट्ठाणाणि दो वि तु० असं०गु० । उवरिं तिसमइगाणि० असंखेॅज्जगुणाणि । विस० जोग० असं०गु० ।

एवं जोगट्ठाणपरूवणा समत्ता

पदेसबंधट्ठाणपरूवणा

१९. पदेसबंधट्ठाणपरूवणदाए याणि चेव जोगट्ठाणाणि ताणि चेव पदेसबंधट्ठाणाणि । णवरि पदेसबंधट्ठाणाणि पगदिविसेसेण विसेसाधियाणि ।

एवं पदेसबंधट्ठाणपरूवणा समत्ता ।

सव्व-णोसव्वबंधपरूवणा

२०. यो सो सव्वबंधो णोसव्वबंधो णाम तस्स इमो दुविधो णिद्देसो—ओघे०

है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—यहाँपर वृद्धि और हानिका विचार किया गया है । योगवर्ग असंख्यात होनेसे यहाँ चार वृद्धि और चार हानि ही सम्भव हैं । विवक्षित योगस्थानमें एक जीव है, उसके जितनी वृद्धि या हानि होकर उसे जो योगस्थान प्राप्त होता है, वहाँ वह वृद्धि या हानि होती है । इसी प्रकार सब योगस्थानोंमें वृद्धि और हानिका विचार कर लेना चाहिये ।

१८. अल्पबहुत्वकी अपेक्षा आठ समयवाले योगस्थान सबसे स्तोक हैं । इनसे दोनों ही पार्श्वोंमें सात समयवाले योगस्थान दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं । इनसे दोनों ही पार्श्वों में सात समयवाले योगस्थान दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं । इनसे दोनों ही पार्श्वों में छह समयवाले योगस्थान परस्परमें समान होकर असंख्यातगुणे हैं । इनसे दोनों ही पार्श्वों में पाँच समयवाले योगस्थान दोनों ही समान होकर असंख्यातगुणे हैं । इनसे दोनों ही पार्श्व भागोंमें चार समयवाले योगस्थान परस्परमें समान होकर असंख्यातगुणे हैं । इनसे ऊपर तीन समयवाले योगस्थान असंख्यातगुणे हैं और इनसे दो समयवाले योगस्थान असंख्यातगुणे हैं ।

इस प्रकार योगस्थानप्ररूपणा समाप्त हुई ।

प्रदेशबन्धस्थानप्ररूपणा

१९. प्रदेशबन्धप्ररूपणाकी अपेक्षा जो योगस्थान हैं, वे ही प्रदेशबन्धस्थान हैं । इतनी विशेषता है कि प्रदेशबन्धस्थान प्रकृतिविशेषकी अपेक्षा विशेष अधिक हैं ।

इस प्रकार प्रदेशबन्धस्थान प्ररूपणा समाप्त हुई ।

सर्व-नोसर्वप्रदेशबन्धप्ररूपणा

२०. जो सर्वबन्ध और नोसर्वबन्ध है उसका यह निर्देश है—ओघ और आदेश । ओघ

Varni Digamber Jain Institute Naria, Varanasi

आदे० । ओघेण णाणावरणीयस्स पदेसबंधो किं सव्वबंधो णोसव्वबंधो ? सव्वबंधो वा णोसव्वबंधो वा । सव्वाणि पदेसबंधंताणि बंधमाणस्स सव्वबंधो । तदूणं बंधमाणस्स णोसव्वबंधो । एवं सत्तण्णं कम्माणं । णिरएसु मोहाउगं ओघं । सेसाणं णोसव्वबंधो । एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं ।

उक्कस्स-अणुक्कस्सपदेसबंधपरूवणा

२१. यो सो उक्कस्सबंधो अणुक्कस्सबंधो णाम तस्स इमो दुवि० णि०--ओघे० आदे० । ओघे० णाणावरण० किं उक्कस्सबंधो अणुक्कस्सबंधो ? उक्कस्सबंधो वा अणुक्कस्सबंधो वा । सव्वुक्कस्सपदेसं बंधमाणस्स उक्कस्सबंधो । तदूणं बंधमाणस्स अणुक्कस्सबंधो । एवं सत्तण्णं० । णिरयेसु मोहाउगं ओघं । सेसाणं अणुक्कस्सबंधो । एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं ।

से ज्ञानावरणीय कर्मका क्या सर्वबन्ध है या नोसर्वबन्ध है ? सर्वबन्ध भी है और नोसर्वबन्ध भी है । सब प्रदेशोंको बाँधनेवालेके सर्वबन्ध होता है और उनसे न्यून प्रदेशोंको बाँधनेवाले जीवके नोसर्वबन्ध होता है । इसी प्रकार सात कर्मोंके विषयमें जानना चाहिए । नरकगतिमें मोहनीय और आयुकर्मका भङ्ग ओघके समान है । तथा शेष कर्मोंका वहाँ नोसर्वबन्ध है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—इन दोनों मिले हुए अधिकारों में प्रदेशोंकी अपेक्षा सर्वबन्ध और नोसर्वबन्धका विचार ओघ और आदेशसे किया गया है । ओघसे विचार करते समय ज्ञानावरणादि आठों कर्मोंका सर्वबन्ध और नोसर्वबन्ध यह दोनों ही प्रकारका बन्ध बतलाया गया है । इसका तात्पर्य यह है कि अपने-अपने योग्य उत्कृष्ट योगके होनेपर जब ज्ञानावरणादि कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध होता है, तब वहाँ उस कर्मकी अपेक्षा सर्वबन्ध कहलाता है और इससे न्यून प्रदेशोंका बन्ध होनेपर नोसर्वबन्ध कहलाता है । मार्गणाओंमें मात्र नरकगतिकी अपेक्षा विचार किया है और शेष मार्गणाओंमें इसी प्रकारसे जानने भरका संकेत किया है । नरकगतिमें मोहनीय और आयुकर्मका प्रदेशबन्ध ओघके समान सम्भव होनेसे वहाँ इन दो कर्मोंका तो ओघके समान सर्वबन्ध और नोसर्वबन्ध कहा है तथा शेष कर्मोंका नोसर्वबन्ध बतलाया है, क्योंकि ओघसे इन छह कर्मोंमें सबसे अधिक प्रदेशोंका बन्ध उपशमश्रेणि और क्षपकश्रेणिमें होता है, जो दोनों श्रेणियाँ नरकमें सम्भव नहीं हैं । इसके अतिरिक्त अन्य जितनी मार्गणाएँ हैं उनमें यथासम्भव अपनी-अपनी विशेषताको देखकर आठों कर्मोंका या जहाँ जितने कर्मोंका बन्ध सम्भव हो उनका सर्वबन्ध और नोसर्वबन्ध यथासम्भव जानना चाहिए, यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

उत्कृष्ट-अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धप्ररूपणा

२१. जो उत्कृष्टबन्ध और अनुत्कृष्टबन्ध है उसका यह निर्देश है—ओघनिर्देश और आदेश निर्देश । ओघसे ज्ञानावरण कर्मका क्या उत्कृष्टबन्ध होता है या अनुत्कृष्टबन्ध होता है ? उत्कृष्टबन्ध भी होता है और अनुत्कृष्टबन्ध भी होता है । सबसे उत्कृष्ट प्रदेशोंको बाँधनेवालके उत्कृष्टबन्ध होता है और उनसे न्यून प्रदेशोंको बाँधनेवालेके अनुत्कृष्टबन्ध होता है । इसी प्रकार सातों कर्मोंके विषयमें जानना चाहिए । नारकियोंमें मोहनीय और आयुकर्मका भंग ओघके समान है । तथा वहाँ शेष कर्मोंका अनुत्कृष्टबन्ध होता है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए ।

जहण्ण-अजहण्णपदेसबंधपरूवणा

२२. यो सो जहण्णबंधो अजहण्णबंधो णाम[1] तस्स इमो दुवि० णिद्देसो—ओघे० आदे०। ओघे० णाणावर० किं० जहण्णबंधो अजहण्णबंधो? जहण्णबंधो वा अजहण्णबंधो वा। सव्वजहण्णयं पदेसग्गं बंधमाणस्स जहण्णबंधो। तदुवरि बंधमाणस्स अजहण्णबंधो। एवं सत्तण्णं कम्माणं। णिरएसु ओघं पडुच्च अजहण्णबंधो। एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं।

सादि-अणादि-धुव-अद्धुवपदेसबंधपरूवणा

२३. यो सो सादियबंधो अणादियबंधो धुवबंधो अद्धुवबंधो णाम तस्स इमो दुवि० णि०—ओघे० आदे०। ओघे० छण्णं कम्माणं उक्कस्स-जहण्ण-अजहण्णपदेसबंधो किं सादियबंधो०४? सादिय-अद्धुवबंधो। अणुक्कस्सपदेसबंधो किं सादि०४?

विशेषार्थ—इन दोनों अनुयोगद्वारोंमें पूरा स्पष्टीकरण सर्वबन्ध और नोसर्वबन्ध अनुयोगद्वारोंके विवेचनके समय जिस प्रकार कर आये हैं, उसी प्रकार कर लेना चाहिये। जिस प्रकार सर्वबन्धसे उत्कृष्टरूपसे बँधे हुए सब प्रदेश विवक्षित हैं, उसी प्रकार उत्कृष्टबन्धमें भी उत्कृष्टरूपसे बँधे हुए प्रदेश विवक्षित हैं और जिस प्रकार नोसर्वबन्धमें न्यून बँधे हुए प्रदेश विवक्षित हैं, उसी प्रकार अनुत्कृष्ट बन्धमें भी न्यून बँधे हुए प्रदेश विवक्षित हैं। इनमें केवल अन्तर इतना है कि उत्कृष्टबन्धमें समुदायकी मुख्यता है और सर्वबन्ध अवयवप्रधान है।

जघन्य-अजघन्यप्रदेशबन्धप्ररूपणा

२२. जो जघन्यबन्ध और अजघन्यबन्ध है उसका यह निर्देश है—ओघ और आदेश। ओघसे ज्ञानावरणकर्मका क्या जघन्यबन्ध होता है या अजघन्यबन्ध होता है? जघन्यबन्ध भी होता है और अजघन्यबन्ध भी होता है। सबसे जघन्य प्रदेशोंको बाँधनेवालेके जघन्यबन्ध होता है और उनसे अधिक प्रदेशोंको बाँधनेवालेके अजघन्य बन्ध होता है। इसी प्रकार शेष सात कर्मोंकी अपेक्षासे जानना चाहिए। नरकोंमें ओघकी अपेक्षा अजघन्यबन्ध होता है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये।

विशेषार्थ—नोसर्वबन्धसे जघन्यबन्धमें क्या अन्तर है, इसका स्पष्टीकरण अनन्तर पूर्व कहे गये विशेषार्थसे हो जाता है। यहाँ एक विशेष बात यह कहनी है कि यहाँ नरकोंमें अजघन्यबन्ध क्यों है? इसका खुलासा 'ओघं पडुच्च' इस पदद्वारा किया है। इस आधारसे सब मार्गणाओंमें कहाँ ओघकी अपेक्षा जघन्यबन्ध संभव है और कहाँ अजघन्यबन्ध संभव है, इसका खुलासा कर लेना चाहिये।

सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुवप्रदेशबन्धप्ररूपणा

२३. जो सादिबन्ध, अनादिबन्ध, ध्रुवबन्ध और अध्रुवबन्ध है, उसका यह निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे छह कर्मोंका उत्कृष्टप्रदेशबन्ध, जघन्यप्रदेशबन्ध और अजघन्यप्रदेशबन्ध क्या सादिबन्ध है, क्या अनादिबन्ध है, क्या ध्रुवबन्ध है या क्या अध्रुवबन्ध है? सादिबन्ध है और अध्रुवबन्ध है। अनुत्कृष्टप्रदेशबन्ध क्या सादिबन्ध है,

---

[1] ता० प्रतौ जहण्णबंधो णाम इति पाठः।

सादियबंधो वा अणादियबंधो वा धुवबंधो वा अद्धुवबंधो वा। मोहाउगाणं उक्क० अणु०-जह०-अजह०पदेसबंधो किं सादि०४? सादिय-अद्धुवबंधो। एवं ओघभंगो अचक्खु०-भवसि०। णवरि भवसि० धुवं वज्ज०। सेसाणं उक्क०-अणु०-जह०-अजह०-पदेसबंधो सादिय-अद्धुवबंधो।

क्या अनादिबन्ध है, क्या ध्रुवबन्ध है या क्या अध्रुवबन्ध है? सादिबन्ध है, अनादिबन्ध है, ध्रुवबन्ध है और अध्रुवबन्ध है। मोहनीय और आयुकर्मका उत्कृष्टप्रदेशबन्ध, अनुत्कृष्टप्रदेशबन्ध, जघन्य प्रदेशबन्ध और अजघन्यप्रदेशबन्ध क्या सादिबन्ध है, क्या अनादिबन्ध है, क्या ध्रुवबन्ध है या क्या अध्रुवबन्ध है? सादिबन्ध है और अध्रुवबन्ध है। इसी प्रकार ओघके समान अचक्षुदर्शनवाले और भव्य जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि भव्य जीवोंके ध्रुवभंग नहीं होता। शेष सब मार्गणाओंमें उत्कृष्टप्रदेशबन्ध, अनुत्कृष्टप्रदेशबन्ध, जघन्यप्रदेशबन्ध और अजघन्यप्रदेशबन्ध सादि और अध्रुव दो प्रकारका होता है।

विशेषार्थ—यहाँ मोहनीय और आयुकर्मके सिवा शेष छह कर्मोंका उत्कृष्टप्रदेशबन्ध सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें होनेसे इसके पहले अनादिकालसे इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होता रहता है, इसलिये तो इन छह कर्मोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध अनादि है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होने पर जब पुनः वह जीव गिर कर अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करने लगता है, तब वह सादि है। तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें ध्रुव और अध्रुव ये भेद भव्य और अभव्यकी अपेक्षासे हैं। यही कारण है कि इन छह कर्मोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सादि, आदिके भेदसे चारों प्रकारका बतलाया है। इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें होता है, इसलिये वह सादि और अध्रुव यह दो प्रकारका है, यह स्पष्ट ही है। अब रहे जघन्य और अजघन्यबन्ध सो इनका जघन्यबन्ध सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तके भवके प्रथम समयमें सम्भव है और इसके बाद अजघन्यबन्ध होता है। यतः इस पर्यायका प्राप्त होना पुनः-पुनः संभव है, अतः ये दोनों बन्ध सादि और अध्रुव इस प्रकार दो प्रकारके ही कहे हैं। मोहनीय और आयुके उत्कृष्ट आदि चारों प्रकारके बन्ध सादि और अध्रुव ही हैं। कारण कि आयुकर्म तो अध्रुवबन्धी है ही, क्योंकि उसका बन्ध विवक्षित भवके प्रथम त्रिभागमें या उसके बाद द्वितीयादि त्रिभागोंमें होता है। यदि वहाँ भी न हो तो अन्तमें अन्तर्मुहूर्त आयु शेष रहने पर होता है, इसलिए इसके उत्कृष्ट आदि चारों सादि और अध्रुव हैं, यह स्पष्ट ही है। रहा मोहनीय कर्म सो इसका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध मिथ्यादृष्टिके भी होता है और जघन्य प्रदेशबन्ध सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकके भवके प्रथम समयमें होता है। यतः इन दोनों प्रकारके बन्धोंका पुनः-पुनः प्राप्त होना संभव है और इनके बाद क्रमशः अनुत्कृष्ट और अजघन्य प्रदेशबन्धोंका भी पुनः-पुनः प्राप्त होना संभव है, अतः ये चारों प्रकारके बन्ध सादि और अध्रुव ये दो प्रकारके कहे हैं। अचक्षुदर्शनऔर भव्यमार्गणा सूक्ष्मसांपरायके आगे तक भी संभव हैं, अतः इनमें ओघप्ररूपणा अविकल घटित हो जानेसे इनकी प्ररूपणा ओघके समान कही है। मात्र भव्य मार्गणामें ध्रुव भंग संभव नहीं है। शेष सब मार्गणाएँ बदलती रहती हैं। अतः उनमें सब कर्मोंके उत्कृष्टादि चारोंके सादि और अध्रुव ये दो ही भंग कहे हैं। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिये कि जिन मार्गणाओंमें जितने कर्मोंका बन्ध संभव हो तथा ओघ या आदेशसे उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य बन्ध संभव हो, उसी अपेक्षासे ये भंग घटित करने चाहिए।

सामित्तपरूवणा

२४. सामित्तं दुविधं-जहण्णयं उक्कस्सयं च । उक्कस्सए पगदं । दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० छण्णं कम्माणं उक्कस्सपदेसबंधो कस्स ? अण्णदरस्स उवसामगस्स वा खवगस्स वा छव्विधबंधयस्स उक्कस्सजोगिस्स । मोह० उक्क०पदे०बं० कस्स ? अण्ण० चदुगदियस्स पंचिंदियस्स सण्णि० मिच्छादिट्ठिस्स वा सम्मादिट्ठिस्स वा सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदस्स सत्तविधबंधयस्स उक्कस्सजोगिस्स उक्कस्सए पदेसबंधे वट्टमाणगस्स । आउगस्स उक्क० पदे०बं० कस्स ? अण्ण० चदुग० पंचिं० सण्णि० मिच्छादिट्ठि० वा सम्मादिट्ठि० वा सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्ज० अट्ठविधबंधगस्स उक्कस्सजोगिस्स । एवं ओघभंगो कायजोगि-लोभक०-अचक्खु०-भवसि०-आहारग त्ति ।

२५. णिरएसु सत्तण्णं क० उक्क० पदेसबं० कस्स ? अण्ण० मिच्छा० वा सम्मा० वा सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तग० उक्कस्सजोगिस्स सत्तविधबंधगस्स । आउ० उक्क० पदेसबं० कस्स ? अण्ण० सम्मा० वा मिच्छा० वा सव्वाहि पज्ज० अट्ठविध० उक्क० पदे०बं० । एवं सत्तसु पुढवीसु । णवरि सत्तमाए आउ० मिच्छा० अट्ठविधबंधग० उक्क० ।

स्वामित्वप्ररूपणा

२४. स्वामित्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघसे छह कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर उपशामक या क्षपक छह प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट योगवाला है, वह उक्त छह कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। मोहनीयके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो चारों गतिका पञ्चेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि जीव सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त है, सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है, उत्कृष्ट योगवाला है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध कर रहा है, वह उक्त सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो चारों गतिका पञ्चेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि जीव सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त है, आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट योगवाला है,वह अन्यतर जीव आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इस प्रकार ओघके समान काययोगवाले, लोभकषायवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये।

२५. नारकियोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि जीव जो सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त है, उत्कृष्ट योगवाला है और सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है, वह उक्त सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि जीव जो सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त है, उत्कृष्ट योगवाला है और आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है, वह आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सातवीं पृथिवीमें आठ कर्मोंका बन्ध करनेवाला मिथ्यादृष्टि जीव आयुकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

२६. तिरिक्खेसु सत्तण्णं कम्माणं उक्क० प०दे०बं० कस्स ? अण्ण० पंचिं० सण्णिस्स सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्ज० सम्मा० वा मिच्छा० वा सत्तविधबंध० उक्क० जोगि० उक्क०पदे० । आउ० उ०पदे० कस्स० ? अण्ण० पंचिं० सण्णि० सव्वाहि पज्ज० मिच्छा० वा सम्मादिट्ठि० वा अट्ठविधबं० उक्क०जो० उक्क० पदे[1]० । एवं पंचिं०तिरि०३ ।

२७. पंचिं०तिरि०अपज्ज० सत्तण्णंक० उक्क० कस्स० ? अण्ण० सण्णिस्स सत्तविधबंध० उ०जो० उ०पदे०बं० वट्ट० । आउ० उ०पदे० कस्स ? अण्ण० सण्णिस्स अट्ठविधबं० उक्क०जो० उक्क०[2] पदे० । एवं सव्वअपज्जत्ताणं एइंदि० विगलिं० पंचकायाणं च अप्पप्पणो परियोयं णादव्वं । बादरे बादरे त्ति ण भाणिदव्वं । सुहुमे सुहुमे त्ति ण भाणिदव्वं । पज्जत्तगे पज्जत्तग[3] त्ति ण भाणिदव्वं । अपज्जत्तगे अपज्जत्तग त्ति ण भाणिदव्वं ।

२८. मणुसेसु छण्णं कम्माणं ओघं । मोह० उक्क० सम्मा० वा मिच्छा० वा सत्तविध० उक्क०जोगि० उक्क०पदे० । एवं आउ० । णवरि अट्ठविधबं० । एवं

२६. तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर पञ्चेन्द्रिय संज्ञी जीव जो सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त है, सम्यग्दृष्टि है या मिथ्यादृष्टि है, सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट योगवाला है, वह उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर पञ्चेन्द्रिय संज्ञी जीव सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त है, मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि है, आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट योगवाला है, वह आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकके जानना चाहिये।

२७. पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर संज्ञी जीव सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है, उत्कृष्ट योगवाला है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर संज्ञी जीव आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है, उत्कृष्ट योगवाला है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार सब अपर्याप्त तथा एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंके अपने-अपने योगके अनुसार जानना चाहिए। किन्तु बादरोंका स्वामित्व बतलाते समय बादर ऐसा नहीं कहना चाहिए। सूक्ष्मोंका स्वामित्व बतलाते समय सूक्ष्म ऐसा नहीं कहना चाहिए। पर्याप्तकोंका स्वामित्व बतलाते समय पर्याप्त ऐसा नहीं कहना चाहिए और अपर्याप्तकोंका स्वामित्व बतलाते समय अपर्याप्त ऐसा नहीं कहना चाहिए।

२८. मनुष्योंमें छह कर्मोंका भंग ओघके समान है। मोहनीयके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीव सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है, उत्कृष्ट योगवाला है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह मोहनीयके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी जानना चाहिए। इतनी विशेषता

---

[1] ता० प्रतौ० सम्मादिट्ठि० अवट्ठिदबंध० उ० पदे० इति पाठः । [2] ता० प्रतौ उक्क० उक्क० इति पाठः । [3] ता० प्रतौ पज्जत्तग पज्जत्तग इति पाठः ।

मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु ।

२९. देवाणं णिरयभंगो याव उवरिमगेवज्जा[1] त्ति । अणुदिस याव सव्वट्ठ त्ति एवं । णवरि सम्मादिट्ठिस्स सत्तविधबं० उक्क०जो० उक्क०पदे०बं० । आउ० उक्क०पदे० अट्ठविध० उक्क० ।

३०. पंचिंदि० छण्णं क० ओघं । मोह० उक्क०पदे० क० ? अण्ण० चदुगदिय० सण्णिस्स मिच्छा० वा सम्मा० वा सत्तविधबंधग० उक्क० । एवं आउ० । णवरि अट्ठविध० उक्क० । एवं पंचिंदियपज्जत्त० ।

३१. तस०२ छण्णं क० ओघं । सेसं पंचिंदियभंगो । णवरि अण्ण० चदुगदिय० पंचिं० सण्णि० मिच्छा० वा सम्मा० वा सत्तविधबं० उक्क० । एवं आउ० । णवरि अट्ठविध० उक्क० ।

३२. पंचमण०-तिण्णिवचि० छण्णं क० ओघं । मोह० उ० अण्ण० चदुगदि० सम्मा० वा मिच्छा० वा सत्तविधबं०उक्क० । एवं आउ० णवरि अट्ठविध०

है कि यह आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला होता है। इसी प्रकार मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंके जानना चाहिए।

२९. देवोंमें उपरिम ग्रैवेयक तक नारकियोंके समान जानना चाहिए। अनुदिशोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धितक इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जो सम्यग्दृष्टि सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है, उत्कृष्ट योगवाला है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है तथा जो आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है, उत्कृष्ट योगवाला है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है।

३०. पञ्चेन्द्रियोंमें छह कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर चारों गतियोंका संज्ञी मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि जीव सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट योगवाला है, वह मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जो आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है, उत्कृष्ट योगवाला है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध कर रहा है, वह आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए।

३१. त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंमें छह कर्मोंका भंग ओघके समान है। शेष दो कर्मोंका भंग पञ्चेन्द्रियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि जो अन्यतर चारों गतियोंका पञ्चेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि जीव सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध कर रहा है, वह मोहनीय कर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जो आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है।

३२. पाँचों मनोयोगी और तीन वचनयोगी जीवोंमें छह कर्मोंका भंग ओघके समान है। मोहनीयके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर चारों गतियोंका सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीव सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित

---

[1] ता० प्रतौ उवरिमगेवज्जा इति पाठः।

उक्क० । दोवचिजोगी० तसपज्जत्तभंगो ।

३३. ओरालि० छण्णं क० ओघं। मोहाउगस्स उक्क० पदे० क० ? अण्ण० तिरिक्खस्स वा मणुसस्स वा सण्णि० मिच्छा० वा सम्मा० वा सत्तविधबं० उक्क० । णवरि आउ० अट्ठविधबं० । ओरालि०मि० सत्तण्णं क० उक्क० पदे० क० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० सण्णि० मिच्छा० वा सम्मा० वा सत्तविधबं० उक्क० से काले सरीरपज्जत्तिं गाहिदि त्ति । आउ० उक्क० क० ? दुगदि० तिरिक्ख० मणुस० मिच्छा० अट्ठविधबं० उक्क० ।

३४. वेउ० सत्तण्णं क० उक्क० पदे० क० ? अण्ण० देव० णेरइ० सम्मा० वा मिच्छा० वा सत्तविधबं० उक्क० । एवं आउ० । णवरि अट्ठविध० उक्क० । वेउव्वि०मि० सत्तण्णं क० उक्क० पदे० क० ? अण्ण० देव० णेरइ० सम्मा० वा मिच्छा० वा से काले सरीरपज्जत्तिं जाहिदि त्ति सत्तविध० उक्क० ।

३५. आहारका० सत्तण्णं क० उ० पदे० क० ? अण्ण० सत्तविध० उक्क० । एवं

है, वह मोहनीय कर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है । इसी प्रकार आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि जो आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है । दो वचनयोगी जीवोंका भंग त्रसपर्याप्तकोंके समान है ।

३३. औदारिककाययोगी जीवोंमें छह कर्मोंका भंग ओघके समान है । मोहनीय और आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य संज्ञी मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि जीव सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है । इतनी विशेषता है कि आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला जीव आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है । औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात प्रकारके कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य संज्ञी मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि जीव सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है, उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है और अनन्तर समयमें शरीरपर्याप्तिको ग्रहण करनेवाला है, वह सात प्रकारके कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है । आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो दो गतिका तिर्यञ्च और मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है ।

३४. वैक्रियिककाययोगवाले जीवोंमें सात प्रकारके कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर देव और नारकी सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीव सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है । इसी प्रकार आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि जो आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात प्रकारके कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर देव और नारकी सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीव तदनन्तर समयमें शरीरपर्याप्तिको ग्रहण करनेवाला है, सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है ।

३५. आहारककाययोगी जीवोंमें सात प्रकारके कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन

आउ०। णवरि अट्ठविध० उक्क०। एवं आहारमि०। णवरि से काले सरीरपज्जत्तिं गाहिदि त्ति उक्क०। कम्मइ० सत्तण्णं क० उ० पदे० क०? अण्ण० चदुगदिय० पंचिं० सण्णि० मिच्छा० सम्मा० सत्तविध० उक्क०।

३६. इत्थि०-पुरिस० सत्तण्णं क० उ० पदे० क०? अण्ण० तिगदि० सण्णि० मिच्छा० वा० सम्मा० वा सत्तविध० उक्क०। णवुंसगे सत्तण्णं कम्माणं उक्क० पदे० क०? सम्मा० मिच्छा० तिगदि० सण्णि० सत्तविधवं० उ०। एवं० आउ०। णवरि अट्ठविध०। अवगदवे० छण्णं क० ओघं। मोह० उ० पदे० कस्स? अण्ण० अणियट्टि० सत्तविध० उक्क०।

३७. कोध-माण-माया० सत्तण्णं क० उक्क० पदे० क०? अण्ण० चदुगदिय० पंचिं० सण्णि० सम्मा० मिच्छा० सव्वाहि पज्ज० सत्तविध० उक्क०। एवं आउ०।

है? जो अन्यतर जीव सात कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह सात प्रकारके कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जो आठ कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जो तदनन्तर समयमें शरीरपर्याप्ति ग्रहण करनेवाला है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें सात प्रकारके कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? जो अन्यतर चार गतिका पञ्चेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि जीव सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है।

३६. स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें सात प्रकारके कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? जो अन्यतर तीन गतिका संज्ञी मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि जीव सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है वह उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। नपुंसकवेदी जीवोंमें सात प्रकारके कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? जो सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि तीन गतिका संज्ञी जीव सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार इन तीनों वेदवाले जीवोंमें आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि वह आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला होता है। अपगतवेदी जीवोंमें छह प्रकारके कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी ओघके समान है। मोहनीय कर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? जो अन्यतर अनिवृत्तिकरण जीव सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह सात प्रकारके कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है।

३७. क्रोध, मान और मायाकषायवाले जीवोंमें सात प्रकारके कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? जो अन्यतर चार गतिका पञ्चेन्द्रिय संज्ञी सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीव सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त है, सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जो

णवरि अट्ठविध० उक्क० ।

३८. मदि-सुद-विभंग०-अब्भवसि०-मिच्छा० सत्तण्णं० क० उक्क० पदे० क० ? अण्ण० चदुगदि० सण्णिस्स सत्तविध० उक्क० । एवं आउ० । णवरि अट्ठविध० उक्क० । आभिणि०-सुद-ओधि० छण्णं क० ओघं । मोह० उ० पदे० क० ? अण्ण० चदुगदि० सत्तविध० उक्क०जोगि० । एवं आउ० । णवरि अट्ठविध० उक्क० । एवं ओधिदं०-सम्मा०-खइग० । मणपज्ज० छण्णं० ओघं । मोह० उ० पदे० क[1]० ? अण्ण० सत्तविध० उक्क० । एवं आउ० । णवरि अट्ठविध० उक्क० । एवं संजदा० ।

३९. सामाइ०-छेदो० सत्तण्णं क० अण्ण० सत्तविध० उक्क० । एवं आउ० । णवरि अट्ठविध० उक्क० । एवं परिहार० । एवं चेव संजदासंजदा० । णवरि दुगदियस्स ।

आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है ।

३८. मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सात प्रकारके कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर चार गतिका संज्ञी जीव सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जो आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है वह आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें छह प्रकारके कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी ओघके समान है । मोहनीय कर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर चार गतिका जीव सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट योगवाला है, वह मोहनीय कर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि जो आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार अवधिदर्शनवाले, सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें छह कर्मोंका भंग ओघके समान है। मोहनीयके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर जीव सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह मोहनीय कर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जो आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार संयत जीवोंके जानना चाहिये ।

३९. सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर जीव सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि जो आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि संयतासंयतोंमें दो

---

[1] ता०प्रतौ उ० प० उक्क० इति पाठः ।

सुहुमसंप० छण्णं क० ओघं। असंजदे सत्तण्णं क० उक्क० पदे० क० ? अण्ण० चदुगदिय० पंचिं० सण्णि० सम्मा० मिच्छा० सव्वाहि पज्ज० सत्तविध० उक्क०। एवं आउ०। णवरि अट्ठविध० उक्क०। चक्खु० तसपज्जत्तभंगो।

४०. किण्ण०-णील०-काउ० सत्तण्णं क० उक्क० पदे० क० ? अण्ण० तिगदि० पंचिं० सण्णि० सम्मा० मिच्छा० सत्तविध० उक्क०। एवं आउ०। णवरि अट्ठविध० उक्क०। तेउ०-पम्म० सत्तण्णं क० उक्क० पदे० क० ? अण्ण० तिगदि० सम्मा० मिच्छा० सत्तविध० उक्क०। एवं आउ०। णवरि अट्ठविध० उक्क०। सुक्काए छण्णं क० ओघं। मोह० तिगदि० सम्मा० मिच्छा० सत्तविध० उक्क०। एवं आउ०। णवरि अट्ठविध० उक्क०।

४१. वेदगे सत्तण्णं क० उक्क० पदे० क० ? अण्ण० चदुगदि० सत्तवि० उक्क०।

गतिका जीव उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी होता है। सूक्ष्मसाम्परायिकसंयतोंमें छह कर्मोंका भंग ओघके समान है। असंयत जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर चार गतिका पञ्चेन्द्रिय संज्ञी सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीव सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त है, सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार आयु कर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जो आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। चक्षुदर्शनवाले जीवोंमें त्रसपर्याप्तकोंके समान भंग है।

४०. कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर तीन गतिका पञ्चेन्द्रिय संज्ञी सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीव सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह उक्त सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जो आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। पीत और पद्मलेश्यावाले जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर तीन गतिका सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीव सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह उक्त सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जो आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। शुक्ललेश्यामें छह कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी ओघके समान है। मोहनीय कर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो तीन गतिका सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीव सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह मोहनीय कर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसीप्रकार आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जो आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है।

४१. वेदकसम्यक्त्वमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर चार गतिका जीव सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें

एवं आउ० । णवरि अट्ठविध० उक्क० । उवसम० छण्णं क० उ० प० क० ? सुहुमसं० उवसाम० छव्विध० उक्क० । मोह०[1] उक्क० चदुगदि० सत्तविध० उक्क० । सासणे सत्तण्णं क० उक्क० पदे० क० ? अण्ण० चदुगदि० सत्तविध० उक्क० । एवं आउ० । णवरि अट्ठविध० उ० । सम्मामि० सत्तण्णं क० उ० पदे० क० ? अण्ण० चदुगदि० सत्तविध० उक्क० ।

४२. सण्णीसु छण्णं क० ओघं । मोह० उक्क० चदुगदि० सम्मा० मिच्छा०[2] सत्तविध० उक्क० । एवं आउ० । णवरि अट्ठविध० उक्क० । असण्णीसु सत्तण्णं क० उक्क० पदे० क० ? अण्ण० पंचिं० सव्वाहिं पज्ज० सत्तविध० उक्क० । एवं आउ० ।

अवस्थित है, वह उक्त सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसीप्रकार आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जो आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। उपशमसम्यक्त्वमें छह कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? जो सूक्ष्मसाम्पराय उपशामक जीव छह प्रकार के कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह उक्त छह कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? जो चार गतिका जीव सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह मोहनीय कर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। सासादनसम्यक्त्वमें सात प्रकारके कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? जो अन्यतर चार गतिका जीव सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह उक्त सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसीप्रकार आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जो आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। सम्यग्मिथ्यात्वमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? जो अन्यतर चार गतिका जीव सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह उक्त सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है।

४२. संज्ञी जीवोंमें छह कर्मोंका भंग ओघके समान है। मोहनीय कर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? जो चार गतिका सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीव सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह मोहनीय कर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जो आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह आयुकर्म के उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। असंज्ञी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? जो अन्यतर पंचेन्द्रिय जीव सब पर्याप्तियों से पर्याप्त है, सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह उक्त सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार आयु आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जो आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर कर रहा है और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह आयुकर्मके उत्कृष्ट

---

[1] ता०प्रतौ छव्विध० मोह० इति पाठः । [2] आ०प्रतौ सम्मामि० मिच्छा० इति पाठः ।

णवरि अट्ठविध० उक्क० । अणाहार० कम्मइयभंगो ।

एवं उक्कस्ससामित्तं समत्तं ।

४३. जहण्णए पगदं । दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० सत्तण्णं क० जहण्णओ पदेसबंधो कस्स ? अण्ण० सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्तयस्स पढमसमयतब्भवत्थस्स जहण्णजोगिस्स जहण्णए पदेसबंधे वट्टमाणस्स[1] । आउगस्स जहण्णपदेसबंधो[2] कस्स ? अण्ण० सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स खुद्दाभवग्गहणतदियतिभागेण पढमसमयआउगबंधमाणयस्स जहण्णजोगिस्स जह० पदे० बं० वट्ट० । एवं ओघभंगो तिरिक्खोघं एइंदि०-वणप्फदि–णियोद–कायजोगि–णवुंस०–कोधादि०४–मदि–सुद०–असंज०–अचक्खु०–किण्ण०-णील०-काउ०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि-आहारग त्ति ।

४४. आदेसेण णिरएसु सत्तण्णं क० ज० प० क० ? अण्ण० असण्णिपच्छागदस्स पढमसमयतब्भवत्थस्स जहण्णजोगिस्स । आउ० ज० प० क० ? अण्ण० सम्मा० मिच्छा० घोलमाणजहण्णजोगिस्स । एवं पढमाए पुढवीए देव०-भवण०-वाण० । छसु हेट्ठिमासु सत्तण्णं क० ज० प० क० ? अण्ण० मिच्छा० पढमसमय-

प्रदेशबन्धका स्वामी है। अनाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान जानना चाहिए।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्वामित्व समाप्त हुआ।

४३. जघन्यका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? जो अन्यतर सूक्ष्म निगोद जीव अपर्याप्त है, प्रथम समयमें तद्भवस्थ हुआ है, जघन्य योगवाला है और जघन्य प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह उक्त सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? जो अन्यतर सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीव क्षुल्लक भवग्रहणके तृतीय त्रिभागके प्रथम समयमें आयुबन्ध कर रहा है, जघन्य योगवाला है और जघन्य प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्च, एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक, निगोद, काययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और आहारक जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है।

४४. आदेशसे नारकियोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? जो अन्यतर जीव असंज्ञियोंमेंसे आकर नारकी हुआ है, प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ है और जघन्य योगवाला है, वह उक्त सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि घोलमान जघन्य योगवाला जीव आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार प्रथम पृथिवीमें तथा सामान्य देव, भवनवासी और व्यन्तरोंके जानना चाहिये। द्वितीयादि नीचेकी छह पृथिवियोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर मिथ्यादृष्टि, प्रथम समयमें तद्भवस्थ हुआ और जघन्य योगवाला नारकी उक्त सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। आयु-

---

१. ता० प्रतौ पदेसबंधो [ध] माणयस्स इति पाठः । २. आ० प्रतौ आउगस्स पदेसबंधो इति पाठः ।

तब्भवत्थस्स जहण्णजोगिस्स । आउ० णिरयोघं । णवरि सत्तमाए आउ० मिच्छादि० ।

४५. पंचिंदियतिरिक्खेसु सत्तण्णं क० ज० प० क० ? अण्ण० असण्णि० अपज्ज० पढमसमयतब्भवत्थस्स जहण्णजोगिस्स । आउ० ज० प० क० ? अण्ण० असण्णि० अपज्ज० खुद्दाभ० तदियतिभागे वट्टमाणस्स जहण्णजोगिस्स । एवं पज्जत्त-जोणिणीसु । णवरि आउ० असण्णि० घोडमाणयस्स जह० । पंचिंदि०तिरि०अपज्ज० सत्तण्णं क० ज० प० क० ? अण्ण० असण्णि० पढमसमयतब्भवत्थस्स जहण्णजोगिस्स । आउ० ज० क० ? असण्णि० खुद्दाभ० तदियतिभागे वट्ट० जहण्णजो० ।

४६. मणुसेसु सत्तण्णं क० ज० प० क० ? अण्ण० असण्णिपच्छागदस्स पढमसमयतब्भवत्थस्स जहण्णजोगिस्स । आउ० ज० प० क० ? अण्ण० खुद्दाभव०[1] तदियतिभागपढमसमए वट्ट० जहण्णजोगि० । एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु । णवरि आउ० अण्ण० घोडमाणजहण्णजोगिस्स । मणुसअपज्ज० मणुसोघं ।

४७. जोदिसि० बिदियपुढविभंगो । सोधम्मीसाण याव उवरिमगेवज्जा त्ति

कर्मका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है। इतनी विशेपता है कि सातवीं पृथिवीमें आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी मिथ्यादृष्टि नारकी होता है।

४५. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर असंज्ञी जीव अपर्याप्त है, प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ है और जघन्य योगवाला है, वह उक्त सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर असंज्ञी जीव अपर्याप्त है, क्षुल्लकभवग्रहणके तीसरे त्रिभागमें विद्यमान है और जघन्य योगवाला है, वह आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंमें जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि यहाँ आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी असंज्ञी घोलमान योगवाला और जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव होता है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर असंज्ञी जीव प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ है और जघन्य योगवाला है, वह उक्त सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो असंज्ञी जीव क्षुल्लक भवग्रहणके तृतीय त्रिभागमें विद्यमान है और जघन्य योगवाला है, वह आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है।

४६. मनुष्योंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर असंज्ञियोंमें से आकर मनुष्य हुआ है, प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ है और जघन्य योगवाला है, वह उक्त सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर क्षुल्लक भवग्रहणके तृतीय त्रिभागके प्रथम समयमें स्थित है और जघन्य योगवाला है, वह आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार मनुष्य-पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यहाँ आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी अन्यतर घोलमान जघन्य योगवाला मनुष्य होता है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सामान्य मनुष्योंके समान भङ्ग है।

४७. ज्योतिषी देवोंमें दूसरी पृथिवीके समान भङ्ग है। सौधर्म और ऐशान कल्पसे

---

[1] ता०प्रतौ प० खुद्दाभव० इति पाठः ।

सत्तण्णं क० ज० पदे० क० ? अण्ण० सम्मा० मिच्छा० पढमसमयतब्भवत्थ० जहण्णजोगिस्स । आउ० णिरयभंगो । अणुदिस याव सव्वट्ठ त्ति सत्तण्णं क० ज० प० क० ? अण्ण० पढमसमयतब्भवत्थ० जहण्णजोगिस्स । आउ० सम्मादि० ।

४८. बादरएइंदिय० एइंदियभंगो । णवरि अपज्ज० पढम० तब्भव० जह०जोगि० । एवं एवं आउ० । णवरि खुद्दाभव० तदियतिभा० पढमसम० वट्ट० जह०जोगि० । एवं अपज्जत्तएसु । पज्जत्तेसु सत्तण्णं क० ज० प० क० ? अण्ण० पढम०तब्भव० जह० जोगि० । आउ० जह० घोडमाणजह०जो० । एवं सव्वबादराणं । सुहुमएइंदि० सत्तण्णं क० ज० प० क० ? अण्ण० अपज्ज० पढम०तब्भवत्थ० जह०जोगि० । आउ० जह० खुद्दाभव० तदिय० जह०जो०[1] । एवं सुहुमअप० । सुहुमपज्ज० सत्तण्णं क० ज० प० क० ? अण्ण० पढम०तब्भवत्थ० जह०जोगि० । आउ० जह० घोडमा०जह०जोगि० । एवं सव्वसुहुमाणं । विगलिंदियाणं अपज्जत्तयभंगो । णवरि

लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि देव प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ है और जघन्य योगवाला है, वह उक्त सात कर्मोंके प्रदेशबन्धका स्वामी है। आयुकर्मका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है। नौ अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ है और जघन्य योगवाला है, वह उक्त सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है । आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी सम्यग्दृष्टि देव है।

४८. बादर एकेन्द्रियोंमें एकेन्द्रियोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि जो प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ और जघन्य योगवाला अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय जीव है, वह सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार आयुकर्मका भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि क्षुल्लक भवग्रहणके तृतीय त्रिभागके प्रथम समयमें विद्यमान और जघन्य योगवाला उक्त जीव आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए। पर्याप्तकोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ है और जघन्य योगवाला है, वह उक्त सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी घोलमान जघन्य योगवाला उक्त जीव है। इसी प्रकार सब बादरोंके जानना चाहिये। सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर अपर्याप्त जीव प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ और जघन्य योगवाला है, वह उक्त सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी क्षुल्लक भवग्रहणके तृतीय त्रिभागके प्रथम समयवर्ती और जघन्य योगवाला जीव है। इसी प्रकार सूक्ष्म अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिये। सूक्ष्म पर्याप्तकोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर सूक्ष्म पर्याप्त जीव प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ है और जघन्य योगवाला है, वह सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी घोटमान जघन्य योगवाला उक्त जीव है। इसी प्रकार सब सूक्ष्म जीवोंके जानना चाहिये। विकलेन्द्रियोंमें अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है।

पज्जत्तएसु सत्तण्णं क० ज० प० क० ? अण्ण० पढम०तब्भवत्थ० जह०जोगि० । आउ० जह० घोडमाणजह०जोगि० । पंचि०३ पंचिंदियतिरिक्खभंगो ।

४९. तस० सत्तण्णं क० ज० प० क० ? अण्ण० बीइंदि०अप० पढम०-तब्भव० जह०जो० । आउ० ज० प० क० ? अण्ण० बीइंदि०अप० खुद्दाभ० तदियतिभा० पढमसम० जह०जोगि० । एवं तसअपज्ज० । तसपज्ज० सत्तण्णं क० ज० प० क० ? अण्ण० बीइंदि० पढम० तब्भव० जह०जोगि० । आउ० जह० घोडमाणजह०जो० । पंचण्णं कायाणं एइंदियभंगो ।

५०. पंचमण०-तिण्णिवचि० अट्ठण्णं क० ज० प० क० ? अण्ण० चदुगदि० सम्मा० मिच्छा० घोडमा० अट्ठविध० जह०जोगि० । दोवचि० अट्ठण्णं क० ज० प० क० ? अण्ण० बीइंदि० घोड० अट्ठविध० जह०जोगि० ।

५१. ओरालियका० सत्तण्णं क० ज० प० क० ? सुहुमणिगोदस्स पढमसमय-पज्जत्तयस्स जह०जोगि० । आउ० ज० प० क० ? अण्ण० सुहुमणिगोद०[1] घोडमा०

इतनी विशेषता है कि पर्याप्तकोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ और जघन्य योगवाला है, वह उक्त कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी घोलमान जघन्य योगवाला जीव है। पञ्चेन्द्रिय त्रिकमें पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है ।

४९. त्रसकायिकोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर द्वीन्द्रिय अपर्याप्त जीव प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ है और जघन्य योगवाला है, वह उक्त सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर द्वीन्द्रिय अपर्याप्त जीव क्षुल्लक भवग्रहणके तृतीय त्रिभागके प्रथम समयवर्ती है और जघन्य योगवाला है, वह आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार त्रस अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए। त्रस पर्याप्तकोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर द्वीन्द्रिय जीव प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ और जघन्य योगवाला है, वह उक्त सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी घोलमान जघन्य योगवाला जीव है । पाँचों कायवालोंका भङ्ग एकेन्द्रियोंके समान है ।

५०. पाँचों मनोयोगी और तीन वचनयोगी जीवोंमें आठों कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर चार गतिका सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और घोलमान जघन्य योगवाला जीव है, वह उक्त आठ प्रकारके कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है । दो वचनयोगवाले जीवोंमें आठों कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और घोलमान जघन्य योगवाला द्वीन्द्रिय जीव उक्त आठों कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है ।

५१. औदारिककाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो सूक्ष्म निगोदिया जीव प्रथम समयवर्ती पर्याप्त और जघन्य योगवाला है, वह उक्त सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है । आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर सूक्ष्म निगोदिया जीव घोलमान जघन्य योगवाला है, वह आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका

---

[1] ता० प्रतौ आउ० ज० सुहुमणिगोद० इति पाठः ।

जह०जो० । ओरालि०मि० सत्तण्णं क० ज० प० क० ? अण्ण० सुहुमणिगोद० पढमस०तब्भव० जह०जो० । आउ० ज० प० क० ? अण्ण० सुहुमएइंदि०-अपज्जत्तभंगो ।

५२. वेउव्वियका० सत्तण्णं क० ज० प० क० ? अण्ण० देव० णेरइ० सम्मा० मिच्छा० पढमसमयसरीरपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स जह०जो० । आउ० ज० प० क० ? अण्ण० देव० णेरइ० सम्मा० मिच्छा० घोडमाणजह०जो० । वेउव्वियमि० सत्तण्णं क० ज० प० क० ? अण्ण० देव० णेरइ० 'असण्णिपच्छागदस्स पढम०तब्भवत्थ० जह०जो० ।

५३. आहारका० अट्ठण्णं क० ज० प० क० ? अण्ण० पढमसमयसरीरपज्जत्तीए पज्जत्तगदस्स अट्ठविध० जह०जोगि० । आहारमि० अट्ठण्णं क० ज० प० क० ? अण्ण० अट्ठविध० पढमसमयआहारयस्स ज०जोगि० । कम्मइ० सत्तण्णं क० ज० प० क० ? अण्ण० सुहुमणिगोदजीवस्स पढमसमयविग्गहगदीए[1] वट्ट० जह०-जोगि० । एवं अणाहार० ।

५४. इत्थि-पुरिसेसु सत्तण्णं क० ज० प० क० ? अण्ण० असण्णि० पढम०-तब्भव० जह०जो० । आउ० ज० पदे० क० ? असण्णि० घोडमा०ज०जो० । अव-

स्वामी कौन है ? जो अन्यतर सूक्ष्म निगोदिया जीव प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ और जघन्य योगवाला है, वह सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर जीव है, जिसका भंग सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान है।

५२. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयमें शरीर पर्याप्तिसे पर्याप्त हुआ और जघन्य योगवाला अन्यतर सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि देव और नारकी जीव उक्त सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? घोलमान जघन्य योगवाला सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि अन्यतर देव और नारकी जीव आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो असंज्ञियोंमेंसे आकर देव और नारकी हुआ है, ऐसा अन्यतर प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ और जघन्य योगवाला जीव उक्त सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है।

५३. आहारककाययोगी जीवोंमें आठों कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर प्रथम समयमें शरीर पर्याप्तिसे पर्याप्त हुआ और आठ प्रकारके जघन्य योगवाला है, वह उक्त आठों कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें आठों कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है, प्रथम समयमें आहारक हुआ है और जघन्य योगमें विद्यमान है, वह आठों कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो सूक्ष्म निगोदिया जीव प्रथम समयवर्ती विग्रहगतिमें विद्यमान है और जघन्य योगवाला है, वह उक्त सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार अनाहारकोंमें जानना चाहिए।

५४. स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर असंज्ञी जीव प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ और जघन्य योगवाला है, वह उक्त सात

---

[1] आ०प्रतौ पढमविग्गहगदीए इति पाठः ।

गद० सत्तण्णं क० ज० पदे० क० ? अण्ण० घोडमा०जह०जो० । एवं सुहुमसं० छण्णं क० ।

'५५. विभंगे अट्ठण्णं क० ज० प० क० ? अण्ण० चदुगदि० घोडमाणज०-जो० अट्ठविधबं० । आभिणि-सुद-ओधि० सत्तण्णं क० ज० प० क० ? अण्ण० चदुगदि० पढम०तब्भव० जह०जो० । आउ० ज० प० क० ? अण्ण० चदुग० घोडमा० अट्ठविध० ज०जो० । एवं ओधिदं०-सम्मा०-खइग०-वेदग० । णवरि वेदगे दुगदि० । मणपज्ज० अट्ठण्णं क० ज० प० क० ? अण्ण० घोडमा० अट्ठविध० जह०जो० । एवं संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद० ।

५६. चक्खु० सत्तण्णं क० ज० प० क० ? अण्ण० चदुरिं० पढम०तब्भव० ज०जो० जह०पदे०बं० वट्ट० । आउ० ज० प० क० ? अण्ण० चदुरिं० घोडमा०-जह०जो०[1] ।

कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो असंज्ञी घोलमान जघन्य योगवाला है, वह आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। अपगतवेदी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर अपगतवेदी जीव घोलमान जघन्य योगवाला है, वह उक्त सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्पराय संयत जीवोंमें छह कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामित्व जानना चाहिये।

५५. विभङ्गज्ञानी जीवोंमें आठों कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर चारों गतिका विभङ्गज्ञानी जीव घोलमान जघन्य योगवाला और आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला है, वह आठों कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर चारों गतियोंका जीव प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ और जघन्य योगवाला है, वह उक्त सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर चारों गतियोंका जीव आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला है और घोलमान जघन्य योगवाला है, वह आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें दो गतियोंके जीव जघन्य प्रदेशबन्धके स्वामी होते हैं। मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें आठों कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और घोलमान जघन्य योगवाला जीव है, वह आठों कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिए।

५६. चक्षुदर्शनी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर चतुरिन्द्रिय जीव प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ है, जघन्य योगवाला है और जघन्य प्रदेशबन्धमें अवस्थित है, वह उक्त सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर चतुरिन्द्रिय जीव घोलमान जघन्य योगवाला है, वह आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है।

---

[1] आ०प्रतौ घोडमा० तब्भव० जह०जो० इति पाठः ।

५७. तेउ-पम्माणं सत्तण्णं क० ज० प० क० ? अण्ण० देवस्स वा मणुसस्स वा पढम०तब्भव० ज०जो० । आउ० ज० प० क० ? अण्ण० तिगदि० अट्ठविध० घोड०ज०जो० । सुक्काए पम्मभंगो ।

५८. उवसम० सत्तण्णं क० ज० प० क० ? पढमसमयदेवस्स ज०जो० । सासणे सत्तण्णं क० ज० प० क० ? अण्ण० तिगदि० पढम०तब्भव० जह०जो० वट्ट० । आउ० घोडमा०ज०जो० । सम्मामि० सत्तण्णं क० ज० प० क० ? अण्ण० चदुग० घोडमा० ज०जो० ।

५९. सण्णीसु सत्तण्णं क० ज० प० क० ? अण्ण० सण्णि०[1] मिच्छा० पढम०-तब्भवत्थ० जह०जो० । आउ० ज० प० क० ? अण्ण० खुद्दाभ० तदियपढमसमए वट्ट० ज०जोगिस्स ।

एवं सामित्तं समत्तं ।

कालपरूवणा

६०. कालं दुविधं—जहण्णयं उक्कस्सयं च । उक्कस्सए पगदं । दुवि०—ओघे०

५७. पीत और पद्मलेश्यामें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर देव और मनुष्य प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ है और जघन्य योगवाला है, वह उक्त सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है । आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर तीन गतियोंका जीव आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध कर रहा है और घोटमान जघन्य योगवाला है, वह आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है । शुक्कलेश्यामें पद्मलेश्याके समान भङ्ग है ।

५८. उपशमसम्यक्त्वमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर प्रथम समयवर्ती देव जघन्य योगवाला है, वह सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है । सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर तीन गतियोंका जीव प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ और जघन्य योगमें विद्यमान है, वह उक्त सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है । आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी घोलमान जघन्य योगवाला जीव है । सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर चारों गतियोंका जीव घो मान जघन्य योगमें अवस्थित है, वह सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है ।

५९. संज्ञियोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ और जघन्य योगवाला है, वह उक्त सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है । आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर जीव क्षुल्लक भवग्रहणके तृतीय भागके प्रथम समयमें विद्यमान है और जघन्य योगवाला है, वह आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है ।

इस प्रकार स्वामित्व समाप्त हुआ ।

कालप्ररूपणा

६०. काल दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो

---

[1] ता० आ० [illegible] असण्णि० इति पाठः ।

आदे० । ओघेण छण्णं कम्माणं उक्क० पदेसबंधो केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण एयस०, उक्क० बेसमयं। अणुक्क० तिण्णि भंगा । यो सो सादियो सपज्जवसिदो तस्स इमो णिद्देसो—ज० ए०, उ० अद्धपोग्गल० । मोह० उक्क० पदेस०[1] केव० ? ज० एग०, उ० बेसम० । अणु० ज० ए०, उ० अणंतकालं असंखे०पोग्ग० । आउ० उ० ज० ए०, उ० बेसम० । अणु० ज० ए०, उ० अंतो० । एवं आउ० याव अणाहारग त्ति सरिसो कालो । णवरि आहार०मि० उ० ए० ।

प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे छह कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धके तीन भङ्ग हैं। उनमें से जो सादि-सान्त भङ्ग है उसका यह निर्देश है—जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। मोहनीय कर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है । अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। आयुकर्मका अनाहारक मार्गणा तक इसी प्रकार सदृश काल है। इतनी विशेषता है कि आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है।

विशेषार्थ—सब कर्मोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध उत्कृष्ट योगके सद्भावमें होता है और उत्कृष्ट योगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है, इसलिये यहाँ ओघसे आठों कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। यह सम्भव है कि अनुत्कृष्ट योग एक समय तक हो और अनुत्कृष्ट योगके सद्भावमें उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव नहीं, इसलिए ओघसे आठों कर्मोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय कहा है। अब शेष रहा आठों कर्मोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल सो उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—मोहनीय और आयुकर्मके सिवा छह कर्मोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध उपशमश्रेणिमें या क्षपकश्रेणिमें होता है, अन्यत्र इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध ही होता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धके कालकी अपेक्षा तीन भङ्ग सम्भव हैं—अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त। अनादि-अनन्त भङ्ग अभव्योंके होता है। अनादि-सान्त भङ्ग जो भव्य एक बार उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करके मुक्तिके पात्र होते हैं उनके होता है और सादि-सान्त भङ्ग उन भव्योंके होता है जो एकाधिक बार उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करते हैं। इसका तो हम पूर्वमें ही स्पष्टीकरण कर आये हैं कि इन कर्मोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है। इसका उत्कृष्ट काल जो कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण बतलाया है सो उसका कारण यह है कि किसी जीवने अर्धपुद्गलपरिवर्तनके प्रारम्भमें और अन्तमें उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध किया और मध्यमें वह अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता रहा, इसलिये अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल उक्तप्रमाण प्राप्त हो जाता है। मोहनीयका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध संज्ञी जीव करता है और संज्ञीका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल अनन्त काल कहा है। आयुकर्मका बन्ध अन्तर्मुहूर्त काल तक ही होता है, इसलिये इसके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। आयुकर्मका सब मार्गणाओंमें ओघके समान ही काल है यह स्पष्ट ही है। मात्र आहारकमिश्रकाययोगमें उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध

---

[1] ता० प्रतौ मोह० पदे० इति पाठः।

६१. णिरएसु सत्तण्णं क० उ० ज० ए०, उ० बेसम०। अणु०[1] ज० ए०, उ० तेंत्तीसंसा०। एवं सत्तसु पुढवीसु अप्पप्पणो ट्ठिदीओ भाणिदव्वाओ।

६२. तिरिक्खेसु सत्तण्णं क० उक्क० ओघं। अणु० ज० ए०, उ० अणंतकालमसंखे०। एवं तिरिक्खोघभंगो णवुंस०-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खु०-भव०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि त्ति। णवरि अचक्खु०-भवसि० छण्णं क० ओघं। पंचिंदियतिरिक्ख०३ सत्तण्णं क० उक्क० ओघं। अणु० ज० ए०, उ० तिण्णिपलि० पुव्व०। पंचिं०तिरि०अपज्ज० अट्ठण्णं क० उ० ज० ए०, उ० बेसम०[2]। अणु० ज० ए०, उ० अंतो०। एवं सव्वअपज्जत्ताणं तसाणं थावराणं सव्वसुहुमपज्जत्तगाणं च। मणुस०३ पंचिं०तिरि०भंगो।

जो अनन्तर समयमें शरीरपर्याप्तिको पूर्ण करेगा उसके होता है, इसलिये इसके आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है।

६१. नारकियोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें जानना चाहिये। मात्र अनुत्कृष्टका उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहना चाहिए।

६२. तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अनन्त कालप्रमाण है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनके बराबर है। इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंके समान नपुंसकवेदी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि अचक्षुदर्शनी और भव्य जीवोंमें छह कर्मोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल ओघके समान है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य है। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें आठों कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार त्रस और स्थावर सब अपर्याप्तकोंके तथा सब सूक्ष्म पर्याप्तकोंके जानना चाहिए। मनुष्यत्रिकमें पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—यहाँ सब मार्गणाओंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल जिस प्रकार ओघसे घटित करके बतला आये हैं, उस प्रकार से घटित कर लेना चाहिये। आगे भी यह काल इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। मात्र अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल सब मार्गणाओंमें अलग-अलग है सो यह काल भी जहाँ जो कायस्थिति हो उसके अनुसार घटित कर लेना चाहिए। हाँ, जिन मार्गणाओंका काल अर्धपुद्गलपरिवर्तनसे अधिक है और उनमें उपशमश्रेणि व क्षपकश्रेणिकी प्राप्ति सम्भव है, उनमें इन कर्मोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल ओघके समान जाननेकी सूचना की है। कारण स्पष्ट है।

---

[1] आ० प्रतौ बेसम०, अणु० ज० ए०, उ० बेसम०, अणु० इति पाठः। [2] ता० प्रतौ ज० ए० बेसम० इति पाठः।

६३. देवेसु सत्तण्णं कम्माणं उक्क० ओघं। अणु० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं सा०। एवं सव्वदेवाणं अप्पप्पणो ट्ठिदीओ णेदव्वाओ।

६४. एइंदि० सत्तण्णं क० उक्क० ओघं। अणु० ज० ए०, उ० असंखेंज्जा लोगा। बादरे अंगुल० असं०। बादरपज्ज० संखेंज्जाणि वाससहस्साणि। एवं वणप्फदि०। सव्वसुहुमाणं सत्तण्णं क० उक्क० ओघं। अणु० ज० ए०, उ० सेडीए असंखे०। विगलिंदि० सत्तण्णं क० उक्क० ओघं। अणु० ज० ए०, उ० संखेंज्जाणि वाससह०। एवं पज्जत्ता०। पंचिं०-तस०२ सत्तण्णं क० उक्क० ओघं। अणु० ज० ए०, उ० सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपु० बेसागरोवमसह० पुव्वकोडिपुध०। पज्जत्ते सागरोवमसदपुधत्तं बेसागरोवमसहस्साणि।

६५. पुढ०-आउ०-तेउ०-वाउ-वणप्फदि-णियोद० सत्तण्णं क० उ० ओघं।

६३. देवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। इसी प्रकार सब देवोंमें जानना चाहिए। मात्र इनमें अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी स्थिति-प्रमाण जानना चाहिए।

६४. एकेन्द्रियोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है। बादरोंमें अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। बादर पर्याप्तकोंमें संख्यात हजार वर्ष है। इसी प्रकार वनस्पतिकायिक जीवोंमें जानना चाहिए। सब सूक्ष्म जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। विकलेन्द्रियोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है। इसी प्रकार इनके पर्याप्तकोंमें जानना चाहिए। पञ्चेन्द्रियद्विक और त्रसद्विकमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पञ्चेन्द्रियोंमें पूर्वकोटि अधिक एक हजार सागर और त्रसकायिकोंमें पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक दो हजार सागर है। तथा पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें सौ सागर पृथक्त्वप्रमाण और त्रसपर्याप्तकोंमें दो हजार सागर है।

विशेषार्थ—यहाँ जिसकी जो कायस्थिति है, उसके अनुसार अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल कहा है। मात्र एकेन्द्रियोंमें उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध बादर एकेन्द्रियोंके होता है और बादर एकेन्द्रियोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है, इसलिए एकेन्द्रियोंमें अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण कहा है; क्योंकि जो एकेन्द्रिय असंख्यात लोकप्रमाण काल तक सूक्ष्म एकेन्द्रिय होकर रहते हैं, उनके इतने काल तक एकेन्द्रिय सामान्यकी अपेक्षा नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होता है। तथा सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें सात कर्मोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जो उत्कृष्ट काल जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है सो इसका कारण योगस्थानके अवान्तर भेद हैं। शेष कथन स्पष्ट ही है।

६५. पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका

अणु० ज० ए०, उ० असंखेंज्जा लोगा। एदेसिं बादराणं कम्मट्ठिदी तेसिं बादरपज्जत्ताणं संखेंज्जाणि वाससहस्साणि। पत्तेयसरी० बादरपुढविभंगो।

६६. पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्वि०-आहार०-कोधादि०४ अट्ठण्णं क० उक्क० अणु० अपज्जत्तभंगो। कायजोगि० तिरिक्खोघं। ओरालि० सत्तण्णं क० उक्क० ओघं। अणु० ज० ए०, उ० बावीसंवस्ससहस्साणि देसूणाणि। ओरालि०मिस्स०-वेउव्वि०-मिस्स०आहारमि० सत्तण्णं क० उ० ज० ए०, उ० ए०। अणु० ज० उ० अंतो०। कम्मइ०-अणाहार० सत्तण्णं क० उ० ज० उ० ए०। अणु[1]० ज० ए०, उ० तिण्णिस०।

६७. इत्थि०-पुरिस० सत्तण्णं क० उक्क० ओघं। अणु० ज० ए०, उ० पलिदोवमसदपुध० सागरोवमसदपुध०। अवगद० सत्तण्णं क० उक्क० ओघं। अणु०

जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है। इनके बादरोंमें कर्मस्थितिप्रमाण है और उनके बादर पर्याप्तकोंमें संख्यात हजार वर्ष है। तथा प्रत्येकशरीर जीवोंका भङ्ग बादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—यहाँ पृथिवीकायिक आदिमें सात कर्मोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल जैसे एकेन्द्रियोंके घटित करके बतला आये हैं, उस प्रकारसे घटित कर लेना चाहिए। तथा बादर पर्याप्त निगोद जीवोंमें अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीवोंके समान कहा है सो यह सामान्य कथन है। विशेष इतना है कि बादर पर्याप्त निगोद जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त जानना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

६६. पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, आहारककाययोगी और क्रोधादि चार कषायवाले जीवोंमें आठ कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल अपर्याप्तकोंके समान है। काययोगी जीवोंमें सामान्य तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है। औदारिककाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्षप्रमाण है। औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। कार्मणकाययोगी और अनाहारकजीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन समय है।

विशेषार्थ—औदारिकमिश्र आदि तीन मिश्रकाययोगोंमें शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेके उपान्त्य समयमें उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होता है, इसलिए इनमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध संज्ञी जीव द्वितीय विग्रहके समय करते हैं, क्योंकि इनके इसी समय उत्कृष्ट योग सम्भव है, इसलिए इन दो मार्गणाओंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

६७. स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल क्रमसे सौ

---

[1] ता०प्रतौ उ० ज० उ०। अणु० इति पाठः।

ज० ए०, उ० अंतो०[1] । एवं सुहुमसंप०-सम्मामि० ।

६८. विभंगे सत्तण्णं क० उक्क० ओघं० । अणु० ज० ए०, उ० तैंत्तीसं० देसू० । आभिणि-सुद-ओधि० सत्तण्णं क० उक्क० ओघं । अणु० ज० ए०, उ० छावट्ठि० सादि० । एवं ओधिदं०-सम्मा० । मणपज्ज० सत्तण्णं क० उक्क० ओघं । अणु० ज० ए०, उ० पुव्वकोडी दे० । एवं संज०-सामा०-छेदो०-परिहार०-संजदासंज० । चक्खु० तसपज्जत्तभंगो ।

६९. छण्णं लेस्साणं सत्तण्णं क० उ० ज० ए०, उ० बेसम० । अणु० ज० ए०, उ० तैंत्तीसं सत्तारस सत्तसाग० बे अट्ठारस तैंत्तीसं साग०[2] सादि० ।

७०. खइग० सत्तण्णं क० उक्क० ओघं । अणु० ज० ए०, उ० तैंत्तीसं सादि० । वेदग० सत्तण्णं क० उक्क० ओघं । अणु० ज० एय०, उ० छावट्ठि०-सा० । उवसम० सत्तण्णं क० उक्क० ओघं । अणु० ज० ए०, उ० अंतो० । सासणे सत्तण्णं क० उ० ज० ए०, उ० बेसम० । अणु० ज० ए०, उ० छावलिगाओ ।

पल्यपृथक्त्वप्रमाण और सौ सागरपृथक्त्वप्रमाण है । अपगतवेदी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल ओघके समान है । अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायसंयत और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए ।

६८. विभङ्गज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल ओघके समान है । अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है । आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल ओघके समान है । अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक छयासठ सागर है । इसी प्रकार अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए । मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल ओघके समान है । अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है । इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंमें जानना चाहिये । चक्षुदर्शनी जीवोंमें त्रसपर्याप्त जीवोंके समान भङ्ग है ।

६९. छह लेश्याओंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है । अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल क्रमसे साधिक तेतीस सागर, साधिक सत्रह सागर, साधिक सात सागर, साधिक दो सागर, साधिक अठारह सागर और साधिक तेतीस सागर है ।

७०. क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल ओघके समान है । अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धको जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है । वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल ओघके समान है । अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल छयासठ सागर है । उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल ओघके समान है । अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय

---

[1] ता०प्रतौ अणु० ज० उ० ए० अंवो० इति पाठः । [2] आ०प्रतौ अट्ठारस साग० इति पाठः ।

सण्णी० पंचिंदियपज्जत्तभंगो। असण्णी० तिरिक्खोघं। आहार० सत्तण्णं क० उ० ओघं। अणु० ज० ए०, उ० अंगुल० असं०[1]।

एवं उक्कस्सकालं समत्तं[2]

७१. जहण्णए पगदं। दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० सत्तण्णं क० जह० पदे० केवचिरं०? ज० उ० ए०। अज० ज० खुद्दा० समऊ०, उ० असंखेंज्जा लोगा। अथवा सेढीए असंखेंज्जदिभागो। आउ० ज० पदे० केवचिरं०? ज० उ० ए०। अज० जहण्णु० अंतो०।

७२. णिरएसु सत्तण्णं क० ज० पदे० ज० उ० ए०। अज० ज० दसवस्ससह० समऊ०, उ० तेंत्तीसं०। आउ० ज० ज० ए०, उ० चत्तारिस०। अज० ज०

है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल छह आवलिप्रमाण है। संज्ञी जीवोंमें पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके समान भङ्ग है। असंज्ञी जीवोंमें सामान्य तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है। आहारक जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

इस प्रकार उत्कृष्ट काल समाप्त हुआ।

७१. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका कितना काल है? जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहण प्रमाण है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है। अथवा जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका कितना काल है? जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीवके तद्भवस्थ होने के प्रथम समयमें सात कर्मोंका जघन्य प्रदेशबन्ध होता है, इसलिए इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा जघन्य प्रदेशबन्धका क्षुल्लक भवमें से एक समय कम करने पर अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहण प्रमाण प्राप्त होनेसे वह उक्तप्रमाण कहा है। तथा सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण होनेसे यहाँ अजघन्य प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। यहाँ अजघन्य प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल विकल्परूपसे जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है सो जान कर इसकी संगति बिठलानी चाहिये। साधारणतः योगके भेद जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण होनेसे इस अपेक्षासे यह काल कहा है,ऐसा जान पड़ता है। आयुकर्मका जघन्य प्रदेशबन्ध क्षुल्लक भवके तृतीय त्रिभागके प्रथम समयमें होता है, इसलिए इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा आयुकर्मका बन्ध अन्तर्मुहूर्त काल तक होता है, अतः इसके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है।

७२. नारकियोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय कम दस हजार वर्ष प्रमाण है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है

---

[1] ता०प्रतौ अंगु० (?) असं इति पाठः। [2] ता०प्रतौ एवं उक्कस्सकालं समत्तं इति पाठो नास्ति।

ए०, उ० अंतो० । एवं सत्तसु पुढवीसु । सत्तण्णं क० पढमाए ज० ज० उ० ए० । अज० [ज०] दसवस्ससह० समऊ०, उक्क० सागरोवम० । विदियाए० ज० ज० उ० ए० । अज० ज० सागरो०[1], उक्क० तिण्णि साग० । एवं णेदव्वं ।

७३. तिरिक्खोघो एइंदि०-णवुंस०-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खु०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छा०-असण्णि० ओघभंगो । णवरि णवुंस० अज० ज० ए० ।

और उत्कृष्ट काल चार समय है । अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें आयुकर्मका काल जानना चाहिये । पहली पृथिवीमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय कम दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट काल एक सागर प्रमाण है । दूसरी पृथिवी में जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक सागरप्रमाण है और उत्कृष्ट काल तीन सागर है । इसी प्रकार आगेकी पृथिवियोंमें ले जाना चाहिये ।

विशेषार्थ—असंज्ञीके मर कर नरकमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें सात कर्मोंका जघन्य प्रदेशबन्ध होता है, अतः यहाँ सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट-काल एक समय कहा है । तथा जघन्य भवस्थितिमेंसे इस एक समयके कम कर देने पर अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल प्राप्त होनेसे यह उक्त प्रमाण कहा है और इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है, यह स्पष्ट ही है । आयुकर्मका जघन्य प्रदेशबन्ध घोलमान जघन्य योगसे होता है और इसका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल चार समय है, इसलिये आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका यह काल उक्त प्रमाण कहा है । यह सम्भव है कि आयुकर्मका अजघन्य प्रदेशबन्ध एक समय तक होकर दूसरे समयमें घोलमान जघन्य योगके प्राप्त होनेसे जघन्य प्रदेशबन्ध होने लगे, इसलिये इसके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय कहा है और इसका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, यह स्पष्ट ही है । आयुकर्मके कालका विचार सातों पृथिवियोंमें इसी प्रकार कर लेना चाहिये । मात्र प्रत्येक पृथिवीमें सात कर्मोंके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका जो काल है उसे अपनी-अपनी जघन्य और उत्कृष्ट भवस्थितिको व स्वामित्वको देखकर घटित कर लेना चाहिये । तात्पर्य यह है कि प्रत्येक पृथिवीमें इन कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल तो एक समय ही प्राप्त होता है, क्योंकि सर्वत्र भवग्रहणके प्रथम समयमें ही जघन्य प्रदेशबन्ध होता है । तथा अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय कम जघन्य भवस्थिति प्रमाण प्राप्त होता है, क्योंकि सर्वत्र जघन्य प्रदेशबन्धका एक समय काल कम कर देने पर यह काल शेष बचता है और उत्कृष्ट काल सर्वत्र अपनी-अपनी उत्कृष्ट भवस्थिति प्रमाण है, यह स्पष्ट ही है । यहाँ प्रसंगसे इस बातका स्पष्टीकरण कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि जिस-जिस मार्गणामें आयुकर्मका जघन्य प्रदेशबन्ध घोलमान जघन्य योगसे होता है, वहाँ उसका नारकियोंके समान ही काल घटित कर लेना चाहिये । कोई विशेषता न होनेसे हम आगे उसका स्पष्टीकरण नहीं करेंगे ।

७३. सामान्य तिर्यञ्च, एकेन्द्रिय, नपुंसकवेदी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेदी जीवोंमें अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है ।

विशेषार्थ—यहाँ पर जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं, उनमें ओघके समान काल घटित

---

[1] आ० प्रतौ उ० ए० । सागरो० इति पाठः ।

७४. पंचिं०तिरि० सत्तण्णं क० ज० ज० उ० ए०। अज० ज० खुद्दा० समऊणं, उक्क०[1] तिण्णि पलि० पुव्वकोडिपु०। आउ० ओघं। पंचिं०तिरि०पज्जत्त-जोणिणीसु सत्तण्णं क० ज० ज० उ० ए०। अज० ज० अंतो०, उ० तिण्णि पलि० पुव्वकोडिपु०। आउ० णिरयोघं। पंचिं०तिरि०अपज्ज० सत्तण्णं क० ज० ज० उ० ए०। अज० ज० खुद्दाभ० समऊणं, उक्क० अंतो०। आउ० ओघं। एवं सव्वअपज्जत्तगाणं तसाणं थावराणं च।

७५. मणुस०३ पंचिंदियतिरिक्खभंगो। णवरि सत्तण्णं क० अज० ज० ए०। देवाणं णिरयभंगो। एवं सव्वदेवाणं अप्पप्पणो जहण्णुक्कस्सट्ठिदी णेदव्वा।

हो जानेसे वह ओघके समान कहा है। मात्र नपुंसकवेदका उपशमश्रेणिमें जघन्य काल एक समय भी बन जाता है, अतः इसमें सात कर्मोंके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय कहा है।

७४. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य है। आयुकर्मका भङ्ग ओघके समान है। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चपर्याप्त और पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिनी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य है। आयुकर्मका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चअपर्याप्तकोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। आयुकर्मका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार त्रस और स्थावर सब अपर्याप्तकोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और इनके अपर्याप्तकोंमें आयुकर्मका जघन्य प्रदेशबन्ध ओघके समान क्षुल्लक भवके तीसरे त्रिभागके प्रथम समयमें होता है, इसलिये इसका भङ्ग ओघके समान कहा है। तथा शेष दो प्रकारके पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें आयुकर्मका जघन्य प्रदेशबन्ध नारकियोंके समान घोलमान जघन्य योगसे होता है, इसलिये यहाँ इसका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान कहा है। शेष कथन सुगम है।

७५. मनुष्यत्रिकमें पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि सात कर्मोंके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है। देवोंमें नारकियोंके समान भङ्ग है। इसी प्रकार सब देवोंके अपनी-अपनी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये।

विशेषार्थ—मनुष्यत्रिकमें अन्य सब काल पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकके समान है, यह स्पष्ट ही है। केवल सात कर्मोंके अजघन्य प्रदेशबन्धके जघन्य कालमें फरक है। बात यह है कि मनुष्यत्रिकमें उपशमश्रेणिकी प्राप्ति सम्भव है और उपशमश्रेणिमें इनके सात कर्मोंका अजघन्य प्रदेशबन्ध एक समय तक भी हो सकता है, क्योंकि जो उक्त मनुष्य उपशमश्रेणिसे उतरते समय एक समय तक सात कर्मोंका बन्ध कर दूसरे समयमें मरकर देव हो जाता है, उसके इनका एक समयके लिये अजघन्य प्रदेशबन्ध देखा जाता है। देवोंमें अन्य सब काल जिस प्रकार नारकियोंमें घटित करके बतला आये हैं, उस प्रकार घटित कर लेना चाहिये। मात्र

---

[1] ता०आ०प्रत्योः समऊणं। एवं बादरवणप्फदि० बादरवणप्फदिपज्जत्त० उक्क० इति पाठः

७६. एइंदि° सुहुमं च अट्ठण्णं क° ओघभंगो। बादर° सत्तण्णं क° ज० ज° उ° ए°। अज° ज° खुद्दाभ° समऊणं, उ° अंगुल° असंखे°। आउ° ओघं। बादरपज्ज° सत्तण्णं क° ज° ज° उ°[1] ए°। अज° [ज°] अंतो° [समऊणं°], उ° संखेज्जाणि वाससह°। आउ° णिरयभंगो। एवं बादरवणप्फदि–बादरवणप्फदि-पज्जत्त°। सव्वसुहुमपज्ज° सत्तण्णं क° ज° ओघं। अज° ज° अंतो° समऊ°, उ° अंतो°। आउ° णिरयभंगो।

अजघन्य प्रदेशबन्धका काल अपनी-अपनी जघन्य और उत्कृष्ट भवस्थितिको ध्यान में रख कर कहना चाहिये।

७६. एकेन्द्रियोंमें और सूक्ष्म जीवोंमें आठ कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। बादरोंमें सात कर्मों के जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय कम क्षुल्लक भव ग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। आयु कर्मका भंग ओघके समान है। बादर पर्याप्तकोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्ध का जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशबन्ध का जघन्य काल एक समय कम अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है। आयु कर्मका भंग सामान्य नारकियोंके समान है। इसीप्रकार बादर वनस्पतिकायिक और बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीवों में जानना चाहिये। सब सूक्ष्म पर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका काल ओघके समान है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय कम अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। आयुकर्मका भङ्ग नारकियोंके समान है।

विशेषार्थ :—यहाँ एकेन्द्रिय और सूक्ष्म जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान प्राप्त होनेसे वह उसके समान कहा है। बादरों में सात कर्मोंका जघन्य प्रदेशबन्ध भवके प्रथम समयमें होता है, इसलिये इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इस एक समयको क्षुल्लक भवमेंसे कम कर देने पर अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहण प्रमाण प्राप्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है और बादरोंकी कायस्थिति अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण होनेसे सात कर्मोंके अजघन्य प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। इनके आयुकर्मका जघन्य प्रदेशबन्ध ओघके समान क्षुल्लक भवग्रहणके तृतीय त्रिभागके प्रथम समयमें होता है, इसलिये इसका भङ्ग ओघके समान कहा है। बादर पर्याप्तकोंमें भी सात कर्मोंका जघन्य प्रदेशबन्ध भवके प्रथम समयमें होता है, इसलिये इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इस एक समयको कम कर देने पर अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय कम अन्तर्मुहूर्त कहा है और इनकी कायस्थिति संख्यात हजार वर्षप्रमाण होनेसे अजघन्य प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। आयुकर्मका जघन्य प्रदेशबन्ध नारकियोंके समान घोलमान जघन्य योगसे होनेके कारण यहाँ इसका भंग नारकियोंके समान कहा है। बादर वनस्पतिकायिक और बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीवोंका भङ्ग बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान होनेसे यह भङ्ग उक्त प्रमाण कहा है। सब सूक्ष्म पर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंका जघन्य प्रदेशबन्ध ओघके समान प्राप्त होनेसे

---

[1] ता०प्रतौ सत्तण्णं क° ज° उ° इति पाठः।

७७. विगलिंदि० सत्तण्णं क० ज० ज० उ० ए०। अज० ज० खुद्दाभ० समऊ०। पज्जत्ते[1] ज० ज० उ० ए०। अज० ज० अंतो० [समऊ०], उ० संखेज्जाणि वाससह०। आउ० पंचिं०तिरिक्खदुगभंगो।

७८. पंचिं०-तस० सत्तण्णं क० ज० ज० उ० ए०। अज० ज० खुद्दाभ० समऊ०, उ० अणुक्कस्सभंगो। पज्जत्तेसु ज० ए०, अज० ज० अंतो०, उ० अणुक्कस्सभंगो। आउ० पंचि०तिरि०भंगो।

७९. पुढ०-आउ०-तेउ०-वाउ०-वणप्फदि-णियोद-सुहुमपुढ० एवं आउ०-तेउ०-

इसका काल ओघके समान कहा है। तथा इस एक समयको अन्तर्मुहूर्तमेंसे कम कर देने पर यहाँ अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय कम अन्तर्मुहूर्तप्रमाण प्राप्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है और इनकी कायस्थिति अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होनेसे अजघन्य प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कहा है।

७७. विकलेन्द्रियोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण है। इनके पर्याप्तकोंमें जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल दोनोंमें संख्यात हजार वर्ष प्रमाण है। तथा इन दोनोंमें आयुकर्मका भंग पंचेन्द्रियतिर्यञ्चद्विकके समान है।

विशेषार्थ—विकलेन्द्रियों और उनके पर्याप्तकोंमें भवग्रहणके प्रथम समयमें सात कर्मोंका जघन्य प्रदेशबन्ध होता है, इसलिये उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है, तथा इस एक समयको अपनी-अपनी जघन्य भवस्थितिमेंसे कम कर देने पर इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल होता है, इसलिये वह एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहण-प्रमाण और एक समय कम अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कहा है। तथा इन दोनोंकी कायस्थिति संख्यात हजार वर्षप्रमाण होनेसे इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। आयुकर्मके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल स्वामित्वको देखते हुए विकलेन्द्रियोंमें पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चोंके समान और विकलेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तकोंके समान प्राप्त होनेसे यह उनके समान कहा है।

७८. पञ्चेन्द्रिय और त्रस जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट कालका भङ्ग अनुत्कृष्टके समान है। पर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंके अजघन्य प्रदेश-बन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कालका भङ्ग अनुत्कृष्टके समान है। आयुकर्मका भंग पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चोंके समान है।

विशेषार्थ—इन जीवोंके भी भवग्रहणके प्रथम समयमें सात कर्मोंका जघन्य प्रदेशबन्ध होता है, इसलिए इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इस एक समयको जघन्य भवस्थितिमेंसे कम कर देने पर इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण प्राप्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। तथा इसका उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट प्रदेशबन्धके अनुत्कृष्टके समान है, यह स्पष्ट ही है। इसीप्रकार इनके पर्याप्तकोंमें काल घटित कर लेना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

७९. पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक,

---

[1] ता०प्रतौ समऊ०। अ[प]ज्जत्ते इति पाठः।

वाउ०-वणप्फदि-णिगोद० सत्तण्णं क० ज० ज०उ० ए० । अज० ज० खुद्दाभ० समऊणं, उ० सेढीए असंखें० । आउ० ओघं । एदेसिं बादराणं सत्तण्णं क० ज० ए० । अज० ज० खुद्दाभ० समऊ०, उक्क० कम्मट्ठिदी० । तेसिं[1] पज्जत्ता० सत्तण्णं क० ज० ए० । अज० ज० अंतो०, उक्क० संखेंज्जाणि वाससहस्साणि । आउ० तिरिक्खभंगो । बादरपत्तेग० बादरपुढविभंगो ।

८०. पंचमण०-पंचवचि० अट्ठण्णं क० ज० ज० ए०, उ० चत्तारि सम० । अज० ज० ए०, उ० अंतो० । कायजोगि० सत्तण्णं क० ज० ए० । अज० ज० ए०, उक्क० असंखेंज्जा लोगा । आउ० ज० ए० । अज० ज० ए०, उ० अंतो० ।

निगोदजीव, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्मवनस्पतिकायिक, सूक्ष्म निगोद जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्यप्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । आयुकर्मका भङ्ग ओघके समान है । इनके बादरोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहण प्रमाण है और उत्कृष्ट काल कर्मस्थितिप्रमाण है । उनके पर्याप्तकोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है । आयुकर्मका भङ्ग तिर्यञ्चोंके समान है । बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवोंका भङ्ग बादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान है ।

विशेषार्थ—कालका खुलासा पहले जिस प्रकार कर आये हैं, उसे ध्यानमें रखकर यहाँ भी कर लेना चाहिये । मात्र बादर पर्याप्तनिगोदोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त जानना चाहिए ।

८०. पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगी जीवोंमें आठ कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है । अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । काययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण है । आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—यहाँ पर पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगी जीवोंमें आठकर्मोंका जघन्य प्रदेशबन्ध घोलमान जघन्य योगसे होता है, अतः इनके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल चार समय कहा है । तथा इन योगोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होनेसे यहाँ आठों कर्मोंके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । काययोगमें सात कर्मोंका जघन्य प्रदेश बन्ध सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीवके भवके प्रथम समयमें ही सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा जिसके मरणके

---

[1] ता०आ०प्रत्योः कम्मट्ठिदी० अंगुल० असं० तेसिं इति पाठः ।

८१. ओरालि० सत्तण्णं क० ज० ए०। अज० ज० ए०, उ० बावीस वाससह०। आउ०[1] णिरयभंगो। ओरा०मि० अपज्ज०भंगो। णवरि अज० ज० खुद्दाभ० तिसमऊणं।

८२. वेउव्विय०-आहार० सत्तण्णं क० ज० ए०। अज० ज० ए०, उ० अंतो०। अथवा ज० ज० ए०, उ० चत्तारि स०। अज० ज० ए०, उ० अंतो०। वेउव्वियका० आउ० देवोघं। आहार० आउ० जह० ए०। अज० ज० ए०, उ० अंतो०। वेउव्वि०मि० सत्तण्णं क० ज० ए०। अज० ज० उ०

समय काययोग हुआ है और दूसरे समयमें जो सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त होकर जघन्य योगसे सात कर्मों का जघन्य प्रदेशबन्ध करने लगा है, उसके काययोगमें एक समय तक सात कर्मोंका अजघन्य प्रदेशबन्ध होता है, इसलिए इसका जघन्य काल एक समय कहा है और इसका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है, यह स्पष्ट ही है। शेष कथन सुगम है।

८१. औदारिककाययोगी जीवोंमें सात कर्मों के जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है। आयुकर्मका भंग नारकियोंके समान है। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल तीन समय कम क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण है।

विशेषार्थ—सूक्ष्म निगोद जीवके पर्याप्त होनेके प्रथम समयमें जघन्य योगसे सात कर्मों का जघन्य प्रदेशबन्ध होता है, अतः औदारिक काययोगमें इनके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा औदारिककाययोगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है, इसलिए इसमें सात कर्मोंके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्षप्रमाण कहा है। यहाँ आयुकर्म का जघन्य प्रदेशबन्ध नारकियोंके समान घोलमान जघन्य योगसे होता है, इसलिए यहाँ इसका भङ्ग नारकियोंके समान कहा है। अपर्याप्तकोंमें प्रारम्भके तीन समय कार्मणकाययोगके हो सकते हैं, अतः उनसे न्यून शेष समयमें औदारिकमिश्रकाययोग नियमसे रहता है, इसलिए औदारिकमिश्रकाययोगमें सात कर्मों के अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल तीन समय कम क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण कहा है। इसमें शेष भङ्ग अपर्याप्तकोंके समान है, यह स्पष्ट ही है।

८२. वैक्रियिककाययोगी और आहारककाययोगी जीवोंमें सात कर्मों के जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अथवा जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। वैक्रियिककाययोगी जीवों में आयुकर्मका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। आहारककाययोगी जीवोंमें आयुकर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशबन्धका

---

[1] ता०आ०प्रत्योः वाससह० अ० आउ० इति पाठः।

अंतो० । एवं आहारमि० सत्तण्णं क० । आउ० ज० ए० । अज० ज० ए०, उ० अंतो० । कम्मइ० सत्तण्णं क० ज० ए० । अज० ज० ए०, उ० तिण्णि स० । एवं अणाहार० ।

८३. इत्थि०-पुरिस० सत्तण्णं क० ज० ए० । अज० ज० ए० पुरिस०

जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग जानना चाहिये। आयु कर्मके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन समय है। इसीप्रकार अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—वैक्रियिक और आहारक काययोगमें सात कर्मोंका जघन्य प्रदेशबन्ध शरीर पर्याप्तिसे पर्याप्त होनेके प्रथम समयमें होता है, इसलिए यहाँ इनके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इन योगोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होनेसे यहाँ इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। यहाँ विकल्परूपसे इन योगोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल चार समय कहा है। सो घोलमान जघन्य योगसे भी जघन्य प्रदेशबन्ध सम्भव है, यह मानकर यह काल कहा है। इस अपेक्षासे भी अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बन जाता है। वैक्रियिककाययोगमें आयुकर्मका जघन्य प्रदेशबन्ध सामान्य देवोंके समान घोलमान जघन्य योगसे होता है, इसलिए इसमें आयुकर्मका भङ्ग सामान्य देवोंके समान कहा है। आहारककाययोगमें आयुकर्मका जघन्य प्रदेशबन्ध शरीर पर्याप्तिके प्रथम समयमें सम्भव है, इसलिये इसके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इस योगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त सम्भव होनेसे इसमें आयुकर्मके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें सात कर्मोंका जघन्य प्रदेशबन्ध भवग्रहणके प्रथम समयमें होता है, इसलिये इसके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इस योगका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिये इसमें अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। आहारकमिश्रकाययोगमें वैक्रियिकमिश्रकाययोगके समान काल घटित हो जाता है, इसलिये आहारकमिश्रमें सात कर्मोंके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका काल वैक्रियिकमिश्रके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र आहारकमिश्रमें आयुकर्मका बन्ध भी सम्भव है, इसलिये उसका काल अलगसे कहा है। कार्मणकाययोगमें सात कर्मोंका जघन्य प्रदेशबन्ध सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीवके प्रथम विग्रहमें होता है, इसलिये इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इस योगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है, इसलिये इसमें सात कर्मोंके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय कहा है। आहारकोंमें कार्मणकाययोगियोंके समान व्यवस्था रहनेसे उनमें सब भङ्ग कार्मणकाययोगियोंके समान जाननेकी सूचना की है।

८३. स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और

अंतो०, उ० अणुक्क०भंगो। आउ० देवभंगो। अवगद० सत्तण्णं क० ज० ए०, उ० चत्तारिस०। अज० ज० ए०, उ० अंतो०।

८४. कोधादि० ४ सत्तण्णं क० ज० ए०। अज० ज० ए०, उ० अंतो। एवं आउ०।

८५. विभंग सत्तण्णं क० ज० ज० ए०, उ० चत्तारिस०। अज० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं० दे०। आउ० देवभंगो। आभिणि-सुद-ओधि० सत्तण्णं क० ज० ए०।

उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल स्त्रीवेदमें एक समय और पुरुषवेदमें अन्तर्मुहूर्त है तथा उत्कृष्ट कालका भङ्ग अनुत्कृष्टके समान है। आयुकर्मका भङ्ग देवोंके समान है। अपगतवेदी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—इन दोनों वेदोंमें सात कर्मोंका जघन्य प्रदेशबन्ध इन वेदवाले असंज्ञी जीवोंके भवग्रहणके प्रथम समयमें होता है, इसलिए इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा स्त्रीवेदका जघन्य काल एक समय और पुरुषवेदका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त होनेसे इनमें सात कर्मोंके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल क्रमसे एक समय और अन्तर्मुहूर्त कहा है। इनमें इनके अजघन्य प्रदेशबन्धके उत्कृष्ट कालका भङ्ग अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धके उत्कृष्ट कालके समान है यह स्पष्ट ही है। इनमें आयुकर्मका जघन्य प्रदेशबन्ध देवोंके समान घोटमान जघन्य योगसे होता है, इसलिये यहाँ आयुकर्मका भङ्ग देवोंके समान जाननेकी सूचना की है। अपगतवेदी जीवोंमें सात कर्मोंका जघन्य प्रदेशबन्ध घोटमान जघन्य योगसे होता है, इसलिए इसमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल चार समय कहा है। तथा बन्ध करनेवाले अपगतवेदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होनेसे इसमें अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है।

८४. क्रोधादि चार कषायवाले जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। आयुकर्मका भङ्ग इसी प्रकार जानना चाहिये।

विशेषार्थ—क्रोधादि चार कषायोंमें ओघके समान भव ग्रहणके प्रथम समयमें सात कर्मोंका जघन्य प्रदेशबन्ध होता है, इसलिये इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इन कषायोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होनेसे इनमें सात कर्मोंके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। यहाँ आयुकर्मका भङ्ग इसी प्रकार जाननेकी सूचना की है, सो इसका यह तात्पर्य है कि जिस प्रकार यहाँ सात कर्मोंके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका काल कहा है, उसी प्रकार आयुकर्मके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका काल प्राप्त होता है। कारण स्पष्ट है।

८५. विभङ्गज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट कुछ कम तेतीस सागर है। आयुकर्मका भङ्ग देवोंके समान है। आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Varanasi

अज० ज० अंतो०, उ० छावट्ठि० सादि० । आउ० देवभंगो । एवं ओधिदं०-सम्मा०-खइग०-वेदग० । णवरि खइग०-वेदग० अज० अणुक्क०भंगो ।

८६. मणप० सत्तण्णं[1] क० ज० ज० ए०, उ० चत्तारि स० । अज० ज० ए०, उ० पुव्वकोडी दे० । आउ० देवभंगो । एवं संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद० । सुहुमसं० अवगद० भंगो । चक्खु० तसपज्जत्तभंगो ।

एक समय है । अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक छ्यासठ सागर है । आयुकर्मका भङ्ग देवोंके समान है । इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि क्षायिकसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें अजघन्य प्रदेशबन्धका भंग अनुत्कृष्टके समान है ।

विशेषार्थ—विभङ्गज्ञानमें सात कर्मोंका जघन्य प्रदेशबन्ध घोलमान जघन्य योगसे होता है, इसलिए इसमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल चार समय कहा है । तथा यहाँ जघन्य प्रदेशबन्धके मध्यमें एक समयतक अजघन्य प्रदेशबन्ध हो यह सम्भव है, इसलिए इसका जघन्य काल एक समय कहा है । विभङ्गज्ञानका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है, इसलिए इसमें उक्त कर्मोंके अजघन्य प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर कहा है । यहाँ आयुकर्मका भङ्ग देवोंके समान है, यह स्पष्ट है । आभिनिबोधिक आदि तीन ज्ञानोंमें सात कर्मोंका जघन्य प्रदेशबन्ध प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ जीवके होता है, इसलिए इनमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा इन ज्ञानोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक छ्यासठ सागर होनेसे इनमें सात कर्मोंके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक छ्यासठ सागर कहा है । यहाँ भी आयुकर्मका भङ्ग देवोंके समान है, यह स्पष्ट ही है । यहाँ अवधिदर्शनी आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं, उनमें आभिनिबोधिक ज्ञानी आदिके समान काल घटित हो जानेसे वह उनके समान कहा है । मात्र क्षायिकसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट काल भिन्न प्रकार है, इसलिये इनमें सात कर्मोंके अजघन्य प्रदेशबन्धके कालको अनुत्कृष्टके समान जाननेकी सूचना की है ।

८६. मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है । अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है । आयुकर्मका भङ्ग देवोंके समान है । इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंमें जानना चाहिए । सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें अपगतवेदी जीवोंके समान भंग है । चक्षुदर्शनी जीवोंमें त्रसपर्याप्त जीवोंके समान भङ्ग है ।

विशेषार्थ—मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंका जघन्य प्रदेशबन्ध घोलमान जघन्य योगसे होता है, इसलिए इसमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल चार समय कहा है । तथा दो बार जघन्य प्रदेशबन्धके मध्यमें एक समयके लिए अजघन्य प्रदेशबन्ध हो यह सम्भव है और मनःपर्ययज्ञानका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है, इसलिए यहां सात कर्मोंके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि प्रमाण कहा है । यहाँ आयुकर्मका भङ्ग देवोंके समान है, यह स्पष्ट ही है । यहाँ संयत आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं, उनमें मनःपर्ययज्ञानी

---

[1] आ०प्रतौ भंगो । मणुस० सत्तण्णं इति पाठः ।

८७. किण्ण-णील-काऊ० सत्तण्णं क० ज० ए० । अज० ज० अंतो,[1] उक्क० तेंत्तीसं-सत्तारस-सत्तसाग० सादि० । आउ० ओघं । तेउ-पम्माणं सत्तण्णं क० ज० ए० । अज० ज० अंतो०, उ० बे-अट्ठारससाग० सादि० । आउ० देवभंगो । सुक्काए सत्तण्णं क० ज० ए० । अज० ज० अंतो०, उ० तेंत्तीसं० सादि० । आउ० देवभंगो ।

८८. उवसम० सत्तण्णं क० ज० ए० । अज० जहण्णुक्क० अंतो० । सासणे सत्तण्णं क० ज० ए० । अज० ज० ए०, उ० छावलिगा० । आउ० देवभंगो । सम्मामि० मणजोगिभंगो ।

जीवोंके समान कालपरूपणा बन जाती है, इसलिए उनका कथन मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान जानने की सूचना की है । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

८७. कृष्ण, नील और कापोत लेश्यामें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल क्रमसे साधिक तेतीस सागर, साधिक सत्रह सागर और साधिक सात सागर है। आयुकर्मका भङ्ग ओघके समान है । पीत और पद्मलेश्यामें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल क्रमसे साधिक दो सागर और साधिक अठारह सागर है । आयुकर्मका भङ्ग देवोंके समान है । शुक्ललेश्यामें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है । आयुकर्मका भंग देवोंके समान है ।

विशेषार्थ—छहों लेश्याओंमें अपने-अपने योग्य प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ जीवके जघन्य प्रदेशबन्ध होता है, इसलिए इनमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा इन लेश्याओंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर आदि है, इसलिए इनमें सात कर्मोंके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है । स्वामित्वको देखते हुए कृष्णादि तीन लेश्याओंमें आयुकर्मका भङ्ग ओघके समान और पीत आदि तीन लेश्याओंमें वह देवोंके समान बन जानेसे उस प्रकार जाननेकी सूचना की है ।

८८. उपशमसम्यक्त्वमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । सासादनसम्यक्त्वमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल छह आवलिप्रमाण है । आयुकर्मका भङ्ग देवोंके समान है । सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें मनोयोगी जीवोंके समान भङ्ग है ।

विशेषार्थ—उपशमसम्यक्त्वमें प्रथम समयवर्ती देवके और सासादन सम्यक्त्वमें प्रथम समयवर्ती तीन गतिके जीवके सात कर्मोंका जघन्य प्रदेशबन्ध होता है, इसलिये इनमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा इन दोनोंका जघन्य और उत्कृष्ट जो काल है, उसे ध्यानमें रखकर इनमें सात कर्मोंके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल कहा है । सासादनमें आयुकर्मका भङ्ग देवोंके समान

---

[1] आ०प्रतौ अज० ज० ए०, उ० अंतो० इति पाठः ।

८९. सण्णी० सत्तण्णं क० ज० ए०। अज० ज० खुद्दाभ० समऊणं। उ० सागरोवमसदपुध०। आउ० ओघभंगो। आहार० सत्तण्णं क० ज० ए०। अज० ज० ए०, उ० अंगुल० असंखें०। आउ० जहण्णाजहण्णं ओघं।

एवं कालं समत्तं।

अंतरपरूवणा

९०. अंतरं दुविधं-जहण्णयं उक्कस्सयं च। उक्क० पगदं। दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० छण्णं क० उक्कस्सपदेसबंधंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जह० एग०, उक्क० अद्धपोंग्गल०। अणु० ज० ए०, उ० अंतो०। मोह० उ० ज० ए०, उ० अणंत-

है, यह स्पष्ट ही है। अपने स्वामित्वको देखते हुए सम्यग्मिथ्यात्वमें मनोयोगी जीवोंके समान भङ्ग बन जाता है, इसलिये सम्यग्मिथ्यात्वमें मनोयोगी जीवोंके समान कालप्ररूपणा जाननेकी सूचना की है।

८९. संज्ञी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल सौ सागर पृथक्त्वप्रमाण है। आयुकर्मका भङ्ग ओघके समान है। आहारकोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। आयुकर्मके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका काल ओघके समान है।

विशेषार्थ—इन दोनों मार्गणाओंमें भी यथायोग्य भव ग्रहणके प्रथम समयमें सात कर्मोंका जघन्य प्रदेशबन्ध होता है, अतः इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। संज्ञियोंमें इस एक समयको अपनी जघन्य भवस्थितिमेंसे कम कर देने पर उनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण प्राप्त होनेसे वह उक्तप्रमाण कहा है। तथा उपशमश्रेणिमें जो आहारक एक समय तक सात कर्मोंके बन्धक होकर दूसरे समयमें मर कर अनाहारक हो जाते हैं, उनकी अपेक्षा आहारकोंमें सात कर्मोंके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय कहा है। यहाँ इतना विशेष समझना चाहिये कि छह कर्मोंके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय लानेके लिये उतरते समय एक समय तक सूक्ष्मसाम्परायमें रखकर मरण करावे और मोहनीयके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय लानेके लिये उतरते समय एक समयके लिये अनिवृत्तिकरणमें मोहनीयका बन्ध कराकर मरण करावे—इन दोनों मार्गणाओंमें सात कर्मोंके अजघन्य प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी कायस्थितिप्रमाण है, यह स्पष्ट ही है। तथा दोनोंमें आयुकर्मका भङ्ग ओघके समान है, यह भी स्पष्ट है।

इस प्रकार काल समाप्त हुआ।

अन्तरप्ररूपणा

९०. अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे छह कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है।

कालमसं०। अणु० ज० ए०, उ० अंतो०। आउ० उ० ज० ए०, उ० अणंतका० असं०। अणु० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं० सादि०।

९१. णिरएसु सत्तण्णं क० उ० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं दे०। अणु० ज० ए०, उ० बे० सम०। आउ० उ० अणु० ज० ए०, उ० छम्मासं देसू०। एवं सत्तसु

अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। मोहनीय कर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है।

विशेषार्थ—छह कर्मोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध उपशमश्रेणिमें भी होता है। वहाँ यह सम्भव है कि इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध एक समयके अन्तरसे भी हो और कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण कालके अन्तरसे भी हो। यही कारण है कि ओघसे इन कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण कहा है। तथा जो जीव उपशमश्रेणिमें अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध कर रहा है, वह एक समयके लिए उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करके पुनः अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करने लगता है, उसके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका एक समय प्रमाण अन्तर देखा जाता है और जो जीव उपशान्तमोहमें अन्तर्मुहूर्त कालतक अबन्धक होकर नीचे उतर कर छह कर्मोंका पुनः बन्ध करता है, उसके इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका अन्तर्मुहूर्त प्रमाण अन्तर काल देखा जाता है। यही कारण है कि यहाँ इन कर्मोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध एक समयके अन्तरसे भी हो सकता है और संज्ञियोंके उत्कृष्ट अन्तरकालको देखते हुए अनन्त कालके अन्तर से भी हो सकता है, इसलिए यहाँ मोहनीय कर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल प्रमाण कहा है। इसी प्रकार आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर उक्त काल प्रमाण ले आना चाहिये। पहले छह कर्मोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर घटित करके बतलाया ही है, उसी प्रकार मोहनीयके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर घटित कर लेना चाहिये। आयुकर्मका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध एक समयके अन्तरसे भी होता है और साधिक तेतीस सागरके अन्तरसे भी होता है, क्योंकि जो एक पूर्वकोटिकी आयुवाले तिर्यञ्च और मनुष्य प्रथम त्रिभागमें आयुकर्मका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करके और मरकर तेतीस सागरकी आयुवाले नारकियों व देवोंमें यथासम्भव उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर आयुकर्मका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करते हैं, उनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका साधिक तेतीस सागरप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर देखा जाता है, इसलिये आयुकर्मके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागरप्रमाण कहा है। यहाँ सरल होनेसे जघन्य अन्तर एक समयका खुलासा नहीं किया है।

९१. नारकियोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। आयुकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना प्रमाण है। इसी प्रकार सातों

पुढवीसु अप्पप्पणो ट्ठिदी भाणिदव्वा ।

९२. तिरिक्खेसु सत्तण्णं क० उ० ज० ए०, उ० अणंतका० । अणु० ज० ए०, उ० बे सम० । आउ० उ० ओघं । अणु० ज० ए०, उ० तिण्णि पलि० सादि० । पंचिंदि०तिरि०३ सत्तण्णं क० उ० ज० ए०, उ० तिण्णि पलि० पुव्वकोडिपु० । अणु० ज० ए०, उ० बे सम० । आउ० णाणाव०भंगो । अणु० ज० ए०, उ० तिण्णि पलि० सादि० । पंचिं०तिरि०अपज्ज० सत्तण्णं क० उ० ज० ए०, उ० अंतो० । अणु० ज० ए०, उ० [बे सम० । आउ० उ० अणु० ज० ए०, उ० अंतो० ।

पृथिवियोंमें जानना चाहिए । मात्र सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कहते समय वह कुछ कम अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—नारकियोंमें सात कर्मोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध एक समयके अन्तरसे हो और कुछ कम तेतीस सागरके अन्तरसे हो यह सम्भव है; इसलिए इनमें उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समयप्रमाण और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागरप्रमाण कहा है । तथा इनमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय होनेसे यहाँ इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय कहा है । आयुकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीनाप्रमाण है, यह स्पष्ट ही है; क्योंकि एक समयके अन्तरसे उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध हो, यह तो ठीक ही है। साथ ही नरकमें छह महीनाके प्रारम्भमें और अन्तमें उक्त बन्ध हो और मध्यमें न हो, यह भी सम्भव है, इसलिये यह अन्तर उक्तप्रमाण कहा है ।

९२. तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है । अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका अन्तर ओघके समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पल्य है। पञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्चत्रिकमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य है । अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पल्यप्रमाण है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। आयुकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है ।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध एक समयके अन्तरसे भी सम्भव है और अनन्त कालके अन्तरसे भी सम्भव है, क्योंकि संज्ञी पञ्चेन्द्रियका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकालप्रमाण है, इसलिए इनमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकालप्रमाण है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय जिस प्रकार नारकियोंमें घटित करके बतला आये हैं, उसी प्रकार यह अन्तर यहाँ और आगे भी घटित कर लेना चाहिये। ओघसे आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जो अन्तर कहा है वह यहाँ बन जाता है, इसलिये यह अन्तर ओघके समान

९३. मणुस०३ पंचिंदियतिरिक्खतियभंगो। णवरि सत्तण्णं क० अणु० ज० ए०, उक्क० अंतो०। देवाणं णिरयभंगो। एवं सव्वदेवाणं अप्पप्पणो उक्कस्सट्ठिदी णेदव्वा।]………………………………………

कालपरूवणा

……संखेँज्जस०, अणु०[1] ज० ए०, उ० ………………………………

कहा है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध एक समयके अन्तरसे भी होता है और पूर्वकोटिकी आयुवाला जो तिर्यञ्च प्रथम त्रिभागमें आगामी भवकी आयु बाँधकर उत्तम भोगभूमिमें उत्पन्न होता है और वहाँ छह महीना काल शेष रहने पर पुनः आयुबन्ध करता है, उसके साधिक तीन पल्यके अन्तरसे भी अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध देखा जाता है, इसलिये यहाँ आयुकर्मके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पल्य कहा है। आयुकर्मके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका यह अन्तर पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें भी घटित हो जाता है, इसलिये वह इसी प्रकार कहा है। इनकी उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्यप्रमाण है, इसलिये इनमें आठों कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है, क्योंकि यहाँ अपनी-अपनी कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें आठों कर्मोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध हो और मध्यमें न हो, यह सम्भव है। इनमें आठों कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है, यह स्पष्ट ही है। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंकी कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त है और इनमें आठों कर्मोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध यथायोग्य एक समयके अन्तरसे हो सकता है, इसलिये इनमें आठों कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त तथा आयुकर्मके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

९३. मनुष्यत्रिकमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि सात कर्मोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। देवोंमें नारकियोंके समान भङ्ग है। इसी प्रकार सब देवोंमें जानना चाहिये। मात्र सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण जानना चाहिए।

विशेषार्थ—स्वामित्व और कायस्थितिको देखते हुए मनुष्यत्रिकमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकसे कोई विशेषता नहीं होनेसे यहाँ आठों कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकके समान कहा है। मात्र मनुष्यत्रिकमें उपशमश्रेणिकी प्राप्ति सम्भव होनेसे इनमें सात कर्मोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट अन्तर दो समयके स्थानमें अन्तर्मुहूर्तप्रमाण बन जाता है, इसलिये इनमें सात कर्मोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धके अन्तरका अलगसे उल्लेख किया है। देवोंमें सब कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामित्व नारकियोंके समान है, इसलिये इनमें आठों कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर नारकियोंके समान कहा है। मात्र देवोंके अवान्तर भेदोंकी भवस्थिति अलग-अलग है, इसलिये इन भेदोंमें अन्तर कहते समय सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी-अपनी उत्कृष्ट भवस्थितिप्रमाण जाननेकी अलगसे सूचना की है।

कालप्ररूपणा (नाना जीवोंकी अपेक्षा)

……………………संख्यात समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट……।

---

[1] ता०प्रतौ अंतो० अणु० [अत्र ताडपत्र द्वयं विनष्टम्]……संखेज्जसं० अणु०, आ०प्रतौ अंतो० अणु० ज० ए० उ०…………संखेज्जस० अणु० इति पाठः।

९४. जहण्णए पगदं । दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० अट्ठण्णं क० ज० अज० सव्वद्धा[1] । एवं ओघभंगो सव्वअणंतरासीणं सव्वएइंदि० पंचकायाणं च । णवरि बादरपुढ०-आउ०-तेउ०-वाउ०-पत्ते०पज्ज० ज० ज० ए०, उ० आवलि० असं० । अज० सव्वद्धा । आउ० ज० अज० णिरयभंगो । वेउव्वियमि० सत्तण्णं क० ज० ज० ए०, उ० आवलि० असं० । अज० ज० अंतो०, उक्क० पलिदो० असंखें० । अवगद०-सुहुमसंप० उक्कस्सभंगो । उवसम० सत्तण्णं क० ज० ज० ए०, उ० संखेंज्जसम० । अज० ज० अंतो०, उक्क० पलिदो० असंखें० । एवं परिमाणे असंखेंज्जरासीणं तेसिं ज० ए०, उ० आवलि० असंखें० । अज० अप्पप्पणो पगदिकालो कादव्वो । एवं संखेंज्जरासीणं तेसिं[2] ज० ए०, उ० संखेंज्जसम० । अज० अप्पप्पणो पगदिकालो कादव्वो ।

एवं कालं सम्मत्तं ।

९४. जघन्य कालका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे आठ कर्मोंके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका काल सर्वदा है । इसी प्रकार ओघके समान सब अनन्तराशि, सब एकेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवों में जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त और बादर वनस्पति प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवोंमें जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अजघन्य प्रदेशबन्धका काल सर्वदा है । आयुकर्मके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका काल नारकियोंके समान है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अपगतवेदी और सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें उत्कृष्टके समान भंग है । उपशमसम्यक्त्वमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार परिमाणमें जो असंख्यात राशियाँ हैं उनमें जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अजघन्य प्रदेशबन्धका काल अपने-अपने प्रकृतिबन्धके कालके समान करना चाहिये । इसी प्रकार जो संख्यात राशियाँ हैं, उनमें जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । अजघन्य प्रदेशबन्धका काल अपने-अपने प्रकृतिबन्धके कालके समान करना चाहिये ।

विशेषार्थ—ओघसे आठों कर्मोंका जघन्य प्रदेशबन्ध सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवके यथायोग्य समयमें योग्य सामग्रीके मिलने पर होता है । यतः ऐसे जीव निरन्तर पाये जाते हैं, अतः ओघसे जघन्य प्रदेशबन्धका काल सर्वदा कहा है । तथा ओघसे अजघन्य प्रदेशबन्धका काल सर्वदा है, यह स्पष्ट ही है । सब अनन्त राशियोंमें, एकेन्द्रियों और पाँच स्थावरकायिकोंमें इसी प्रकार अपने स्वामित्वको जान कर आठों कर्मोंके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका सर्वदा काल ले आना चाहिये । बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त आदि पाँच कायिक जीवोंमें उनकी

---

[1] ता०प्रतौ सव्वद्धा (द्धा) इति पाठः । अग्रेऽपि क्वचिदेवमेव पाठः । [2] ता०प्रतौ संखेजरासी तेसिं इति पाठः ।

अंतरपरूवणा

९५. अंतरं[1] दुवि०–ज० उ० । उ० पगदं । दुवि०–ओघे० आदे० । ओघे० अट्ठण्णं क० उक्क० पदेसबंधंतरं केवचिरं कालदो होदि ? जह० ए०, उ० सेढीए असंखें० । अणु० णत्थि अंतरं । एवं एदेण[2] बीजेण एसिं सव्वद्धा तेसिं णत्थि अंतरं । एसिं णोसव्वद्धा तेसिं उक्क० ज० ए०, उ० सेढीए असं० । अणु० अट्ठण्णं पि क० अप्पप्पणो पगदिअंतरं कादव्वं ।

उत्पत्ति और स्वामित्वको देखकर सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। इनमें सात कर्मोंके अजघन्य प्रदेशबन्धका काल सर्वदा है, यह स्पष्ट ही है। आगे असंख्यात संख्यावाली राशियोंमें कालका निर्देश किया है। उसमें नारकियोंका समावेश है ही, अतः उसे ध्यानमें रखकर यहाँ बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त आदिमें आयुकर्मके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धके जघन्य और उत्कृष्ट कालके जाननेकी सूचना की है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें जो असंज्ञी मरकर नरकमें और देवोंमें उत्पन्न होता है, उसके प्रथम समयमें जघन्य अनुभाग होता है। ऐसे जीव लगातार कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक ही उत्पन्न होते हैं, अतः इस योगमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। तथा इस योगका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, अतः इसमें सात कर्मोंके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल क्रमसे उक्त कालप्रमाण कहा है। उपशमसम्यक्त्वमें अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल वैक्रियिकमिश्रकाययोगके समान ही घटित कर लेना चाहिये। क्योंकि इन मार्गणाओंका काल समान है। किन्तु उपशमसम्यक्त्वके साथ मरकर देव होते हैं, उनके ही इस सम्यक्त्वमें सात कर्मोंका जघन्य प्रदेशबन्ध होता है। ऐसे जीव कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक संख्यात समय तक ही मरकर उत्पन्न होते हैं। अतः इस सम्यक्त्वमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

अन्तरप्ररूपणा

९५. अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे आठ कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है। इस प्रकार इस बीजपदके अनुसार जिनका काल सर्वदा है, उनमें अन्तरकाल नहीं है। तथा जिनका काल सर्वदा नहीं है, उनमें उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका आठों ही कर्मोंका अपने-अपने प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान अन्तर करना चाहिए।

विशेषार्थ—सब योगस्थान जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। यह सम्भव है कि नाना जीवोंके जो योग उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें निमित्त है, वह एक समयके अन्तरसे भी हो जावे और एक बार होकर पुनः क्रमसे सब योगस्थानोंके हो जानेके बाद होवे, इसलिए यहाँ सब कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें

---

[1] ता०प्रतौ पगदिकाले कादव्वो । अंतरं इति पाठः । [2] आ०प्रतौ अंतर । एदेण इति पाठः ।

Ganeshvarni Digambar Jain Institute, Nara, Varanasi

९६. जह० पगदं । दुवि०–ओघे० आदे० । ओघे० अट्ठण्णं क० ज० अज० णत्थि अंतरं । एवं अणंतरासीणं असंखेंज्जलोगरासीणं । सेसाणं उक्कस्सभंगो ।

भावपरूवणा

९७. भावं दुविधं—जह० उक्क० च । उक्क०पदे० पगदं । दुवि०–ओघे० आदे० । ओघे० अट्ठण्णं क० उ० अणु०बंधग त्ति को भावो ? ओदइगो भावो एवं[1] अणाहारग त्ति णेदव्वं ।

९८. जह० पगदं । दुवि०–ओघे० आदे० । ओघे० अट्ठण्णं क० ज० अज०-बंधग त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं ।

भागप्रमाण कहा है । जीवराशि अनन्त है, अतः सब कर्मोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अन्तर पड़ना सम्भव नहीं है, इसलिए यहाँ इसके अन्तरकालका निषेध किया है । आगे जिन मार्गणाओंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल सर्वदा है, उनमें अन्तर घटित नहीं होता । किन्तु जिन-जिन मार्गणाओंमें सर्वदा काल नहीं है, उनमें उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान बन जाता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका अन्तरकाल प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान प्राप्त होता है । उदाहरणार्थ नरकगति लीजिए । इसमें उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल सर्वदा नहीं है, इसलिए इसमें उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्त प्रमाण प्राप्त होता है । तथा इसमें आयुकर्मके सिवा शेष कर्मोंका सदा प्रकृतिबन्ध होता रहता है, अतः अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं प्राप्त होता । मात्र आयुकर्मका सदा बन्ध नहीं होता, अतः प्रकृतिबन्धके अन्तरकालके समान इसमें आयुकर्मके प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल बन जाता है । इसी प्रकार सर्वत्र अपनी-अपनी विशेषताको जानकर अन्तरकाल ले आना चाहिए ।

९६. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे आठों कर्मोंके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है । इस प्रकार अनन्तराशि और असंख्यात लोकप्रमाण राशियोंमें जानना चाहिए । शेष राशियोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है ।

विशेषार्थ—स्वामित्वको देखते हुए यहाँ ओघसे और अनन्त संख्यावाली व असंख्यात लोकप्रमाण संख्यावाली मार्गणाओंमें आठों कर्मोंके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं प्राप्त होनेसे उसका निषेध किया है । किन्तु स्वामित्व को देखते हुए शेष मार्गणाओंमें अन्तरकाल उत्कृष्ट प्ररूपणाके समान बन जाता है, इसलिए इसे उत्कृष्ट प्ररूपणाके समान जाननेकी सूचना की है ।

भावप्ररूपणा

९७. भाव दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे आठ कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धके बन्धक जीवोंका कौन-सा भाव है ? औदयिक भाव है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए ।

९८. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे आठों कर्मोंके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका कौन-सा भाव है ? औदयिक भाव है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक ले जाना चाहिए ।

---

[1] १. आ०प्रतौ भावे । एवं इति पाठः ।

अप्पाबहुगपरूवणा

९९. अप्पाबहुगं दुवि०—[जह० उक्क०। उक्क०पगदं। दुवि०—]। ओघे० आदे०। ओघे० सव्वत्थोवा आउ० उक्क० पदे०बंधो। मोह० उ०पदे० विसे०। णामा-गोदाणं उ० प०बं० दो वि तु० विसे०। णाणाव०-दंसणा०-अंतरा० उ० तिण्णि वि० विसे०। वेदणी० उ० विसे०। एवं ओघभंगो मणुस०३-पंचि०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि-अवग०-लोभक०--आभिणि-सुद-ओधिणा०-मणपज्ज०-संज०-चक्खुदं०-अचक्खुदं०-ओधिदं०-सुक्कले०-भवसि०-सम्मादि०-खइग०-उवसम०-सण्णि०-आहारग त्ति। सेसाणं णिरयादीणं याव अणाहारग त्ति सव्वत्थोवा आउ० उ० पदे०बंधो। णामा-गोद० दो वि० तु०विसे०। णाणा०दसणा०-अंतरा ०उ० तिण्णि वि तु० विसे०। मोह० विसे०। वेदणीयं विसे०।

१००. जह० पग०। दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० सव्वत्थोवा णामा-गोदा० ज० प०बं०। णाणा०-दंसणा०-अंतरा० ज० तिण्णि वि तु० विसे०। मोह० ज० विसे०। वेदणी० ज० विसे०। आउ० ज० असंखेंज्जगु०। एवं ओघभंगो सव्वाणं याव अणाहारग त्ति। णवरि पंचमण-पंचवचि०-आहार०-आहारमि०-विभंग०-

---

अल्पबहुत्वप्ररूपणा

९९. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे आयुकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सबसे स्तोक है। मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध विशेष अधिक है। नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध दोनों ही तुल्य होकर विशेष अधिक हैं। ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध तीनों ही तुल्य होकर विशेष अधिक हैं। वेदनीयकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध विशेष अधिक है। इस प्रकार ओघके समान मनुष्यत्रिक, पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, अपगतवेदी, लोभकषायवाले, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंमें जानना चाहिए। शेष नरकगति आदिसे लेकर अनाहारक मार्गणातकके जीवोंमें आयुकर्मका उत्कृष्ट-प्रदेशबन्ध सबसे स्तोक है। इससे नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध दोनों ही परस्पर तुल्य होकर विशेष अधिक हैं। इनसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध तीनों ही परस्पर तुल्य होकर विशेष अधिक हैं। इनसे मोहनीककर्मका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध विशेष अधिक है। इससे वेदनीयकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध विशेष अधिक है।

१००. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे नाम और गोत्रकर्मके जघन्य प्रदेशबन्ध सबसे स्तोक हैं। इनसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायके जघन्य प्रदेशबन्ध तीनों ही परस्पर तुल्य होकर विशेष अधिक हैं। इनसे मोहनीयकर्मका जघन्य प्रदेशबन्ध विशेष अधिक है। इससे वेदनीयकर्मका जघन्य प्रदेशबन्ध विशेष अधिक है। इससे आयुकर्मका जघन्य प्रदेशबन्ध असंख्यातगुणा है। इस प्रकार ओघके समान अनाहारक पर्यन्त सब मार्गणाओंमें जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि पाँचों मनोयोगी पाँचों वचनयोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, विभङ्गज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंमें

मणपज्ज०-संज०-सामाइ०-छेदो-परिहार०-संजदासंज० सव्वत्थोवा आउ० जह०। णामा-गोद० ज० विसे०। णाणा०-दंसणा०-अंतरा० ज० विसे०। मोह० ज० विसे०। वेदणी० ज० विसे०।

एवं चदुवीसमणियोगद्दाराणि समत्ताणि।

भुजगारबंधो

१०१. एत्तो भुजगारबंधे त्ति तत्थ इमं अट्ठपदं–जो एण्णिं पदेसग्गं बंधदि अणंतरोसक्काविदविदिक्कंते समए अप्पदरादो बहुदरं बंधदि त्ति एसो भुजगारबंधो णाम। अप्पदरबंधे त्ति तत्थ इमं अट्ठपदं–यो एण्णिं पदेसग्गं बंधदि अणंतरउस्सक्काविदविदिक्कंते समए बहुदरादो अप्पदरं बंधदि त्ति एसो अप्पदरबंधो णाम। अवट्ठिदबंधे त्ति तत्थ इमं अट्ठपदं–एण्हिं पदेसग्गं बंधदि अणंतरउस्सक्काविदओसक्काविदविदिक्कंते समए तत्तियं तत्तियं चेव बंधदि त्ति एसो अवट्ठिदबंधो णाम। अवत्तव्वबंधे त्ति तत्थ इमं अट्ठपदं–अबंधादो बंधदि त्ति एसो अवत्तव्वबंधो णाम। एदेण अट्ठपदेण तत्थ इमाणि तेरस अणियोगद्दाराणि—समुक्कित्तणा याव अप्पाबहुगे त्ति।

समुक्कित्तणा

१०२. समुक्कित्तणदाए दुवि–ओघे० आदे०। ओघे० अट्ठण्णं क० अत्थि भुज० अप्प० अवट्ठि० अवत्तव्वबंधगा य। एवं मणुस०३-पंचिं०-तस०२-पंच-

आयुकर्मका जघन्य प्रदेशबन्ध सबसे स्तोक है। इससे नाम और गोत्रकर्मके जघन्य प्रदेशबन्ध दोनों ही परस्पर तुल्य होकर विशेष अधिक हैं। इनसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्मके जघन्य प्रदेशबन्ध तीनों ही परस्पर तुल्य होकर विशेष अधिक हैं। इससे मोहनीयकर्मका जघन्य प्रदेशबन्ध विशेष अधिक है। इससे वेदनीयकर्मका जघन्य प्रदेशबन्ध विशेष अधिक है।

इस प्रकार चौबीस अनुयोगद्वार समाप्त हुए।

भुजगारबन्ध

१०१. यहाँसे भुजगारबन्धका प्रकरण है। उसमें यह अर्थपद है—जो इस समय प्रदेशाग्र बाँधता है, वह अनन्तर अपकर्षित व्यतिक्रान्त समयमें बाँधे गये अल्पतरसे बहुतरको बाँधता है, यह भुजगारबन्ध है। अल्पतरका प्रकरण है। उसमें यह अर्थपद है—जो इस समय प्रदेशाग्र बाँधता है, वह अनन्तर उत्कर्षित व्यतिक्रान्त समयमें बाँधे गये बहुतरसे अल्पतरको बाँधता है, यह अल्पतरबन्ध है। अवस्थितबन्धका प्रकरण है। उसमें यह अर्थपद है—जो इस समय प्रदेशाग्र बाँधता है, वह अनन्तर उत्कर्षको प्राप्त हुए या अपकर्षको प्राप्त हुए व्यतिक्रान्त समयसे उतने ही उतने ही प्रदेशाग्र बाँधता है, यह अवस्थितबन्ध है। अवक्तव्यबन्धका प्रकरण है। उसमें यह अर्थपद है—जो अबन्धसे बन्ध करता है यह अवक्तव्यबन्ध है। इस अर्थपदके अनुसार ये तेरह अनुयोगद्वार हैं—समुत्कीर्तनासे लेकर अल्पबहुत्व तक।

समुत्कीर्तना

१०२. समुत्कीर्तनाकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे आठ कर्मोंके भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव हैं। इस प्रकार

मण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालि०-अवगद०-आभिणि-सुद-ओधि०-मणपज्ज०-संजद-चक्खु०-अचक्खु०-ओधिदं०-सुक्कले०-भवसि०-सम्मादि०-खइग०-उवसम०-सण्णि-आहारग त्ति। वेउव्वियमि०-आहारमि०-कम्मइ०-अणाहारएसु सत्तण्णं क० अत्थि भुज० एगमेव पदं। सेसाणं णिरयादीणं याव असण्णि त्ति सत्तण्णं क० अत्थि भुज० अप्प० अवट्ठि०। आउ० ओघं।

एवं समुक्कित्तणा समत्ता।

सामित्ताणुगमो

१०३. सामित्ताणुगमेण दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० सत्तण्णं क० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० को होदि? अण्णदरो। अवत्त० को होदि? अण्णदरो उवसामओ परिवदमाणओ मणुसो वा मणुसी वा पढमसमयदेवो वा। आउ० भुज०-अप्प-अवट्ठि० को होदि? अण्णदरो। अवत्त० को होदि? अण्णदरो पढमसमयआउगबंधओ। एवं पंचिं-तस०२-कायजोगि-लोभक० मोह० आभिणि-सुद-ओधिणा०-चक्खु०-अचक्खु०-ओधिदं-सुक्कले०-भवसि०-सम्मा०-खइग०-उवसम०-सण्णि-आहारग त्ति। मणुस०३-पंचमण०-पंचवचि०-ओरा०-मणप०-संजद०-अवगद० सत्तण्णं क० अवत्त० को होदि? अण्ण० मणुसो वा मणुसिणी वा उवसामणादो परिवदमाणओ पढमसमयबंधओ। सेसं

मनुष्यत्रिक, पंचेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, अपगतवेदी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंमें जानना चाहिये। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंका एकमात्र भुजगार पद है। शेष नरकगतिसे लेकर असंज्ञी तककी मार्गणाओंमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदके बन्धक जीव हैं। आयुकर्मका भङ्ग ओघके समान है।

१०३. स्वामित्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका बन्धक कौन है? अन्यतर जीव इन तीन पदोंका बन्धक है। अवक्तव्यपदका बन्धक कौन है? अन्यतर गिरनेवाला उपशामक मनुष्य और मनुष्यिनी तथा प्रथम समयवर्ती देव अवक्तव्यपदका बन्धक है। आयुकर्मके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका बन्धक कौन है? अन्यतर जीव उक्त पदोंका बन्धक है। अवक्तव्यपदका बन्धक कौन है? प्रथम समयमें आयुकर्मका बन्ध करनेवाला अन्यतर जीव अवक्तव्यपदका बन्धक है। इस प्रकार पंचेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, काययोगी, लोभकषायवाले मोहनीयका, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ल लेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंमें जानना चाहिये। मनुष्यत्रिक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, औदारिककाययोगी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत और अपगतवेदी जीवोंमें सात कर्मोंके अवक्तव्यपदका बन्धक कौन है? उपशमश्रेणिसे गिरकर प्रथम समयमें इनका बन्ध करनेवाला अन्यतर मनुष्य और मनुष्यिनी इनके अवक्तव्यपदका बन्धक है। शेष भङ्ग ओघके समान है।

ओघं। सेसाणं णिरयादि याव अणाहारग त्ति सत्तण्णं क० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० को होदि ? अण्ण०। आउ० ओघं। वेउव्वियमि० सत्तण्णं क० आहारमि० अट्ठण्णं क० कम्मइ०-अणाहार० सत्तण्णं क० भुज० को होदि ? अण्णदरो।

एवं सामित्तं समत्तं।

कालाणुगमो

१०४. कालाणुगमेण दुवि०—ओघे आदे०। ओघे० सत्तण्णं क० भुज-अप्प० ज० ए०, उक्क० अंतो०। अवट्ठि० पवाइज्जंतेण उवदेसेण ज० ए०, उ० एक्कारससमयं। अण्णेण पुण उवदेसेण ज० ए०, उ० पण्णारससमयं। अवत्त० एगसमयं। आउ० भुज०-अप्प० जहण्णेण एग०, उ० अंतो०। अवट्ठि० ज० एग०, उ० सत्तसमयं अवत्त० ज० [उ०] ए०।

शेष नारकियोंसे लेकर अनाहारक तककी मार्गणाओंमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका बन्धक कौन है ? अन्यतर जीव इनका बन्धक है। आयुकर्मका भङ्ग ओघके समान है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके, आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें आठ कर्मोंके तथा कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगारपदका बन्धक जीव कौन है ? अन्यतर जीव बन्धक है।

इस प्रकार स्वामित्व समाप्त हुआ।

कालानुगम

१०४. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितपदका चालू उपदेशके अनुसार जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल ग्यारह समय है। अन्य उपदेशके अनुसार जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पन्द्रह समय है। अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। आयुकर्मके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सात समय है। अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है।

विशेषार्थ—ओघसे आठों कर्मोंका भुजगार और अल्पतरपद एक समय तक होकर अन्य पद होने लगें यह भी सम्भव है और अन्तर्मुहूर्त तक विवक्षित पद होकर अन्य पद होने लगें यह भी सम्भव है, क्योंकि असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानि आदिका जघन्य काल एक समय है और असंख्यातगुणवृद्धि तथा असंख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा इन कर्मोंका पिछले समयमें जितना बन्ध हुआ है अगले समयमें भी उतना ही बन्ध होकर आगे बन्धकी परिपाटी बदल जाय यह भी सम्भव है और चालू उपदेशके अनुसार अधिकसे अधिक ग्यारह समय तक तथा अन्य उपदेशके अनुसार अधिकसे अधिक पन्द्रह समय तक सात कर्मोंका और आयुकर्मका अधिकसे अधिक सात समय तक लगातार उतना ही बन्ध होता रहे यह भी सम्भव है, इसलिये सात कर्मोंके अवस्थितपदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल ग्यारह या पन्द्रह समय तथा आयुकर्मके अवस्थितपदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल सात समय कहा है। यहाँ वृद्धि या हानि न होकर लगातार कितने काल तक उतना ही बन्ध होता रहता है इसका विचार कर

१०५. वेउव्वि०मि० सत्तण्णं क० भुज० ज० उ० अंतो०। एवं आहारमि० सत्तण्णं क०। आउ० भुज० ज० ए०, उ० अंतो०। अवत्त० ओघं। कम्मइ०-अणाहार० सत्तण्णं क० भुज० ज० ए०, उ० बेसम०।

१०६. सेसाणं णिरयादि याव असण्णि त्ति ओघं। णवरि केसिं च सत्तण्णं क० अवत्त० णत्थि। अवगद० सत्तण्णं क० ओघं। णवरि मोह० अवट्ठि० ज० ए०, उ० सत्त समयं। एवं सुहुम० छण्णं०। उवसम०-सम्मामि० सत्तण्णं क० अवट्ठि० ज० एग०,

कालका निर्देश किया है। सब कर्मोंका अवक्तव्यबन्ध एक समय तक होता है यह स्पष्ट ही है।

१०५. वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगारपदका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगारपदका काल जानना चाहिये। आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें आयुकर्मके भुजगारपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अवक्तव्यपदका भङ्ग ओघके समान है। कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार पदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है।

विशेषार्थ—वैक्रियिकमिश्रकाययोग और आहारकमिश्रकाययोगका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है और इनमें सात कर्मोंका एक भुजगारपद होता है, इसलिये इनमें सात कर्मोंके भुजगारपदका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। आहारकमिश्रकाययोगमें आयुकर्मका भी बन्ध होता है और यहाँ इनके दो पद सम्भव हैं—भुजगार और अवक्तव्य। यह सम्भव है कि इस योगके दो समय शेष रहने पर आयुकर्मका बन्ध हो और यह भी सम्भव है कि अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर आयुकर्मका बन्ध हो। आयुकर्मका बन्ध कभी भी प्रारम्भ हो। जिस समयमें इसका बन्ध प्रारम्भ होता है उस समय तो अवक्तव्यपद होता है, अतः अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। और द्वितीयादि समयोंमें भुजगारबन्ध होता है। यदि दो समय शेष रहने पर आयुकर्मका बन्ध प्रारम्भ हुआ तो भुजगारका इस योगमें एक समय काल उपलब्ध होता है और अन्तर्मुहूर्त पहलेसे बन्ध प्रारम्भ हुआ तो अन्तर्मुहूर्त काल उपलब्ध होता है। यही कारण है कि यहाँ आयुकर्मके भुजगारपदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। कार्मणकाययोग और अनाहारकका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है। जो एक विग्रहसे जन्म लेता है उसके तो भुजगारपद सम्भव नहीं है, क्योंकि विवक्षित मार्गणाके प्रथम समयसे द्वितीय समयमें जो अधिक बन्ध होता है उसकी भुजगार संज्ञा है, इसलिये दो विग्रहसे जन्म लेनेवालेके भुजगारका एक समय और तीन विग्रहसे जन्म लेनेवालेके भुजगारके दो समय प्राप्त होते हैं। यही कारण है कि इन दोनों मार्गणाओंमें सात कर्मोंके भुजगारपदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है।

१०६. शेष नरकगतिसे लेकर असंज्ञी तककी मार्गणाओंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि किन्हीं मार्गणाओंमें सात कर्मोंका अवक्तव्यपद नहीं है। अपगतवेदी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि इनमें मोहनीयकर्मके अवस्थितपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सात समय है। इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायसंतासंयत जीवोंमें छह कर्मोंका काल जानना चाहिये। उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंके अवस्थितपदका जघन्य काल एक समय

उक्क० सत्तसमयं।

अंतराणुगमो

१०७. अंतराणुगमेण दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० सत्तण्णं क० भुज०-अप्प० बंधंतरं ज० ए०, उ० अंतो०। अवट्ठि ज० ए०, उ० सेढीए असंखें०। अवत्त० ज० अंतो०, उ० उवड्ढपोंग्गल०। आउ० भुज०-अप्प०. ज० ए०, उ० तैंत्तीसं सा० सादि०। अवट्ठि० ज० ए०, उ० सेढीए असंखें०। अवत्त० अंतो०, उ० तैंत्तीसं सा० सादि०।

है और उत्कृष्ट काल सात समय है।

विशेषार्थ—यहाँ नरकगतिसे लेकर असंज्ञी तककी शेष मार्गणाओंमें आठों कर्मोंके जहाँ जितने पद सम्भव हैं उनका भङ्ग ओघके समान प्राप्त होनेमें कोई बाधा नहीं आती, इसलिये वह ओघके समान कहा है। मात्र जिन मार्गणाओंमें उपशमश्रेणिकी प्राप्ति सम्भव नहीं है उनमें सात कर्मोंका अवक्तव्यपद नहीं होता, इसलिये उनमें सात कर्मोंके अवक्तव्य पदको छोड़कर शेष पदोंका और आयुकर्मके सब पदोंका काल कहना चाहिये। तथा अपगतवेदी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान होकर भी यहाँ मोहनीयकर्मके अवस्थितपदका उत्कृष्ट काल सात समय ही प्राप्त होता है, इसलिये इनमें ओघसे इतनी विशेषता जाननी चाहिये। तथा सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें यही विशेषता छह कर्मोंके अवस्थितपदकी अपेक्षा भी जाननी चाहिये। इसी प्रकार उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें भी सात कर्मोंके अवस्थितपदका उत्कृष्ट काल सात समय ही प्राप्त होता है।

अन्तरानुगम

१०७. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतरबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। आयुकर्मके भुजगार और अल्पतरबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अवस्थितबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है।

विशेषार्थ—सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतरबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होनेसे यहाँ इनका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। इनके अवस्थितबन्धका कारणभूत योग एक समयके अन्तरसे भी होता है और जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके अन्तरसे भी होता है, इसलिये इसका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। आयुकर्मके अवस्थितबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिये। सात कर्मोंका अवक्तव्यबन्ध उपशमश्रेणिमें उतरते समय होता है और इसका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण होता है, इसलिये यह उक्तप्रमाण कहा है। आयुकर्मके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय स्पष्ट ही है, क्योंकि इन पदोंके योग्य योग एक समयके अन्तरसे हो सकता है और आयुकर्मका उत्कृष्ट बन्धान्तर साधिक तेतीस सागर पहले बतला आये हैं, इसलिये यहाँ इन पदोंका उत्कृष्ट अन्तर

१०८. णिरएसु सत्तण्णं क० भुज०-अप्प० ज० ए०, [उ० अंतो० । अवट्ठि० ज० ए०,] उ० तेत्तीसं० देसू० अंतोमुहुत्तेण दोहि समएहि य । आउ० तिण्णि पदा० ज० ए०, उ० छम्मासं देसूणं । अवत्त० ज० अंतो०, उ० छम्मासं देसू० । एवं सव्वणिरयाणं अप्पप्पणो अंतरं णेदव्वं ।

१०९. तिरिक्खेसु सत्तण्णं क० ओघं अवत्तव्वं वज्ज । आउ० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० तिण्णि पलि० सादि० । अवट्ठि० ओघं । अवत्त० ज० अंतो०, उक्क० तिण्णि पलि० सादि० । पंचिं०तिरि०३ सत्तण्णं क० भुज०-अप्प० ओघं । अवट्ठि०

साधिक तेतीस सागर कहा है। इसी प्रकार यहाँ आयुकर्मके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर घटित कर लेना चाहिये ।

१०८. नारकियोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक अन्तर्मुहूर्त तथा दो समय कम तेतीस सागर है। आयुकर्मके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है। इसी प्रकार सब नारकियोंमें अपना-अपना अन्तर जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—ओघसे सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी इनका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त घटित कर लेना चाहिए। इनके अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय स्पष्ट ही है। तथा इसका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त और दो समय कम जो तेतीस सागर बतलाया है सो उसका कारण यह है कि उत्पन्न होते समय वैक्रियिकमिश्रकाययोगके रहते हुए अवस्थित पद नहीं होता। उसके बाद शरीर पर्याप्तिके प्राप्त होनेके प्रथम समयमें जो बन्ध हुआ वही उसके अगले समयमें भी हुआ और मध्यमें इनका भुजगार और अल्पतर पद होता रहा। फिर मरण के समय पुनः अवस्थित पद हुआ। इस प्रकार दो समय अवस्थितके और प्रारम्भका अन्तर्मुहूर्त काल तेतीस सागरमेंसे कम कर देने पर अवस्थितपदका उक्त उत्कृष्ट अन्तरकाल आता है, अतः वह उक्त प्रमाण कहा है। यहाँ आयुकर्मके तीन पद एक समयके अन्तरसे हो सकते हैं और कुछ कम छह महीनाके अन्तरसे भी, इसलिए इनका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना कहा है। इसी प्रकार इसके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर भी कुछ कम छह महीना घटित कर लेना चाहिए। मात्र इसके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर जो अन्तर्मुहूर्त कहा है सो इसका कारण यह है कि दो बार आयुकर्मके बन्धमें जघन्य अन्तर एक अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण प्राप्त होता है। यह सामान्य नारकियोंकी अपेक्षा अन्तरकालका विचार हुआ। प्रत्येक पृथिवीमें इसी प्रकार अन्तरकाल प्राप्त होता है। मात्र अवस्थित पदका उत्कृष्ट अन्तर एक अन्तर्मुहूर्त और दो समय कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण जान लेना चाहिए। कारण स्पष्ट है।

१०९. तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। मात्र अवक्तव्यपदको छोड़कर यह अन्तरकाल है। आयुकर्मके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पल्य है। अवस्थितपदका भङ्ग ओघके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पल्य है। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चत्रिकमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतरपदका भङ्ग ओघके समान है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर

ज० ए०, उ० तिण्णि पलि० पुव्वकोडिपुधत्तं। आउ० भुज०-अप्प०-अवत्त० तिरिक्खोघं। अवट्ठि० णाणा०भंगो। पंचिं०तिरिक्ख०अपज्ज० सत्तण्णं क० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० ज० ए०, उ० अंतो०। आउ० तिण्णि प० णाणा०भंगो। अवत्त० ज० उ० अंतो०। एवं० सव्वअपज्जत्तयाणं तसाणं थावराणं च सव्वसुहुम-पज्जत्तापज्जत्ताणं च।

११०. मणुस०३ सत्तण्णं क० तिण्णि प० आउ० चत्तारि पदा पंचिं०तिरि०भंगो। सत्तण्णं क० अवत्त० ज० अंतो०, उ० पुव्वकोडिपुध०।

एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य है। आयुकर्मके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। तथा अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आयुकर्मके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। तथा अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार अर्थात् पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान त्रस और स्थावर सब अपर्याप्त तथा सब सूक्ष्म पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंका अवक्तव्यपद सम्भव नहीं है, क्योंकि यह पद उपशमश्रेणिसे गिरते समय होता है। शेष भङ्ग ओघके समान है यह स्पष्ट ही है। यहाँ आयुकर्मका बन्धान्तर साधिक तीन पल्य है, इसलिए इसके भुजगार और अल्पतरपदका उत्कृष्ट अन्तर उक्तप्रमाण कहा है। इनका जघन्य अन्तर एक समय स्पष्ट ही है। ओघसे आयुकर्मके अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है सो यह अन्तर तिर्यञ्चोंमें हीं घटित होता है, अतः इसे ओघके समान जाननेकी सूचना की है। तिर्यञ्चोंमें आयुकर्मका दो बार बन्ध कम से कम अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे और अधिकसे अधिक साधिक तीन पल्यके अन्तरसे होता है, अतः यहाँ इसके अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे उक्त प्रमाण कहा है। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चत्रिकमें इनकी कायस्थितिको ध्यानमें रखकर अवस्थित पदका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य कहा है। आयुकर्मके अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरण के समान कहनेका भी यही कारण है। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकोंकी कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त है और आयुकर्मका दो बार बन्ध कम से कम अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे होता है, यह देखकर इनमें आठों कर्मोंके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त तथा आयुकर्मके अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। यहाँ अन्य सब अपर्याप्तकोंमें तथा सूक्ष्म पर्याप्तकोंमें यह व्यवस्था बन जाती है इसलिए उनका भङ्ग पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान कहा है।

११०. मनुष्यत्रिकमें सात कर्मोंके तीन पदोंका और आयुकर्मके चार पदोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चोंके समान है। तथा सात कर्मोंके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है।

विशेषार्थ—मनुष्यत्रिककी कायस्थिति आदि पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चोंके समान है, इसलिए इनमें सात कर्मोंके तीन पदोंका और आयुकर्मके चार पदोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चोंके समान प्राप्त होनेसे वैसा कहा है। मात्र मनुष्यत्रिकमें सात कर्मोंका अवक्तव्यपद भी होता है जो पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चोंमें नहीं होता, इसलिए इसका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अलगसे कहा है। उसमें जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त तो स्पष्ट ही है, इसका हम पहले स्पष्टीकरण भी कर आये

१११. देवाणं सत्तण्णं क० भुज-अप्प० ज० एग०, उ० अंतो० । अवट्ठि० ज० ए०, उ० तेँत्तीसं० दे० । आउ० णिरयभंगो । एवं सव्वदेवाणं अप्पप्पणो अंतरं णेदव्वं ।

११२. एइंदिएसु सत्तण्णं क० ओघं । आउ० अवट्ठि० ओघं । भुज०-अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० बावीसं० वाससहस्साणि सादि० । एवं सव्व-एइंदि०-विगलिंदि०-पंचकायाणं अप्पप्पणो अंतरं णेदव्वं । णवरि अणंतट्ठाणेसु असंखेँज्जालोगट्ठाणेसु य सेढीए असंखेँज्जदिभागो कादव्वो ।

हैं। उत्कृष्ट अन्तरकाल जो पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण कहा है सो इसका कारण यह है कि मनुष्यत्रिककी उत्कृष्ट कायस्थिति जो पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य है उसमें से तीन पल्य इसलिए अलग कर दिये हैं, क्योंकि उसमें उपशमश्रेणिकी प्राप्ति सम्भव नहीं है। इसके बाद जो कायस्थिति शेष रहती है उसके प्रारम्भमें और अन्तमें उपशमश्रेणिपर आरोहण कराकर उतारते समय इन कर्मोंका अवक्तव्यबन्ध करानेसे उक्त अन्तरकाल प्राप्त होता है, इसलिए मनुष्यत्रिकमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्तप्रमाण कहा है।

१११. देवोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। आयुकर्मका भङ्ग नारकियोंके समान है। इसी प्रकार सब देवोंमें अपना अपना अन्तर जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—जिस प्रकार ओघसे सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए। यहाँ इन कर्मोंका अवस्थितपद कम से कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक कुछ कम तेतीस सागरके अन्तरसे हो सकता है, इसलिए इसका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। देवोंमें नारकियोंके समान आयु-बन्धका नियम है, इसलिए इनमें आयुकर्मका भङ्ग नारकियोंके समान कहा है। देवोंके अवान्तर भेदोंमें यह अन्तरप्ररूपणा इसी प्रकार है। मात्र सात कर्मोंके अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण प्राप्त होनेसे उसकी सूचना अलगसे की है।

११२. एकेन्द्रियोंमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। आयुकर्मके अवस्थित पदका भङ्ग ओघके समान है। आयुकर्मके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर साधिक बाईस हजार वर्ष है। इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंमें अपना अपना अन्तर जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जिनकी कायस्थिति अनन्तकाल और असंख्यात लोकप्रमाण है, उनमें आठों कर्मोंके अवस्थित पदका उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भाग-प्रमाण करना चाहिए।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें सात कर्मोंका अवक्तव्यपद नहीं है। शेष भङ्ग वा आयुकर्मके अवस्थितपदका भङ्ग ओघके समान है यह स्पष्ट ही है। अब शेष रहे आयुकर्मके तीन पद सो इनमेंसे भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय और अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त पहले अनेक बार घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी जान लेना चाहिए। तथा एकेन्द्रियोंमें आयुकर्मके प्रकृतिबन्धका अन्तर साधिक बाईस हजार वर्ष है, इसलिए यहाँ इन तीन पदोंका उत्कृष्ट अन्तर उक्तप्रमाण कहा है, क्योंकि मध्यके इतने कालतक आयुकर्मका बन्ध संभव न होनेसे यह अन्तरकाल बन जाता है। यहाँ एकेन्द्रियोंके अवान्तर भेद

११३. पंचि०-तस०२ सत्तण्णं क० भुज०-अप्प० ओघं। अवट्ठि०-अवत्त० ओघं। णवरि कायट्ठिदी भाणिदव्वं। आउ० तिण्णिपदा ओघं। अवट्ठि० णाणा०भंगो।

११४. पंचमण०-पंचवचि० अट्ठण्णं क० भुज०-अप्प०अवट्ठि० ज० ए०, उक्क० अंतो०। अवत्त० णत्थि अंतरं। एवं ओरालि०-वेउव्वि०-आहार०-तिण्णिकसाय-सासण०-सम्मामि०। णवरि ओरालि० आउ० तिण्णि प० ज० ए०, उ० सत्तवाससह० सादि०। एवं अवत्त०। णवरि ज० अंतो०। ओरालि० सत्तण्णं क० अवट्ठि० ज० ए०, उ० बावीसं वाससह० दे०।

आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें अपनी अपनी भवस्थिति और कायस्थितिको जानकर यह अन्तरकाल घटित करना चाहिए। सर्वत्र कुछ कम कायस्थितिप्रमाण तो आठों कर्मोंके अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर है और साधिक भवस्थितिप्रमाण आयुकर्मके शेष तीन पदोंका उत्कृष्ट अन्तर है। मात्र जिनकी कायस्थिति अनन्तकाल और असंख्यात लोकप्रमाण है उनमें अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम कायस्थिति प्रमाण न प्राप्त होकर ओघके समान जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है, इसलिए इसका संकेत अलगसे किया है।

११३. पञ्चेन्द्रियद्विक और त्रसद्विक जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतरपदका भङ्ग ओघके समान है। इनके अवस्थित और अवक्तव्यपदका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है इनका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण कहना चाहिए। आयुकर्मके तीन पदोंका भङ्ग ओघके समान है। तथा अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरण के समान है।

विशेषार्थ—ओघसे आठों कर्मोंके अवस्थित पदका और सात कर्मोंके अवक्तव्यपदका जो उत्कृष्ट अन्तर कहा है वह इन मार्गणाओंमें नहीं बनता, क्योंकि इन मार्गणाओंकी कायस्थिति उससे बहुत कम है। इस अपवादको छोड़कर शेष सब प्ररूपणा ओघके समान यहाँ भी घटित कर लेनी चाहिए। कोई विशेषता न होनेसे उसका हम अलगसे स्पष्टीकरण नहीं कर रहे हैं।

११४. पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंमें आठों कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, आहारककाययोगी, तीनों कषायवाले, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिककाययोगमें आयुकर्मके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक सात हजार वर्ष है। इसी प्रकार इसके अवक्तव्यपदका अन्तरकाल जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तथा औदारिककाययोगमें सात कर्मोंके अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम बाईस हजार वर्ष है।

विशेषार्थ—पाँच मनोयोगों और पाँच वचनयोगोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए इनमें आठों कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त बन जाता है। पर इन योगोंका यह अन्तर्मुहूर्त काल इतना छोटा है जिससे इस कालके भीतर दो बार उपशमश्रेणीपर आरोहण और अवरोहण तथा आयुकर्मका दो बार बन्ध सम्भव नहीं है, इसलिए इन योगों में आठों कर्मोंके अवक्तव्यपदके अन्तरकालका निषेध किया है। यहाँ औदारिककाययोगी आदि अन्य जितनी मार्गणायें

११५. कायजोगीसु सत्तण्णं क० तिण्णि प० ओघं। अवत्त० णत्थि अंतरं। आउ० एइंदियभंगो। ओरालियमि० अपज्जत्तभंगो। वेउव्वियमि० सत्तण्णं क० आहारमि० अट्ठण्णं क० कम्म०-अणाहार०[1] सत्तण्णं क० भुज० णत्थि अंतरं। एत्ताणं एगपदं।

११६. इत्थि०-पुरिस०-णवुंस० सत्तण्णं क० दो पदा ओघं। अवट्ठि० ज० ए०, उ० पलिदो०सदपुध० सागरो०सदपुध० सेढीए असंखें०। आउ० भुज०- अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतोमु०, उ० पणवण्णं पलि० सादि० तेंत्तीसं सा० सादिरे०। अवट्ठि० णाणा०भंगो। अवगद० सत्तण्णं क० तिण्णि प० ज० ए०, उ० अंतो०। अवत्त० णत्थि अंतरं।

गिनाई हैं उनमें यह अन्तरप्ररूपणा बन जाती है, इसलिए उसे इन योगोंकी अन्तरप्ररूपणाके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र इसमें जो अपवाद हैं उनका अलगसे उल्लेख किया है। यथा—औदारिककाययोगका उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्षप्रमाण होनेसे उसमें आयुकर्मके चारों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक सात हजार वर्षप्रमाण और सात कर्मोंके अवस्थित पदका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम बाईस हजार वर्षप्रमाण प्राप्त होनेसे उसका अलगसे निर्देश किया है। शेष कथन सुगम है।

११५. काययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके तीन पदोंका भङ्ग ओघके समान है। अवक्तव्य पदका अन्तरकाल नहीं है। आयुकर्मका भङ्ग एकेन्द्रियोंके समान है। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके, आहारक-मिश्रकाययोगी जीवोंमें आठ कर्मोंके और कार्मणाकाययोगी व अनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगारपदका अन्तरकाल नहीं है, क्योंकि इन मार्गणाओंमें एक पद है।

विशेषार्थ—सात कर्मोंके अवक्तव्यपदका अन्तर उपशमश्रेणिमें दो बार आरोहण-अवरोहण करनेसे होता है। किन्तु इतने कालतक काययोगका बना रहना सम्भव नहीं है, इसलिए इस योगमें अवक्तव्यपदके अन्तरकालका निषेध किया है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

११६. स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी जीवोंमें सात कर्मोंके दो पदोंका भङ्ग ओघके समान है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे सौ पल्यपृथक्त्वप्रमाण, सौ सागर पृथक्त्वप्रमाण और जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। आयु-कर्मके भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक पचवन पल्य और साधिक तेतीस सागर है। अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अपगतवेदी जीवोंमें सात कर्मोंके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है।

विशेषार्थ—तीन वेदोंमें सात कर्मोंके अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर अपनी अपनी कायस्थितिको ध्यानमें रख कर कहा है। यद्यपि नपुंसकवेदकी कायस्थिति अनन्तकालप्रमाण है पर यह पहले ही सूचित कर आये हैं कि जिनकी कायस्थिति अनन्तकाल प्रमाण है उनमें सब कर्मोंके अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है। तथा तीनों वेदोंमें आयुकर्मके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर अपनी अपनी साधिक भवस्थिति-प्रमाण कहा गया है। कारण स्पष्ट है। शेष कथन सुगम है, क्योंकि उसका पहले अनेक बार स्पष्टीकरण कर आये हैं।

---

[1] आ० प्रतौ अट्ठण्णं क० अणाहार इति पाठः।

११७. लोभ० मोह०-आउ० अवत्त० णत्थि अंतरं। सेसाणं कोधभंगो।

११८. मदि०-सुद०-असंज०-अब्भवसि०-मिच्छा०-[अ]सण्णि त्ति सत्तण्णं क० तिण्णि प० आउ० चत्तारि पदा ओघभंगो। णवरि असण्णीसु आउ० भुज०-अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उक्क० तिण्णं पि पुव्वकोडी सादि०। विभंगे अट्ठण्णं० क० णिरयोघं।

११९. आभिणि०-सुद०-ओधि० सत्तण्णं क० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०। अवट्ठि० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० छावट्ठिसाग० सादि०। आउ० ओघं। णवरि अवट्ठि० णाणा०भंगो। एवं ओधिदं०-सम्मादि०।

१२०. मणपज्ज० सत्तण्णं क० भुज०-अप्प० ओघं। अवट्ठि ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० पुव्वकोडी दे०। आउ० तिण्णि प० ज० ए०, अवत्त[1]० ज० अंतो०,

११७. लोभकषायमें मोहनीय और आयुकर्मके अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। शेष पदोंका भङ्ग क्रोध कषायके समान है।

विशेषार्थ—लोभकषायमें मोहनीयका अवक्तव्यपद भी सम्भव है। इतनी विशेषता बतलानेके लिए इसमें अन्तर प्ररूपणा शेष तीन कषायोंकी अन्तर प्ररूपणासे अलग कही है। यहाँ लोभकषायके उदयमें दो वार उपशमश्रेणिकी प्राप्ति और दो वार आयुकर्मका बन्ध सम्भव नहीं है, इसलिए इनके अवक्तव्यपदका निषेध किया है। शेष कथन सुगम है।

११८. मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें सात कर्मोंके तीन पदोंका और आयु कर्मके चार पदोंका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि असंज्ञियोंमें आयुकर्मके भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और तीनोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक पूर्वकोटि है। विभङ्गज्ञानी जीवोंमें आठों कर्मोंका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है।

विशेषार्थ—असंज्ञियोंकी उत्कृष्ट भवस्थिति एक पूर्वकोटिप्रमाण है, इसलिए इनमें आयुकर्मके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक पूर्वकोटिप्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

११९. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थित-पदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और तीनोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक छ्यासठ सागर है। आयुकर्मका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवों में जानना चाहिए।

विशेषार्थ—इन तीन ज्ञानों का उत्कृष्ट काल साधिक छ्यासठ सागर है, इसलिए इनमें सात कर्मोंके अवस्थित और अवक्तव्यपदका तथा आयुकर्मके अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर साधिक छ्यासठ सागर कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

१२०. मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतरपदका भङ्ग ओघके समान है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। आयुकर्मके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और चारों पदों का

---

[1] ता०आ०प्रत्योः ए० उ० अवत्त इति पाठः।

उ० पुव्वकोडितिभागं देसू०। एवं संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-संजदासंज०। सुहुमसं० अवगदवेदभंगो। अवत्त० णत्थि अंतरं। चक्खु० तसपज्जत्तभंगो। अचक्खु०-भवसि० ओघं।

१२१. छल्लेस्साणं सत्तण्णं क० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०। अवट्ठि० ज ए०, उ० तेंत्तीसं सत्तारस-सत्त-बे-अट्ठारस-बत्तीसं० सादि०। आउ० णिरयभंगो। णवरि सुक्काए [सत्तण्णं क०] अवत्त० णत्थि अंतरं।

१२२. खइग० सत्तण्णं क० भुज०-अप्प० ज० [उ०] ओघं। अवट्ठि० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० दोण्णं पि तेंत्तीसं० सादि०। आउ० तिण्णं पि ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० दोण्णं पि बत्तीसं० सादि०।

१२३. वेदग० सत्तण्णं क० दो पदा ओघं। अवट्ठि० ज० ए०, उ०

उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण है। इस प्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंमें जानना चाहिए। सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें अपगतवेदी जीवोंके समान भङ्ग है। मात्र इनमें अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। चक्षुदर्शनी जीवोंमें त्रसपर्याप्त जीवोंके समान भङ्ग है। अचक्षुदर्शनी और भव्य जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—मनःपर्ययज्ञानका काल कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है, इसलिए उसमें सात कर्मोंके अवस्थित और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्तप्रमाण कहा है। इस ज्ञानमें आयुकर्मका उत्कृष्ट बन्धान्तर कुछ कम पूर्वकोटिका त्रिभागप्रमाण है, इसलिए इसमें आयुकर्मके चारों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर उक्तप्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट है।

१२१. छह लेश्याओंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे साधिक तेतीस सागर, साधिक सत्रह सागर, साधिक सात सागर, साधिक दो सागर, साधिक अठारह सागर और साधिक बत्तीस सागर है। आयुकर्मका भङ्ग नारकियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि शुक्ललेश्यामें सात कर्मोंके अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है।

विशेषार्थ—शुक्ललेश्यामें दो बार उपशमश्रेणिकी प्राप्ति सम्भव नहीं, क्योंकि नीचे आने पर लेश्या बदल जाती है, अतएव शुक्ललेश्यामें सात कर्मोंके अवक्तव्यपदके अन्तरकालका निषेध किया है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

१२२. क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। आयुकर्मके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर दोनों ही पदोंका साधिक बत्तीस सागर है।

विशेषार्थ—क्षायिकसम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है, इसलिये इसमें सात कर्मोंके अवस्थित और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है।

१२३. वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंके दो पदोंका भङ्ग ओघके समान है। अवस्थित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Varanasi

छावट्ठिसा० दे० । आउ० आभिणि०भंगो । णवरि अवट्ठि० णाणा०भंगो । उवसम० मणजोगिभंगो ।

१२४. सण्णी पंचिंदियपज्जत्तभंगो । आहार० सत्तण्णं क० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो० । अवट्ठि०-अवत्त० ज० ए० अंतो०, उ० अंगुल० असंखे० । आउ० ओघं । णवरि अवट्ठि० सगट्ठिदी भाणिदव्वा ।

एवं अंतरं समत्तं

णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमो ।

१२५. णाणाजीवेहि भंगविचयाणु० दुवि०–ओघे० आदे० । ओघे० सत्तण्णं क० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० णियमा अत्थि । सिया एदे य अवत्तगे य । सिया एदे य अवत्तगा य । आउ० भुज०-अप्प०-अवट्ठि०-अवत्त० णियमा अत्थि । एवं

पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छयासठ सागर है । आयुकर्मका भङ्ग आभिनिबोधिक ज्ञानके समान है । इतनी विशेषता है कि अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें मनोयोगी जीवोंके समान भङ्ग है ।

विशेषार्थ—वेदकसम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल छयासठ सागर है, परन्तु यहाँ अन्तर लाना है, इसलिए यहाँ सात कर्मोंके अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छयासठ सागर कहा है । आयुकर्मके अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर ज्ञानावरणके समान है यह कहनेका भी यही अभिप्राय है । उपशमसम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए इसमें मनोयोगके समान अन्तरकाल प्राप्त होनेसे वह उसके समान कहा है ।

१२४. संज्ञी जीवोंमें पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके समान भङ्ग है । आहारक जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अवस्थित और अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय और अन्तर्मुहूर्त है तथा उत्कृष्ट अन्तर अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है । आयुकर्मका भङ्ग ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण कहना चाहिए ।

विशेषार्थ—आहारक जीवकी उत्कृष्ट कायस्थिति अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए यहाँ सात कर्मोंके अवस्थित और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है । आयुकर्मके अवस्थितपदका अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है इसके कहनेका भी यही तात्पर्य है ।

इस प्रकार अन्तरकाल समाप्त हुआ ।

नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगम ।

१२५. नाना जीवोंका आलम्बन लेकर भङ्गविचयानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदवाले जीव नियमसे हैं । कदाचित् ये नाना जीव हैं और अवक्तव्यपदवाला एक जीव है । कदाचित् ये नाना जीव हैं और अवक्तव्यपदवाले नाना जीव हैं । आयुकर्मके भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यपदवाले जीव नियमसे हैं । इस प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, अचक्षुदर्शनी,

---

१. ता० प्रतौ सगट्ठिदी० एवं इति पाठः ।

कायजोगि-ओरालि०-अचक्खु०-भवसि०-आहारग त्ति। तिरिक्खोघं सव्वएइंदिय-पंचका०-ओरा०मि०-णवुंस०—कोधादि०४-मदि०-सुद०—असंज०-तिण्णिले०-मिच्छा०[1]-असण्णि० ओघभंगो। णवरि सत्तण्णं क० अवत्तव्वगे० णत्थि। लोभे मोह० ओघं।

१२६. णिरएसु सत्तण्णं क० भुज०-अप्प० णियमा अत्थि। सिया एदे य अवट्ठदे य अवट्ठिदा य। आउ० सव्वपदा भयणिज्जा। एवं सव्वणिरयाणं। एवं सव्वेसिं असंखेँज्जरासीणं। णवरि सत्तण्णं क० अवत्त० अत्थि। तेसिं भुज०-अप्प० णियमा अत्थि। सेसपदा भयणिज्जा। मणुस०अपज्ज०-आहार०-अवगद०-सुहुमसं०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०[2] सव्वपदा भयणिज्जा। बादरपुढ०-आउ०-तेउ०-वाउ०-बादरवण०-पत्ते०पज्जत्ता णिरयभंगो। कम्मइ०-अणाहार० सत्तण्णं क० भुज० णियमा अत्थि। वेउव्वि०मि० सत्तण्णं० आहारमि० अट्ठण्णं पि सिया भुजगारगे य सिया भुजगारगा य।

एवं भंगविचयं समत्तं

भागाभागाणुगमो।

१२७. भागाभागं[3] दुवि०—ओघे० ओदे०। ओघे० सत्तण्णं क० भुज०वं०

भव्य और आहारक जीवोंमें जानना चाहिए। सामान्य तिर्यञ्च, सब एकेन्द्रिय, पाँच स्थावरकाय, औदारिकमिश्रकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, तीन लेश्यावाले, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें सात कर्मोंके अवक्तव्यपदवाले जीव नहीं हैं। मात्र लोभकषायमें मोहनीय कर्मका भङ्ग ओघके समान है।

१२६. नारकियोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतर पदवाले जीव नियमसे हैं। कदाचित् ये नाना जीव हैं और अवस्थितपदवाला एक जीव है। कदाचित् ये नाना जीव हैं और अवस्थितपदवाले नाना जीव हैं। आयुकर्मके सब पद भजनीय हैं। इस प्रकार सब नारकियोंमें जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार असंख्यात संख्यावाली राशियोंमें जानना चाहिए। मात्र इतनी विशेषता है कि जिनमें सात कर्मोंका अवक्तव्यपद है उनमें भुजगार और अल्पतर-पदवाले जीव नियमसे हैं और शेष पद भजनीय हैं। मनुष्य अपर्याप्त, आहारककाययोगी, अपगतवेदी, सूक्ष्मसाम्परायसंयत, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों में सब पद भजनीय हैं। बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिकपर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीरपर्याप्त जीवोंमें नारकियोंके समान भङ्ग है। कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार पद-वाले जीव नियमसे हैं। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें आठों कर्मोंके भुजगारपदवाला कदाचित् एक जीव है और कदाचित् नाना जीव हैं।

इस प्रकार भङ्गविचय समाप्त हुआ।

भागाभागानुगम

१२७. भागाभाग दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सात कर्मोंके भुजगारपदके

---

[1] ता० प्रतौ असंज० ति [अत्र क्रमांकरहितः ताडपत्रोऽस्ति]······मिच्छा० इति पाठः। [2] आ० प्रतौ सासण०···सम्मामि० इति पाठः। [3] ता० प्रतौ भुजगारगे सिया भुजगारगा भागाभागं इति पाठः।

केव० ? दुभागो सादिरेगो। अप्प० दूभागो देसू०[1]। अवट्ठि० असंखेँज्जदिभागो। अवत्त० अणंतभागो। एवं कायजोगि-ओरालि०-अचक्खु०-भवसि०-आहारग त्ति। आउगं एवं चेव। अवत्त० असंखेँज्जदिभागो। सेसाणं सव्वेसिं असंखेँज्जरासीणं ओघं। णवरि केसिं च अवत्त० अत्थि केसिं च अवत्त० णत्थि। एसिं अवत्तव्वमत्थि तेसिं अवत्तव्वं अवट्ठिदेण सह भाणिदव्वं। सेसाणं अणंतरासीणं ओघभंगो। णवरि अवत्त० णत्थि। संखेँज्जरासीणं पि भुज०-अप्प० ओघभंगो। अवट्ठि०-अवत्त० संखेँज्जदिभागो। एवं अट्ठण्णं क०। एसिं सत्तण्णं क० अवत्त० णत्थि तेसिं पि एसेव भंगो। वेउव्वि०मि०-आहारमि०-कम्मइ०-अणाहार० णत्थि भागाभागो।

एवं भागाभागं समत्तं

परिमाणाणुगमो

१२८. परिमाणाणु० दुवि०[2]–ओघे० ओदे०। ओघे० सत्तण्णं क० भुज०-अप्प०-अवट्ठि०बंधगा केत्तिया ? अणंता। अवत्त० के० ? संखेँज्जा। आउ० भुज०-अप्प०-अवट्ठि०-अवत्त०बंध० के० ? अणंता। एवं ओघभंगो कायजोगि-ओरालि०-अचक्खु०-भवसि०-आहारग त्ति। तिरिक्खोघं एइंदिय–वणप्फदि–णियोद०-

बन्धक जीव कितने हैं ? साधिक द्वितीय भागप्रमाण हैं। अल्पतरपदके बन्धक जीव कुछ कम द्वितीय भागप्रमाण हैं। अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव अनन्तवें भागप्रमाण हैं। इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंमें जानना चाहिए। आयुकर्मका भङ्ग इसी प्रकार है। मात्र यहाँपर अवक्तव्यपदके बन्धक जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। शेष सब असंख्यात राशियोंका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि किन्हींमें अवक्तव्यपद है और किन्हींमें नहीं है। जिनमें अवक्तव्यपद है उनमें अवक्तव्यपद अवस्थितपदके साथ कहना चाहिए। शेष अनन्तराशियोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यपद नहीं है। संख्यात राशियोंमें भी भुजगार और अल्पतरपदका भङ्ग ओघके समान है। अवस्थित और अवक्तव्यपदवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं। इस प्रकार आठों कर्मोंका जानना चाहिए। जिनके सात कर्मोंका अवक्तव्यपद नहीं है उनका भी यही भङ्ग है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारकोंमें भागाभाग नहीं है।

इस प्रकार भागाभाग समाप्त हुआ।

परिमाणानुगम

१२८. परिमाण दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदके बन्धक जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। अवक्तव्यपदके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। आयुकर्मके भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। इस प्रकार ओघके समान काययोगी, औदारिककाययोगी, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंमें जानना चाहिए। सामान्य तिर्यञ्च, एकेन्द्रिय,

---

[1] ता० प्रतौ दुभागो देसू० इति पाठः। [2] ता० प्रतौ आहार [मिस्स० कम्मइ० अणाहारग त्ति णेदव्वं] परिमाणं दुवि०, आ०प्रतौ आहारमि० कम्मइ अणाहार० भंगो। एवं भागाभागं समत्तं। परिमाणाणु ०दुवि० इति पाठः।

ओरालि०मि०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-तिण्णिले०-अब्भव०-मिच्छा०-असण्णि० ओघ्नभंगो। णवरि सत्तण्णं क० अवत्त० णत्थि। कम्मइ०-अणाहार० सत्तण्णं क० अणंता।

१२९. णिरएसु[1] सव्वपदा असंखेंज्जा। एवं सव्वणिरयाणं सव्वपंचिंदि०-तिरि०-सव्वअपज्जत्तगाणं देवाणं याव सहस्सार त्ति सव्वविगलिंदिय-पंचका०-वेउव्वि०-[वेउ०मि०] इत्थि०-पुरिस०-विभंग०-संजदासंजद०-तेउ०-पम्म०-वेदग०-सासण०-सम्मा०।

१३०. मणुसेसु सत्तण्णं क० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० असंखेंज्जा। अवत्त० संखेंज्जा। आउ० सव्वपदा असंखेंज्जा। एवं पंचिंदि०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-आभिणि०-सुद०-ओधि०-चक्खु०-ओधिदं०-सम्मादि०-उवसम०-सण्णि त्ति। मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु अट्ठण्णं क० संखेंज्जा। एवं सव्वट्ठ०-आहार०[2]-आहारमि०-अवगद-मणपज्ज०-संज०-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुहुमसं०। आणद याव अवराइदा त्ति सत्तण्णं भुज०-अप्प०-अवट्ठि० केत्ति०? असंखेंज्जा। आउ० सव्वपदा संखेंज्जा।

वनस्पतिकायिक, निगोद, औदारिकमिश्रकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें सात कर्मोंका अवक्तव्यपद नहीं है। कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगारपदके बन्धक जीव अनन्त हैं।

१२९. नारकियोंमें सब पदवाले जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, सब अपर्याप्त, देव, सहस्रार कल्पतकके देव, सब विकलेन्द्रिय, पाँच स्थावरकायिक, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभङ्गज्ञानी, संयतासंयत, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, वेदकसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए।

१३०. मनुष्योंमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदके बन्धक जीव असंख्यात हैं और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव संख्यात हैं। आयुकर्मके सब पदोंके बन्धक जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और संज्ञी जीवोंमें जानना चाहिए। मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें आठों कर्मोंके सब पदवाले जीव संख्यात हैं। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें जानना चाहिए। आनतसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदके बन्धक जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। आयु कर्मके सब पदोंके बन्धक जीव संख्यात हैं। इसी प्रकार शुक्ललेश्या

---

[1] ता० प्रतौ णत्थि।......[कम्मइ० अणाहार० सत्तण्णं कम्माणं अणंता]। णिरयेसु इति पाठः।

[2] आ० प्रतौ सव्वत्थ आहार० इति पाठः। [3] ता० प्रतौ आली० (उ०) सव्वप० इति पाठ।

एवं सुक्कले० खइग० । णवरि सत्तण्णं क० अवत्त० संखेँज्जा ।

एवं परिमाणं समत्तं[1]

खेँत्ताणुगमो

१३१. खेँत्ताणु० दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० सत्तण्णं क० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० केवडि खेँत्ते ? सव्वलोगे । अवत्त० लोग० असंखेँ० । आउ० सव्वपदा सव्वलो० । एवं ओघभंगो कायजोगि-ओरालि०-लोभका० मोह० अचक्खु०-भवसि०-आहारग त्ति । एवं चेव तिरिक्खोघं एइंदि०-सव्वसुहुम-पुढ०-आउ०-तेउ०-वाउ०-वणप्फदि-णियोद०-ओरालि०मि०- णवुंस०- कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-तिण्णिले०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि त्ति । णवरि सत्तण्णं क० अवत्तव्वं णत्थि ।

और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें सात कर्मोंके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव संख्यात हैं।

इस प्रकार परिमाण समाप्त हुआ।

क्षेत्रानुगम

१३१, क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदके बन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है ? सब लोक क्षेत्र है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। आयुकर्मके सब पदोंके बन्धक जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। इस प्रकार ओघके समान, काययोगी, औदारिककाययोगी, लोभकषायवालोंमें मोहनीयका, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंमें जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्च, एकेन्द्रिय, सब सूक्ष्म, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, निगोद, औदारिकमिश्रकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें सात कर्मोंका अवक्तव्यपद नहीं है।

विशेषार्थ—ओघसे सात कर्मोंके तीन पदवाले जीव सब लोकमें पाये जाते हैं, इसलिए उनका सब लोक क्षेत्र कहा है। तथा इनके अवक्तव्यपदके वे ही स्वामी हैं जो उपशमश्रेणिसे उतरे हैं या वहाँ मरकर देव हुए हैं। अतः ऐसे जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं, अतः सात कर्मोंके अवक्तव्यपदवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। आयुकर्मके सब पद एकेन्द्रिय आदि सब जीवोंके सम्भव हैं, इसलिए ओघसे आयुकर्मके सब पदवालोंका क्षेत्र सर्वलोकप्रमाण कहा है। यहाँ काययोगी आदि जो मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें यह व्यवस्था बन जाती है, इसलिए उनमें ओघके समान जानने की सूचना की है। सामान्य तिर्यञ्च आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं, उनमें भी ओघके समान जानने की सूचना की है। कारण स्पष्ट है। मात्र उनमें सात कर्मोंका अवक्तव्यपद नहीं होता, क्योंकि उनमें उपशमश्रेणिकी प्राप्ति सम्भव नहीं, इसलिए सात कर्मोंके अवक्तव्यपदको छोड़कर उनमें ओघके समान क्षेत्र जानना चाहिए।

---

[1] ता० प्रतौ एवं परिमाणं समत्तं इति पाठो नास्ति ।

१३२. बादरएइंदि०-पज्जत्तापज्ज०-बादरवाउअपज्ज० सत्तण्णं[1] क० भुज०-अप्प०-अवट्टि० सव्वलो० । आउ० चत्तारिप० लो० संखें० । बादरपुढ०-आउ०-तेउ०-बादरवण०पत्ते० तेसिं चेव अपज्ज० बादरवण०-बादरणियोद० पज्जत्तापज्ज० सत्तण्णं क० तिण्णि प० सव्वलो० । आउ० चत्तारिप० लोग० असंखें० । पंचण्णं बादर-पज्जत्ताणं पंचिं०तिरि०अप०भंगो । सेसाणं संखेंज्जासंखेंज्जरासीणं लोग० असं० । कम्मइ०-अणाहार० भुज० सव्वलो० । बादरवाउ०पज्जत्त० सत्तण्णं क० तिण्णि पदा आउ० चत्तारिप० लो० संखेंज्ज० ।

एवं खेत्तं समत्तं

---

१३२. बादर एकेन्द्रिय और उनके पर्याप्त व अपर्याप्त और बादर वायुकायिक अपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदके बन्धक जीवोंका सब लोकप्रमाण क्षेत्र है। आयुकर्मके चारों पदोंके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और उनके अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक और बादर निगोद तथा इन दोनोंके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका क्षेत्र सब लोकप्रमाण है। आयुकर्मके चारों पदोंके बन्धक जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। पाँचों बादर पर्याप्तकोंका भङ्ग पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है। शेष संख्यात और असंख्यात राशियोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें भुजगार पदके बन्धक जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। बादर वायुकायिक पर्याप्तक जीवोंमें सात कर्मोंके तीन पदों और आयुकर्मके चार पदोंके बन्धक जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है।

विशेषार्थ—बादर एकेन्द्रियं आदिका मारणान्तिक समुद्घातके समय सब लोक क्षेत्र है। इस समय सात कर्मोंके भुजगार आदि तीन पद सम्भव हैं, इसलिए इनमें सात कर्मोंके उक्त पदोंका सब लोकप्रमाण क्षेत्र कहा है। पर आयुकर्मके बन्धके समय मारणान्तिक समुद्घात और उपपादपद सम्भव नहीं, इसलिए आयुकर्मके सब पदोंकी अपेक्षा इनमें लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र कहा है। बादर पृथिवीकायिक आदि जीवोंका भी मारणान्तिक समुद्घातके समय सर्व लोकप्रमाण क्षेत्र सम्भव है, इसलिए इनमें भी सात कर्मोंके तीन पदोंकी अपेक्षा उक्त क्षेत्र कहा है पर इनका स्वस्थान क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए इनमें आयुकर्मके सब पदोंकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र कहा है। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। पाँचों बादर पर्याप्तकोंका भी इतना ही क्षेत्र है, इसलिए इनका भङ्ग पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान जाननेकी सूचना की है। शेष संख्यात और असंख्यात संख्यावाली राशियोंका भी लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है, इसलिए उनमें भी सब कर्मोंके यथासम्भव पदोंकी अपेक्षा यही क्षेत्र कहा है। मात्र बादर वायुकायिक पर्याप्तक जीव इसके अपवाद हैं। कारण कि उनका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए उनमें आठों कर्मोंके सम्भव पदोंकी अपेक्षा उक्तप्रमाण क्षेत्र कहा है। कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंका सब लोकप्रमाण

---

१. ता० प्रतौ बादरवाउ······प० सत्तण्णं, आ० प्रतौ बादरवणप्फ० सत्तण्णं इति पाठः । २. ता० प्रतौ एवं खेत्तं समत्तं इति पाठो नास्ति ।

फोसणाणुगमो

१३३. फोसणाणु० दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे अट्ठण्णं क० सव्वप० खेँत्तभंगो। [एवं] तिरिक्खोघं एइंदि०-पंचका०-कायजोगि०-ओरालि०-ओरालि०मि०-कम्मइ०—णवुंस०—कोधादि०४—मदि०—सुद०-असंज०—अचक्खु०—तिण्णिले०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि०-आहार०-अणाहारग त्ति।

१३४. णेरइगेसु सत्तण्णं क० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० छच्चोँद्द०। आउ० खेँत्तभंगो। एवं अप्पप्पणो फोसणं णेदव्वं। सव्वपंचिं०तिरि० सत्तण्णं[1] क० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० लो० असंखेँ० सव्वलो०। आउ० खेँत्तभंगो। एवं मणुस-सव्व-अपज्जत्ताणं तसाणं सव्वविगलिंदियाणं वादर-पुढ०-आउ०-तेउ०-वाउ०पज्जत्ता० वादरपत्ते०पज्जत्ताणं च। मणुसेसु अट्ठण्णं क० अवत्त० खेँत्त०। बादरवाउ०पज्जत्त०

क्षेत्र होनेसे इनमें यहाँ सम्भव सात कर्मोंके भुजगार पदकी अपेक्षा सब लोकप्रमाण क्षेत्र कहा है।

स्पर्शनानुगम

१३३. स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे आठों कर्मोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्च, एकेन्द्रिय, पाँचों स्थावरकाय, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—ओघसे सात कर्मोंके अवक्तव्यपदके सिवा आठों कर्मोंके सब पदोंकी अपेक्षा क्षेत्र सब लोकप्रमाण तथा सात कर्मोंके अवक्तव्यपदकी अपेक्षा क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण बतला आये हैं, वही यहाँ स्पर्शन भी प्राप्त होता है, अतः इसे क्षेत्रके समान जाननेकी सूचना की है। यहाँ सामान्य तिर्यञ्च आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए ऐसा कहनेका अभिप्राय यह है कि इनका स्पर्शन भी क्षेत्रके समान जानना चाहिए।

१३४. नारकियोंमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयुकर्मका भंग क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार सर्वत्र अपना-अपना स्पर्शन जानना चाहिए। सब पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंके भुजगार अल्पतर और अवस्थितपदके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयुकर्मका भङ्ग क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार मनुष्य, सब अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त और बादर प्रत्येकवनस्पतिकायिक पर्याप्त जीवोंमें जानना चाहिए। मात्र मनुष्योंमें आठों कर्मोंके अवक्तव्यपदका भङ्ग क्षेत्रके समान है। तथा बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंके तीन पदोंके

---

[1] ता० प्रतौ सव्वपंचिं०······सत्तण्णं इति पाठः।

सत्तण्णं क० तिण्णि प० लोग० संखे० सव्वलो० ।

१३५. देवाणं सत्तण्णं क० तिण्णि प० अट्ठ-णव० । आउ० चत्तारिप० अट्ठचो० । एवं सव्वदेवाणं अप्पप्पणो फोसणं णेदव्वं । पंचिं०-तस०२ सत्तण्णं[1] क० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० अट्ठचों० सव्वलो० । अवत्त० खेँत्तभंगो । आउ० चत्तारिप० अट्ठचोँ० । एवं पंचमण०–पंचवचि०–इत्थि०-पुरिस०-विभंग-चक्खु०-सण्णि त्ति । वेउ० सत्तण्णं क० तिण्णिप० अट्ठ-तेरह० । आउ० सव्वप० अट्ठचोँ० ।

१३६. वेउव्वियमि०-आहार०–अहारमि०–अवग०-मणपज्ज० याव सुहुमसंप० खेँत्तभंगो । आभिणि०-सुद-ओधि० सत्तण्णं क० तिण्णिप० अट्ठचोँ० । अवत्त० खेँत्तभंगो ।

बन्धक जीवोंने लोकके संख्यातवें भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—यहाँ जितनी मार्गणाओंमें स्पर्शन कहा है उनमें यही बात जाननी चाहिए कि उन मार्गणाओंका जो समुद्घातकी अपेक्षा स्पर्शन है वह सात कर्मोंके पदोंकी अपेक्षा जानना चाहिए और जो स्वस्थान स्पर्शन है वह आयुकर्मकी अपेक्षा जानना चाहिए। स्पर्शनका उल्लेख मूलमें किया ही है ।

१३५. देवोंमें सात कर्मोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और कुछ कम नौ बटे चौदह भाग क्षेत्रका स्पर्शन किया है । आयुकर्मके चारों पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार सब देवोंमें अपना-अपना स्पर्शन जानना चाहिए । पञ्चेन्द्रियद्विक और त्रसद्विक जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अवक्तव्य पदका भङ्ग क्षेत्रके समान है । आयुकर्मके चारों पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभङ्गज्ञानी, चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंमें जानना चाहिए। वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और कुछ कम तेरह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । आयुकर्मके सब पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछकम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—यहाँ सात कर्मोंके सम्भव पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन उन-उन मार्गणाओंका जो स्पर्शन है उतना है और आयुकर्मका बन्ध विहारवत्स्वस्थानके समय भी सम्भव है, इसलिए इसके सब पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है । आगे भी सब मार्गणाओंमें विचार कर इसी प्रकार स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए । यदि कहीं कोई विशेषता होगी तो मात्र उसका स्पष्टीकरण करेंगे ।

१३६. वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी और मनःपर्ययज्ञानीसे लेकर सूक्ष्मसाम्पराय संयत तक स्पर्शन क्षेत्रके समान है । आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । आयुकर्मके सब पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम

---

[1] आ०प्रतौ तस० २ सत्तण्णं इति पाठः ।

आउ० सव्वप० अट्ठचों० । [एवं] ओधिदं०-सम्मा०-खइग०-वेदग०-सम्मामि० । संजदासंज० सत्तण्णं क० तिण्णिप० छच्चों० । आउ० खेंत्तभंगो । तेउ० देवोघं । पम्माए सहस्सारभंगो । सुक्काए आणदभंगो । णवरि सत्तण्णं क० अवत्त० खेंत्तभं० । सासणे सत्तण्णं क० तिण्णिप० अट्ठ-बारह० । आउ० सव्वप० अट्ठचों० ।

एवं फोसणं समत्तं[1]

कालाणुगमो

१३७. कालाणुगमेण दुवि०–ओघे० आदे० । ओघे० [सत्तण्णं क० भुज० अप्प० अवट्ठि० सव्वद्धा । अवत्त० ज० ए०, उ० संखेंज्जसम० । आउ० सव्वपदा० सव्वद्धा । एवं कायजोगि-ओरालि०-अचक्खु०-भवसि०-आहारग त्ति । एवं चेव तिरिक्खोघं एइंदि०-पंचकाय०-ओरालियमि०-णवुंस०–कोधादि४–मदि-सुद०–असंज०-तिण्णिले०-अभव०-मिच्छा०-असण्णि-अणाहारग त्ति । णवरि सत्तण्णं क० अवत्त० णत्थि । लोभे मोह० अवत्त० अत्थि ।

आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें जानना चाहिये । संयतासंयत जीवोंमें सात कर्मोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । आयुकर्मका भङ्ग क्षेत्रके समान है । पीतलेश्यावाले जीवोंमें सामान्य देवोंके समान भङ्ग है । पद्मलेश्यावाले जीवोंमें सहस्रार कल्पके समान भङ्ग है । शुक्ललेश्यावाले जीवोंमें आनतकल्पके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि शुक्ललेश्यामें सात कर्मोंके अवक्तव्य पदका भङ्ग क्षेत्रके समान है । सासादनसम्यक्त्वमें सात कर्मोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । आयुकर्मके सब पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

इस प्रकार स्पर्शन समाप्त हुआ ।

१३७. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका काल सर्वदा है । अवक्तव्यपदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । आयुके सब पदोंका काल सर्वदा है । इस प्रकार ओघके समान काययोगी, औदारिककाययोगी, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंमें जानना चाहिए । तथा इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्च, एकेन्द्रिय, पाँच स्थावरकायिक, औदारिकमिश्रकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असयत, तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि सात कर्मोंका अवक्तव्यपद नहीं है । मात्र लोभकषायमें मोहनीयका अवक्तव्यपद है ।

विशेषार्थ—ओघसे सात कर्मोंके भुजगार आदि तीन पद यथासम्भव एकेन्द्रिय आदि सब जीवोंके सम्भव हैं, इसलिए इनका काल सर्वदा कहा है और इनका अवक्तव्यपद उपशम-

---

[1] ता०प्रतौ एवं फोसणं समत्तं इति पाठो नास्ति ।

१३८. आदेसेण णेरइएसु] सत्तण्णं क० भुज०-अप्प० सव्वद्धा। अवट्ठि० ज० ए०,[1] उ० आवलि० असं०। आउ० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० पलिदो० असं०। अवट्ठि०-अवत्त० ज० ए०, उ० आवलि० असं०। एवं सव्वअसंखेॅज्जरासीणं। संखेॅज्जरासीणं पि तं चेव। णवरि सत्तण्णं क० अवट्ठि०-अवत्त० ज० ए०, उ० संखेॅज्जसम०। आउ० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०। अवट्ठि०-अवत्त० ज० ए०, उ० संखेॅज्जसम०।

श्रेणिसे उतरते समय सम्भव है, इसलिए इसका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। आयुकर्मके सब पद एकेन्द्रिय आदि सब जीवोंके सम्भव होनेसे उनका भी काल सर्वदा कहा है। यहाँ काययोगी आदिमें ओघप्ररूपणा अविकल बन जाती है, इसलिए उनका कथन ओघके समान जानने की सूचना की है। सामान्य तिर्यञ्च आदिमें अन्य सब प्ररूपणा तो ओघके समान बन जाती है। मात्र इनमें सात कर्मोंका अवक्तव्यपद नहीं होता। मात्र लोभकषाय मोहनीय कर्मकी अपेक्षा इसका अपवाद है।

१३८. आदेशसे नारकियोंमें सात कर्मके भुजगार और अल्पतरपदका काल सर्वदा है। अवस्थितपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। आयुकर्मके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवस्थित और अवक्तव्यपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार सब असंख्यात राशियोंमें जानना चाहिए। संख्यात राशियोंमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। केवल इतनी विशेषता है कि सात कर्मोंके अवस्थित और अवक्तव्यपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। आयुकर्मके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थित और अवक्तव्यपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है।

विशेषार्थ—नारकियोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतरपदका एक जीवकी अपेक्षा यद्यपि जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है फिर भी नाना जीवोंकी अपेक्षा ये पद सदा काल नियमसे पाये जाते हैं, इसलिए इनका काल सर्वदा कहा है। इनमें अवस्थितपदका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल चालू उपदेशके अनुसार ग्यारह समय कहा है। यदि नाना जीवोंकी अपेक्षा इस कालका विचार करते हैं तो वह कम से कम एक समय और अधिक से अधिक आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है, इसलिये यहाँ सात कर्मोंके अवस्थितपदका जघन्य काल एक समय उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। आयुकर्मके भुजगार और अल्पतरपदका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। किन्तु आयुकर्मका सदा बन्ध नहीं होता, इसलिए नाना जीवोंकी अपेक्षा इस कालका विचार करनेपर वह जघन्यरूपसे एक समय और उत्कृष्ट रूपसे पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है, क्योंकि नाना जीव कमसे कम एक समयके लिए इन पदोंके धारक हों और दूसरे समयमें अन्य पदवाले हो जावें यह भी सम्भव है और निरन्तर क्रमसे नाना जीव यदि अन्तर्मुहूर्त कालतक इन पदोंके साथ आयुबन्ध करें तो उस सब कालका जोड़ पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है, इसलिए यहाँ आयुकर्मके उक्त पदोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। यहाँ आयुकर्मके अवस्थित और अवक्तव्यपदका जघन्य काल एक समय और

---

[1] ता०प्रतौ सव्वद्धा। ठि (अवट्ठि) ज० एग०, आ० प्रतौ सव्वद्धा। अवट्ठि० अवत्त० ज० ए० इति पाठः।

१३९. बादरपुढ०-आउ०-तेउ०-वाउ०-पत्ते०पज्ज० पंचिं० [तिरि०अप०भंगो। वेउव्वियमि० सत्तण्णं क० भुज०] ज० अंतो[1]०, उ० पलि० असं०। आहार० अट्ठण्णं भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०। अवट्ठि० आउ० अवत्त० ज० ए०[2], उ० संखें०। आहारमि० सत्तण्णं क० भुज० ज० उ० अंतो०[3]। आउ० दोपदा० आहारकायजोगिभंगो।

एवं कालं समत्तं[4]

उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है यह स्पष्ट ही है, क्योंकि नाना जीव संख्यात समय तक अन्तरके विना यदि उक्त पदको प्राप्त होते हैं तो वह सब काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण ही होता है। असंख्यात संख्यावाली अन्य मार्गणाओंमें यह काल इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। मात्र जिन मार्गणाओंमें सात कर्मोंका अवक्तव्यपद है उनमें इसका काल ओघके समान कहना चाहिए। कारण स्पष्ट है। संख्यात संख्यावाली मार्गणाओंमें भी यह काल इसी प्रकार कहना चाहिए। जो विशेषता है उसका अलगसे निर्देश किया ही है।

१३९. बादर पृथिवीकायिकपर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिकपर्याप्त, बादर वायुकायिकपर्याप्त और बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिकपर्याप्त जीवोंमें पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च-अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगारपदका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। आहारककाययोगी जीवोंमें आठ कर्मोंके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितपदका और आयुकर्मके अवक्तव्यपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार पदका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। आयुकर्मके दो पदोंका भङ्ग आहारककाययोगी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें आठों कर्मोंके सम्भव पदोंका जो काल प्राप्त होता है वही बादर पृथिवीकायिकपर्याप्त आदि जीवोंमें बन जाता है, इसलिए यह काल पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान कहा है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगारपदका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कह आये हैं। नाना जीव यदि एक साथ इस मार्गणाको प्राप्त हों और फिर न प्राप्त हों तो नाना जीवोंकी अपेक्षा भी इस मार्गणामें उक्त पदका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त बन जाता है। तथा लगातार अन्तर्मुहूर्त के भीतर निरन्तर रूपसे यदि नाना जीव वैक्रियिकमिश्रकाययोगी होते रहें तो उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है, इसलिए यहाँ इस पदका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। आहारककाययोगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए इस योगमें आठों कर्मोंके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। आठों कर्मोंके अवस्थितपदका और आयुकर्मके अवक्तव्यपदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय इसलिए कहा है, क्योंकि इस योगके धारक जीव संख्यात होते हैं और वे लगातार संख्यात समय तक ही होते हैं। आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार-

---

[1] ता०आ०प्रत्योः पंचिं०······ज० अंतो० इति पाठः। [2] ता०प्रतौ अवत्त० (?) ज० ए० इति पाठः। [3] आ०प्रतौ ज० ए०, उ० अंतो० इति पाठः। [4] ता०प्रतौ एवं कालं समत्तं इति पाठो नास्ति।

अंतराणुगमो

१४०. अंतराणुगमेण दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० सत्तण्णं क० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० णत्थि अंतरं। अवत्त० ज० ए०, उ० वासपुध०। आउ० चत्तारिपदा णत्थि अंतरं। एवं ओघभंगो कायजोगि[1]-ओरालि०-अचक्खु०-भवसि०-आहारग त्ति णेदव्वं। एवं चेव तिरिक्खोघं एइंदिय०-पंचका०-ओरालि०मि०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-तिण्णिले०-अब्भव-मिच्छा०-असण्णि[2]०-अणाहारग त्ति। णवरि सत्तण्णं क० अवत्त० णत्थि अंतरं। लोभे मोह० अवत्त० अत्थि।

१४१. णिरएसु सत्तण्णं क० भुज०-अप्प० णत्थि अंतरं। अवट्ठि० ज० ए०, उ० सेढीए असं०। आउ० भुज०-अप्प०-अवत्त० पगदिअंतरं। अवट्ठि० ज० ए०,

पदका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कह आये हैं। अब यदि नाना जीव भी निरन्तर इस योगको प्राप्त हों तो उन सबके कालका योग भी अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं होगा, इसलिए इस योगमें सात कर्मोंके भुजगारपदका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। आहारकमिश्रकाययोगमें आयुकर्मके भुजगार और अवक्तव्य ये दो पद होते हैं। इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल यहाँ आहारककाययोगी जीवोंके समान बन जानेसे वह उनके समान कहा है।

इस प्रकार काल समाप्त हुआ।

अन्तरानुगम

१४०. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका अन्तरकाल नहीं है। अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है। आयुकर्मके चारों पदोंका अन्तरकाल नहीं है। इस प्रकार ओघके समान काययोगी, औदारिककाययोगी, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंमें जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्च, एकेन्द्रिय, पाँच स्थावरकायिक, औदारिकमिश्रकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें सात कर्मोंके अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है तथा लोभकषायमें मोहनीयकर्मका अवक्तव्यपद है।

विशेषार्थ—पहले ओघसे और ओघके अनुसार उक्त मार्गणाओंमें कालका स्पष्टीकरण कर आये हैं। यहाँ अन्तरका स्पष्टीकरण उसे ध्यानमें रख कर लेना चाहिए। उपशमश्रेणिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण होनेसे यहाँ सात कर्मोंके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण कहा है, इतना यहाँ विशेष स्पष्टीकरण समझ लेना चाहिए।

१४१. नारकियोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतरपदका अन्तरकाल नहीं है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। आयुकर्मके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदका अन्तर काल प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके

---

[1] ता० प्रतौ अंत०……[एवं ओघभंगो] कायजोगि इति पाठः। [2] ता० प्रतौ अब्भव० असण्णि इति पाठः।

उ० सेढीए असं० । एवं असंखेंज्जरासीणं संखेंज्जरासीणं । बादरपुढ०[1]-आउ०-तेउ०-वाउ०-पत्तेय०पज्जत्त० पंचिं०तिरि०अप०भंगो । वेउव्वि०मि० सत्तण्णं क० भुज० ज० ए०, उ० बारसमुहु० । एदेण सेसाणं पगदिअंतरं णेदव्वं याव सण्णि त्ति ।

एवं अंतरं समत्तं[2] ।

भावाणुगमो

१४२. भावाणुगमेण दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० अट्ठण्णं० भुज०-अप्प०-अवट्ठि०-अवत्त०बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं ।

असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार असंख्यात राशि और संख्यात राशियोंमें जानना चाहिये । बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त और बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीवोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगारपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर बारह मुहूर्त है । इस अन्तर कथनसे शेष मार्गणाओंमें संज्ञी मार्गणा तक प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान अन्तरकाल जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—नारकियोंमें सात कर्मोंका निरन्तर बन्ध होता रहता है किन्हींके भुजगाररूप और किन्हींके अल्पतररूप होता है, इसलिए यहाँ सात कर्मोंके इन पदोंके अन्तरकालका निषेध किया है । अब रहा यहाँ इन कर्मोंका अवस्थितपद सो वह निरन्तर नहीं होता । कभी एक समयके अन्तरसे भी हो जाता है और कभी योगस्थानोंके क्रमसे जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके अन्तरसे होता हैं, इसलिये इसका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है । आयुकर्मके अवस्थितपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए । मात्र इसके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर जैसा प्रकृतिबन्धमें अन्तर कहा है उस प्रकार घटित कर लेना चाहिये, क्योंकि जब आयुकर्मका बन्ध होता है तभी ये पद होते हैं यहाँ अन्य जितनी असंख्यात और संख्यात संख्यावाली मार्गणाऐं हैं उनमें उक्त विशेषताओं के साथ अन्तरप्ररूपणा जाननी चाहिये । बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त आदिमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग बन जानेसे इसकी अन्तरप्ररूपणा उनके समान जाननेकी सूचना की है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर बारह मुहूर्त है, इसलिये इसमें सात कर्मोंके भुजगारपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर बारह मुहूर्त कहा है । इसी प्रकार अपनी-अपनी विशेषताको जानकर अन्तरकाल अन्य सब मार्गणाओंमें जानना चाहिये ।

इस प्रकार अन्तरकाल समाप्त हुआ ।

भावानुगम

१४२. भावानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे आठों कर्मोंके भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका कौन-सा भाव है ? औदयिक भाव है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

इस प्रकार भावानुगम समाप्त हुआ ।

---

[1] आ० प्रतौ असंखेज्जरासीणं । बादरपुढ० इति पाठः । [2] ता०प्रतौ एवं अंतरं समत्तं इति पाठो नास्ति, आ०प्रतौ एवं अंतरं णेदव्वं इति पाठः ।

अप्पाबहुआणुगमो

१४३. अप्पाबहुगं दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० सत्तण्णं क० सव्वत्थोवा अवत्त० । अवट्ठि० अणंतगु० । अप्प० असं०गु० । भुज० विसे० । एवं कायजोगि-ओरालि०-लोभक० मोह० अचक्खु०-भवसि०-आहारग त्ति । एदेसिं आउ० सव्वत्थोवा अवट्ठि० । अवत्त० असं०गु० । अप्प० असं०गु० । भुज० विसे० ।

१४४. णिरएसु सत्तण्णं क० सव्वत्थोवा अवट्ठि० । अप्प० असं०गु० । भुज० विसे० । आउ० ओघं । एवं सव्वणिरय-सव्वतिरिक्ख०-सव्वअपज्ज०-देवा याव[1] सहस्सार त्ति एइंदि०-विगलिंदि०-पंचका०-ओरालि०मि०-वेउव्वि०-इत्थि०-पुरिस०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-विभंग०—संजदासंजद०—असंजद०—[पंचले०-अब्भवसि०-] वेदग[2]०-सासण०-सम्मामि०-मिच्छा०-असण्णि त्ति ।

१४५. मणुसेसु सत्तण्णंक० सव्वत्थो० अवत्त० । अवट्ठि० असं०गु०[3] । अप्प० असं०गु० । भुज० विसे० । आउ० ओघं । एवं पंचिं०-तस०२—पंचमण०-पंचवचि०-

---

अल्पबहुत्वानुगम

१४३. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे सात कर्मोंके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । इनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं । इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, मोहनीयकर्मकी अपेक्षा लोभकषायवाले, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंमें जानना चाहिए । इनमें आयुकर्मके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । इनसे अवक्तव्यपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं ।

१४४. नारकियोंमें सात कर्मोंके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । आयुकर्मका भङ्ग ओघके समान है । इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, सब अपर्याप्त, सामान्य देव, सहस्रार कल्पतकके देव, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, पाँच स्थावरकायिक, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, संयतासंयत, असंयत, पाँच लेश्यावाले, अभव्य, वेदकसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें जानना चाहिये ।

१४५. मनुष्योंमें सात कर्मोंके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । इनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । आयुकर्मका भङ्ग ओघके समान है । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुत-

---

[1] आ०प्रतौ अपज्ज० सव्वदेवा याव इति पाठः । [2] ता०प्रतौ असंज०···[खइग०] वेदग० आ०प्रतौ असंजद०···वेदग० इति पाठः । [3] ता०प्रतौ सव्वत्थो० [अवत्त०] अवट्ठि० असं०गु०, आ०प्रतौ सव्वत्थो० अवट्ठि०, अवत्त० असं०गु० इति पाठः ।

आभिणि-सुद-ओधिणा०-चक्खु०-ओधिदं०-[सुक्क०-]सम्मा०-[खइग०] उवसम०-सण्णि त्ति। एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु। णवरि संखेँज्जं कादव्वं। एवं सव्वदेवाणं संखेँज्जरासीणं। अवगद० सव्वत्थो० अवत्त०। अवट्ठि० संखेँ०गु०। अप्प० संखे०गु०! भुज० विसे०। एवं सुहुमसं०। अवत्त० णत्थि। एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं।

एवं भुजगारबंधो समत्तो

पदणिक्खेवे समुक्कित्तणा

१४६. एत्तो पदणिक्खेवे त्ति तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोगद्दाराणि—समुक्कित्तणा सामित्तं अप्पाबहुगे त्ति। समुक्कित्तणा दुवि०—ज० उ०। उ० प०। दुवि०—ओघे०[1] आदे०। ओघे० अट्ठण्णं क० अत्थि उक्कस्सिया वड्ढी उक्कस्सिया हाणी उक्कस्सयमवट्ठाणं। एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं। णवरि वेउ०मि०-अहारमि०-कम्मइ०-अणाहारग त्ति[2] अत्थि उ० वड्ढी।

१४७. जह० पगदं। दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० अट्ठण्णं क० अत्थि जह० वड्ढी० जह० हाणी जह० अवट्ठाणं। एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं। णवरि वेउव्वि०मि०-आहारमि०-कम्मइ०-अणाहारग० अत्थि जह० वड्ढी।

ज्ञानी, अवधिज्ञानी, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और संज्ञी जीवोंमें जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यहाँ संख्यात कहना चाहिए। इसी प्रकार शेष सब देव और संख्यात राशियोंमें जानना चाहिए। अपगतवेदी जीवोंमें अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें अवक्तव्यपद नहीं है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए।

इस प्रकार भुजगारबन्ध समाप्त हुआ।

पदनिक्षेप समुत्कीर्तना

१४६. आगे पदनिक्षेपका प्रकरण है। उसमें ये तीन अनुयोगद्वार होते हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पबहुत्व। समुत्कीर्तना दो प्रकारकी है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे आठों कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें उत्कृष्ट वृद्धि है।

१४७. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे आठों कर्मोंकी जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि और जघन्य अवस्थान है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें जघन्य वृद्धि है।

इस प्रकार समुत्कीर्तना समाप्त हुई।

---

[1] आ०प्रतौ समुक्कित्तणा दुवि० ओघे० इति पाठः। [2] ता०प्रतौ आहारमि० [कम्मइ०] आहारग त्ति, आ०प्रतौ आहारमि० कम्मइ० आहारग त्ति इति पाठः।

१४८. सामित्ताणुगमेण दुवि०–ज० उ०। उ० पग०। दुवि०–ओघे० आदे०। ओघे० [छ० क०] उक्कस्सिया वड्ढी कस्स ? यो सत्तविधबंधगो तप्पाओग्गजहण्णादो जोगट्ठाणादो उक्कस्सयं जोगट्ठाणं गदो [छव्विध-] बंधगो जादो तस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हाणी कस्स[1] ? यो छव्विधबंधगो उक्कस्सजोगी मदो देवो जादो तदो तप्पाओग्गजहण्णए जोगट्ठाणे पडिदो तस्स उ० हाणी। उक्क० अवट्ठाणं कस्स ? यो छव्विधबंध० उक्क०जोगी पडिभग्गो तप्पाओग्गजहण्णए जोगट्ठाणे पदिदो तदो सत्तविधबंधगो जादो तस्स उ० अवट्ठाणं। उक्कस्सगादो जोगट्ठाणादो पडिभग्गो यम्हि तप्पाओग्गजहण्णए जोगट्ठाणे पडिदो तदो जोगट्ठाणं थोवयरं। तप्पाओग्ग[2]जहण्णगादो जोगट्ठाणादो उक्कस्सयं जोगट्ठाणं गच्छदि तं जोगट्ठाणं असं०गु०। एदमुक्कस्सय[3]मवट्ठाणसाधणपदं।

१४९. मोह० उक्क० वड्ढी कस्स ? यो अट्ठविधबंधगो तप्पाओग्गजहण्णगादो जोगट्ठाणादो उक्कस्सयं जोगट्ठाणं गदो तदो सत्तविधबंधगो जादो तस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हाणी कस्स ? यो सत्तविधबंधगो उक्कस्सजोगी मदो सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्तएसु[4] उववण्णो तप्पाओग्गजहण्णए पडिदो तस्स उ० हाणी। उक्क० अवट्ठाणं

१४८. स्वामित्वानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे छः कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला जो जीव तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त होकर छ प्रकारके कर्मोंका बन्धक हुआ है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानि का स्वामी कौन है ? जो छह प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगवाला जीव मरकर देव हुआ। अनन्तर तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें गिरा वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कौन है ? जो छह प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगसे युक्त जीव प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें गिरा। अनन्तर सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा वह उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। उत्कृष्ट योगस्थानसे प्रतिभग्न होकर जिस तात्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें गिरा। उससे वह योगस्थान स्तोकतर है। तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको जाता है वह योगस्थान असंख्यातगुणा है। यह उत्कृष्ट अवस्थानका साधनपद है।

१४९. मोहनीयकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला जीव तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त होकर सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगसे युक्त जीव मरकर तथा सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीवोंमें उत्पन्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें गिरा वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करता हुआ जो उत्कृष्ट योग-

---

[1] ता०प्रतौ उक्कस्सयं [जोगट्ठाणं···बंधगो जादो तस्स उक्कस्सिंया वड्ढी]। उ० हा० कस्स इति पाठः। [2] ता०प्रतौ जोगट्ठाणं······[थोवयरं] तप्पाओग—इति पाठः। [3] आ०प्रतौ एवमुक्कस्सय इति पाठः। [4] ता०प्रतौ सुहुमणिगोदजीवएसु, इति पाठः।

कस्स ? जो सत्तविधबंधगो उक्कस्सजोगी पडिभग्गो तप्पाओंग्गजहण्णए जोगट्ठाणे पडिदो अट्ठविधबंधगो जादो तस्स उक्क० अवट्ठाणं ।

१५०. आउ० उक्क० वड्ढी[1] कस्स ? यो अट्ठविधबंधगो तप्पा०जहण्णगादो जोगट्ठाणादो उक्कस्सजोगट्ठाणं गदो तस्स उ० वड्ढी । उ० हाणी कस्स ? जो उक्क०-जोगी पडिभग्गो तप्पा०जहण्णए जोगट्ठाणे पडिदो तस्स उ० हाणी । तस्सेव से काले उ० अवट्ठाणं । एवं ओघभंगो कायजोगि-लोभक०-अचक्खु०-भवसि०-आहारग त्ति ।

१५१. णिरएसु सत्तण्णं क० उ० वड्ढी कस्स ? यो अट्ठविधबंधगो तप्पाओंग्ग-जहण्णगादो जोगट्ठाणादो उ० जोगट्ठाणं गदो तदो सत्तविधबंधगो जादो तस्स उक्क० वड्ढी । उ० हाणी कस्स ? यो सत्तविधबंधगो उक्क०जोगी पडिभग्गो तप्पाओंग्गजहण्णए जोगट्ठाणे पडिदो अट्ठविधबंधगो जादो तस्स उक्क० हाणी । तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं । आउं० ओघं । एवं सव्वणिरय-सव्वदेव-वेउव्वि०-आहार०-विभंग०-परिहार०-संजदासंज०-सम्मामि० ।

१५२. तिरिक्खेसु सत्तण्णं० उ० वड्ढी कस्स ? यो अट्ठविधबंधगो तप्पा०जह०-जोगट्ठाणादो उ० जोगट्ठाणं गदो तदो सत्तविधबंधगो जादो तस्स उ० वड्ढी । उ०

वाला जीव प्रतिभग्न होकर तथा तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें गिरकर आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला हो गया वह उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है ।

१५०. आयुकर्मकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला जीव तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त हुआ वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है । उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो उत्कृष्ट योगवाला जीव प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें गिरा वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है । तथा उसीके अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है । इस प्रकार ओघके समान काययोगी, लोभकषायी, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंमें जानना चाहिए ।

१५१. नारकियोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला जो जीव तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त होकर सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है । उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो सात प्रकार के कर्मोंका बन्ध करता हुआ उत्कृष्ट योगवाला जीव प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें गिरकर आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है । तथा उसीके अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है । आयुकर्मका भङ्ग ओघके समान है । इसी प्रकार सब नारकी, सब देव, वैक्रियिककाययोगी, आहारककाययोगी, विभङ्गज्ञानी, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए ।

१५२. तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला जीव तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त होकर सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी

---

[1] ता०प्रतौ आउ० वड्ढी० इति पाठः ।

हाणी कस्स ? यो सत्तविधबंधगो उक्कस्सजोगी मदो सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्तएसु उववण्णो तस्स उक्क० हाणी । उक्क० अवट्ठाणं कस्स ? यो सत्तविधबंधगो उक्कस्सजोगी पडिभग्गो तप्पाओग्गजहण्णए जोगट्ठाणे पडिदो तदो अट्ठविधबंधगो जादो तस्स उक्क० अवट्ठाणं । [आउ० ओघं] । एवं तिरिक्खोघं णवुंस०-कोधादि०३-मदि०-सुद०-असंज०-तिण्णिले०-अब्भव०-मिच्छा०-असण्णि त्ति । पंचिंदि०तिरि०३ सत्तण्णं क० वड्ढि-अवट्ठाणं तिरिक्खोघं । हाणी कस्स ? यो अण्ण० सत्तविधबंधगो…………।

अप्पाबहुगं

१५३.……संभवेण[1] ओरा०मि० सत्तण्णं क० ओघं । णवरि असंखेंज्जगुणहाणी उवरि असंखेंज्जगुणवड्ढी असंखेंज्जगु० । आउ० ओघं । अवगद० सत्तण्णं क० सव्वत्थो० अवट्ठि० । अवत्त० संखेंज्जगु० । असंखेंज्जभागवड्ढि-हाणी दो वि तु० संखेंज्जगु० । संखेंज्जभागवड्ढि-हाणी दो वि तु० संखेंज्जगु० । संखेंज्जगुणवड्ढि-हाणी दो वि तु० संखेंज्जगु० । असंखेंज्जगुणहाणी संखेंज्जगु० । असंखेंज्जगुणवड्ढी विसेसा० । एवं एदेण बीजेण

है । उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करता हुआ उत्कृष्ट योगवाला जीव मरा और सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीवोंमें उत्पन्न हुआ वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है । उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कौन है ? जो सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगवाला जीव प्रतिभग्न होकर और तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें गिरकर आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा वह उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है । आयुकर्मका भङ्ग ओघके समान है । इस प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंके समान नपुंसकवेदी, क्रोधादि तीन कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें जानना चाहिए । पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चत्रिकमें सात कर्मोंकी वृद्धि और अवस्थानका स्वामी सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है । उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगसे युक्त जो अन्यतर जीव प्रतिभग्न होकर और तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें गिरकर आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है…………।

अल्पबहुत्व

१५३………सम्भव होनेसे औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सात कर्मोंका भंग ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि असंख्यातगुणहानिके ऊपर असंख्यातगुणवृद्धि असंख्यातगुणी है । आयुकर्मका भङ्ग ओघके समान है । अवगतवेदी जीवोंमें सात कर्मोंके अवस्थित पदवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अवक्तव्यपदवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिवाले जीव दोनों ही तुल्य होकर संख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिवाले जीव दोनों ही तुल्य होकर संख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यातगुणवृद्धि और संख्यातगुणहानिवाले जीव दोनों ही तुल्य होकर संख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यातगुणहानिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यातगुणवृद्धिवाले जीव विशेष

---

[1] ता०प्रतौ –बंधगो [अत्र ताडपत्रमेकं विनष्टम्……] संभवेण, आ० प्रतौ बंधगो……संभवेण इति पाठः ।

याव अणाहारग त्ति णेदव्वं । एवं अप्पाबहुगं समत्तं ।

एवं वड्ढिबंधो समत्तो

अज्झवसाणसमुदाहारो पमाणाणुगमो

१५४. अज्झवसाणसमुदाहारे त्ति तत्थ इमाणि दुवे अणियोगद्दाराणि—पमाणाणुगमो अप्पाबहुगे त्ति । पमाणाणुगमेण णाणावरणीयस्स असंखेँज्जाणि पदेसबंधट्ठाणाणि जोगट्ठाणेहिंतो संखेँज्जदिभागुत्तराणि । अट्ठविधबंधगेण ताव सव्वाणि जोगट्ठाणाणि लद्धाणि । तदो सत्तविधबंधगस्स उक्कस्सगादो अट्ठविधबंधगस्स उक्कस्सगं सुद्धं । सुद्धसेसं यावदियो भागो अधिट्ठित्तो[1] जोगट्ठाणं तदो सत्तविधबंधगेण विसेसो लद्धो । एवं सत्तविधबंधगस्स छव्विधबंधगेण उवणिदा । एदेण कारणेण णाणावरणीयस्स असंखेँज्जाणि पदेसबंधट्ठाणाणि जोगट्ठाणेहिंतो संखेँज्जभागुत्तराणि । एवं सत्तण्णं कम्माणं ।

एवं पमाणाणुगमे त्ति समत्तं ।

अप्पाबहुआणुगमो

१५५. अप्पाबहुगं०—सव्वत्थो० णाणावरणीयस्स जोगट्ठाणाणि । पदेसबंधट्ठाणाणि विसेसाधियाणि । एवं सत्तण्णं कम्माणं । आउगस्स जोगट्ठाणाणि पदेसबंधट्ठाणाणि सरिसाणि । एदेण कारणेण आउगस्स अप्पाबहुगं णत्थि ।

एवं अप्पाबहुगं समत्तं ।

अधिक हैं । इसप्रकार इस बीज पदके अनुसार अनाहारक मार्गणा तक अल्पबहुत्व ले जाना चाहिए ।

इस प्रकार अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ।

अध्यवसानसमुदाहार प्रमाणानुगम

१५४. अध्यवसानसमुदाहारका प्रकरण है । उसमें ये दो अनुयोगद्वार होतें हैं—प्रमाणानुगम और अल्पबहुत्व । प्रमाणानुगमकी अपेक्षा ज्ञानावरणीय कर्मके असंख्यात प्रदेशबन्ध स्थान हैं जो योगस्थानोंसे संख्यातवें भागप्रमाण अधिक हैं । आठ प्रकारके कर्मोंके बन्धक जीवने सब योगस्थान प्राप्त किये हैं । उससे सात प्रकारके बन्धकके उत्कृष्टसे आठ प्रकारके बन्धकका उत्कृष्ट शुद्ध है । तथा इस शुद्धसे शेष जितना भाग योगस्थानको प्राप्त हुआ है उससे सात प्रकारके कर्मोंके बन्धकने विशेष प्राप्त किया है । इसी प्रकार सात प्रकारके बन्धकका छह प्रकारके कर्मोंके बन्धकने प्राप्त किया है । इस कारणसे ज्ञानावरणीय कर्मके असंख्यात प्रदेशबन्धस्थान हैं जो योगस्थानोंसे संख्यातवें भागप्रमाण अधिक हैं । इसी प्रकार सात कर्मोंके विषयमें जानना चाहिए ।

इस प्रकार प्रमाणानुगम समाप्त हुआ ।

अल्पबहुत्वानुगम

१५५. अल्पबहुत्व—ज्ञानावरणीय कर्मके योगस्थान सबसे स्तोक हैं । इनसे प्रदेशबन्धस्थान विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार सात कर्मोंकी अपेक्षा जानना चाहिए । आयुकर्मके योगस्थान और प्रदेशबन्धस्थान समान हैं । इस कारण आयुकर्म की अपेक्षा अल्पबहुत्व नहीं है ।

इस प्रकार अल्पबहुत्व समाप्त हुआ

---

[1] ता०प्रतौ अदिठित्तो इति पाठः ।

जीवसमुदाहारो जीवपमाणाणुगमो

१५६. जीवसमुदाहारे त्ति तत्थ इमाणि दुवे अणियोगद्दाराणि—जीवपमाणाणुगमो अप्पाबहुगे त्ति । जीवपमाणाणुगमेण सव्वत्थोवा सुहुमस्स अपज्जत्तयस्स जहण्णयं पदेसबंधट्ठाणं । बादरस्स अपज्जत्तस्स जहण्णयं पदेसबंधट्ठाणं संखेंज्जगुणं । एवं यथायोगं तथा पदेसग्गं णेदव्वं ।

एवं जीवपमाणाणुगमो समत्तो ।

अप्पाबहुगाणुगमो

१५७. अप्पाबहुगं तिविधं—जहण्णयं उक्कस्सयं जहण्णुक्कस्सयं चेदि । उक्कस्सए पगदं—सव्वत्थोवा उक्कस्सपदेसबंधगा जीवा । अणुक्कस्सपदेसबंधगा जीवा अणंतगुणा । एवं अणंतरासीणं सव्वाणं । एवं असंखेंज्जरासीणं पि । णवरि असंखेंज्जगुणं कादव्वं । एवं संखेंज्जरासीणं पि । णवरि संखेंज्जगुणं कादव्वं । एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं ।

१५८. जह० पगदं० । अट्ठण्णं क० सव्वत्थोवा जहण्णपदेसबंधगा जीवा । अजहण्णपदे० जीवा असं०गु० । एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं । णवरि संखेंज्जरासीणं संखेंज्जगुणं कादव्वं ।

१५९. जहण्णुक्कस्सए पगदं । सव्वत्थोवा अट्ठण्णं क० उक्कस्सपदेसबंधगा जीवा । जह०पदे० जीवा अणंतगुणा । अजहण्णमणु०पदे० जीवा असं०गु० । एवं ओघभंगो

जीवसमुदाहार जीवप्रमाणानुगम

१५६. जीवसमुदाहारका प्रकरण है। उसमें ये दो अनुयोगद्वार होते हैं—जीवप्रमाणानुगम और अल्पबहुत्व। जीवप्रमाणानुगमकी अपेक्षा सूक्ष्म अपर्याप्तकके जघन्य प्रदेशबन्धस्थान सबसे स्तोक है। उससे बादर अपर्याप्तकके जघन्य प्रदेशबन्धस्थान संख्यातगुणा है। इस प्रकार योगके अनुसार प्रदेशाग्र जानना चाहिए।

इस प्रकार जीवप्रमाणानुगम समाप्त हुआ।

अल्पबहुत्वानुगम

१५७. अल्पबहुत्व तीन प्रकारका है—जघन्य, उत्कृष्ट और जघन्योत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। इसी प्रकार सब अनन्त राशियोंमें जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार असंख्यात राशियोंमें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि असंख्यातगुणा करना चाहिए। तथा इसी प्रकार संख्यात राशियोंमें भी जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि संख्यातगुणा करना चाहिए। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए।

१५८. जघन्यका प्रकरण है। आठ कर्मोंके जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे अजघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि संख्यात राशियोंमें संख्यातगुणा कहना चाहिए।

१५९. जघन्य उत्कृष्टका प्रकरण है। आठ कर्मोंके प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। उनसे अजघन्य-अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक

तिरिक्खोघं कायजोगि-ओरालि०-ओरा०मि०-कम्मइ०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंज०—अचक्खु०—तिण्णिले०—भवसि०—अभवसि०—मिच्छा०—असण्णि—आहार[1]०—अणाहारग त्ति ।

१६०. णेरइएसु सत्तण्णं क० सव्वत्थो० जह०पदे० जीवा । उक्क०पदे० जीवा असं०गु० । अजहण्णमणु०पदे० जीवा असं०गु० । आउ० सव्वत्थो० उक्क०पदे० जीवा । जह०पदे० जीवा असं०गु० । अजहण्णमणु०पदे० जीवा असं०गु० । एवं सव्वणिरयाणं देवाणं याव सहस्सार त्ति । आणद याव अवराइदा त्ति तं चेव । णवरि आउ० सव्वत्थो० उक्क०पदे० जीवा । जह०पदे० जीवा संखें०गु० । अजहण्णमणु०पदे० जीवा संखेंज्जगु० ।

१६१. मणुसेसु ओघं । णवरि असंखेंज्जगुणं कादव्वं । एवं एइंदि०-विगलिंदि०-पंचिं०-तस०२-पंचका०-इत्थि-पुरिस०-सण्णि त्ति । एवं पंचिं०तिरि०३ । मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सत्तण्णं क० ओघं । णवरि संखेंज्जगुणं कादव्वं । मोहणी० सव्वत्थो० जह०-पदे० जीवा । उक्क०पदे० जीवा संखें०गु० । अजहण्णमणु०पदे० जीवा संखें०गु० ।

१६२. सव्वअपज्जत्त० तसाणं थावराणं च णिरयभंगो । [सव्वट्ठसिद्धि०]

जीव असंख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार ओघके अनुसार सामान्य तिर्यञ्च, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी आहारक और अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए ।

१६०. नारकियोंमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे अजघन्य-अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सामान्य देव और सहस्रार कल्पतकके देवोंमें जानना चाहिए । आनत कल्पसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोंमें वही भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि इनमें आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं ।

१६१. मनुष्योंमें ओघके समान भङ्ग है । इतनी विशषता है कि असंख्यातगुणा कहना चाहिए । इसी प्रकार एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँच स्थावरकायिक, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और संज्ञी जीवोंमें जानना चाहिए । तथा इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चत्रिक में जानना चाहिए । मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि संख्यातगुणा कहना चाहिए । मोहनीय कर्मके जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं ।

१६२. त्रस और स्थावर आदि सब अपर्याप्तकोंमें नारकियोंके समान भङ्ग है ।

---

[1] ता०प्रतौ असण्णि त्ति आहार इति पाठः ।

सव्वत्थो०[1] सत्तण्णं क० जह०पदे० जीवा। उक्क०पदे० जीवा संखेज्जगु०। अजहण्णमणु०पदे० जीवा संखेज्जगु०। आउ० आणदभंगो।

१६३. पंचमण०-पंचवचि० अट्ठण्णं क० सव्वत्थो० उक्क०पदे० जीवा। जह०पदे० जीवा असं०गु०[2]। अजहण्णमणु०पदे० जीवा असं०गु०। [वेउव्वि०-] वेउव्वि०-मि०-तेउ०-पम्म०वेदग०-सासण०णिरयभंगो। आहार० अट्ठण्णं क० सव्वत्थो[3] ज०पदे० जीवा। उक्क०पदे० जीवा संखें०गु०। [अजहण्णमणु०पदे० जीवा सं०गु०]। आहारमि० अट्ठण्णं क० सव्वत्थो० उक्क०पदे० जीवा। जह०पदे० जीवा संखें०गु०। अजहण्णमणु० पदे० जीवा संखें०गु०। एवं अवगद०-मणपज्ज०-संज०-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुहुम०।

१६४. विभंग० अट्ठण्णं क० सव्वत्थो० उक्क०पदे० जीवा। जह०पदे० जीवा असं०गु०। अजहण्णमणु०पदे० जीवा असं०गु०। आभिणि-सुद-ओधि० सत्तण्णं क० मणुसोघं। मोह० सव्वत्थो० ज०पदे० जीवा। उक्क०पदे० जीवा असं०गु०। अजहण्णमणु०पदे० जीवा असं०गु०। एवं ओधिदं०-सुक्क०-सम्मा०-खइग०-उवसम०। णवरि

सर्वार्थसिद्धिमें सात कर्मोंके जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य-अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। आयुकर्मका भङ्ग आनत कल्पके समान है।

१६३. पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंमें आठों कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। [वैक्रियिककाययोगी,] वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, वेदकसम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें नारकियोंके समान भङ्ग है। आहारककाययोगी जीवोंमें आठों कर्मोंके जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें आठों कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार अपगतवेदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें जानना चाहिए।

१६४. विभङ्गज्ञानी जीवोंमें आठों कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य-अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग सामान्य मनुष्योंके समान है। मोहनीयके जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि शुक्ललेश्या और क्षायिक-

---

[1] ता०प्रतौ तसाणं च णिरयभंगो सव्वत्थो० इति पाठः। [2] ता०प्रतौ जी० ज० असंगु० इति पाठः। [3] ता०प्रतौ आहार० अट्ठ० अट्ठण्णं (?) सव्वत्थो० इति पाठः।

सुक्क०-खइग० आउ० आणदभंगो। छण्णं क० सव्वत्थो० उक्क०पदे० जीवा। जह०-पदे० जीवा संखें०गु०। अजहण्णमणु०पदे० जीवा असं०गु०। संजदासंजदा देवभंगो। चक्खु० तसपज्जत्त भंगो। सम्मामि० मणजोगिभंगो। एवं अप्पाबहुगं समत्तं।

एवं मूलपगदिपदेसबंधो समत्तो।

२ उत्तरपगदिपदेसबंधो

१६५. एत्तो उत्तरपगदिपदेसबंधे पुव्वं गमणीयं भागाभागसमुदाहारो। अट्ठविध-बंधगस्स यो णाणावरणीयस्स ऍक्को भागो आगदो· चदुधा विरिक्को। आभिणिबोधिय-णाणावरणीयस्स ऍक्को भागो। एवं सुद०-ओधिणा०-मणपज्ज०। तत्थ यं तं पदेसग्गं सव्वघादिपत्तं तदो ऍक्कैक्कस्स णाणावरणीयस्स सव्वघादीणं पदेसग्गस्स चदुभागो त्ति णादव्वो। यो दंसणावरणीयस्स भागो आगदो सो तिधा विरिक्को। चक्खु-दंसणावरणीयस्स ऍक्को भागो। एवं अचक्खुदं०-ओधिदं०। तत्थ यं तं पदेसग्गं सव्वघादिपत्तं तदो ऍक्कैक्कस्स दंसणावरणीयस्स सव्वघादिपदेसग्गस्स तिभागो त्ति णादव्वो। यदि णाम एदाओ चेव तिण्णि पगदीओ भवेॅज्जसु सेसाओ छप्पगदीओ ण भवेज्जसु तदो चक्खु०-अचक्खु०-ओधिदं० सव्वघादिपदेसग्गस्स तिभागमेॅत्तो भवे। तथा विधिणा

सम्यग्दृष्टि जीवोंमें आयुकर्मका भङ्ग आनतकल्पके समान है। तथा छह कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे जघन्य प्रदेशोंका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। संयतासंयत जीवोंमें देवोंके समान भङ्ग है। चक्षुदर्शनवाले जीवोंमें त्रसपर्याप्त जीवोंके समान भङ्ग है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें मनोयोगी जीवोंके समान भङ्ग है।

इस प्रकार अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

इस प्रकार मूलप्रकृतिप्रदेशबन्ध समाप्त हुआ।

२ उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्ध

१६५. आगे उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्धमें सर्वप्रथम भागाभागसमुदाहार जानने योग्य है—आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाले जीवको जो ज्ञानावरणीय कर्मका एक भाग प्राप्त होकर चार भागोंमें विभक्त हुआ है उनमेंसे आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय कर्मका एक भाग है। इसी प्रकार श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय और मनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्मोंके विषयमें जानना चाहिए। वहाँ पर जो प्रदेशाग्र सर्वघातिपनेको प्राप्त है उसमेंसे इन चारमेंसे एक एक ज्ञानावरणीयके लिये सर्वघातियोंके प्रदेशाग्रका चौथा भाग जानना चाहिए। जो दर्शनावरणीयका भाग आया है वह तीन भागोंमें विभक्त हुआ है। उनमेंसे चक्षुदर्शनावरणीय कर्मको एक भाग मिला है। इसी प्रकार अचक्षुदर्शनावरणीय और अवधिदर्शनावरणीयके लिये एक-एक भाग जानना चाहिए। वहाँ जो प्रदेशाग्र सर्वघातिपनेको प्राप्त हैं, उनमेंसे इन तीनमें एक-एक दर्शनावरणीयके लिये सर्वघाति प्रदेशाग्रका तीसरा भाग जानना चाहिये। यदि ये तीन प्रकृतियाँ ही हों, शेष छह प्रकृतियाँ न हों तो चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण और अवधिदर्शनावरणके लिये सर्वघाति प्रदेशाग्रका तीसरा भाग होवे किन्तु यथाविधि अन्य छह प्रकृतियाँ भी हैं। चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण और अवधिदर्शनावरणमेंसे प्रत्येकके लिए सर्वघाति प्रदेशाग्रका तीसरा

छप्पगदीओ च अत्थि । चक्खु०-अचक्खु-ओधिदं० सव्वघादिपदेसग्गस्स तिभागो। एदं सव्वाहि छहि पगदीहि तासिं च तिण्णं पगदीणं इतरासिं छण्णं पगदीणं यं पदेसग्गं तं पदेसग्गं तद्देहो चेव भागो णादव्वो। यद्देहो विणा वि छहि पगदीहि ण हु णवभागो त्ति णादव्वो।

१६६. अण्णदरवेदणीए एगो भागो आगदो सो समयपबद्धस्स अट्ठमभागो त्ति णादव्वो। यो मोहणीयस्स भागो आगदो सो दुधा विरिक्को—कसायवेदणीए ऍक्को भागो णोकसायवेदणीए ऍक्को भागो। यो कसायवेदणीए भागो आगदो सो चदुधा विरिक्को—कोधसंजलणाए ऍक्को भागो। एवं माणसंज०-मायसंज० लोभसंज०। तत्थ यं तं पदेसग्गं सव्वघादिपत्तं तदो एक्किस्से संजलणाए कसायवेदणीयस्स सव्वघादिपदेसग्गस्स चदुभागो त्ति णादव्वो। यद्देहो ऍक्किस्से संजलणाए कसायवेदणीयस्स सव्वघादिपदेसग्गस्स भागो तद्देहो इतरासिं बारसण्णं कसायाणं मिच्छत्तस्स च भागो णादव्वो। अण्णदरणोकसायवेदणीए यो भागो आगदो सो समयपबद्धस्स अट्ठभाग-दुभाग-पंचभागो त्ति[1] णादव्वो। अण्णदरआउगे यो भागो आगदो, सो समयपबद्धस्स अट्ठमभागो त्ति णादव्वो। चदुण्णं पि पगदीणं ऍक्को चेव भागो।

१६७. चदुण्णं गदीणं ऍक्को चेव भागो। पंचण्णं जादीणं ऍक्को चेव भागो। पंचण्णं सरीराणं ऍक्को चेव भागो। एवं छस्संठाणाणं तिण्णिअंगोवंगाणं छस्संघडणाणं ऍक्को चेव भागो। वण्ण-रस-गंध-पस्स-अगु०-उप०-पर-उस्सा०-आदाउज्जो०-णिमि०-

भाग मिलता है। यह सब छह प्रकृतियोंके साथ उन तीन प्रकृतियोंका तथा इतर छह प्रकृतियोंका जो प्रदेशाग्र है उस प्रदेशाग्रका उन प्रकृतियोंके अनुसार ही भाग जानना चाहिये। छह प्रकृतियोंके बिना जो भाग तीन प्रकृतियोंको मिलता है वह नौ भाग नहीं है ऐसा यहाँ जानना चाहिये।

१६६. अन्यतर वेदनीयके लिये जो एक भाग आया है वह समयप्रबद्धका आठवाँ भाग है ऐसा जानना चाहिये। जो मोहनीयका भाग आया है वह दो भागोंमें विभक्त है—कषायवेदनीयके लिये एक भाग और नोकषायवेदनीयके लिये ऐक भाग। जो कषायवेदनीयके लिये भाग आया है वह चार भागोंमें विभक्त होता है। क्रोधसंज्वलनके लिए एक भाग। इसी प्रकार मानसंज्वलन; मायासंज्वलन और लोभसंज्वलनके लिये एक एक भाग। वहाँ जो प्रदेशाग्र सर्वघातिपनेको प्राप्त हुआ है उसमेंसे एक संज्वलन कषायके लिये प्राप्त हुए सर्वघाति प्रदेशाग्रके चार भाग होते हैं ऐसा यहाँ जानना चाहिये। एक संज्वलन कषायके लिये सर्वघाति प्रदेशाग्रका जो भाग मिलता है उतना इतर बारह कषाय और मिथ्यात्वका भाग जानना चाहिए। अन्यतर नोकषायवेदनीयके लिये जो भाग आया है वह समयप्रबद्धके आठवें भागके आधेमेंसे पाँचवाँ भाग जानना चाहिये। चारों ही आयुओंके लिये एक ही भाग मिलता है।

१६७. चारों गतियोंके लिये एक ही भाग मिलता है। पाँच जातियोंके लिये एक ही भाग मिलता है। पाँच शरीरोंके लिये एक ही भाग मिलता है। इसी प्रकार छह संस्थान, तीन आङ्गोपाङ्ग और छह संहननोंके लिये एक एक भाग ही मिलता है। वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, निर्माण, तीर्थङ्कर और स्वर नाम-

---

[1] आ०प्रतौ अट्ठभाग पंचभागो त्ति पाठः।

तित्थयरणामा एवं पत्तेयं पत्तेयभागो। चदुण्णं आणुपुव्वियाणं दोण्णं विहायगदीणं तसादिदसयुगलाणं ऍक्कॅक्को चेव भागो। यो अण्णदरगोदे भागो आगदो सो समयपबद्धस्स अट्ठमभागो त्ति णादव्वो। यो अण्णदरे अंतराइगे भागो आगदो सो समयपबद्धस्स अट्ठमभाग० पंचमभागो त्ति णादव्वो।

एवं भागाभागं समत्तं

चदुवीसअणिओगद्दाराणि

यं सव्वघादिपत्तं सगकम्मपदेसाणंतिमो भागो।
आवरणाणं चदुधा तिधा च तत्थ पंचधा विग्धे।
मोहे दुधा चदुद्धा पंचधा वा पि बज्झमाणीणं।
वेदणीयाउगगोदे य बज्झमाणीणं भागो से।

१६८. एदेण अट्ठपदेण तत्थ इमाणि चदुवीसमणियोगद्दाराणि—ट्ठाणपरूवणा सव्वबंधो णोसव्वबंधो एवं मूलपगदीए तथा णेदव्वं।

कर्म इनमेंसे प्रत्येकके लिये इसी प्रकार एक एक भाग मिलता है। चार आनुपूर्वी, दो विहायोगति और त्रसादि दस युगलोंके लिये एक एक ही भाग मिलता है। अन्यतर गोत्रकर्मके लिये जो भाग आया है वह समयप्रबद्धका आठवाँ भाग जानना चाहिये। जो अन्यतर अन्तरायके लिये भाग आया है वह समयप्रबद्धके आठवें भागका पाँचवाँ भाग जानना चाहिये।

विशेषार्थ—यहाँ आठों कर्मोंकी उत्तर प्रकृतियोंमें प्रदेशबन्धके भागाभागका विचार किया गया है। गोम्मटसार कर्मकाण्डके प्रदेशबन्ध प्रकरणमें इस भागाभागका विशेष विचार किया है, इसलिये इसे वहाँसे जान लेना चाहिये। यहाँ उसका बीजरूपसे विचार किया है।

इस प्रकार भागाभाग समाप्त हुआ।

चौबीस अनुयोगद्वार

जो अपने कर्मप्रदेशोंका अनन्तवाँ भाग सर्वघातिपनेको प्राप्त है उससे अतिरिक्त शेष द्रव्य आवरण कर्मोंमें चार और तीन प्रकारका है। अन्तरायकर्ममें पाँच प्रकारका है। मोहनीय कर्ममें बँधनेवाली प्रकृतियोंका दो प्रकारका, चार प्रकारका और पाँच प्रकारका है। जो वेदनीय, आयु और गोत्र कर्ममें भाग है वह बँधनेवाली प्रकृतियोंका है।

१६८. इस अर्थपदके अनुसार वहाँ ये चौबीस अनुयोगद्वार होते हैं—स्थानप्ररूपणा, सर्वबन्ध और नोसर्वबन्ध इत्यादि मूलप्रकृतिबन्धमें जिस प्रकार कहे हैं उस प्रकार जानने चाहिये—

विशेषार्थ—यहाँ किस कर्मको किस प्रकारसे विभाग होकर द्रव्य मिलता है इस बीजपदका दो गाथाओं द्वारा निर्देश किया है। ये दो गाथाएँ श्वे०कर्मप्रकृतिमें भी उपलब्ध होती हैं। उनका आशय यह है कि प्रदेशबन्धके होने पर जो द्रव्य मिलता है, उसका अनन्तवाँ भाग सर्वघाति द्रव्य है और शेष बहुभाग देशघाति द्रव्य है। यहाँ देशघाति द्रव्यके विभागका मुख्यरूपसे विचार किया है। तात्पर्य यह है कि ज्ञानावरणको जो देशघाति द्रव्य मिलता है वह चार भागोंमें विभक्त हो जाता है। जो क्रमसे आभिनिबोधिकज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, और मनःपर्ययज्ञानावरणमें विभक्त हो जाता है। दर्शनावरणको जो द्रव्य मिलता है वह चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, और अवधिदर्शनावरण रूप होकर तीन

ट्ठाणपरूवणा

१६९. ट्ठाणपरूवणा दुविधा—योगट्ठाणपरूवणा चेव पदेसबंधपरूवणा चेव। एदाओ दो परूवणाओ मूलपगदिभंगो कादव्वो।

सव्व-णोसव्वपदेसबंधआदिपरूवणा

१७०. यो सो सव्वबंधो णोसव्वबंधो उक्क० अणुक्क० जह० अजह० णाम एदे यथा मूलपगदिपदेसबंधो तथा कादव्वं। णवरि एदेसिं छण्णं पि बंधगाणं णिरएसु यो सो सव्वबंधो णोसव्वबंधो णाम तस्स इमो णिद्देसो—पंचणा०-चदुदंसणा०-सादावे०-अट्ठक०-पुरिस०—दोगदि—पंचिं०—तिण्णिसरीर—हुंडसं०—ओरा०अंगो०—अप्पसत्थ०४—दोआणु०-उज्जो०-दोविहा०-तसादि०४-थिरादिछयुग०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा०-पंचंत० किं सव्वबंधो णोसव्वबंधो? णोसव्वबंधो। सेसाणं किं सव्वबंधो२? [सव्वबंधो] णोसव्वबंधो। सव्वाणि पदेसबंधट्ठाणाणि बंधमाणस्स सव्वबंधो। तदूणं बंधमाणस्स णोसव्वबंधो। एदाओ चेव पगदीओ किं उक्क० अणु०? अणुक्क०बंधो। सेसाणं किं उक्क० अणु०? [उक्कस्स-

भागोंमें बँट जाता है। अन्तराय कर्मका द्रव्य पाँच भागोंमें बँट जाता है। मोहनीयके द्रव्यके मुख्य दो भाग होते हैं—कषायवेदनीय और नोकषायवेदनीय। कषायवेदनीयका द्रव्य चार भागोंमें और नोकषायवेदनीयका द्रव्य पाँच भागोंमें बन्धके अनुसार विभक्त हो जाता है। वेदनीय, आयु और गोत्र इनके उत्तर भेदोंमेंसे एक कालमें एक-एक प्रकृतिका ही बन्ध होता है, इसलिये इन कर्मोंको मिलनेवाला द्रव्य बँधनेवाली उस-उस प्रकृतिको सम्पूर्ण मिल जाता है। यह बीजपद है। इसके अनुसार आगे सर्वबन्ध और नोसर्वबन्ध आदि २४ अधिकारोंके द्वारा उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्धका विचार किया जाता है।

स्थानप्ररूपणा

१६९. स्थानप्ररूपणा दो प्रकार की है—योगस्थानप्ररूपणा और प्रदेशबन्धस्थानप्ररूपणा। ये दो प्ररूपणाएँ मूलप्रकृतिबन्धके समान करनी चाहिए।

सर्वबन्ध-नोसर्वप्रदेशबन्ध आदि प्ररूपणा

१७०. जो सर्वबन्ध, नोसर्वबन्ध, उत्कृष्टबन्ध, अनुत्कृष्टबन्ध, जघन्यबन्ध और अजघन्यबन्ध हैं, ये जैसे मूलप्रकृतिप्रदेशबन्धमें कहे हैं उसप्रकार इनका विवेचन करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इन छहों बन्धकोंमेंसे नारकियोंमें जो सर्वबन्ध और नोसर्वबन्ध है, उसका यह निर्देश है—पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, आठ कषाय, पुरुषवेद, दो गति, पञ्चेन्द्रियजाति, तीन शरीर, हुण्डसंस्थान, औदारिकशरीरआङ्गोपाङ्ग, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसादि चार, स्थिर आदि छह युगल, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय इन प्रकृतियोंका क्या सर्वबन्ध है या नोसर्वबन्ध है? नोसर्वबन्ध है। शेष प्रकृतियोंका क्या सर्वबन्ध है या नोसर्वबन्ध है? सर्वबन्ध है और नोसर्वबन्ध है। सब प्रदेशबन्ध स्थानोंका बन्ध करनेवालेके सर्वबन्ध होता है और उससे न्यूनका बन्ध करनेवालेके नोसर्वबन्ध होता है। इन्हीं प्रकृतियोंका क्या उत्कृष्टबन्ध होता है या अनुत्कृष्टबन्ध होता है। अनुत्कृष्ट बन्ध होता है। शेष प्रकृतियोंका क्या उत्कृष्टबन्ध होता है या अनुत्कृष्टबन्ध होता है? उत्कृष्टबन्ध होता है

बंधो अणुक्कस्सबंधो।] सउक्कस्सयं पदेसग्गं बंधमाणस्स उक्कस्सबंधो। तदूणं बंधमाणस्स अणुक्कस्सबंधो। णिरएसु सव्वपगदीणं किं जह० अजह० ? अजहण्णबंधो। णवरि तित्थ० ज० अज०। एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं एदाणि अणियोगद्दाराणि।

सादि-अणादि-धुव-अद्धुवबंधपरूवणा

१७१. यो सो सादि० अणादि० धुवबं०[1] अद्धुव० णाम तस्स दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-छदंस०-बारसक०-भय-दु०-पंचंत० उ० जह० अजह० प०बं० किं सादि०४ ? सादि० अद्धुव०। अणु० किं सादि०४ ? सादि० अणादि० धुव०[2] अद्धुवबंधो वा। सेसाणं पगदीणं उक्क० अणु० जह० अजह० किं सादि०४ ? सादि० अद्धुव०। एवं अचक्खु०-भवसि०। णवरि भवसि० धुव० णत्थि। सेसाणं णिरयादि याव अणाहारग त्ति सव्वपगदीणं सादि० अद्धुवबंधो।

और अनुत्कृष्टबन्ध होता है। अपने उत्कृष्ट प्रदेशाग्रका बन्ध करनेवालेके उत्कृष्टबन्ध होता है। उससे न्यूनका बन्ध करनेवालेके अनुत्कृष्टबन्ध होता है। नारकियोंमें सब प्रकृतियोंका क्या जघन्यबन्ध होता है या अजघन्यबन्ध होता है ? अजघन्य बन्ध होता है। इतनी विशेषता है कि तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य बन्ध होता है और अजघन्यबन्ध होता है। इसीप्रकार अनाहारक मार्गणातक ये अनुयोगद्वार ले जाने चाहिए।

सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुवप्रदेशबन्धप्ररूपणा

१७१. जो सादिबन्ध, अनादिबन्ध, ध्रुवबन्ध और अध्रुवबन्ध है उसका निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध क्या सादि, अनादि, ध्रुव या अध्रुव है ? सादि और अध्रुव है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध क्या सादि, अनादि, ध्रुव या अध्रुव है ? सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव है। शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजन्य प्रदेशबन्ध क्या सादि, अनादि, ध्रुव या अध्रुव है ? सादि और अध्रुव है। इसी प्रकार अचक्षुदर्शनी और भव्य जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि भव्य जीवोंमें ध्रुवभङ्ग नहीं है। नारकियोंसे लेकर अनाहारक तक शेष मार्गणाओंमें सब प्रकृतियोंका सादि और अध्रुवबन्ध है।

विशेषार्थ—मूलमें कही गईं ध्रुवबन्धिनी पाँच ज्ञानावरण आदि प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध गुणप्रतिपन्न जीवोंके होता है। उससे पहले उनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होता है, इसलिए तो इन प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध अनादि है और इन प्रकृतियोंका उत्कृष्टके बाद पुनः अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सादि है। तथा भव्योंकी अपेक्षा वह अध्रुव है और अभव्योंकी अपेक्षा ध्रुव है। इस प्रकार पाँच ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धके सादि आदि चारों विकल्प बन जाते हैं। किन्तु इनके उत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्यबन्धके ये चारों विकल्प न होकर केवल सादि और अध्रुव ये दो ही विकल्प होते हैं, क्योंकि ये तीनों प्रकारके बन्ध कादाचित्क होते हैं। इनके सिवा अन्य जितनी प्रकृतियाँ हैं उनके उत्कृष्ट आदि चारों पद कादाचित्क होनेसे उनमें सादि और अध्रुव ये दो ही विकल्प बनते हैं। यह ओघ प्ररूपणा है जो अचक्षुदर्शनी और भव्यमार्गणामें सम्भव है, इसलिये इन दो मार्गणाओंमें ओघके समान उक्त प्ररूपणा जाननेकी सूचना की

---

[1] ता-आ०प्रत्योः सादि-अणु०-धुवबं० इवि पाठः। [2] ता०प्रतौ सादि० ४ अद्धुव० इति पाठः।

सामित्तपरूवणा

१७२. सामित्तं दुविधं–जह० उक्क०। उक्क० पगदं। दुवि०–ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-चदुदंस०-सादा०-जस०-उच्चा०-पंचंत० उक्कस्सपदेसबंधो कस्स ? अण्णद० सुहुमसंप० उवसम०[1] खवगस्स वा छव्विधबंधगस्स उक्क०जोगि० उक्कस्सपदेसबंधे वट्ट०। थीणगिद्धि०-३-मिच्छ०-अणंताणु०४–इत्थि०-णवुंस०-णीचा० उक्क० पदे०बंधो कस्स ? अण्ण० चदुग० पंचिं० सण्णि० मिच्छा० सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तगदस्स सत्तविध० उक्क०जोगि० उ०पदे० वट्ट०। णिद्दा-पयला-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दु० उक्क० प०बं कस्स ? अण्ण० चदुगदि० सम्मादि० सव्वाहि पज्ज० सत्तविध० उक्क०जो० उक्क०पदे० वट्ट०। असादा० उ० प०बं०[2] क० ? अण्ण० चदुग० सण्णिस्स सम्मा० मिच्छा० सव्वाहि पज्ज० सत्तविध० उक्क०जो उक्क०-पदे० वट्ट०। अपच्चक्खाणा०४ उ० प०बं० क० ? अण्ण० चदुग० असंज० सम्मा० सव्वाहि पज्ज० सत्तविध० उक्क०जो० उक्क० वट्ट०। पच्चक्खाणा०४ उ०प० क० ?

है। मात्र भव्यमार्गणामें पाँच ज्ञानावरणादिके अनुत्कृष्टपदका ध्रुव भङ्ग नहीं बनता, क्योंकि भव्य होनेसे इनके सब प्रकारका बन्ध अध्रुव ही होता है। शेष सब मार्गणाएँ कादाचित्क हैं, इसलिए उनमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट आदि पद कादाचित्क होनेसे सादि और अध्रुव कहे हैं।

स्वामित्वप्ररूपणा

१७२. स्वामित्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? छह प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला, उत्कृष्ट योगसे युक्त और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित अन्यतर उपशामक और क्षपक सूक्ष्मसाम्परायिक संयत जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और नीचगोत्रके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला, उत्कृष्ट योगसे युक्त और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें वर्तमान अन्यतर चार गतिका पंचेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। निद्रा, प्रचला, हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्साके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला, उत्कृष्ट योगसे युक्त और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें अवस्थित अन्यतर चार गतिका सम्यग्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। असातावेदनीयके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला, उत्कृष्ट योगसे युक्त और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें वर्तमान अन्यतर चार गतिका संज्ञी सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव असातावेदनीयके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। अप्रत्याख्यानावरण चारके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला, उत्कृष्ट योगसे युक्त और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें वर्तमान अन्यतर चार गतिका असंयतसम्यग्दृष्टि

---

[1] आ०प्रतौ सुहुमसंप० अण्णद० उवसम० इति पाठः। [2] ता०प्रतौ असादा० उ० [जो०] इति पाठः।

अण्ण० दुगदि० संजदासंजद० सत्तविध० उक्क०जो० उक्क० वट्ट० । कोधसंज० उ०प० क० ? अण्ण० अणियट्टि० उवसा०[1] खवग० मोहणीयस्स चदुविध० उक्क०जो० । एवं माण०-माया०-लोभ० । णवरि मोह० तिविध-दुविध-[एग] वंधगस्स उक्क०जोगि० । एवं पुरिस० । णवरि मोह० पंचविधबंध० उक्क०जोगि० । णिरयाउ० उ० प०बं० क० ? अण्ण० दुगदि० सण्णि० मिच्छा० सव्वाहि पज्ज० अट्ठविध० उक्क०जो० । तिरिक्खाउ० उ० प०बं० क० ? अण्ण० चदुग० सण्णि० मिच्छा० सव्वाहि पज्ज० अट्ठविध० उक्क० जोगि० । मणुसाउ० उ० प०बं० क० ? अण्ण० चदुगदि० सण्णि० मिच्छा० सम्मादि० सव्वाहि पज्ज० अट्ठविध० उक्क०जोगि० । देवाउ० उ० प०बं० क० ? अण्ण० दुगदि० सण्णि० मिच्छा० सम्मादि० सव्वाहि पज्ज० अट्ठविध० उक्क०जोगि० । णिरयगदि-णिरयाणुपु०—अप्पसत्थवि०-दुस्सर० उ० प०बं० क० ? अण्ण० दुगदि० पंचिं० सण्णि० मिच्छा० सव्वाहि पज्ज० अट्ठावीसदिणामाए सह सत्तविधबंध० उक्क०जोगि० ।

जीव अप्रत्याख्यानावरण चारके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। प्रत्याख्यानावरण चारके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला, उत्कृष्ट योगसे युक्त और उत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें वर्तमान अन्यतर दो गतिका संयतासंयत जीव प्रत्याख्यानावरण चारके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। क्रोधसंज्वलनके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? मोहनीय कर्मकी चार प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर अनिवृत्तिकरण उपशामक और क्षपक जीव क्रोध संज्वलनके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है, इसी प्रकार मान, माया और लोभसंज्वलनकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्वामित्व जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जो मोहनीयकी तीन प्रकृतियोंका, दो प्रकृतियोंका और एक प्रकृतिका बन्ध करता है और उत्कृष्ट योगसे युक्त है वह क्रमसे इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार पुरुषवेदकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्वामित्व जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जो मोहनीय कर्मकी पाँच प्रकृतियोंका बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट योगसे युक्त है, वह पुरुषवेदके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। नरकायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव नरकायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका संज्ञी मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि जीव मनुष्यायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। देवायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका संज्ञी मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि जीव देवायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, नामकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला

---

[1] ता०प्रतौ अणियट्टि० । उव (व) सा० इति पाठः ।

तिरिक्ख०-एइंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०-उप०-थावर०-बादर०-सुहुम०-अपज्ज०-पत्ते०-साधार०-अथिरादिपंच०-णिमि० उ० प०बं० क० ? अण्ण० दुगदि० पंचिं० सण्णि० मिच्छा० सव्वाहि पज्ज० तेवीसदिणामाए सह सत्तविध० उक्क०जोगिस्स। मणुस०-चदुजादि-ओरालि०अंगो०-असंपत्त०-मणुसाणु०-तस० उ० प०बं० क० ? अण्ण० दुगदि० पंचिं० सण्णि० मिच्छा० सव्वाहि पज्ज० पणवीसदिणामाए सह सत्तविध० उक्क०जोगि०। देवग०-वेउव्वि०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-देवाणु०-पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर-आदें० उ० पदे०बं० क० ? अण्ण० दुगदि० पंचिं०-सण्णि० मिच्छादि० सम्मा० सव्वाहि पज्ज० अट्ठावीसदिणामाए सह सत्तविध० उ०-जो०। आहार०२ उ० प०बं० क० ? अण्ण० अप्पमत्त० तीसदिणामाए सह सत्तविध० उ०जो०। चदुसंठा०-चदुसंघ० उ० प०बं० क० ? अण्ण० चदुग० पंचिं० सण्णि० मिच्छा० सव्वाहि पज्ज०. एगुणतीसदिणामाए सह सत्तविध० उक्क०जोगि०। वज्जरिस० उ० प०बं० क० ? अण्ण० चदुग० पंचिं० सण्णि० मिच्छा० सम्मा० सव्वाहि पज्ज० एगुणतीसदिणामाए सह सत्तविध० उ०जो०। पर०-उस्सा०-पज्ज०थिर०-सुभ० उ०

और उत्कृष्ट योगसे युक्त दो गतिका संज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, अस्थिर आदि पाँच और निर्माणके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, नामकर्मकी तेईस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका पञ्चेन्द्रिय, संज्ञी, मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। मनुष्यगति, चार जाति, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और त्रसके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, नामकर्मकी पच्चीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका पञ्चेन्द्रिय, संज्ञी, मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। देवगति, वैक्रियिकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, नामकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका पञ्चेन्द्रिय, संज्ञी, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। आहारकद्विकके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर अप्रमत्तसंयत जीव आहारकद्विकके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। चार संस्थान और चार संहननके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है। सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका पञ्चेन्द्रिय, संज्ञी, मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। वज्रर्षभनाराचसंहननके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका पञ्चेन्द्रिय, संज्ञी, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। परघात, उच्छ्वास, पर्याप्त,

प०बं० क० ? अण्ण० तिगदि० पंचिं० सण्णि० मिच्छा० सव्वाहि पज्ज० पणवीसदिणामाए सह सत्तविध० उ०जो० । आदाउज्जो० उ० प०बं० क० ? अण्ण० तिगदि० पंचिं० सण्णि० मिच्छा० सव्वाहि पज्ज० छब्बीसदिणामाए सह सत्तविध० उ०जो० । तित्थ० उ० प०बं० क० ? अण्ण० मणुसस्स सम्मादि० सव्वाहि पज्ज० एगुणतीसदिणामाए सह सत्तविध० उक्क०जोगिस्स ।

१७३. आदेसेण णेरइएसु पंचणा०-सादासाद०-उच्चा०-पंचंत० उ० प०बं० क० ? अण्ण० मिच्छा० सम्मा० सव्वाहि पज्ज० सत्तविध० उ०जो० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-णीचा० उ० प०बं० क० ? अण्ण० मिच्छा० सव्वाहि पज्ज० सत्तविध० उ०जो० । छदंसणा०-बारसक०-सत्तणोक० उ० प०बं० क० ? अण्ण० सम्मा० सव्वाहि पज्ज० सत्तविध० उ०जो० । तिरिक्खाउ० उ० प०बं० क० ? अण्ण० मिच्छा० सव्वाहि पज्ज० अट्ठविध० उ०जो० । एवं मणुसाउ० । णवरि सम्मा०

स्थिर और शुभके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, नामकर्मकी पच्चीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका पञ्चेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। आतप और उद्योतके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, नामकर्मकी छब्बीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका पञ्चेन्द्रिय, संज्ञी, मिथ्यादृष्टि जीव उक्त दो प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर मनुष्य सम्यग्दृष्टि जीव तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है।

१७३. आदेशसे नारकियोंमें पाँच ज्ञानावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और नीचगोत्रके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय और सात नोकषायोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर सम्यग्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि जीव तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसीप्रकार मनुष्यायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामित्व जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि आठ कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि नारकी मनुष्यायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है।

---

१. ता०आ-प्रत्योः तदिय एवं चउत्थीए इति पाठः।

मिच्छा० अट्ठविध० उ०जो० । तिरिक्ख०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-अप्पसत्थवि०-दूभग-दुस्सर-अणादें० उ० प०बं० क० ? अण्ण० मिच्छा० सव्वाहि पज्ज० एगुणतीसदिणामाए सह सत्तविध० उ०जो० । मणुस०-पंचिं०-तिण्णिसरी०-समचदु०-ओरा०-अंगो०-वज्जरि०-वण्ण०४ –मणुसाणु०-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदें०-जस०-अजस०-णिमि० उ० प०बं० क० ? अण्ण० सम्मा० मिच्छा० सव्वाहि पज्ज० एगुणतीसदिणामाए सह सत्तविध० उ०जो० । उज्जो० उ० प०बं० क० ? अण्ण० मिच्छा० सव्वाहि पज्ज० तीसदिणामाए सह सत्तविध० उ०जो० । तित्थ० उ० प०बं० क० ? अण्ण० सम्मा० सव्वाहि पज्ज० तीसदिणामाए सह सत्तविध० उ०जो० । एवं पढम० विदिय० तदिय० । चउत्थीए याव छट्ठि त्ति एवं चेव । णवरि तित्थ० वज्ज० । सत्तमाए णिरयोघं । णवरि मणुसगदि-मणुसाणु० उ०प०बं० क० ? अण्ण० सम्मा० एगुणतीसदिणामाए सह सत्तविध० उ०जो० । उच्चा० उ० प०बं० क० ? अण्ण० सम्मा० सत्तविध० उ०जोगिस्स ।

१७४. तिरिक्खेसु पंचणा० सादासाद० उच्चा०-पंचंत० उ० प०बं० क० ? अण्ण०

तिर्यञ्चगति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्च गत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, तीन शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति और निर्माणके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। उद्योतके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि नारकी उद्योतके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। तीर्थङ्करप्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर सम्यग्दृष्टि नारकी तीर्थङ्करप्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसीप्रकार पहली, दूसरी और तीसरी पृथिवीमें जानना चाहिए। इसी प्रकार चौथी पृथिवीसे छठवीं पृथिवी तक जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इन पृथिवियोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिको छोड़कर कहना चाहिए। सातवीं पृथिवीमें सामान्य नारकियोंके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगति, और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर सम्यग्दृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। उच्चगोत्रके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर सम्यग्दृष्टि नारकी उच्चगोत्रके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है।

१७४. तिर्यञ्चोंमें पाँच ज्ञानावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, उच्चगोत्र और पाँच

पंचिं० सण्णि० सम्मा० मिच्छा० सव्वाहि पज्ज० सत्तविध० उ०जो० । थीणगिद्धिदंडओ ओघं० । छदंसणा०-पुरिस०-छण्णोक० उ० प०बं० क० ? अण्ण० सम्मा० सव्वाहि पज्ज० सत्तविध० उ०जो० । अपच्चक्खाण४ ओघं । अट्ठक० उ० प०बं० क० ? अण्ण० संजदासंज० सत्तविध० उ०जो० । तिण्णं आउ० उ० प०बं० क० ? अण्ण० पंचिं० सण्णि० मिच्छा० अट्ठविध० उ०जो० । देवाउ० उ० प०बं० क० ? अण्ण० सम्मादि० मिच्छा[1] अट्ठविध० उ०जो० । णिरयगदिदंडओ तिरिक्खगदिदंडओ मणुसगदिदंडओ देवगदिदंडओ [चदुसंठा०-पंचसंघ०] ओघं। पर०-उस्सा०-पज्जत्त०-थिर-सुभ-जस० मणुसगदिभंगो । आदाउज्जो० ओघं । एवं पंचिं०तिरि०३ ।

१७५. पंचिं०तिरि०अपज्ज० पंचणा०-णवदंसणा-सादासाद०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-दोगोद०-पंचंत० उ०प० क० ? अण्ण० सण्णि० सत्तविध० उ०जो० । दोआउ० उ० प०बं० क० ? अण्ण० सण्णि० अट्ठविध० उ०जो० । तिरिक्खगदिदंडओ उ० प०बं० क० ? अण्ण० सण्णि० तेवीसदिणामाए[2] सह सत्तविध०

अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर पञ्चेन्द्रिय, संज्ञी, सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। स्त्यानगृद्धिदण्डकका भङ्ग ओघके समान है। छह दर्शनावरण, पुरुषवेद और छह नोकषायोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है। सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्टयोगसे युक्त अन्यतर सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। अप्रत्याख्यानावरण चारका भंग ओघके समान है। आठ कषायोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर संयतासंयत तिर्यञ्च उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। तीन आयुओंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर पंचेन्द्रिय, संज्ञी, मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च तीन आयुओंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। देवायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च देवायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। नारकगतिदण्डक, तिर्यञ्चगतिदण्डक, मनुष्यगतिदण्डक और देवगतिदण्डक चार संस्थान और पाँच संहनन का भङ्ग ओघके समान है। परघात, उच्छ्वास, पर्याप्त, स्थिर, शुभ और यशःकीर्तिका भङ्ग मनुष्यगतिके समान है। आतप और उद्योतका भङ्ग ओघके समान है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च त्रिकमें इसी प्रकार जानना चाहिए।

१७५. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, दो गोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर संज्ञी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। दो आयुओंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर संज्ञी जीव दो आयुओंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चगतिदण्डकके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी तेईस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध

---

[1] ता०प्रतौ-सम्मामि० मिच्छा० इति पाठः । [2] ता०प्रतौ अण्ण० सण्णि० तेत्तीसदिणामाए आ०-प्रतौ अण्ण० तेत्तीसदिणामाए इति पाठः ।

उ०जो० । मणुसगदि-चदुजादि-ओरालि०अंगोवंग-असंपत्त०-मणुसाणु०-पर०-उस्सा०-तस०-पज्ज०-थिर-सुभ-जसगित्ति० उ० प०बं० क० ? अण्णदर० सण्णि० पणवीसदिणामाए सह सत्तविध० उ०जो० । पंचसंठा०-पंचसंघ०-सुभग-दोसर-आदें० उ० प०बं० क० ? अण्ण० सण्णि० एगुणतीसदिणामाए सह सत्तविध० उ०-जो० । [दोविहा० उ० पं०बं० क० ? अण्ण० सण्णि० अट्ठावीसदिणामाए सह सत्त-विध० उ०जो० ।] आदाउज्जो० ओघं । एवं सव्वअपज्जत्तगाणं तसाणं थावराणं च एइंदि०-विगलिं०-पंचकायाणं च । णवरि अप्पप्पणो जादी कादव्वा । एइंदिएसु बादरपज्जत्तगस्स त्ति बादरे पज्जत्तगस्स त्ति सुहुमे पज्जत्तगस्स त्ति विगलिंदिए पज्जत्तगस्स त्ति तस-पंचिंदिएसु सण्णि त्ति भाणिदव्वा ।

१७६. मणुसेसु णाणावरणदंडओ ओघं । सम्मादिट्ठिपाओग्गाणं पि ओघं । सेसाणं पंचिं०तिरि०भंगो[1] । णवरि सव्वासिं मणुसो त्ति ण भाणिदव्वं ।

१७७. देवेसु पंचणा०दंडओ थीणगि०दंडओ छदंस०दंडओ दोआउ०[2] णिरयोघं । तिरिक्ख०-एइंदि०-ओरालि०-तेजा०–क०-हुंड०-वण्ण०४–तिरिक्खाणु०-अगु०४–थावर-बादर-पज्ज०-पत्ते०–थिरादितिण्णियुग०-दूभग०-अणा०-णिमिण० उ०

करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर संज्ञी जीव उक्त दण्डकके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। मनुष्यगति, चार जाति, औदारिकशरीर अङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, त्रस, पर्याप्त, स्थिर, शुभ और यशःकीर्तिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी पच्चीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर संज्ञी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। पाँच संस्थान, पाँच संहनन, सुभग, दो स्वर और आदेयके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर संज्ञी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। दो विहायोगतिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर संज्ञी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। आतप और उद्योतका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार त्रस और स्थावर सब अपर्याप्तकोंमें तथा एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी जातिमें कहनी चाहिए। मात्र एकेन्द्रियोंमें बादर पर्याप्तक, बादरोंमें पर्याप्तक, सूक्ष्मोंमें पर्याप्तक, विकलेन्द्रियोंमें पर्याप्तक तथा त्रस और पञ्चेन्द्रियोंमें संज्ञी जीव स्वामी है ऐसा कहना चाहिए।

१७६. मनुष्योंमें ज्ञानावरणदण्डक ओघके समान है। सम्यग्दृष्टिप्रायोग्य प्रकृतियोंका भङ्ग भी ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। इतनी विशेषता है कि सब प्रकृतियोंका स्वामित्व कहते समय मनुष्य ऐसा नहीं कहना चाहिए।

१७७. देवोंमें पाँच ज्ञानावरणदण्डक, स्त्यानगृद्धिदण्डक, छह दर्शनावरणदण्डक और दो आयुओंका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है। तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, स्थावर, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग, अनादेय और निर्माणके उत्कृष्ट

---

[1] आ० प्रतौ सेसाणं पि पंचिं० तिरि०भंगो इति पाठः। [2] ता० प्रतौ दंडओ आउ इति पाठः।

प०बं० क० ? अण्ण० मिच्छा० सव्वाहि पज्ज० पणवीसदिणामाए सह सत्तविध० उ०जो० । मणुस०-पंचिं०-समचदु०-ओरा०अंगो०-वज्जरि०-मणुसाणु०-पसत्थवि०-तस०-सुभग-सुस्सर-आदें० उ० प०बं० क० ? अण्ण० सम्मा० मिच्छा० सव्वाहि पज्ज० एगुणतीसदिणामाए सह सत्तविध० उ०जो० । चदुसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दुस्सर० उ० प०बं० क० ? अण्ण० मिच्छा० एगुणतीसदिणामाए सह सत्तविध० उ०जो० । आदाउज्जो० उ० प०बं० क० ? अण्ण० मिच्छादि० छब्बीसदिणामाए सह सत्तविध० उ०जो० । तित्थ० णिरयभंगो । एवं भवण०-वाण०-जोदिसि० । णवरि तित्थ० वज्ज । सोधम्मीसाणे देवोघं । सणक्कुमार याव सहस्सार त्ति णेरइगभंगो । आणद याव णवगेवज्जा त्ति सहस्सारभंगो । णवरि तिरिक्ख०-उज्जो० वज्ज । अणुदिस याव सव्वट्ठ त्ति पंचणा०-छदंसणा०-सादासाद०-बारसक०-सत्तणोक०-उच्चा०-पंचंत० उ० प०बं० क० ? अण्ण० सव्वाहि प० सत्तविध० उ०जो० । मणुसाउ० उ० प०बं० क० ? अण्ण० अट्ठविध० उ०जो० । मणुस०-पंचिंदि०-तिण्णिसरीर०-समचदु०-ओरा०-अंगो०-वज्जरि०-वण्ण० ४-मणुसाणु०-अगु०४-पसत्थवि०-तसादि०४-थिरादितिण्णियु०-

प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, नामकर्मकी पच्चीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्र-संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, सुभग, सुस्वर और आदेयके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। चार संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। आतप और उद्योतके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी छब्बीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव उक्त दो प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग नारकियोंके समान है। इसी प्रकार भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि तीर्थङ्कर प्रकृतिको छोड़कर स्वामित्व कहना चाहिए। सौधर्म और ऐशान कल्पमें सामान्य देवोंके समान भङ्ग है। सनत्कुमारसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें नारकियोंके समान भङ्ग है। आनत से लेकर नौ ग्रैवेयक तकके देवोंमें सहस्रार कल्पके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगतिद्विक और उद्योतको छोड़कर कहना चाहिए। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, बारह कषाय, सात नोकषाय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर देव मनुष्यायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, तीन शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त

सुभग-सुस्सर-आदेंज्ज-णिमिण० उक्क० पदे०बं० क० ? अण्ण० सव्वाहि पज्ज० पज्जत्त० एगुणतीसदिणामाए सह सत्तविध० उ०जो० । एवं तित्थकरणामाए पि । णवरि तीसदिणामाए सह सत्तविध० उ०जो० ।

१७८. पंचिं०२ ओघं । णवरि सण्णि त्ति भाणिदव्वा[1] । तस-तसपज्जत्तगाणं ओघं । णवरि अण्णदरस्स पंचिंदिय त्ति सण्णि त्ति भाणिदव्वा ।

१७९. पंचमण०-तिण्णिवचि० ओघं । णवरि सण्णि त्ति पज्जत्त त्ति ण भाणिदव्वं । वचिजो०-असच्च०मोस० ओघं । णवरि पंचिं० सण्णि त्ति भाणिदव्वं । कायजोगि० ओघं ।

१८०. ओरालि० ओघं । णवरि दुगदि० तिरिक्ख० मणुस० । मणुसाउ० मिच्छादि० उ०जो० । मणुसगदिदंडए पर०-उस्सा०-पज्ज०-थिर-सुभ० पणवीसदिणामाए सह सत्तविध० उ०जो० । चदुसंठा०-पंचसंघ० उ० प०बं० कं० ? अण्ण० एगुणतीसदिणामाए सह सत्तविध० उ०जो० । ओरालियमि० पंचणा०-दोवेदणी०-उच्चा०-पंचंत० उ० प०बं० क० ? अण्ण० पंचिं० सण्णि० सम्मा० मिच्छा० सत्त-

विहायोगति, त्रसादि चार, स्थिर आदि तीन युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर देव उक्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है । इसी प्रकार तीर्थङ्कर नामकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामित्व भी जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त उक्त देव तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है ।

१७८. पञ्चेन्द्रियद्विकमें ओघके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि संज्ञी ऐसा कहना चाहिए । त्रस और त्रसपर्याप्तकोंमें ओघके समान भङ्ग है । इतनी विशेपता है कि अन्यतर पञ्चेन्द्रिय,संज्ञी स्वामी है ऐसा कहना चाहिए ।

१७९. पाँच मनोयोगी और तीन वचनयोगी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि संज्ञी और पर्याप्त ऐसा नहीं कहना चाहिए । वचनयोगी और असत्यमृषावचनयोगी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि संज्ञी,पंचेन्द्रिय कहना चाहिये । काययोगी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है ।

१८०. औदारिककाययोगी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्च और मनुष्य इन दो गतियोंके जीवोंको स्वामी कहना चाहिये । मनुष्यायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट योगवाला मिथ्यादृष्टि जीव स्वामी है । मनुष्यगतिदण्डक, परघात, उच्छ्वास, पर्याप्त, स्थिर और शुभके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी पच्चीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है । चार संस्थान और पाँच संहननके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है । औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, दो वेदनीय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके

विध० उ०जो० से काले सरीरपज्जत्तीहि जाहिदि त्ति । थीण०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-णीचा० उ० प०बं क० ? अण्णदर० सण्णि० मिच्छादि० उवरि णाणा०भंगो । छदंसणा०-बारसक०-सत्तणोक० उ० प०बं० क० ? अण्ण० सम्मा० णाणा०भंगो । दोआउ० उ० प०बं० क० ? अण्ण० पंचिं०[1] सण्णि० मिच्छा० अट्ठविध० उ०जो० । तिरिक्खगदिदंडओ मणुस०-चदुसंठा०-पंचसंघ०दंडओ ओरालियकायजोगिभंगो । णवरि जसगित्ति० मणुसगदिदंडए भाणिदव्वं । आलाओ [अप्पसत्थवि० दुस्सर०] णवुंसगभंगो । देवग०-वेउव्वि०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-देवाणु०-पसत्थवि०-सुभग[2]-सुस्सर-आदें० उ० प०बं० क० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० वा सम्मा० अट्ठावीसदिणामाए सह सत्तविध० उ०जो० से काले सरीरपज्जत्तीहि गाहिदि त्ति । आदाउज्जो० उ० प०बं० क० ? अण्ण० दुगदि० पंचिं० सण्णि० मिच्छा० छब्बीसदिणामाए सह सत्तविध० उ०जो० । उवरि णाणा०भंगो । तित्थ० उ० प०बं० क० ? अण्ण० मणुस० सम्मा० एगुणतीसदिणामाए सह सत्तविध० उ०जो० । उवरि णाणा०भंगो ।

उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर पंचेन्द्रिय संज्ञी सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जो कि अनन्तर समयमें शरीर पर्याप्ति पूर्ण करेगा वह उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और नीचगोत्रके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव स्वामी है। यहाँ आगेके विशेषण ज्ञानावरणके समान जानने चाहिये। छह दर्शनावरण, बारह कषाय और सात नोकषायोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर सम्यग्दृष्टि जीव स्वामी है। शेष विशेषण ज्ञानावरणके समान हैं। दो आयुओंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त पञ्चेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव दो आयुओंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चगतिदण्डक, मनुष्यगतिदण्डक, चार संस्थान और पाँच संहनन-दण्डकका भङ्ग औदारिककाययोगी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि यशःकीर्तिको मनुष्यगतिदण्डकमें कहना चाहिये। आलाप तथा अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरका भङ्ग नपुंसकवेदके समान है। देवगति, वैक्रियिकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य सम्यग्दृष्टि जो अनन्तर समयमें शरीरपर्याप्ति को पूर्ण करेगा, वह उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। आतप और उद्योतके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी छब्बीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका पञ्चेन्द्रिय, संज्ञी, मिथ्यादृष्टि जीव उक्त दो प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इससे आगे ज्ञानावरणके समान भङ्ग है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर मनुष्य सम्यग्दृष्टि तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। ऊपर ज्ञानावरणके समान भङ्ग है।

---

[1] आ० प्रतौ क० ? पंचिं० इति पाठः । [2] ता०आ०प्रत्योः पसत्थवि० पंचिं० सुभग इति पाठः ।

१८१. वेउव्वियका० पंचणा०-सादासाद०-उच्चा०-पंचंत० उ० प०बं० क० ? अण्ण० देवस्स वा णेरइयस्स वा सम्मा० मिच्छा० सव्वाहि पज्जत्तीहि० सत्तविध० उ०जो० । एवं थीणगिद्धिदंडओ । णवरि मिच्छा० भाणिदव्वं । छदंसणा०-बारसक०-सत्तणोक०दंडओ सम्मादि० भाणिदव्वं । तिरिक्खाउ० उ० प०बं० क० ? अण्ण० देवस्स वा णेरइयस्स वा मिच्छादि० अट्ठविध० उ०जो० । मणुसाउ० उ० प० क० ? अण्ण० देव० णेरइयस्स वा सम्मा० मिच्छा० अट्ठविध० उ०जो० । तिरिक्खगदिदंडओ देवोघं । देवग० मिच्छा० । मणुसग०-पंचिं०-समचदु०-ओरा० अंगो०-वज्जरि०-मणुसाणु०-पसत्थवि०-तसं०-[सुभग०-] सुस्सर-आदें० उ० प०बं० क० ? अण्ण० देव० णेर० सम्मा० मिच्छा० एगुणतीसदिणामाए सह सत्तविध० उ०जो० । चदुसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थवि०-दुस्सर० उ० प०बं० क० ? अण्ण० देव० णेरइ० मिच्छादिट्ठिस्स एगुणतीसदिणामाए सह सत्तविध० उ०जो० । आदाउज्जो० उ० प०बं० क० ? अण्ण० देव० मिच्छा० छब्बीसदि० सह सत्तविध० उ०जो० । तित्थ० उ० प०बं० क० ? अण्ण० देव० णेरइ० सम्मा० तीसदि-

---

१८१. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, सातावेदनीय; असातावेदनीय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि अन्यतर देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार स्त्यानगृद्धिदण्डकके विषयमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि इनका उत्कृष्ट स्वामित्व मिथ्यादृष्टिके कहना चाहिये। छह दर्शनावरण, बारह कषाय और सात नोकषाय दण्डकका उत्कृष्ट स्वामित्व सम्यग्दृष्टिके कहना चाहिये। तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव और नारकी तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि देव और नारकी मनुष्यायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चगतिदण्डकका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। मिथ्यादृष्टि देव उत्कृष्ट प्रदेशबन्धके स्वामी हैं, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, सुभग, सुस्वर और आदेयके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। चार संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। आतप और उद्योतके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी छब्बीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव उक्त दो प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Nariya, Varanasi

णामाए सह सत्तविध० उ०जो०। एवं वेउव्वियमि०। णवरि से काले सरीरपज्जत्ती गाहिदि त्ति।

१८२. आहारका० पंचणा०-छदंसणा०-दोवेदणी०-चदुसंज०-सत्तणोक०-उच्चा०-पंचंत० उ० प०बं० क०? अण्ण० सत्तविध० उ०जो०। देवाउ० उ० क०? अण्ण० अट्ठविध० उ०जो०। देवग० अट्ठावीसं पगदीओ उ० प० क०? अण्ण० अट्ठावीसं सह सत्तविध० उ०जो०। तित्थ०[1] उ० प०बं० क०? अण्ण० एगुण० सह सत्तविध० उ०जो०। एवं आहारमि०। णवरि से काले सरीरपज्जत्ती गाहिदि त्ति। एवं आउगबं०।

१८३. कम्मइ० पंचणा०-सादासाद०-उच्चा०-पंचंत० उ० प०बं० क०? अण्ण० चदुग० सण्णि० मिच्छा० सम्मा० सत्तविध० उ०जो०। थीणगिद्धिदंडओ छदंसणा०दंडओ उ० प०बं० क०? अण्ण० मिच्छा० सम्मादि० यथासं० चदुग०

उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर सम्यग्दृष्टि देव और नारकी उक्त प्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जो अनन्तर समयमें शरीरपर्याप्ति पूर्ण करेगा उसे उत्कृष्ट स्वामित्व देना चाहिए।

१८२. आहारककाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, दो वेदनीय, चार संज्वलन, सात नोकषाय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर आहारककाययोगी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। देवायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर आहारककाययोगी जीव देवायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। देवगति आदि अट्ठाईस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? नामकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर आहारककाययोगी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर आहारककाययोगी जीव तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जो अनन्तर समयमें शरीर पर्याप्तिको पूर्ण करेगा उसे स्वामित्व देना चाहिए। इसी प्रकार आयुकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कहना चाहिए।

१८३. कार्मणकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका संज्ञी मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। स्त्यानगृद्धिदण्डक और छह दर्शनावरणदण्डकके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? चार गतिका पञ्चेन्द्रिय, संज्ञी और उत्कृष्ट योगवाला कार्मणकाययोगी क्रमसे अन्यतर मिथ्यादृष्टि जीव स्त्यानगृद्धिदण्डकके तथा सम्यग्दृष्टि जीव छह दर्शनावरण दण्डकके उत्कृष्ट प्रदेश-

---

[1] आ०प्रतौ पंचंत० प० बं० क०? अण्ण० सत्तविध० उ०जो०। तित्थ० इति पाठः।

पंचिं० सण्णि० उ०जो० । तिरिक्खगदिदंडओ मणुसगदिदंडओ चदुसंठा० चदुसंघ०-दंडओ ओघं। णवरि अप्पसत्थवि०-दुस्सरपविट्ठ०। वज्जरि० ओघं। देवगदिदंडओ दुगदि० सम्मादि० उ०जो० । पर०-उस्सा०-थिर-सुभ-जस० उ० प०बं० क० ? अण्ण० तिगदि० सण्णि० मिच्छा० पणवीसदि० सह सत्तविध० उ० जो० । आदाउज्जो० उ० प०बं० क० ? अण्ण० तिगदि० पंचिं० सण्णि० मिच्छा० छब्बीसदि० सह सत्तविध० उ०जो० । तित्थ० उ० प०बं० क० । अण्ण० मणुस० सम्मादि० एगुणतीसदि० सह सत्तविध० उ०जो० ।

१८४. इत्थि-पुरिसेसु पंचणा०-सादासाद०-उच्चा०-पंचत० उ० प०बं० क० ? अण्ण० तिगदि० सण्णि० मिच्छा० सम्मादि० सत्तविध० उ०जो० । थीणगिद्धिदंडओ तिगदि० सण्णि० मिच्छादि० सत्तविध० उक्क०जोगि० । णिद्दा-पयला-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दु० उ० प० क० ? अण्ण० तिगदि० सम्मादि० सत्तविध० उ० जो० । चदुदंस० उ० प०बं० क० ? अण्ण० दंसणावरणीयस्स चदुविध० उ०जो० । अपच्चक्खा०४–पच्चक्खाणा०४–ओघं । चदुसंज० उ० प०बं० क० ?

बन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चगतिदण्डक, मनुष्यगतिदण्डक और चार संस्थान व चार संहनन दण्डकका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि इनमें अप्रशस्तविहायोगति और दुःस्वर को प्रविष्ट करके उत्कृष्ट स्वामित्व कहना चाहिए। वज्रर्षभनाराचसंहननका भङ्ग ओघके समान है। देवगतिदण्डकके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? उत्कृष्ट योगवाला दो गतिका सम्यग्दृष्टि जीव देवगतिदण्डकके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। परघात, उच्छ्वास, स्थिर, शुभ और यशःकीर्तिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी पच्चीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। आतप और उद्योतके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी छब्बीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका पञ्चेन्द्रिय, संज्ञी, मिथ्यादृष्टि जीव उक्त दो प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर मनुष्य सम्यग्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है।

१८४. स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका संज्ञी, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। स्त्यानगृद्धिदण्डकके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगवाला तीन गतिका संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव है। निद्रा, प्रचला, हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्साके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त तीन गतिका सम्यग्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। चार दर्शनावरणके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है। दर्शनावरणीयकी चार प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क और प्रत्याख्यानावरण चतुष्कका भङ्ग ओघके समान है। चार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naraya, Varanasi

अण्ण० पमत्त० अप्पमत्त० सत्तविध० उ०जो० । पुरिस० उ० प०बं० क० ? अण्ण० अणियट्टि० मोह० पंचविध० उ०जो० । आउ० ओघं । णिरयगदि४दंडओ तिरिक्खगदिदंडओ मणुसगदिदंडओ देवगदिदंडओ ओघं । चदुसंठा०-चदुसंघ० उ० प०बं० क० ? अण्ण० तिगदि० सण्णि० मिच्छा० सत्तविध० उ०जो० । आहार०२ ओघं । वज्जरि० उ० प०बं० क० ? अण्ण० तिगदि० सम्मादि० मिच्छादि० एगुणतीसदि० सह सत्तविध० उ०जो० । पर०-उस्सा०-पज्ज०-थिर-सुह० उ० प०बं० क० ? अण्ण० तिगदि० पणवीसदिणामाए सह सत्तविध० उ०जो० । आदाउज्जो० उ० प०बं० क० ? अण्ण० तिगदि० छव्वीसदि० सह सत्तविध० उ०जो० । जस० उ० प०बं० क० ? अण्ण० णामाए एगविध० उ०जो० । तित्थ० उ० प०बं० क० ? अण्ण० मणुस० एगुणतीसदि० सह सत्तविध० उ०जो० ।

१८५. णवुंसगे सत्तण्णं क० इत्थिभंगो । णेरइगगदि-मणुसगदि-तिरिक्खगदिदंडओ ओघं । देवगदिदंडओ च । पर०-उस्सा०-पज्ज०-थिर-सुभ० दुगदियस्स त्ति

संज्वलनके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी हैं । पुरुषवेदके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? मोहनीय कर्मकी पाँच प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर अनिवृत्तिकरण जीव पुरुषवेदके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है । आयुकर्मका भङ्ग ओघके समान है । नरकगतिचतुष्कदण्डक, तिर्यञ्चगतिदण्डक, मनुष्यगतिदण्डक और देवगतिदण्डकका भङ्ग ओघके समान है । चार संस्थान और चार संहननके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है । आहारकद्विकका भङ्ग ओघके समान है । वज्रर्षभनाराचसंहननके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है । परघात, उच्छ्वास, पर्याप्त, स्थिर और शुभके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी पच्चीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है । आतप और उद्योतके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी छब्बीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका जीव उक्त दो प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है । यशःकीर्तिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी एक प्रकृतिका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर जीव यशःकीर्तिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है । तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर मनुष्य उक्त प्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है ।

१८५. नपुंसकोंमें सात कर्मोंका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है । नरकगतिदण्डक, मनुष्यगतिदण्डक और तिर्यञ्चगतिदण्डकका भङ्ग ओघके समान है । तथा देवगतिदण्डक ओघके समान है । परघात, उच्छ्वास, पर्याप्त, स्थिर और शुभ इनके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी दो

भाणिदव्वं। आदाउज्जो० दुगदि० मिच्छा०। सेसं इत्थिभंगो। अवगद० सत्तण्णं क० ओघभंगो।

१८६. कोध०३ सत्तण्णं क० इत्थिभंगो। णवरि चदुगदियो त्ति भाणिदव्वं। कोधसंज० मोह० चदुविध० माणे मोह० तिविध० मायाए दुविध०। सेसं ओघभंगो। लोभे० ओघं।

१८७. मदि०—सुद० पंचणा०—णवदंसणा०—दोवेदणीय—मिच्छ०—सोलसक०—णवणोक०-दोगोद०-पंचंत० उ० प०बं० क० ? अण्ण० चदुगदि० पंचिं० सण्णि० सव्वाहि पज्ज० सत्तविध० उ०जो०। णिरय०-देवाउ० उ० प०बं० क० ? अण्ण० दुगदि० सण्णि० अट्ठविध० उ०जो०। तिरिक्ख-मणुसाउ० उ० प० क० ? अण्ण० चदुगदि० पंचिं० सण्णि० अट्ठविध० उ०जो०। दोगदि०-वेउव्वि०-समचदु०-वेउव्वि० अंगो०-दोआणु०-दोविहा०-सुभग-दोसर-आदें० उ० प० क० ? अण्ण० दुगदि० अट्ठावीसदि० सह सत्तविध० उ०जो०। वज्जरि० उ० प० क० ? अण्ण० चदुगदि० पंचिं० सण्णि० एगुणतीसदि० सह सत्तविध० उ०जो०। सेसाणं पगदीणं ओघं। एवं

गतिके जीवको कहना चाहिए। आतप और उद्योतके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी दो गतिका मिथ्यादृष्टि जीव है। शेष भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। अपगतवेदी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है।

१८६. क्रोध आदि तीन कषायोंमें सात कर्मोंका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि चार गतिका जीव स्वामी है ऐसा कहना चाहिए। तथा मोहनीयकी चार प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला क्रोध संज्वलनके, मोहनीयकी तीन प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला मानसंज्वलनके तथा मोहनीयकी दो प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला मायासंज्वलनके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। शेष भङ्ग ओघके समान है। लोभकषायमें ओघके समान भङ्ग है।

१८७. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, दो गोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका पंचेन्द्रिय, संज्ञी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। नरकायु और देवायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका संज्ञी जीव उक्त दो प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका पंचेन्द्रिय संज्ञी जीव उक्त दो आयुओंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। दो गति, वैक्रियिकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, सुभग, दो स्वर और आदेयके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? अट्ठाईस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। वज्रर्षभनाराचसंहननके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका पंचेन्द्रिय संज्ञी जीव उक्त प्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार अभव्य, मिथ्यादृष्टि

अब्भव०-मिच्छा० । विभंग० मदि०भंगो । णवरि सण्णि त्ति ण भाणिदव्वं ।

१८८. आभिणि०-सुद०-ओधि० पंचणा०-चदुदंसणा०दंडओ ओघं । णिद्दा-पयला-असाद०-छण्णोक० उ० प० क० ? अण्ण० चदुगदि० सम्मा० सव्वाहि० सत्तविध० उ०जो० । अपच्चक्खा०४-पच्चक्खा०४-चदुसंजल०-पुरिस० ओघभंगो । मणुसाउ० उ० प० क० ? अण्ण० देव० णेरइ० अट्ठविध० उ०जो० । देवाउ० उ० प० क० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० अट्ठविध० उ०जो० । मणुसगदिपंचगस्स उ० प० क० ? अण्ण० देव० णेरइ० एगुणतीसदि० सह सत्तविध० उ०जो० । देवगदि-पंचिं०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउ०अंगो०-वण्ण०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्थवि०-तस०४-थिरादि-तिण्णियु०-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि० उ० प० क० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० अट्ठावीसदि० सह सत्तविध० उ०जो० । णवरि जस० ओघं । आहार०२-तित्थ० ओघं । एवं ओधिदं०-सम्मा०-खइग०-उवसम० । मणपज्ज०-संज०-सामा०-छेदो०-परिहार०-संजदासंज० ओधिभंगो । णवरि अप्पप्पणो पगदीओ णादव्वाओ । सुहुमसंप० ओघं ।

जीवोंमें जानना चाहिये । तथा विभङ्गज्ञानी जीवोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि इनके स्वामित्वका कथन करते समय संज्ञी ऐसा नहीं कहना चाहिए ।

१८८. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण और चार दर्शनावरणदण्डकका भङ्ग ओघके समान है । निद्रा, प्रचला, असातावेदनीय और छह नोकषायोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका सम्यग्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है । अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, प्रत्याख्यानावरणचतुष्क, चार संज्वलन और पुरुषवेदका भङ्ग ओघके समान है । मनुष्यायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर देव और नारकी मनुष्यायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है । देवायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य देवायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है । मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है । देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि तीन युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणके उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध का स्वामी कौन है ? नामकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है । इतनी विशेषता है कि यशःकीर्तिका भङ्ग ओघके समान है । आहारकद्विक और तीर्थङ्करप्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है । इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए । मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंमें अवधिज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी प्रकृतियाँ जाननी चाहिए । सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है ।

१८९. असंजदेसु पंचणा०पढमदंडओ चदुगदि० पंचिं० सण्णि० सम्मा० मिच्छा० सत्तविध० उ०जो० । थीणगिद्धिदंडओ चदुगदि० पंचिं० सण्णि० मिच्छा० सव्वाहि पज्ज० उ०जो० । छदंस०दंडओ चदुगदि० सम्मादि० उ०जो० । सेसाणं पगदीणं ओघं । चक्खुदंस० तसपज्जत्तभंगो । अचक्खु० ओघं ।

१९०. किण्ण-णील-काउ० पंचणा०-सादासाद०-उच्चा०-पंचंत० उ० प० क० ? अण्ण० तिगदि० सण्णि० सम्मा० मिच्छा० सत्तविध० उ०जो० । थीणगिद्धिदंडओ अण्ण० तिगदि० सण्णि० मिच्छा० सत्तविध० उ०जो० । छदंस०दंडओ तिगदि० सम्मा० सव्वाहि पज्ज० सत्तविध० उ०जो० । णिरयाउ० उ० प० क० ? अण्ण० दुगदि० सण्णि० मिच्छा० अट्ठविध० उ०जो० । तिरिक्खाउ० उ० प० क० ? अण्ण० तिगदि० सण्णि० मिच्छा० सव्वाहि पज्ज० अट्ठविधबंध० उ०जो० । मणुसाउ० उ० प० क० ? अण्ण० तिगदि० सम्मा० मिच्छा० अट्ठविध० उ०जो० । देवाउ० उ० प० क० ? अण्ण० दुगदि० सम्मा० मिच्छा० अट्ठविध० उ०जो० । णिरयचदुदंडओ तिरिक्खगदिदंडओ मणुसगदिदंडओ देवगदिदंडओ संठाणदंडओ वज्जरिसभ-

---

१८९. असंयतोंमें पाँच ज्ञानावरण प्रथम दण्डकके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका पञ्चेन्द्रिय संज्ञी सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव है। स्त्यानगृद्धिदण्डकके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका पञ्चेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव है। छह दर्शनावरणदण्डकके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका सम्यग्दृष्टि जीव है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। चक्षुदर्शनवाले जीवोंमें त्रस पर्याप्त जीवोंके समान भङ्ग है। अचक्षुदर्शनवाले जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है।

१९०. कृष्ण, नील और कापोतलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका संज्ञी सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। स्त्यानगृद्धिदण्डकके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव है। छह दर्शनावरणदण्डकके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका सम्यग्दृष्टि जीव है। नरकायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव स्वामी है। तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव स्वामी है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि जीव स्वामी है। देवायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव देवायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। नरकगतिचतुष्कदण्डक, तिर्यञ्चगतिदण्डक, मनुष्यगतिदण्डक, देवगतिदण्डक, संस्थानदण्डक, वज्रर्षभनाराचसंहननदण्डक और परघात व

दंडओ परघाद-उज्जोवदंडओ णवुंसगभंगो। णवरि जस० थिरभंगो[1]। तित्थ ओघं।

१९१. तेउ० पंचणा०-दोवेदणी०-उच्चा०-पंचंत० उ० प० क०? अण्ण० तिगदि० सम्मा० मिच्छा० सत्तविध० उ०जो०। थीणगि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि० उ० प० क०? अण्ण० तिगदि० मिच्छा० सत्तविध० उ०जो०। छदंस०-सत्तणोक० उ० प० क०? अण्ण० तिगदि० सम्मा० सत्तविध० उ०जो०। अपच्चक्खाण०४ तिगदि० असंज०। पच्चक्खाण०४ ओघं। चदुसंज० उ० प० क०? अण्ण० पमत्त० अप्पमत्त० सत्तविध० उ०जो०। णवुंस०-णीचा० उ० प० क०? अण्ण० देव० मिच्छा० सत्तविध० उ०जो०। तिरिक्खाउ० उ० प० क०? अण्ण० देवस्स मिच्छा० अट्ठविध० उ०जो०। मणुसाउ० उ० प० क०? अण्ण० मिच्छा० सम्मा० अट्ठविध० उ०जो०। देवाउ० उ० प० क०? अण्ण० दुगदि० सम्मा० अट्ठविध० उ०जो०। तिरिक्खगदिदंडओ आदाउज्जो० सोधम्मभंगो। मणुस०-ओरा०-

उद्योत दण्डकका भङ्ग नपुंसकवेदी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि यशःकीर्तिका भङ्ग स्थिर प्रकृतिके समान है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है।

१९१. पीतलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, दो वेदनीय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और स्त्रीवेदके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। छह दर्शनावरण और सात नोकषायके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका सम्यग्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। अप्रत्याख्यानावरण चारके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी तीन गतिका असंयत सम्यग्दृष्टि जीव है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका भङ्ग ओघके समान है। चार संज्वलनके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। नपुंसकवेद और नीचगोत्रके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव उक्त दो प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि जीव मनुष्यायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। देवायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका सम्यग्दृष्टि जीव देवायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चगतिदण्डक और आतप उद्योतका भङ्ग सौधर्म कल्पके समान है। मनुष्यगति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन और

---

[1] आ०प्रतौ णवरि वज्जरिस० थिरभंगो इति पाठः।

अंगो०-वज्जरि०-मणुसाणु० उ० प० क० ? अण्ण० देव० सम्मा० मिच्छा० एगुणतीसदि० सह सत्तविध० उ०जो०। देवग०[१]-पंचिं०-वेउव्वि०-समचदु०-वेउव्वि०-अंगो०-देवाणु०-पसत्थवि०-तस-सुभग-सुस्सर-आदें० उक्कस्स० प० कस्स ? अण्ण० दुगदि० सम्मादिट्ठि० मिच्छादिट्ठि० अट्ठावीसदि० सह सत्तविध० उ०जो०। आहार०२-तित्थ० ओघं। चदुसंठा०--पंचसंघ०--अप्पसत्थ०--दुस्सर० उ० प० क० ? अण्ण० देव० एगुणतीसदि० सह सत्तविध० उ०जो०। एवं पम्माए। णवरि इत्थि०-णवुंस०-णीचा० देवस्स मिच्छादिट्ठि० उ०जो०। तिरिक्ख-पंचसंठा०-पंचसंघ[२]०-तिरिक्खाणु०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादें० देव० मिच्छा० एगुणतीसदि० सह सत्तविध० उ०जो०। मणुसगदिणामाए उ० प० क० ? अण्ण० देवस्स सम्मा० मिच्छा० एगुणतीसदि० सह सत्तविंध० उ०जो०। देवग०-पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-वण्ण०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्थवि०-तस०४-थिरादितिण्णियु०-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि० उ० प० क० ? अण्ण० दुगदि०

मनुष्यगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, सुभग, सुस्वर और आदेयके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। चार संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और नीचगोत्रके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी उत्कृष्ट योगवाला मिथ्यादृष्टि देव है। तिर्यञ्चगति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव है। मनुष्यगति नामकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि देव मनुष्यगतिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि तीन युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध

---

[१] ता०आ० प्रत्योः उ०जो०। णिमि० देवग० इति पाठः।

[२] ता०प्रतौ तिरिक्ख० पंचसंघ० इति पाठः।

सम्मा० मिच्छा० अट्ठावीसदिणामाए सह सत्तविध० उ०जो०। आहार०२-तित्थ० ओघं। उज्जो० देव० तीसदि० सह सत्तविध० उ०जो०।

१९२. सुक्काए पंचणा०-[चदु०-] दंसणा०दंडओ ओघं। थीणगि०३-मिच्छ० अणंताणु०४ तिगदि० मिच्छा० सत्तविध० उ०जो०। णिद्दा-पयला-छण्णोक० उ० प० क० ? अण्ण० तिगदि० सम्मा० सत्तविध० उ०जो०। असाददंडओ तिगदि० सम्मा० मिच्छा० सत्तविध० उ०जो०। अपच्चक्खाण०४-पच्चक्खाण०४-चदुसंज०-पुरिस० ओघं। मणुसाउ० देवस्स सम्मा० मिच्छा० अट्ठविध० उ०जो०। देवाउ० दुगदि० सम्मा० मिच्छा० अट्ठविध० उ०जो०। मणुसगदिपंचग०[1] उ० प० क० ? अण्ण० देव० सम्मा० मिच्छा० वा एगुणतीसदि० सह सत्तविध० उ०जो०। देवगदि-पंचिं०-वेउव्वि०-तेजइगादिदंडओ पम्माए भंगो। णवरि जस० ओघं। आहार०२-तित्थ० ओघं। पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादें० उ० प० क० ? अण्ण०

करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। आहारकद्विक और तीर्थङ्करप्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। उद्योतके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर देव उद्योतके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है।

१९२. शुक्ललेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरणदण्डक ओघके समान है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी सात प्रकार कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका मिथ्यादृष्टि जीव है। निद्रा, प्रचला और छह नोकषायोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका सम्यग्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। असातावेदनीयदण्डकके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि जीव है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, प्रत्याख्यानावरणचतुष्क, चार संज्वलन और पुरुषवेदका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि देव है। देवायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त दो गतिका सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव है। मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर और तैजसशरीर आदि दण्डकका भङ्ग पद्मलेश्याके समान है। इतनी विशेषता है कि यशःकीर्तिका भङ्ग ओघके समान है। आहारकद्विक और तीर्थङ्करप्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका

---

[1] ता०प्रतौ मणुसाउ० देवस्स० सम्मा० मिच्छा० अट्ठविध० उ०जो०। मणुसगदिपंचग० इति पाठः।

मिच्छादि० आणदभंगो। इत्थि०-पुरिस०-णीचा० पम्मभंगो। भवसिद्धिया० ओघं।

१९३ वेदगे पंचणा०-छदंस०-सादासाद०-सत्तणोक०-उच्चा०-पंचंत० उ० प० क०? अण्ण० चदुगदि० सत्तविध० उ०जो०। अपच्चक्खाण०४-पच्चक्खाण०४ ओघं[1]। चदुसंज० पमत्त० अप्पमत्त० सत्तविध० उ०जो०। सेसा० ओधिभंगो। जस० थिरभंगो।

१९४. सासण० छण्णं क० चदुगदि० उ०जो०। दो आउ० चदुग० अट्ठविध० उ०जो०। देवाउ० दुगदि० अट्ठविध० उ०जो०। दोगदि०-ओरा०-चदुसंठा०-ओरा०-अंगो०-पंचसंघ०-दोआणु०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादें० क०? अण्ण० चदुग० ऊणत्तीसदि० सह सत्तविध० उ०जो०। देवग०-पंचिं०-वेउ०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउ०अंगो०-वण्ण०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्थ०-जस०४-थिरादितिण्णियुग०-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि० उ० प० क०? अण्ण० दुगदि० अट्ठावीसदि० सह सत्तविध०

स्वामी है, जिसका भङ्ग आनतकल्पके समान है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नीचगोत्रका भङ्ग पद्मलेश्याके समान है। भव्योंमें ओघके समान भङ्ग है।

१९३. वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, सात नोकषाय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क और प्रत्यख्यानावरण चतुष्कका भङ्ग ओघके समान है। चार संज्वलनके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर प्रमत्तसंयत और अप्रमत्त संयत जीव है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। यशःकीर्तिका भङ्ग स्थिरप्रकृतिके समान है।

१९४. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें छह कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी उत्कृष्ट योगवाला चार गतिका जीव है। दो आयुओंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त चार गतिका जीव है। देवायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त दो गतिका जीव है। दो गति, औदारिकशरीर, चार संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, पाँच संहनन, दो आनुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका जीव उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है। देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र-संस्थान, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, थिर आदि तीन युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? नामकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट

---

[1] आ०प्रतौ अपच्चक्खाण०४ ओघं इति पाठः।

Varni Digamber Jain Institute, Naria, Varanasi

उ०जो० । उज्जोव० उ० प० क० ? अण्ण० चदुगदि० तीसदिणामाए सह सत्तविध० उ०जो० ।

१९५. सम्मामिच्छा० छण्णं क० उ० प० क० ? अण्ण० चदुगदि० सत्तविध० उ०जो० । मणुसगदिपंचग० देव० णेरइ० एगुणतीसदि० सह सत्तविध० उ०जो० । सेसं दुगदि० अट्ठावीसदि० सह सत्तविंध० उ०जो० ।

१९६. सण्णी० ओघं । णवरि थीणगिद्धिदंडओ अण्ण० चदुगदि० मिच्छादि० पज्जत्त० सत्तविध० उ०जो० । एवं सव्वाणं । असण्णीसु पंचणा०दंडओ उ० प० क० ? अण्ण० पंचिं० सव्वाहि० सत्तविध० उ०जो० । एवं सव्वाणं । आहारा० ओघं । अणाहारा० कम्मइगभंगो ।

एवं उक्कस्ससामित्तं समत्तं ।

१९७. जह० पगदं । दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० पंचणा०-णवदंसणा०-दोवेदणी०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-णीचुच्चागो०-पंचंत० ज० प० क० ? अण्ण० सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्तगस्स[1] पढमसमयतब्भवत्थस्स जहण्णजोगिस्स जहण्णए

प्रदेशबन्धका स्वामी है । उद्योतके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका जीव उद्योतके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है ।

१९५. सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें छह कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है । मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर देव और नारकी है । शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी नामकर्मकी अट्ठारह प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त दो गतिका जीव है ।

१९६. संज्ञी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि स्त्यानगृद्धि दण्डकके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव है । इसी प्रकार सब कर्मोंके विषयमें जानना चाहिए । असंज्ञी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणदण्डकके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त अन्यतर पञ्चेन्द्रिय जीव उक्त दण्डकके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है । इसी प्रकार सब कर्मोंका उत्कृष्ट स्वामित्व समझना चाहिए । आहारक जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है । अनाहारकोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्वामित्व समाप्त हुआ ।

१९७. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, नीचगोत्र, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? जघन्य योगसे युक्त और जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला अन्यतर प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ

---

[1] आ०प्रतौ –णिगोदभपज्जत्तगस्स इति पाठः ।

पदेसबंधे वट्टमाणगस्स। णिरय-देवाऊणं ज० प०बं० क० ? अण्ण० असण्णि० पंचिं० घोडमाणगस्स अट्ठविधबं० जह०जो० ज० प०बं० वट्ट०। तिरिक्खाउ०-मणुसाउ० ज० प० क० ? सुहुमणिगोदजीवअपज्ज० खुद्दाभवग्गहणतदियतिभागस्स पढमसमए[1] आउगबंधमाणस्स जह०जो०। णिरयग०-णिरयाणु० ज० प० क० ? अण्ण० असण्णि० पंचिं० घोडमाण० अट्ठावीसदि० सह अट्ठविध[2]० ज०जो०। तिरिक्ख०-चदुजादि-ओरा०-तेजा०-क०-छस्संठा०-ओरा०अंगो०-छस्संघ०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-उज्जोव-दोविहायगदि-तस०४-थिरादिछयुग०-णिमि० ज० प० क० ? अण्ण० सुहुमणिगो०अपज्ज० पढमसमयआहारगस्स पढमसमयतब्भवत्थस्स तीसदिणामाए सह सत्तविध० ज०जो०। मणुसग०-मणुसाणु० ज० प० क० ? अण्ण० सुहुमणि० अपज्ज० पढमस०तब्भवत्थ० एगुणतीसदि० सह सत्तवि० ज०जो०। देवग०-वेउ०-वेउ०अंगो०-देवाणु० ज० प० क० ? अण्ण० मणुस० असंज० पढमस०तब्भव० एगुणतीसदि० सह सत्तविध० ज०जो०। एइंदि०-आदाव-थावर० ज० प० क० ? अण्ण० सुहुमणि०

सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। नरकायु और देवायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला, जघन्य योगसे युक्त और जघन्य प्रदेशबन्धमें अवस्थित अन्यतर असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय घोलमान जीव उक्त दो आयुओंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? क्षुल्लकभवग्रहणके तृतीय भागके पहले समयमें आयु कर्मका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीव उक्त दो आयुओंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय घोलमान जीव उक्त प्रकृतियों के जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चगति, चार जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, छह संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह युगल और निर्माणके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला, जघन्य योगसे युक्त, प्रथम समयवर्ती आहारक और प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ अन्यतर सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ अन्यतर सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर अङ्गोपाङ्ग और देवगत्यानुपूर्वीके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावरके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी

---

[1] आ०प्रतौ तदियभागस्स तदियसमए इति पाठः। [2] आ०प्रतौ सह सत्तविध० इति पाठः।

पढमस०तब्भव० छब्बीसदि० सह सत्तविध० ज०जो०। आहार०२ ज० प० क० ? अण्ण० अप्पमत्त० ऍक्कत्तीसदि० सह अट्ठविध० घोडमाण० ज०जो०। सुहुम०-अपज्ज०-साधार० ज० प० क० ? अण्ण० सुहुम० अपज्ज० पढमस०तब्भव० पणवीसदि० सह सत्तवि० ज०जो०। तित्थ० ज० प० क० ? अण्ण० देव० णेरइ० पढमस०तब्भव० तीसदि० सह सत्तविध० ज०जो०[1]।

१९८. णेरइएसु पंचणा०-णवदंसणा०-दोवेदणी०-मिच्छ०-सोलसकसा०-णवणोक०-दोगोद०-पंचंत० ज० प० क० ? अण्ण० असण्णिपच्छागदस्स पढमस०तब्भव० जह०जो०। तिरिक्खाउ० ज० प० क० ? अण्ण० घोलमाण० अट्ठविध० ज०जो०। मणुसाउ० ज० प० क० ? अण्ण० मिच्छा० सम्मा० अट्ठविध० घोलमाण० ज०जो०। तिरिक्ख०-पंचिं०-तिण्णिसरीर-छस्संठा०-ओरा०अंगो०-छस्संघ०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-उज्जो०-दोविहा०-तस४-थिरादिछयुग०[2]-णिमि० ज० प० क० ? अण्ण० असण्णिपच्छा० पढमस०आहार० पढम०तब्भव० तीसदि० सह सत्तवि० ज०जो०।

छब्बीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ अन्यतर सूक्ष्म निगोद जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। आहारकद्विकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? नामकर्मकी इकतीस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और घोलमान जघन्य योगसे युक्त अन्यतर अप्रमत्तसंयत जीव उक्त दो प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? नामकर्मकी पच्चीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ अन्यतर सूक्ष्म अपर्याप्त साधारण जीव उक्त तीन प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। तीर्थङ्करप्रकृतिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ अन्यतर देव और नारकी तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है।

१९८. नारकियोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, दो गोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? जघन्य योगवाला और असंज्ञियोंमेंसे आकर उत्पन्न हुआ प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ अन्यतर नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर घोलमान जीव तिर्यञ्चायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। मनुष्यायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और घोलमान योगसे युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि जीव मनुष्यायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रियजाति, तीन शरीर, छह संस्थान, औदारिक शरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह युगल और निर्माणके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? असंज्ञियोंमेंसे आकर उत्पन्न हुआ प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ, नामकर्मकी तीस

---

[1] आ०प्रतौ सत्तविध० उ०जो० इति पाठः। [2] आ०प्रतौ तस थिरादिछयुग इति पाठः।

मणुस०-मणुसाणु० तिरिक्खगदिभंगो। णवरि एगुणतीसदि० सह सत्तविध० ज०जो०। तित्थ० ज० प० क० ? अण्ण० असंजद० पढम०आहार० पढम०तब्भव० तीसदि० सह सत्तविध० ज०जो०। एवं पढमाए। विदियाए तदियाए सव्वपगदीणं ज० प० क० ? अण्ण० मिच्छा० पढम०आहार० पढम०तब्भव० ज०जो०। तित्थ० ज० प० क० ? अण्ण० असंज० घोलमा० तीसदि० सह अट्ठविध० ज०जो०। आउ० णिरयोघं। चउत्थीए पंचमीए छट्ठीए तं चेव। णवरि [तित्थयरं वज्ज०। सत्तमीए एवं चेव। णवरि] मणुस०-मणुसाणु० ज० प० क० ? अण्ण० असंज० घोलमा० एगुणतीसदि०[1] सह सत्तवि० जह०जो०। उच्चा० ज० प० क० ? अण्ण० असंज० घोलमा० ज०जो०[2]।

१९९. तिरिक्ख०-एइंदि०-सुहुम०-पज्ज०-अपज्ज०-पुढ०-आउ०-तेउ०-वाउ० तेसिं च सुहुमपज्जत्तापज्ज०-वणप्फदि-णिगोद-सुहुमपज्जत्तापज्ज०-कायजोगि०-असंज०[3]-

प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीका भङ्ग तिर्यञ्चगतिके समान है। इतनी विशेषता है कि नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाले जघन्य योगसे युक्त जीवके यह स्वामित्व कहना चाहिए। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? प्रथम समयवर्ती आहारक, प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ, नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी उक्त प्रकृतिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसीप्रकार पहली पृथ्वीमें जानना चाहिए। दूसरी और तीसरी पृथिवीमें सब प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? प्रथम समयवर्ती आहारक, प्रथमसमयवर्ती तद्भवस्थ और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि जीव सब प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर असंयत सम्यग्दृष्टि घोलमान जीव तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। आयुकर्मका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है। चौथी, पाँचवीं और छठी पृथिवीमें वही भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि तीर्थङ्कर प्रकृतिको छोड़कर जघन्य स्वामित्व कहना चाहिए। सातवीं पृथिवीमें इसीप्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि घोलमान जीव उक्त दो प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। उच्चगोत्रके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? जघन्य योगसे युक्त अन्यतर असंयत सम्यग्दृष्टि जीव उच्चगोत्रके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है।

१९९. तिर्यञ्च, एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय सूक्ष्म और उनके पर्याप्त-अपर्याप्त, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक जीव तथा उनके सूक्ष्म और पर्याप्त-अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक और निगोद तथा उनके सूक्ष्म और पर्याप्त-अपर्याप्त, काययोगी, असंयत,

---

[1] ता०प्रतौ घोड० एगुणतीसं० इति पाठः। [2] ता०प्रतौ घोड ज०जो० इति पाठः।
[3] ता०आ०प्रत्योः कायजोगि [illegible] कायादि४ असंज० इति पाठः।

Gangesh Swami Digambar Jain Institute, Varanasi

अचक्खु०-भवसि०-आहार० ओघं।

‘२००. पंचिं०तिरि०-पज्जत्ता० ओघं। णवरि असण्णि० पढम०आहार० पढम०-तब्भव० ज०जो०। दोआउ० घोलमाण० अट्ठविध० ज०जो०। तिरिक्ख०-मणुसाउ० ज० प० क० ? अण्ण० असण्णिअपज्ज० खुद्दाभ०तदियतिभागस्स पढमसमयबंधयस्स ज० प० वट्टमा०। देवगदि०४ ज० प० क० ? अण्ण० असंज०सम्मादि० पढमस०आहार० पढम०तब्भव० अट्ठावीसदि० सह सत्तविध० ज०जो०। पज्जत्तेसु चदुण्णं आउ० ज० प० क० ? अण्ण० असण्णि० घोलमाणस्स[1] अट्ठवि० ज०जो०। पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु तं चेव। णवरि वेउव्वियछ० ज० प० क० ? अण्ण० असण्णि० घोडमा० अट्ठावीसदि०[2] सह अट्ठविध० ज०जो०। पंचिं०तिरि०अपज्ज० ओघं। णवरि असण्णिपंचिंदियस्स त्ति भाणिदव्वं। एवं सव्व-अपज्जत्तयाणं। णवरि थावर० अप्पप्पणो जादीसु बादरणिगोदस्स त्ति पढमस०-तब्भव० जहण्णजोगिस्स त्ति भाणिदव्वं।

२०१. मणुसेसु छण्णं ज० प० क० ? अण्ण० असण्णिपच्छागदस्स पढमस०-

अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है।

२००. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और उनके पर्याप्तकोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि प्रथम समयवर्ती आहारक, प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर असंज्ञी जीव जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। दो आयुओंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर घोलमान जीव है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? क्षुल्लक भवग्रहणके तृतीय त्रिभागके प्रथम समयमें बन्ध करनेवाला और जघन्य प्रदेशबन्धमें अवस्थित अन्यतर असंज्ञी अपर्याप्त जीव उक्त दो आयुओंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। देवगतिचतुष्कके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयवर्ती आहारक, प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ, नामकर्मकी अन्यतर अट्ठाईस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। मात्र पर्याप्तकोंमें चार आयुओंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर असंज्ञी घोलमान तिर्यञ्च उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। पञ्चेद्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंमें वही भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि वैक्रियिक छहके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर असंज्ञी घोलमान जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवके जघन्य स्वमित्व कहना चाहिए। इसी प्रकार सब अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि स्थावरोंमें अपनी-अपनी जातिमें तथा बादर निगोदमें प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ और जघन्य योगवाले जीवके जघन्य स्वामित्व कहना चाहिए।

२०१. मनुष्योंमें छह कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? असंज्ञियोंमेंसे आकर उत्पन्न हुआ, प्रथम समयवर्ती आहारक, प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ और

---

[1] ता०प्रतौ घोडमाणस्स इति पाठः। [2] आ०प्रतौ अण्ण० अट्ठावीसदि० इति पाठः।

आहार० पढमस०तब्भव० ज०जो०। णिरयाउ० ज० प० क० ? अण्ण० मिच्छा० घोलमाण० अट्ठवि० ज०जो०। तिरिक्ख०-मणुसाउ० ज० प० क० ? अण्ण० अपज्ज० खुद्दाभ० तदियतिभाग० पढमसमयआउगबंध० ज०जो०। देवाउ० ज० प० क० ? अण्ण० मिच्छा० सम्मा० घोलमा० अट्ठविध०[1] ज०जो०। णिरयग०-णिरयाणु० ओघं। असण्णि त्ति [ण] भाणिदव्वं। तिरिक्खगदिदंडओ मणुसगदिदंडओ एइंदियदंडओ सुहुमदंडओ ओघं। णवरि सव्वाणं असण्णिपच्छागदस्स त्ति भाणिदव्वं। देवगदि०४–तित्थ० ज० प० क० ? अण्ण० सम्मादि० पढम०आहार० पढम०-तब्भव० एगुणतीसदि० सह० सत्तविध० ज०जो०। आहार०२ ओघं। एवं पज्जत्तगाणं पि। णवरि तिरिक्ख०-मणुसाउ० ज० प० क० ? अण्ण० मिच्छा० घोल० ज०-जो०। देवाउ० सम्मादि० मिच्छादि० घोल०। मणुसिणीसु एवं चेव। णवरि देवगदि०४–आहारदुग-तित्थ० ज० प० क० ? अण्ण० अप्पमत्त० ऍक्कत्तीसदि०[2]

जघन्य योगसे युक्त अन्यतर मनुष्य उक्त कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। नरकायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि घोलमान मनुष्य नरकायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? क्षुल्लकभवग्रहणके तृतीय त्रिभागके प्रथम समयमें आयुकर्मका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर अपर्याप्त मनुष्य उक्त दो आयुओंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। देवायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि घोलमान मनुष्य देवायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीका भङ्ग ओघके समान है। मात्र असंज्ञी ऐसा नहीं कहना चाहिए। तिर्यञ्चगतिदण्डक, मनुष्यगतिदण्डक, एकेन्द्रियजातिदण्डक और सूक्ष्मदण्डकका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि इन सबका जघन्य स्वामित्व असंज्ञियोंमेंसे आकर उत्पन्न हुए मनुष्यके कहना चाहिए। देवगतिचतुष्क और तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयवर्ती आहारक, प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ, नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर असंयत सम्यग्दृष्टि मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। आहारकद्विकका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्तकोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर मिथ्यादृष्टि घोलमान जघन्य योगवाला जीव उक्त दो आयुओंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। देवायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि घोलमान जीव है। मनुष्यिनियोंमें इसी प्रकार भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि देवगतिचतुष्क, आहारकद्विक और तीर्थङ्करप्रकृतिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? इकतीस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर अप्रमत्तसंयत जीव

---

[1] ता०आ०प्रत्योः मिच्छा० सोलस० अट्ठवि० इति पाठः। [2] ता०आ०प्रत्योः अण्ण० अपज्जत्त० एकत्तीसदि० इति पाठः।

सह अट्ठवि०[1] ज०जो० । मणुस०अपज्ज० पंचणा०-णवदंसणा०-दोवेद०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-दोगो०-पंचंत० ज० प० क० ? अण्ण० असण्णिपच्छागदस्स त्ति भाणिदव्वं । एवं सव्वपगदीणं । दोआउ० खुद्दा० ओघं ।

२०२. देवेसु णिरयोघं । णवरि एइंदि०-आदाव-थावर० ज०[2] प० क० ? अण्ण० असण्णिपच्छा० पढम०तब्भव० छव्वीसदि० सत्तवि० ज०जो० । एवं भवण०-वाण० । तित्थ० वज्ज० । जोदिसि० तं चेव । णवरि पढमसमयतब्भवत्थस्स त्ति भाणिदव्वं ।

२०३. सोधम्मीसाण० पंचणा०-दोवेदणी०-उच्चा०-पंचंत० ज० प० क० ? अण्ण० सम्मा० मिच्छा० पढम०आहार० पढम०तब्भव० ज०जो० । णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-णीचा० ज० प० क० ? अण्ण० मिच्छा० पढम० ज०जो० । दोआउ० णिरयभंगो । तिरिक्ख०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-उज्जो०-अप्पस०[3]-दूभग-दुस्सर-अणादे० ज० प० क० ? अण्ण० मिच्छा० पढम० तीसदि० सह

उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, दो गोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? असंज्ञियोंमेंसे आकर उत्पन्न हुआ अन्यतर मनुष्य अपर्याप्त उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है ऐसा यहाँ कहना चाहिए। इसी प्रकार सब प्रकृतियोंका जघन्य स्वामित्व कहना चाहिए । दो आयुओंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी ओघके समान क्षुल्लक भवग्रहणके तृतीय त्रिभागका प्रथम समयवर्ती जीव है।

२०२. देवोंमें नारकियोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रियजाति आतप और स्थावरके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? असंज्ञियोंमेंसे आकर उत्पन्न हुआ, प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ, नामकर्मकी छब्बीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें जानना चाहिए। किन्तु इनमें तीर्थङ्कर प्रकृतिको छोड़कर स्वामित्व कहना चाहिए। ज्योतिषियोंमें वही भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थके कहना चाहिए।

२०३. सौधर्म और ऐशानकल्पमें पाँच ज्ञानावरण, दो वेदनीय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयवर्ती आहारक, प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय और नीचगोत्रके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। दो आयुओंका भङ्ग नारकियोंके समान है। तिर्यञ्चगति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ, नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि

---

[1] ता०आ०प्रत्योः सह सत्तवि० इति पाठः। [2] ता०प्रतौ आदा० याव० ज० इति पाठः।

[3] ता०प्रतौ तिरिक्खाणु० उ०जो० । अप्प० इति पाठः।

सत्तविध० ज०जो०। मणुस०२-तित्थ० ज० प० क० ? अण्ण० सम्मादि० पढम० तीसदि० सह सत्तवि० ज०जो०। [एइंदियदंडओ० जोदिसिभंगो०।] पंचिं०-तिण्णिसरीर-समचदु०-ओरा०अंगो०[1]-वज्जरिस०-वण्ण०४-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-थिरादितिण्णियु०-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि० ज० प० क० ? अण्ण० सम्मा० मिच्छा० पढम० तीसदि० सह सत्तवि० ज०जो०। सणक्कुमार याव सहस्सार त्ति एवं चेव। णवरि थावरतिगं वज्ज।

२०४. आणद याव उवरिमगेवज्जा त्ति सहस्सारभंगो। णवरि तिरिक्खाउ०-तिरिक्खग०-तिरिक्खाणु०-उज्जो० वज्ज। मणुस०-पंचिं०तिण्णिसरीर-समच०-ओरा०-अंगो०[2]-वज्जरि०-वण्ण०४-मणुसाणु०-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-थिरादितिण्णियु०-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०-तित्थ० ज० प० क० ? अण्ण० सम्मादि० पढम० तीसदि० सह सत्तवि० ज०जो०। पंचसंठाणदंडओ ज० प० क० ? अण्ण० मिच्छा० पढमस० एगुणतीसदि० सह सत्तवि० ज०जो०। अणुदिस याव सवट्ठ [सिद्धि] पंचणा०-

उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। मनुष्यगतिद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ, नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर सम्यग्दृष्टि उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। एकेन्द्रियजातिदण्डकका भङ्ग ज्योतिष देवोंके समान है। पञ्चेन्द्रियजाति, तीन शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि तीन युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ, नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। सनत्कुमारसे लेकर सहस्रार कल्पतकके देवोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि स्थावरत्रिकको छोड़कर जघन्य स्वामित्व कहना चाहिए।

२०४. आनतसे लेकर उपरिम ग्रैवेयकतकके देवोंमें सहस्रार कल्पके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चायु, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उद्योतको छोड़कर जघन्य स्वामित्व कहना चाहिए। मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, तीन शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्तविहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि तीन युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थङ्करके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ, नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर सम्यग्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। पाँच संस्थानदण्डकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। अनुदिशसे

---

[1] ता०प्रतौ तिण्णिसरी० समऊ० ओरा०अंगो०, आ०प्रतौ तिण्णिसरीर सुहुम० ओरा०अंगो० इति पाठः। [2] आ०प्रतौ तिण्णिसरीर ओरा०अंगो० इति पाठः।

छदंस०-दोवेद०-[बारसक०-सत्तणोक०--] उच्चा०-पंचंत० ज० प० क० ? अण्ण० पढम० ज०जो० । आउ० ज० प० क० ? अण्ण० घोलमाण० अट्ठविध० ज०जो० । मणुसगदिदंडओ आणदभंगो ।

२०५. सव्वबादराणं सव्वाणं ओघं । णवरि अप्पप्पणो जादी भाणिदव्वं । सव्वपज्जत्तगाणं दोआउ० घोलमाण० अट्ठविध० ज०जो० । एवं विगलिंदियाणं । पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्त० ओघं । णवरि असण्णि त्ति भाणिदव्वं । पज्जत्ते[1] आउ० पंचि०-तिरि०पज्जत्तभंगो । तस० ओघं । णवरि बेइंदियस्स त्ति भाणिदव्वं । एवं पज्जत्तयस्स । दोआउ० असण्णि० घोलमाण० ज०जो० । दोआउ० बेइंदि० घोल० । अपज्जत्तगस्स अपज्जत्तभंगो । णवरि बेइंदि० पढम० ज०जो० । दोआउ० अपज्ज० बेइंदि० भाणिदव्वं ।

२०६. पंचमण०-तिण्णिवचि० पंचणा०-सादासाद०-उच्चा०-पंचंत० ज० प० क० ? अण्ण० चदुग० सम्मा० मिच्छा० घोलमा० अट्ठविध० ज०जो० । णवदंस०-

लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, दो वेदनीय, बारह कषाय, नौ नोकषाय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर जीव स्वामी है। आयुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर घोलमान जीव आयुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। मनुष्यगतिदण्डकका भङ्ग आनत कल्पके समान है।

२०५. सब बादरोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि अपनी-अपनी जाति कहनी चाहिये। सब पर्याप्तकोंमें दो आयुओंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर घोलमान जीव है। इसी प्रकार विकलेन्द्रियोंमें जानना चाहिए। पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें असंज्ञी जीव जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। पर्याप्तकोंमें आयुकर्मका भङ्ग पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तकोंके समान है। त्रसोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी द्वीन्द्रिय जीव है ऐसा कहना चाहिए। इसी प्रकार त्रस पर्याप्तकोंमें जानना चाहिए। मात्र दो आयुओंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी घोलमान जघन्य योगवाला असंज्ञी जीव है। तथा अन्य दो आयुओंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी घोलमान द्वीन्द्रिय जीव है। इनके अपर्याप्तकोंमें अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ और जघन्य योगसे युक्त द्वीन्द्रिय जीव जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। दो आयुओंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी अपर्याप्त द्वीन्द्रिय जीवको कहना चाहिए।

२०६. पाँच मनोयोगी और तीन वचनयोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि घोलमान जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। नौ दर्शना-

---

[1] ता०आ०प्रत्योः पज्जत्तो इति पाठः ।

मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-णीचा० ज० प० क० ? अण्ण० चदुगदि० मिच्छा० घोल० अट्ठविध० ज०जो० । णिरयाउ० ज० प० क० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० मिच्छा० घोलमा० अट्ठविध० ज०जो० । तिरिक्खाउ० ज० प० क० ? अण्ण० चदुग० मिच्छा० अट्ठविध० ज०जो० । मणुसाउ० ज० प० क० ? अण्ण० चदुग० सम्मा० मिच्छा० अट्ठविध० ज०जो० । देवाउ० ज० प० क० ? अण्ण० दुगदियस्स सम्मा० मिच्छा० घोल० अट्ठविध० ज०जो० । णिरयगदिदुगं ज० प० क० ? अण्ण० दुगदि० घोल० अट्ठावीसदि० सह अट्ठविध० ज०जो० । तिरिक्ख०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-उज्जो०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादें० ज० प० क० ? अण्ण० चदुगदि० घोल० तीसदि० सह अट्ठविध० ज०जो० । मणुसगदिदुग०-तित्थ० ज० प० क० ? अण्ण० देव० णेरइ० सम्मा० तीसदि० सह अट्ठविध० ज०जो० । देवगदिदुगं ज० प० क० ? अण्ण० मणुसस्स सम्मा० एगुणतीसदि० सह अट्ठविध० ज०जो० । एइंदि०-आदाव-थाव० ज० प० क० ? अण्ण० तिगदि० छब्बीसदि० सह अट्ठविध०

करण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय और नीचगोत्रके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका मिथ्यादृष्टि घोलमान जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है । नरकायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य मिथ्यादृष्टि घोलमान जीव उक्त प्रकृतिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है । तिर्यञ्चायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका मिथ्यादृष्टि जीव तिर्यञ्चायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है । मनुष्यायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव मनुष्यायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है । देवायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि घोलमान जीव देवायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है । नरकगतिद्विकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका घोलमान जीव उक्त दो प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है । तिर्यञ्चगति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका घोलमान जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है । मनुष्यगतिद्विक और तीर्थङ्कर-प्रकृतिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर सम्यग्दृष्टि देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है । देवगतिद्विकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर सम्यग्दृष्टि मनुष्य देवगतिद्विकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है । एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावरके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी छब्बीस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त

ज०जो० । तिण्णिजादि० ज० प० क० ? अण्ण० दुगदि० तीसदि० सह अट्ठविध० ज०जो० । पंचिं०-ओरा०-समचदु०-ओरा०अंगो०-वज्जरि०-वण्ण०४–अगु०४–पसत्थ०-तस०४–थिरादितिण्णियु०-सुभग[1]-सुस्सर-आदें०-णिमि० ज० प० क० ? अण्ण० चदुग० सम्मा० मिच्छा० तीसदि० सह अट्ठविध० घोल० ज०जो० । वेउव्वि०-आहार०-तेजा०-क[2]०-दोअंगो० ज० प० क० ? अण्ण० अप्पमत्त० ऍक्कत्तीसदि० सह अट्ठवि० घोल० ज०जो० । सुहुम-अपज्ज०-साधार० ज० प० क० ? अण्ण० दुगदि० पणवीसदि० सह अट्ठविध० ज०जो० ।

२०७. वचिजो०-असच्चमोस० पंचणा०-णवदंस०-दोवेद०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-दोगो०-पंचंत० ज० प० क० ? अण्ण० बेइंदि० अट्ठविध० घोल० ज०जो० । सेसाणं दंडगाणं णाणावरणभंगो। णवरि वेउव्वियछक्कं जोणिणि०भंगो । दोआउ०[3]-आहारदुगं ओघं। तित्थ० ज० प० क० ? अण्ण० देव० णेरइ० तीसदि० सह अट्ठविध० ज०जो० ।

अन्यतर तीन गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। तीन जातिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि तीन युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और घोलमान जघन्य योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर और दो आङ्गोपाङ्गके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी इकतीस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और घोलमान जघन्य योगसे युक्त अन्यतर अप्रमत्तसंयत जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? नामकर्मकी पच्चीस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है।

२०७. वचनयोगी और असत्यमृषावचनयोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, दो गोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और घोलमान जघन्य योगसे युक्त अन्यतर द्वीन्द्रिय जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। शेष दण्डकोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इतनी विशेषता है कि वैक्रियिकषट्कका भङ्ग योनिनी जीवोंके समान है। आयुचतुष्क और आहारकद्विकका भङ्ग ओघके समान है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर देव और नारकी उक्त प्रकृतिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है।

---

[1] ता०प्रतौ-तिण्णियु० सुभग-सुभग० इति पाठः। [2] ता०प्रतौ आहार० २ तेजाक०, आ०प्रतौ आहारदुगं तेजाक० इति पाठः। [3] आ०प्रतौ जोणिणिभंगो। आउ० इति पाठः।

२०८. ओरालि०का० पंचणा०-णवदंसणा०-दोवेद०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-[दो] गोद०-पंचंत० ज० प० क० ? अण्ण० सुहुमणिगोदजीवस्स पढमसमयसरीरपज्जत्तीहि पज्जत्तयस्स ज०जो० सत्तविध० । णिरय०-देवाउ० ओघं । तिरिक्ख-मणुसाउ० ज० प० क० ? अण्ण० सुहुमणिगोद० अट्ठविध० ज०जो० । णिरय०-णिरयाणु० ओघं । देवगदिपंचग० ज० प० क० ? अण्ण० मणुस० असंज० पढमसमयसरीरपज्जत्तीहि पज्ज० एगुणतीसदि० सह सत्तविध० ज०जो० । सेसाणं दंडगादीणं णाणा०भंगो । ओरालियमि० ओघं । णवरि देवगदिपंचग० ज० प० क० ? अण्ण० मणुस० सम्मा० पढम०तब्भव० ज०जो० एगुणतीसदि० सह सत्तवि० ।

२०९. वेउव्वियका० पंचणा०-सादासाद०-उच्चा०-पंचंत० ज० प० क० ? अण्ण० देव० णेरइ० सम्मा० मिच्छा० पढमसमयसरीर[1]पज्जत्तीए पज्जत्तगदस्स ज०जो० । णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-णीचा० ज० प० क० ? अण्ण० देव० णेरइ० मिच्छा० पढमसमयपज्ज०[2] ज०जो० । तिरिक्खाउ० ज० प० क० ? अण्ण० देव०

२०८. औदारिककाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, दो गोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयमें शरीरपर्याप्तिसे पर्याप्त हुआ, जघन्य योगसे युक्त और सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला अन्यतर सूक्ष्म निगोद जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है । नरकायु और देवायुका भङ्ग ओघके समान है । तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर सूक्ष्म निगोद जीव उक्त दो आयुओंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है । नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीका भङ्ग ओघके समान है । देवगतिपञ्चकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयमें शरीरपर्याप्तिसे पर्याप्त हुआ, नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर मनुष्य असंयतसम्यग्दृष्टि उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है । शेष दण्डक आदिका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि देवगतिपञ्चकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ, जघन्य योगसे युक्त और नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है ।

२०९. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयवर्ती शरीर पर्याप्तिसे पर्याप्त हुआ और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि देव व नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है । नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नीचगोत्रके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयवर्ती पर्याप्त और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है । तिर्यञ्चायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध

---

[1] ता०आ०प्रत्योः पढमसमयतब्भवसरीर- इति पाठः । [2] ता०प्रतौ पढमसरीर (समय) पज्ज० इति पाठः ।

णेरइ० मिच्छा० घोल० अट्ठविध० ज०जो०। मणुसाउ० ज० प० क० ? अण्ण० देव० णेरइ० सम्मा० मिच्छा० घोल० अट्ठविध० ज०जो०। तिरिक्ख०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०–उज्जो०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादें० ज० प० क० ? अण्ण० देव० णेरइ० मिच्छा० पढम०सरीरपज्ज० पज्जत्त० तीसदि० सह सत्तविध० ज०जो०। मणुस०-मणुसाणु०-तित्थ ज० प० क० ? अण्ण० देव० णेरइ० सम्मा० पढमस० सरीरपज्जत्तीहि पज्ज० तीसदि० सह सत्तविध० ज०जो०। एइंदिय-आदाव-थावर० ज० प० क० ? अण्ण० देव० मिच्छा० पढमस० सरीरपज्ज० छब्बीसदि० सह सत्तविध० ज०जो०। पंचिं०-तिण्णिसरीर-समचदु०-ओरा०अंगो०-वज्जरि०-वण्ण०४–अगु०४–पसत्थ०-[1]तस०४–थिरादितिण्णियुग०-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि० ज० प० क० ? अण्ण० देव० णेरइ० सम्मा० मिच्छा० पढमस०सरीरपज्ज० तीसदि० सह सत्तविध० ज०जो०। एवं वेउ०मि० पढमसमयतब्भवत्थ०।

२१०. आहारका० पंचणा०-छदंसणा०दंडओ देवाउ० ज० प० क० ? अण्ण०

करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि घोलमान देव और नारकी तिर्यञ्चायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। मनुष्यायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि देव व नारकी घोलमान जीव उक्त आयुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चगति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयवर्ती शरीरपर्याप्तिसे पर्याप्त हुआ, नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और तीर्थङ्करप्रकृतिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयवर्ती शरीर पर्याप्तिसे पर्याप्त हुआ, नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर सम्यग्दृष्टि देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावरके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयवर्ती शरीरपर्याप्तिसे पर्याप्त हुआ, नामकर्मकी छब्बीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। पञ्चेन्द्रियजाति, तीन शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकआङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि तीन युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयवर्ती शरीरपर्याप्तिसे पर्याप्त हुआ नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि देव व नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें प्रथम समयमें तद्भवस्थ हुए जीवके कहना चाहिए।

२१०. आहारककाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण और छह दर्शनावरणदण्डक तथा देवायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला, जघन्य

---

[1] आ०प्रतौ वण्ण ४ पसत्थ० इति पाठः।

घोल० अट्ठविध० ज०जो० पढमस०सरीरपज्ज० । एवं हस्स-रदि० । अरदि-सोग० ज० प० क० ? अण्ण० पढमस०सरीरपज्ज० ज०जो० सत्तविध० । देवगदिदंडओ ज० प० क० ? अण्ण० पढमस०सरीरपज्ज० एगुणतीसदि० सह अट्ठविध० ज०जो० । एवं अथिर-असुभ-अजस० । णवरि सत्तविध० ज०जो० । एवं आहारमि० ।

२११. कम्मइ० पंचणा०-णवदंस०दंडओ सुहुमणि० ज०जो० । तिरिक्खगदि-दंडओ तस्सेव तीसदि० सह सत्तविध० ज०जो० । एवं सव्वदंडगं । देवगदि०४ ज० प० क० ? अण्ण० मणुस० असंज० एगुणतीसदि० सह सत्तविध० ज०जो० । तित्थ० ज० प० क० ? अण्ण० देव० णेरइ० तीसदि० सह सत्तविध० ज०जो० ।

२१२. इत्थिवेदेसु पंचणा०दंडओ ज० प० क० ? अण्ण० असण्णि० पढमस० ज०जो० । आहारदुग-तित्थ० मणुसि०भंगो । सेसाणं जोणिणिभंगो । एवं पुरिसेसु । णवरि देवगदि०४ ज० प० क० ? अण्ण० मणुस० पढमसमयतब्भव० असंज० एगुणतीसदि०

योगसे युक्त और प्रथमसमयवर्ती शरीर पर्याप्तिसे पर्याप्त हुआ अन्यतर घोलमान जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार हास्य और रतिका जघन्य स्वामित्व जानना चाहिए। अरति और शोकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयवर्ती शरीर पर्याप्तिसे पर्याप्त हुआ, जघन्य योगसे युक्त और सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला अन्यतर जीव उक्त दो प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। देवगतिदण्डकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयवर्ती शरीर पर्याप्तिसे पर्याप्त हुआ, नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर जीव उक्त दण्डकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामित्व जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त जीव इन प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें जानना चाहिए।

२११. कार्मणकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण और नौ दर्शनावरण दण्डकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी जघन्य योगसे युक्त अन्यतर सूक्ष्म निगोदिया जीव है। तिर्यञ्चगतिदण्डकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर सूक्ष्म निगोदिया जीव है। इसी प्रकार सब दण्डकोंका जघन्य स्वामित्व जानना चाहिए। देवगतिचतुष्कके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। तीर्थङ्करप्रकृतिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर देव और नारकी तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है।

२१२. स्त्रीवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणदण्डकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर असंज्ञी जीव उक्त दण्डकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग तिर्यञ्चयोनिनी जीवोंके समान है। इसी प्रकार पुरुषवेदी जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें देवगतिचतुष्कके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ, असंयतसम्यग्दृष्टि, नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके

सह सत्तवि० ज०जो० । तित्थ० ज० प० क० ? अण्ण० देव० पढमसमय० तीसदि० सह सत्तवि० ज०जो० । णवुंसगेसु ओघं । णवरि वेउव्वियछक्कं जोणिणिभंगो । तित्थ० णेरइ० पढम० तीसदि० सह सत्तवि० ज०जो० । अवगद० सत्तण्णं० ज० प० क० ? अण्ण० घोल० सत्तविध० ज०जो० । णवरि संजलणाणं चदुविधबंधगस्स त्ति भाणिदव्वं । कोधादि०४ ओघं ।

२१३. मदि०-सुद० सव्वाणं ओघं । णवरि वेउव्वियछक्कं जोणिणिभंगो । एवं अब्भव०-मिच्छा० । विभंगे[1] पंचणा०दंडओ ज० चदुग० घोलमा० अट्ठविध० ज०जो० । दोआउ० जह० दुगदिय० घोलमाण० अट्ठविध० ज०जो० । दोआउ० चदुगदिय० घोलमाण० अट्ठविध० ज०जो० । वेउव्वियछ० ज० तिरि० मणु० घोल० अट्ठावीसदि० सह अट्ठविध० ज०जो० । तिरिक्खगदिदंडओ ज० प० क० ? चदुग० घोल० तीसदि० सह अट्ठविध० ज०जो० ।

कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर मनुष्य देवगतिचतुष्कके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ, नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर देव तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। नपुंसकोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि वैक्रियिकषट्कका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंके समान है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ, नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर नारकी है। अपगतवेदी जीवोंमें सात प्रकारके कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर घोलमान जीव उक्त कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। इतनी विशेषता है कि संज्वलनोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी मोहनीयके चार प्रकारका बन्ध करनेवाला जीव है, ऐसा कहना चाहिए। क्रोधादि चार कषायवाले जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है।

२१३. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि वैक्रियिकषट्कका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनियोंके समान है। इसी प्रकार अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए। विभङ्गज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणदण्डकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका घोलमान जीव है। दो आयुओंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका घोलमान जीव है। शेष दो आयुओंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका घोलमान जीव है। वैक्रियिकषट्कके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी नामकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर घोलमान तिर्यञ्च और मनुष्य है। तिर्यञ्चगतिदण्डकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका घोलमान जीव है। मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके जघन्य प्रदेशबन्धका

---

[1] ता०आ०प्रत्योः मिच्छा० असण्णि० । विभंगे इति पाठः ।

मणुस०-मणुसाणु० ज० प० क० ? अण्ण० चदुग० घोल० एगुणतीसदि० सह अट्ठविध० ज०जो० । एइंदि०-आदाव०-थावर० ज० प० क० ? अण्ण० तिगदि० छब्बीसदि० सह अट्ठविध० ज०जो० । तिण्णिजादीणं ज० प० क० ? दुगदि० तीसदि० सह अट्ठविध० ज०जो० । सुहुम०-अपज्ज०-साधा० ज० प० क० ? अण्ण० दुगदि० पणवीसदि० सह अट्ठविध० ज०जो० ।

२१४. आभिणि-सुद-ओधि० पंचणा०-छदंसणा०-दोवेद०-बारसक०-सत्तणोक०-उच्चा०-पंचंत० ज० प० क० ? अण्ण० चदुगदि० असंजद० पढमस०तब्भव० सत्तवि० ज०जो० । मणुसाउ० ज० प० क० ? अण्ण० देव० णेरइ० घोल० अट्ठवि० ज०जो० । देवाउ० ज० तिरिक्ख० मणुस० घोल० अट्ठवि० ज०जो० । मणुसग०-पंचिं०-तिण्णिसरीर-समचदु०-ओरा०अंगोवंग०-वज्जरिस०-वण्ण०४-मणुसाणु०-अगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४-थिरादितिण्णियुग०-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०-तित्थ० ज० प० क० ? अण्ण० देव० णेर० पढमस०तब्भव० तीसदि० सह सत्तवि० ज०जो० । देवगदि०४ ज० प० क० ? अण्ण० मणुस० असंज० पढम०तब्भव० एगुणतीसदि० सह सत्तवि०

स्वामी कौन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका घोलमान जीव है। एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावरके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी छब्बीस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। तीन जातियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी पच्चीस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका जीव है।

२१४. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, दो वेदनीय, बारह कषाय, सात नोकषाय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ, सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका असंयतसम्यग्दृष्टि उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। मनुष्यायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर घोलमान देव और नारकी मनुष्यायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। देवायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य घोलमान जीव है। मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, तीन शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि तीन युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थङ्करके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ, नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। देवगतिचतुष्कके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ, नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध

ज०जो० । आहारदुगं० ज० प० क० ? अण्ण० अप्पमत्त० ऍक्कत्तीसदि० सह अट्ठवि० घोल० ज०जो० । एवं ओधिदं०-सम्मा०-खइग० ।

२१५. मणप० पंचणा०[1]-छदंसणा०-सादा०-चदुसंज०-उच्चा०-पंचंत०दंडओ देवाउ० ज० प० क० ? अण्ण० घोल० अट्ठवि० ज०जो० । असादा०-अरदि-सोग० ज० प० क० ? अण्ण० पमत्त० घोल० सत्तविध० ज०जो० । पुरिस०-हस्स-रदि-भय०-दु० ज० प० क० ? अण्ण० पमत्त० अप्पमत्त० अट्ठविध० घोल० ज०जो० । देवग०-पंचिं०-समचदु०-वण्ण०४-देवाणुपु०-अगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदें०जस०-णिमि०-तित्थ० ज० प० क० ? अण्ण० पमत्तापमत्त० घोल० एगुणतीसदि० सह अट्ठवि० ज०जो० । वेउ०-आहार०-तेजा०-क०-दोअंगो० ज० प० क० ? अण्ण० अप्पमत्त० घोल० ऍक्कत्तीसदि० सह अट्ठवि० ज०जो० । अथिर-असुभ-अजस० ज० प० क० ? अण्ण० पमत्त० घोड० ऊणत्तीसं सह सत्तवि० ज०जो० । एवं संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार० । सुहुमसं० छण्णं क० ज० प० क० ?

करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्य देवगतिचतुष्कके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। आहारकद्विकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? नामकर्मकी इकतीस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और घोलमान जघन्य योगसे युक्त अन्यतर अप्रमत्तसंयत जीव आहारकद्विकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए।

२१५. मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायदण्डक तथा देवायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर घोलमान जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। असातावेदनीय, अरति और शोकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर घोलमान प्रमत्तसंयत जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। पुरुषवेद, हास्य, रति, भय और जुगुप्साके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर घोलमान प्रमत्तसंयत जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण और तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर घोलमान प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर और दो आङ्गोपाङ्गोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? नामकर्मकी इकतीस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर घोलमान अप्रमत्तसंयत जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर प्रमत्तसंयत घोलमान जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेश-बन्धका स्वामी है। इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत और परिहारविशुद्धि

---

[1] आ० प्रतौ खइग० । मणुस० पंचणा० इति पाठः ।

अण्ण० घोल० छव्विध० ज०जो०।

२१६. संजदासंज० पंचणा०दंडओ घोल० अट्ठविध० ज०जो०। असादा०-अरदि-सोग० जह० घोल० सत्तविध० ज०जो०। देवाउ० ज० प० क०? अण्ण० घोल० अट्ठविध० ज०जो०। देवगदिदंडओ जह० घोल० एगुणतीसदि० सह अट्ठविध० ज०जो०। अथिर-असुभ-अजस० ज० प० क०? अण्ण० घोल० एगुणतीसदि० सह सत्तविध० ज०जो०।

२१७. चक्खु० पंचणा०-णवदंसणा०-सादासाद०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-दोगोद०-पंचंत० ज० प० क०? अण्ण० चदुरिंदि० पढम०आहार० पढमस०-तब्भव० ज०जो०। एवं सव्वदंडगाणं एसेव आलावो। वेउव्वि०-आहारदुग-तित्थ० ओघं।

२१८. किण्ण-णील-काउ० ओघं। णवरि देवगदि०४ जहण्ण० मणुस० असंज० पढम०आहार० पढम०तब्भव० अट्ठावीसदि०[1] सह सत्तविध० ज०जो०।

संयत जीवोंमें जानना चाहिए। सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें छह कर्मोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? छह प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर घोलमान सूक्ष्मसाम्परायिक संयत जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है।

२१६. संयतासंयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणदण्डकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर घोलमान संयतासंयत जीव है। असातावेदनीय, अरति और शोकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर घोलमान जीव है। देवायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर घोलमान जीव देवायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। देवगतिदण्डकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर घोलमान जीव है। अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर घोलमान जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है।

२१७. चक्षुदर्शनी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, दो गोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है? प्रथम समयवर्ती आहारक, प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर चतुरिन्द्रिय जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार सभी दण्डकोंका यही आलाप है। वैक्रियिकद्विक, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है।

२१८. कृष्ण, नील और कापोतलेश्यामें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि देवगतिचतुष्कके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी प्रथम समयवर्ती आहारक, प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ, नामकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और

---

[1] ता० [illegible] पंचस० इति पाठः।

तित्थ० ज० मणुस० एगुणतीसदि० सह सत्तविध० ज०जो०। काउए तित्थ० ज० प० क० ? अण्ण० णेरइ० पढम०आहार० पढमतब्भव० तीसदि० सह सत्तवि० ज०जो०। देवगदि०४ ज० मणुस० असंज० [पढम०आहार० पढम०तब्भव०] एगुणतीसदि० सह सत्तवि० ज०जो०।

२१९. तेउ० पंचणा०-सादासाद०-उच्चा०-पंचंत० ज० प० क० ? अण्ण० दुगदि० सम्मा० मिच्छा० पढम०आहार० पढम०तब्भव० सत्तवि० ज०जो०। णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-णीचा० ज० प० क० ? अण्ण० देव० मिच्छा० पढम०-आहार० पढम०तब्भव० ज०जो०। दोआउ० देवभंगो। देवाउ० जह० दुगदि० सम्मा० मिच्छा० घोल० अट्ठविध० ज०जो०। तिरिक्ख०- पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-उज्जो०-अप्पसत्थ०-दूभग०-दुस्सर-अणादें० जह० प० क० ? अण्ण० देव० मिच्छा० पढम०तब्भव० तीसदि० सह सत्तवि० ज०जो०। मणुस०-मणुसाणु०-तित्थ० ज० प० क० ? अण्ण० देव० सम्मादि० तीसदि० सह सत्तविध० ज०जो०।

जघन्य योगसे युक्त अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्य है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर मनुष्य है। मात्र कापोतलेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयवर्ती आहारक, प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ, नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर नारकी उक्त प्रकृतिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। तथा देवगतिचतुष्कके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी प्रथम समयवर्ती आहारक, प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ, नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्य है।

२१९. पीतलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयवर्ती आहारक, प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ, सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय और नीचगोत्रके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयवर्ती आहारक, प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। दो आयुओंका भङ्ग देवोंके समान है। देवायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त दो गतिका सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव है। तिर्यञ्चगति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ, नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर सम्यग्दृष्टि देव है। एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावरदण्डक तथा

एइंदिय-आदाव-थावरदंडओ पंचिंदियदंडओ सोधम्मभंगो। देवगदि०४ जह० मणुस० असंज० [पढमतब्भव०] एगुणतीसदि० सह सत्तविध० ज०जो०। [आहारदुगं ओघभंगो।] एवं पम्माए। णवरि एइंदिय-आदाव०-थावरं वज्ज। सुक्काए आणदभंगो। णवरि देवाउ०-देवगदि०४-[आहारदुगं] पम्म भंगो।

२२०. वेदगे पंचणा०-छदंसणा०-सादासाद०-बारसक०-सत्तणोक०-उच्चा०-पंचंत० ज० प० क० ? अण्ण० दुगदि० पढम०तब्भव० ज० जो०। एवं सेसाणं पि ओधिभंगो। णवरि दुगदियस्स त्ति भाणिदव्वं। मणुसगदिदंडओ देवस्स त्ति भाणिदव्वं।

२२१. उवसम० पंचणा०दंडओ ज० प० क० ? अण्ण० देवस्स [पढम-]आहार०[1] पढम०तब्भव० सत्तवि० ज०जो०। देवगदि०४ ज० प० क० ? अण्ण० मणुस० घोल० एगुणतीस दि० सत्तविध० ज०जो०। आहारदुगं देवगदिभंगो। णवरि एँक्कत्तीसदि०। सेसं ओधिभंगो। णवरि णियदं देवस्स कादव्वं।

२२२. सासण० पंचणा०पढमदंडओ तिगदि० पढम०आहार० पढम०तब्भव०

पञ्चेन्द्रियजातिदण्डकका भङ्ग सौधर्मकल्पके समान है। देवगतिचतुष्कके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी प्रथम समयवर्ती आहारक, प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ, नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्य है। आहारकद्विकका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावरको छोड़कर इनमें जघन्य स्वामित्व कहना चाहिए। शुक्ललेश्यामें आनतकल्पके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि देवायु, देवगतिचतुष्क और आहारकद्विकका भङ्ग पद्मलेश्याके समान है।

२२०. वेदकसम्यक्त्वमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय बारह कषाय, सात नोकषाय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंका भी अवधिज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यहाँ दो गतिका जीव स्वामी है, ऐसा कहना चाहिए। तथा मनुष्यगतिदण्डकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी देव है, ऐसा कहना चाहिए।

२२१. उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणदण्डकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयवर्ती आहारक, प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ, सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर सम्यग्दृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। देवगतिचतुष्कके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर घोलमान मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। आहारकद्विकका भङ्ग देवगतिके समान है। इतनी विशेषता है कि नामकर्मकी इकतीस प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाले जीवके इसका जघन्य स्वामित्व कहना चाहिए। शेष भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि जघन्य स्वामित्व नियमसे देवके कहना चाहिए।

२२२. सासादनसम्यक्त्वमें पाँच ज्ञानावरणदण्डकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी प्रथम

---

[1] ता० प्रतौ देवस० (स्स०) आहार० आ० प्रतौ देव० सम्मा० आहार० इति पाठः।

ज०जो० । तिरिक्ख-मणुसाउ० ज० प० क० ? अण्ण० चदुग० घोल० अट्ठविध० ज०जो० । देवाउ० ज० प० क० ? अण्ण० दुगदि० घोल० अट्ठविध० ज०जो० । देवगदि० जह० दुगदि० घोल० अट्ठावीसदि० सह अट्ठविध० ज०जो० । तिरिक्खगदिदंडओ जह० तिगदि० पढम०तब्भव० तीसदि० सह सत्तविध० ज०जो० । एवं मणुस०-मणुसाणु० जह० एगुणतीसदि० ज०जो० ।

२२३. सम्मामि० पंचणा०दंडओ जह० चदुगदि० घोल० सत्तविध० ज०जो० । मणुसगदिदंडओ जह० देव० णेरइ० ऊणत्तीसदि० सह सत्तविध० ज०जो० । देवगदि०४ ज० प० क० ? अण्ण० दुगदि० अट्ठावीसदि० सह सत्तविध० ज०जो० ।

२२४. सण्णीसु पंचणा०-णवदंस०-दोवेदणी०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-दोगो०-पंचंत० ज० प० क० ? असण्णिपच्छा० पढम०तब्भव० सत्तविध० ज०जो० । दोआउ० मणजोगिभंगो । तिरिक्ख-मणुसाउ० ज० प० क० ? अण्ण० दुगदियस्स खुद्दाभवग्गहणतदियतिभागस्स पढमसमए आउगबंधमा० अट्ठविध० ज०जो० ।

समयवर्ती आहारक, प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ और जघन्य योगवाला अन्यतर तीन गतिका जीव है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका घोलमान जीव उक्त दो आयुओंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। देवायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका घोलमान जीव देवायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। देवगतिचतुष्कके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी अट्ठाईस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका घोलमान जीव है। तिर्यञ्चगतिदण्डकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ, नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर तीन गतिका जीव है। इसी प्रकार मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त तीन गतिका जीव है।

२२३. सम्यग्मिथ्यात्वमें पाँच ज्ञानावरणदण्डकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर चार गतिका जीव है। मनुष्यगतिदण्डकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर देव और नारकी है। देवगतिचतुष्कके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है।

२२४. संज्ञियोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, दो गोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ, सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और जघन्य योगसे युक्त असंज्ञियोंमेंसे आकर उत्पन्न हुआ जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। दो आयुओंका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी कौन है ? क्षुल्लक भवग्रहणके तृतीय त्रिभागके प्रथम समयमें आयुकर्मका बन्ध करनेवाला आठ प्रकारके

वेउव्वियछ० आहारदुग-तित्थ० ओघं। सेसाणं दंडगाणं णाणा०भंगो। असण्णि-पच्छागदस्स त्ति भाणिदव्वं। असण्णी० ओघो। णवरि वेउव्वियछ० जोणिणिभंगो। अणाहार० कम्मइगभंगो। एवं जहण्णसामित्तं समत्तं।

एवं सामित्तं समत्तं।

कालाणुगमो

२२५. कालाणुगमेण दुवि०—जह० उक्क० च। उक्क० पगदं। दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-छदंस०-बारसक०-भय-दु०-पंचंत० उक्कस्सपदेसबंधो केवचिरं[1] कालादो होदि? जह० एग०, उक्क० वे सम०। अणु० प०बं०कालो केवचिरं०? अणादियो अपज्जवसिदो अणादियो सपज्जवसिदो सादियो[2] सपज्जवसिदो। यो सो सादियो सपज्जवसिदो तस्स इमो णिद्देसो—जह० एग०, उक्क० अद्धपोंग्गल०। ओघेण सव्वासिं[3] उक्क० पदे०कालो जह० एग०, उक्क० बेस०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-ओरा०-तेजा०-क०-वण्ण०[4]-अगु०४-उप०-णिमि० अणु० ज० ए०, उ० अणंतकालमसंखें०।

कर्मोंके बन्धसे सम्पन्न और जघन्य योगसे युक्त अन्यतर दो गतिका जीव उक्त आयुओंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है। वैक्रियिकषट्क, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। शेष दण्डकोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इतनी विशेषता है कि इनका स्वामित्व कहते समय असंज्ञियोंमेंसे आकर उत्पन्न हुए जीवके कहना चाहिए। असंज्ञियोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें वैक्रियिकषट्कका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनियोंके समान है। अनाहारकोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है।

इस प्रकार जघन्य स्वामित्व समाप्त हुआ।

इस प्रकार स्वामित्व समाप्त हुआ।

कालानुगम

२२५. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका कितना काल है? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका कितना काल है? अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त काल है। उनमेंसे जो सादि-सान्त काल है उसका यह निर्देश है—जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्ध पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। आगे भी ओघसे सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चतुष्क, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति,

---

[1] ता०प्रतौ बंधो काले केवचिरं इति पाठः। [2] आ०प्रतौ अपज्जवसिदो सादियो इति पाठः।
[3] ता० प्रतौ अद्धपोग्गल०। सव्वासिं इति पाठः। [4] आ०प्रतौ तेजा० वण्ण०४ इति पाठः।

सादासाद०-इत्थि०-णवुंस०-हस्स-रदि-अरदि-सोग०-चदुआउ०-णिरयगदि-चदुजादि-आहार०-पंचसंठा०-आहारंगोवंग-पंचसंघ०-णिरयाणु०-आदाउज्जो०-अप्पसत्थवि०-थावर-सुहुम-अपज्ज०-साधार०-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-दुस्सर-अणादें०[1]-जस०-अजस० अणु० ज० ए०, उ० अंतो०। पुरिस० अणु० ज० ए०, उ० बेछावट्ठि० सादि० दोहि पुव्वकोडीहि सादिरेगं। तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० अणु० ज० ए०, उ० असंखेंज्जा लोगा। मणुस०-वज्जरि०-मणुसाणु० अणु०[2] ज० ए०, उ० तेंत्तीसं०। देवगदि०४ अणु० ज० ए०, उ० तिण्णि पलि० सादि० पुव्वकोडितिभागेण अंतोमुहुत्तूणेण[3]। पंचिं०-पर०-उस्सा०-तस०४ अणु०[4] ज० ए०, उ० पंचासीदिसागरोवमसदं०। समचदु०-पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर-आदें०-उच्चा० अणु० ज० ए०, उ० बेछावट्ठिसाग० सादि० दोहि पुव्वकोडीहि सादिरेगं तिण्णि पलि० दे० अंतोमुहुत्तेण ऊणाणि। ओरालि०अंगो० अणु० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं० सादि० अंतोमुहु० सत्तमाए णिक्खमंतस्स। तित्थ० अणु० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं सादि० दोहि पुव्वकोडी० वासपुधत्तूणगाहि सादिरेयाणि।

अरति, शोक, चार आयु, नरकगति, चार जाति, आहारकशरीर, पाँच संस्थान, आहारक आङ्गोपाङ्ग, पाँच संहनन, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। पुरुषवेदके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो पूर्वकोटि अधिक दो छ्यासठ सागर है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है। मनुष्यगति, वज्रर्षभनाराचसंहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। देवगतिचतुष्कके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तकम पूर्वकोटिका त्रिभाग अधिक तीन पल्य है। पञ्चेन्द्रियजाति, परघात, उच्छ्वास और त्रस चतुष्कके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल एक सौ पचासी सागर है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो पूर्वकोटि अधिक तथा तीन पल्य और अन्तर्मुहूर्त कम दो छ्यासठ सागर है। औदारिक आङ्गोपाङ्गके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागर है। यह अन्तर्मुहूर्त अधिक काल सातवीं पृथिवीसे निकलने वाले जीवके जानना चाहिए। तीर्थङ्कर प्रकृतिके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल वर्षपृथक्त्व कम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गईं पाँच ज्ञानावरणादि तथा अन्य प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध अपने-अपने योग्य सामग्रीके मिलने पर उत्कृष्ट योगसे होता है और

---

[1] ता० प्रतौ दूभग अणादे० इति पाठः। [2] ता० प्रतौ मणुसाणु० अणु० अणु० इति पाठः। [3] ता० प्रतौ अंतोमुहुत्त (त्तू) णेण, आ० प्रतौ अंतोमुहुत्तेण इति पाठः। [4] आ० प्रतौ तस०४ अणु४ अणु० इति पाठः। [5] ता०आ०प्रत्योः एगुणतीसदि० इति पाठः।

इसका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है, अतः यहाँ पाँच ज्ञानावरणादि सभी १२० प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धकी अपेक्षा विचार करनेपर प्रथम दण्डकमें कही गई ज्ञानावरणादि तीस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबंध यथासम्भव गुणप्रतिपन्न जीवके होता है, इसलिये जो अभव्य हैं उनके सदा काल इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होता रहता है, क्योंकि ये ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ हैं। भव्योंमें अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धके दो विकल्प बनते हैं—अनादि-सान्त और सादि-सान्त। अनादि-सान्त विकल्प उन भव्य जीवोंके होता है जो इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध किये बिना या अपनी-अपनी बन्धव्युच्छित्ति होते समय उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करके ही मुक्तिके पात्र हो जाते हैं और सादि-सान्त विकल्प उन भव्य जीवोंके होता है जो अपने-अपने उत्कृष्ट स्वामित्वके योग्य पूरी सामग्रीके मिलनेपर उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करके पुनः अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करने लगते हैं। इनमेंसे यहाँ अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धके सादि-सान्त विकल्पके जघन्य और उत्कृष्ट कालका विचार किया है। यह तो हम पहले ही लिख आये हैं कि इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध गुणप्रतिपन्न जीवके होता है, इसलिए अपने-अपने उत्कृष्ट स्वामित्वके योग्य स्थानमें इनका एक समयके अन्तरालसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध कराके मध्यमें एक समयके लिए अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करावे। इस प्रकार बन्ध कराने पर इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय प्राप्त हो जाता है। तथा अर्धपुद्गलके प्रारम्भमें उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध कराकर बादमें कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन काल तक इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करानेपर इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण प्राप्त हो जाता है। यही कारण है कि यहाँ इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्बन्धी सादि-सान्त विकल्पका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण कहा है। स्त्यानगृद्धित्रिक आदि द्वितीय दण्डकमें कही गई प्रकृतियाँ ध्रुवबन्धिनी हैं। यद्यपि इनमें औदारिकशरीर प्रकृति भी सम्मलित है, पर एकेन्द्रियोंमें इसकी प्रतिपक्ष प्रकृति वैक्रियिकशरीरका बन्ध न होनेसे यह भी ध्रुवबन्धिनी है; इसलिए पाँच ज्ञानावरणादिके समान इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका भी जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल कहा है। ज्ञानावरणादिके साथ इन प्रकृतियोंका कुल काल इसलिए नहीं कहा है, क्योंकि इन स्त्यानगृद्धि तीन आदिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध मिथ्यादृष्टि जीव करता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धके कालके ज्ञानावरणादिके समान अनादि-अनन्त आदि तीन विकल्प न होकर केवल एक सादि-सान्त विकल्प ही सम्भव है। सातावेदनीय आदिका जघन्य बन्ध काल एक समय और उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है, इसके कई कारण हैं। एक तो सातावेदनीय आदि अधिकतर सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनका जघन्य और उत्कृष्ट उक्त काल बन जाता है। दूसरे चार आयु, आहारकद्विक और आतपद्विक सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ नहीं भी हैं। तब भी ये अन्तर्मुहूर्तसे अधिक काल तक नहीं बँधतीं और एक समयके अन्तरसे इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। तृतीय आदि यथासम्भव गुणस्थानोंमें पुरुषवेदका ही बन्ध होता है, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल दो पूर्वकोटि अधिक दो छ्यासठ सागरप्रमाण कहा है। इसके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय स्पष्ट ही है, क्योंकि एक समयके अन्तरसे इसका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध हो और मध्यमें एक समयके लिए अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध हो यह सम्भव है और यह सप्रतिपक्ष प्रकृति होनेसे एक समयके लिए इसका बन्ध होकर दूसरे समयमें स्त्रीवेद या नपुंसकवेदका बन्ध होने लगे यह भी सम्भव है, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय कहा है। आगे अन्य प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय उक्त दो हेतुओंको ध्यानमें रख कर जहाँ जो सम्भव हो उसके अनुसार घटित कर लेना चाहिए, इसलिए आगे उसका हम पुनः-पुनः निर्देश नहीं करेंगे। तिर्यञ्चगति आदि तीन प्रकृतियोंका अग्निकायिक और वायुकायिक

२२६. णेरइएसु पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-तिरिक्ख०-पंचिं०-ओरा०-तेजा०-क०-ओरा०अंगो०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-तस०४-णिमि०-णीचा०-पंचंत० उ० ज० ए०, उ० बेसम०। अणु० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं०। दोवेदणी०-इत्थि०-णवुंस०-हस्स-रदि-अरदि-सोग-दोआउ०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-उज्जो०-अप्पसत्थवि०-थिरादितिण्णियु०-दूभग-दुस्सर-अणादें० उ० ज० ए०, उ० बेसम०।

जीवोंमें निरन्तर बन्ध होता है और इनकी कायस्थिति असंख्यात लोकप्रमाण है, इसलिए यहाँ इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। सर्वार्थसिद्धिमें मनुष्यगति आदि तीन प्रकृतियोंका निरन्तर बन्ध होता है और सर्वार्थसिद्धिमें आयु तेतीस-सागर है, इसलिए यहाँ इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। सम्यग्दृष्टि मनुष्यके देवगतिचतुष्कका ही बन्ध होता है। किन्तु इसके मनुष्यायुका बन्ध सम्यक्त्व अवस्थामें नहीं होता, इसलिए पूर्वकोटिकी आयुवाले किसी मनुष्यके प्रथम त्रिभागमें मनुष्यायुका बन्ध कराकर वेदकपूर्वक क्षायिकसम्यक्त्व उत्पन्न करावे और आयुके अन्तमें मरण कराकर तीन पल्यकी आयुवाले मनुष्योंमें ले जावे। इस प्रकार करानेसे अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटिका त्रिभाग अधिक तीन पल्य काल प्राप्त होता है। यतः इतने काल तक इसके निरन्तर देवगतिचतुष्कका बन्ध होगा, अतः देवगतिचतुष्कके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल उक्त कालप्रमाण कहा है। एकसौ पचासी सागर काल तक पञ्चेन्द्रियजाति आदिका निरन्तर बन्ध होता है, इसका पहले हम अनेक बार निर्देश कर आये हैं; इसलिए इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल उक्त कालप्रमाण कहा है। पुरुषवेदके समान सम्यग्दृष्टिके समचतुरस्र संस्थान आदि प्रकृतियोंका भी निरन्तर बन्ध होता रहता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल भी दो पूर्वकोटि अधिक दो छयासठ सागरप्रमाण तो कहा ही है। साथ ही भोगभूमिमें पर्याप्त होने पर निरन्तर इन्हीं प्रकृतियोंका बन्ध होता है, इसलिए उक्त कालमें कुछ कम तीन पल्यप्रमाण काल और जोड़ा है। नरकमें औदारिक आङ्गोपाङ्गका निरन्तर बन्ध तो होता ही है। साथ ही ऐसा जीव वहाँसे निकलनेके बाद भी अन्तर्मुहूर्त काल तक इसका बन्ध करता है, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागर कहा है। कोई एक मनुष्य है जिसने आठ वर्षका होनेके बाद तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध प्रारम्भ किया। उसके बाद इतना समय कम एक पूर्वकोटि कालतक वह यहाँ उसका बन्ध करता रहा। इसके बाद मरा और तेतीस सागरकी आयुवाला देव हो गया। फिर वहाँसे आकर पूर्वकोटिकी आयुवाला मनुष्य हुआ। फिर वर्षपृथक्त्व काल शेष रहने पर क्षपकश्रेणि पर आरोहण कर केवलज्ञानी हो गया। इस प्रकार वर्षपृथक्त्व कम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर काल तक निरन्तर तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध सम्भव है, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। यहाँ प्रारम्भके अबन्धके आठ वर्ष और अन्तके अबन्धका वर्षपृथक्त्व इन दोनोंको मिलाकर वर्षपृथक्त्व काल कम किया गया है।

२२६. नारकियोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक-आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। दो वेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, दो आयु, पाँच संस्थान,

अणु० ज० ए०, उ० अंतो० । पुरिस०-मणुस०-समचदु०-वज्जरि०-मणुसाणु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें०-उच्चा० उ० ज० ए०, उ० बेसम० । अणु० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं० देसू० । तित्थ० उ० ज० ए०, उ० बेसम० । अणु० ज० ए०, उ० तिण्णि साग० सादि० पलि० असंखें०भागे० सादि० । एवं सत्तमाए । उवरिमासु छसु पुढवीसु एसेव भंगो । णवरि अप्पप्पणो ट्ठिदी भाणिदव्वा । तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा०-उ० अणु० सादभंगो ।

पाँच संहनन, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। पुरुषवेद, मनुष्यगति, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराचसंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यका असंख्यातवाँ भाग अधिक तीन सागर है। इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिए। ऊपरकी छह पृथिवियोंमें यही भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अपनी-अपनी स्थिति कहनी चाहिए। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल सातावेदनीयके समान है।

विशेषार्थ—नरकमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय तथा उत्कृष्ट काल दो समय जैसा ओघमें घटित करके बतला आये हैं, उस प्रकार घटित कर लेना चाहिए। तथा सब प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धके जघन्य काल एक समयके विषयमें भी ओघप्ररूपणाके समय काफी प्रकाश डाल आये हैं। उसी प्रकार यहाँ भी जान लेना चाहिए। अब रहा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल सो उसका खुलासा इस प्रकार है—नरकमें प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियाँ ध्रुवबन्धिनी हैं। मात्र तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्र सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं। फिर भी सातवें नरकमें मिथ्यादृष्टिके ये भी ध्रुवबन्धिनी हैं और सातवें नरककी उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर है, इसलिए यहाँ इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। दो वेदनीय आदि दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त जिस प्रकार ओघप्ररूपणाके समय घटित करके बतला आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिये। सम्यग्दृष्टि नारकीके पुरुषवेद आदि तीसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध होता है और सातवें नरकमें सम्यक्त्व सहित जीवका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है, इसलिए यहाँ इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर कहा है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका तीसरे नरक तक ही बन्ध होता है। उसमें भी साधिक तीन सागरकी आयुवाले जीव तक ही इसका बन्ध सम्भव है, इसलिये यहाँ इसके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल पल्यका असंख्यातवाँ भाग अधिक तीन सागर कहा है। सब प्रकृतियोंका यह काल सातवीं पृथिवीकी मुख्यतासे कहा है, इसलिये सातवीं पृथिवीमें इसी प्रकार जाननेकी सूचना की है। अन्य छह पृथिवियोंमें प्रकृतियोंका इसी प्रकार विभाग करके काल कहना चाहिये। मात्र सर्वत्र कालका प्रमाण अपनी-अपनी स्थितिको ध्यानमें रखकर कहना चाहिए। इतनी

२२७. तिरिक्खेसु पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरा०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० उ० ज० ए०, उ० बेसम०। अणु० ज० ए०, उ० अणंतका०। दोवेदणी०- छण्णोक०-चदु आउ[1]०-दोगदि-चदुजादि-पंचसंठा०-ओरा०अंगो०-छस्संघ०-दोआणुपु०-आदाउज्जो०-अप्पसत्थ०-थावरादि०४-अथिरादि-तिण्णियुग०-दूभग-दुस्सर-अणादें० उ० ज० ए०, उ० बेसम०। अणु० ज० ए०, उ० अंतो०। पुरिस०-देवग०-वेउव्वि०-समचदु[2]०-वेउ०अंगो-देवाणु०-पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर-आदें०-उच्चा० उ० ज० ए०, उ० बेसम०। अणु० ज० ए०, उ० तिण्णि पलि०। तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० उ० ज० ए०, उ० बेसम०। अणु० ज० ए०, उ० असंखेंज्जा लोगा। पंचिं०-पर०-उस्सा०-तस०४ उ० ज० ए०, उ० बेसम०। अणु० ज० ए०, उ० तिण्णि पलि० सादि०।

विशेषता है कि तिर्यञ्चगतिद्विक और नीचगोत्र ये तीन छठे नरक तक सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसलिये इन नरकोंमें इनका काल असातावेदनीयके समान घटित कर लेना चाहिये। साथ ही तीर्थङ्कर प्रकृतिका वन्ध तीसरे नरक तक ही होता है, इसलिये इसके कालका विचार प्रारम्भके तीन नरकोंमें ही करना चाहिये।

२२७. तिर्यञ्चोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट अनन्तकाल है। दो वेदनीय, छह नोकषाय, चार आयु, दो गति, चार जाति, पाँच संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। पुरुषवेद, देवगति, वैक्रियिकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन पल्य है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है। पञ्चेन्द्रियजाति, परघात, उच्छ्वास और त्रसचतुष्कके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है।

विशेषार्थ—यहाँ व आगेकी मार्गणाओंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य व उत्कृष्ट काल और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल पहलेके समान जानना चाहिए। पाँच ज्ञानावरणादि ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं और एकेन्द्रियोंमें औदारिकशरीर भी ध्रुवबन्धिनी प्रकृति है, इसलिए तिर्यञ्चोंमें इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल अनन्त कालप्रमाण

---

[1] आ०प्रतौ 'छण्णोक० दो आउ०' इति पाठः। [2] आ०प्रतौ 'देवग० समचदु०' इति पाठः।

२२८. पंचिं०तिरि०३ पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ[1]०-सोलसक०-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० उ० ओघं। अणु० सव्वाणं ज० ए०, उ० तिण्णि पलि० पुव्वकोडिपुधत्तं। साददंडओ तिरिक्खोघं। णवरि तिरिक्ख०३-ओरालियं च पविट्ठं। पुरिसदंडओ पंचिंदियदंडओ तिरिक्खोघं। णवरि पंचिं०तिरि०जोणिणीसु पुरिसदंडओ तिण्णिपलि० दे०।

कहा है, क्योंकि तिर्यञ्चोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति अनन्त काल प्रमाण है। दो वेदनीय आदि कुछ सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं और कुछ अध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहुर्त कहा है। सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्चोंमें पुरुषवेद आदिका नियमसे बन्ध होता है और तिर्यञ्चोंमें सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल तीन पल्य है, इसलिए यहाँ इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल तीन पल्य कहा है। अग्निकायिक व वायुकायिक जीव तिर्यञ्चगतिद्विक व नीचगोत्रका नियमसे बन्ध करते हैं और इनकी कायस्थिति असंख्यात लोकप्रमाण है, इसलिए यहाँ इन तीन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। भोगभूमिमें पञ्चेन्द्रियजाति आदिका बन्ध तो होता ही है। साथ ही जो तिर्यञ्च मर कर भोगभूमिमें जन्म लेते हैं उनके अन्तर्मुहुर्त पहलेसे इनका नियमसे बन्ध होने लगता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य कहा है।

२२८. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका सब प्रकृतियोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य है। सातावेदनीयदण्डक का भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। इतनी विशेषता है कि इस दण्डकमें तिर्यञ्चगतित्रिक और औदारिकशरीरको प्रविष्ट कर लेना चाहिए। पुरुषवेददण्डक और पञ्चेन्द्रियजातिदण्डकका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनियोंमें पुरुषवेददण्डकका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य है।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च त्रिककी कायस्थिति पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य है, इसलिए इन तीन प्रकारके तिर्यञ्चोंमें पाँच ज्ञानावरणादिके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल उक्त प्रमाण कहा है, क्योंकि ये सब ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इतने काल तक इनका निरन्तर अनुत्कृष्ट बन्ध होना सम्भव है। यहाँ सातावेदनीयदण्डकका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है, यह स्पष्ट ही है। तथा इन तिर्यञ्चोंमें तिर्यञ्चगतित्रिक और औदारिकशरीर सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हो जाती हैं, इसलिए इन्हें सातावेदनीयदण्डकके साथ गिनाया है। सामान्य तिर्यञ्चोंमें पुरुषवेददण्डक और पञ्चेन्द्रियजाति दण्डकके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिककी मुख्यता से ही कहा है, इसलिए इसे सामान्य तिर्यञ्चोंके सामान जानने की सूचना की है। मात्र पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंमें पुरुषवेददण्डकके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य कहनेका कारण यह है कि सम्यग्दृष्टि जीव मर कर इन तिर्यञ्चोंमें नहीं उत्पन्न होता और अपर्याप्त अवस्थामें अन्य सप्रतिपक्ष प्रकृतियोंका भी बन्ध होता है, इसलिए इन तिर्यञ्चोंमें पुरुषवेद आदि प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य ही प्राप्त होता है।

---

[1] ता०प्रतौ 'णवदंस० मिच्छ (च्छ)' इति पाठः।

२२९. पंचिंदि०तिरि०अपज्ज० सव्वपगदीणं उ० ज० ए०, उ० बे सम०। अणु० ज० ए०, उ० अंतो०। एवं सव्वअपज्जत्तगाणं तसाणं थावराणं च सव्वसुहुमपज्जत्तगाणं च।

२३०. मणुस०३ पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० उ० ज० ए०, उ० बेसम०। एवं सव्वेसिं उक्कस्सगं। अणु० ज० ए०, उ० तिण्णि पलि० पुव्वकोडिपुधत्तं। पुरिस०-देवगदि-पंचिंदि०-वेउव्वि०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-देवाणु०-पर०-उस्सा०-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-उच्चा० अणु० ज० ए०, उ० तिण्णि पलि० सादि० पुव्वकोडितिभागेण०। तित्थ० अणु० ज० ए०, उ० पुव्वकोडी० दे०। सेसाणं अणु० ज० ए०, उ० अंतो०। णवरि मणुसिणीसु पुरिसदंडओ जोणिणिभंगो।

२२९. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार त्रस और स्थावर सब अपर्याप्तकोंमें तथा सब सूक्ष्म पर्याप्तकोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहां जितनी मार्गणाओंका निर्देश किया है उन सबकी कायस्थिति अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है, इसलिए इनमें यहां बँधनेवाली सब प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कहा है।

२३०. मनुष्यत्रिकमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनवरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। इसी प्रकार सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल जानना चाहिए। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य है। पुरुषवेद, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटिका त्रिभाग अधिक तीन पल्य है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है। शेष प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यिनियोंमें पुरुषवेददण्डकका भङ्ग तिर्यञ्चयोनिनी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें सब ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ कहीं हैं और मनुष्योंकी उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य है, इसलिए इनमें पाँच ज्ञानावरणादिके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल उक्तप्रमाण कहा है। मनुष्य और मनुष्यपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटिका त्रिभाग अधिक तीन पल्य है और ऐसे मनुष्योंके पुरुषवेद आदिका नियमसे बन्ध होता है, इसलिए इन दो प्रकारके मनुष्योंमें पुरुषवेद आदिके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल उक्त कालप्रमाण कहा है। पर मनुष्यिनियोंमें सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल तिर्यञ्च योनिनी जीवोंके समान है, इसलिए इनमें पुरुषवेद आदिके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल तिर्यञ्च योनिनी जीवोंके समान कहा है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल

२३१. देवेसु पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-पुरिस०-भय-दु०-मणुस०-पंचिंदि०-तिण्णिसरीर-समचदु०-ओरा०अंगो०-वज्जरि०-वण्ण०४-मणुसाणु०-अगु०४-तस०४-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा-पंचंत० उ० ज० ए०, उ० बेसम०। अणु० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ उक्क० ओघं। अणु० ज ए०, उ० ऍक्कत्तीसं०। सेसाणं उ० ज० ए०, उ० बेसम०। अणु० ज० ए०, उ० अंतो०। एवं सव्वदेवाणं अप्पप्पणो ट्ठिदी णेदव्वा।

२३२. एइंदिएसु धुवियाणं तिरिक्ख०-तिरिक्खाणुपु०-णीचा० उ० ज० ए०, उ० बेसम०। एवं सव्वाणं उक्कस्सपदेसबंधो। अणु० ज० ए०, उ० असंखेंज्जा लोगा।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें कुछ कम एक पूर्वकोटि प्रमाण है यह स्पष्ट ही है। पर यह उत्कृष्ट काल जिस भवमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध प्रारम्भ होता है उस भवकी अपेक्षा से जानना चाहिए। यहां मनुष्यिनीके भी तीर्थङ्कर प्रकृतिके बन्धका निर्देश किया है। इससे ज्ञात होता है कि तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध जिस भवमें प्रारम्भ होता है उस भवमें उसका उदय नहीं होता, क्योंकि तीर्थङ्कर स्त्रीवेदी नहीं होते ऐसा प्रमाण पाया जाता है। अन्य सातावेदनीय आदिके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है यह स्पष्ट ही है।

२३१. देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, तीन शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक शरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, प्रशस्त-विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल इकतीस सागर है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार सब देवोंमें अपनी अपनी स्थिति जाननी चाहिये।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंमें पाँच ज्ञानावरणादि कुछ प्रकृतियाँ तो ध्रुवबन्धिनी हैं ही। पुरुषवेद आदि जो कुछ प्रकृतियाँ शेष रहती हैं सो सम्यग्दृष्टिके वे भी ध्रुवबन्धिनी हैं और सर्वार्थसिद्धिमें आयु तेतीस सागर है। देवोंमें इतने काल तक इनका निरन्तर बन्ध होता रहता है, इसलिये यहाँ इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। स्त्यानगृद्धि आदि दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका सम्यग्दृष्टिके बन्ध नहीं होता और मिथ्यादृष्टि जीव नौवें ग्रैवेयक तक ही होते हैं, इसलिये इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल इकतीस सागर कहा है। शेष प्रकृतियाँ या तो सप्रतिपक्ष हैं या अध्रुवबन्धिनी हैं, अतः उनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। सब देवोंमें यह काल इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिये। मात्र जिन देवोंकी जो उत्कृष्ट स्थिति हो उसे ध्यानमें रखकर यह काल लाना चाहिये। साथ ही नौ ग्रैवेयक तकके देवोंमें प्रथम दण्डक और दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके कालमें कोई अन्तर नहीं रहता है।

२३२. एकेन्द्रियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तथा तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्च गत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय

सेसाणं उक्क० अणु० अपज्जत्तभंगो। बादरे धुवियाणं अणु० ज० ए०, उ० अंगुल० असंखे०। तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० अणु० ज० ए०, उ० कम्मट्ठिदी०। बादरपज्ज० संखेँज्जाणि वाससह० धुवियाणं तिरिक्खगदितिगस्स च। सेसाणं अपज्जत्तभंगो। सुहुम० धुविगाणं तिरिक्खगदितियस्स च उ० ज० ए०, उ० बेसम०। अणु० ज० ए०, उ० सेढीए असंखेँज्जदि०। सेसाणं पगदीणं अपज्जत्तभंगो। एवं सव्वसुहुमाणं। विगलिंदि० धुवियाणं उ० ज० ए०, उ० बेसम०। एवं सव्वाणं उक्कस्सपदेसबंधो०। अणु० ज० ए०, उ० संखेँज्जाणि वाससह०। सेसाणं अप्पज्जत्तभंगो।

है। इसी प्रकार सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका भङ्ग अपर्याप्तकोंके समान है। बादर जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कर्मस्थितिप्रमाण है। बादर पर्याप्तक जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली और तिर्यञ्चगतित्रिकके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग अपर्याप्तकोंके समान है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली और तिर्यञ्चगतित्रिकके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल जगश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग अपर्याप्तकोंके समान है। इसी प्रकार सब सूक्ष्म जीवोंमें जानना चाहिए। विकलेन्द्रियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। इसी प्रकार सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग अपर्याप्तकोंके समान है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध अपनी-अपनी अन्य योग्यताओंके साथ बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव करते हैं और एकेन्द्रियोंमें इनका उत्कृष्ट अन्तर काल असंख्यात लोकप्रमाण है। इसका यह अभिप्राय हुआ कि जब तक एकेन्द्रिय जीव बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त नहीं होता तब तक वह ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका निरन्तर अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध ही करता रहता है, इसलिये तो एकेन्द्रियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। तथा अग्निकायिक और वायुकायिक जीव अपनी कायस्थितिके भीतर निरन्तर तिर्यञ्चगतित्रिकका बन्ध करते हैं, इसलिये एकेन्द्रियोंमें इन तीन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। बादर एकेन्द्रियोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। यह सम्भव है कि इस कालके भीतर ये जीव ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका निरन्तर अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करते रहें, इसलिये इनमें उक्त प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। पर बादर एकेन्द्रियोंमें बादर अग्निकायिक और बादर वायुकायिक जीवोंकी कायस्थिति कर्मस्थितिप्रमाण है, इसलिये बादर एकेन्द्रियोंमें तिर्यञ्चगतित्रिकके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल कर्मस्थितिप्रमाण कहा है। बादर पर्याप्तकोंकी और इनमें अग्निकायिक व वायुकायिक जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति संख्यात हजार वर्षप्रमाण है, इसलिए बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके और तिर्यञ्चगतित्रिकके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका

२३३. पंचिंदिएसु२ पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० उ० ज० ए०, उ० बेसम०। एवं सव्वाणं उ० पदेसबंधो०। अणु० ज० ए०, उ० सागरोवमसह० पुव्वकोडिपुधत्ते०। पज्जत्ते० अणु० ज० ए०, उ० सागरोवमसदपुधत्तं। साददंडओ मूलोघं। पुरिसदंडओ ओघं। तिरिक्ख०-ओरालि०-ओरालि०अंगो'०-तिरिक्खाणु०-णीचा० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं० सादि० अंतोमुहुत्तेण सादि०। मणुसगदिदंडओ देवगदिदंडओ पंचिंदियदंडओ समचदु०दंडओ तित्थयरं च ओघं।

उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष कहा है। सूक्ष्म एकेन्द्रियोंकी कायस्थिति तो असंख्यात लोक प्रमाण है। पर इनमें पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंकी कायस्थिति अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं है, इसलिए सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें उनकी और उनमें पर्याप्तकोंकी कायस्थितिको ध्यानमें रख कर ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल न कह कर योगस्थानोंको ध्यानमें रख कर उत्कृष्ट काल कहा है, क्योंकि यह सम्भव है कि जो योग इनमें उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका कारण हो वह क्रमसे अन्य सब योगोंके होनेके बाद ही प्राप्त हो और सब योगस्थान जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं, इसलिए इनमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके और तिर्यञ्चगतित्रिकके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। सूक्ष्म पृथिविकायिक आदि जीवोंमें यह काल इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। विकलत्रयोंकी कायस्थिति संख्यात हजार वर्ष है, इसलिए इनमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष कहा है। यहाँ जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उन सबमें शेष प्रकृतियोंका भङ्ग अपर्याप्तकोंके समान है,यह स्पष्ट ही है।

२३३. पञ्चेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। इसी प्रकार सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल है। पञ्चेन्द्रियोंमें अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक एक हजार सागर है। पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सौ सागर पृथक्त्व प्रमाण है। सातावेदनीयदण्डकका भङ्ग मूलोघके समान है। पुरुषवेददण्डकका भङ्ग ओघके समान है। तिर्यञ्चगति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागर है। मनुष्यगतिदण्डक, देवगतिदण्डक, पञ्चेन्द्रियजातिदण्डक, समचतुरस्रसंस्थान दण्डक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें अपनी-अपनी कायस्थितिप्रमाण काल तक ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका निरन्तर अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी कायस्थितिप्रमाण कहा है। इन दोनों मार्गणाओंमें तिर्यञ्चगति आदि पाँच प्रकृतियोंका निरन्तर अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सातवें नरकमें और वहाँसे निकलनेपर अन्तर्मुहूर्त काल तक सम्भव है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागर कहा है। दण्डकोंमें व फुटकर रूपसे कही गईं शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धके कालका विचार ओघ प्ररूपणाके समय जिस प्रकार घटित करके बतला आये हैं, उस प्रकारसे यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए।

२३४. पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ० धुवियाणं उ० ओघं। अणु० ज० ए०, उ० असंखेँज्जा लोगा। बादरे कम्मट्ठिदी०। पज्जत्तेसु संखेँज्जाणि वाससहस्साणि। वणप्फदि० एइंदियभंगो। बादरवणप्फदिपत्तेय-णिगोदजीवाणं पुढविकाइयभंगो। सेसं अपज्जत्तभंगो।

२३५. तस-तसपज्जत्त० धुवियाणं पढमदंडओ उ० ओघं। अणु० ज० ए०, उ० सगट्ठिदी०। सेसाणं पंचिंदियभंगो।

२३६. पंचमण०-पंचवचि० सव्वपगदीणं उ० ज० ए०, उ० बेसम०। अणु० ज० ए०, उ० अंतो०। एवं मणजोगिभंगो वेउव्वि०-आहारका०-कोधादिचदुक्क-

---

२३४. पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धके कालका भङ्ग ओघके समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है। इनके बादरोंमें कर्मस्थितिप्रमाण है। इनके बादर पर्याप्तकोंमें संख्यात हजार वर्ष है। वनस्पतिकायिकोंमें एकेन्द्रियोंके समान भङ्ग है। बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर और बादर निगोद जीवोंमें पृथिवीकायिक जीवोंके समान भङ्ग है। इन सबमें शेष भङ्ग अपर्याप्तकोंके समान है।

विशेषार्थ—पृथिवीकायिक आदि चारोंकी कायस्थिति असंख्यात लोकप्रमाण है, इसलिए इनमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। बादर पृथिवीकाय आदि चारोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति कर्मस्थितिप्रमाण है और इनके पर्याप्तकोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति संख्यात हजार वर्ष है, इसलिए इनमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी कायस्थितिप्रमाण कहा है। वनस्पतिकायिकोंकी कायस्थिति अनन्तकालप्रमाण है। पर इनमें अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध यदि निरन्तर हो तो असंख्यात लोकप्रमाण काल तक ही होगा। कारणका विचार एकेन्द्रियमार्गणाकी प्ररूपणाके समय कर आये हैं, इसलिए इनमें एकेन्द्रियोंके समान भङ्ग कहा है। बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर और बादर निगोद जीवोंकी कायस्थिति बादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान है, इसलिये यहाँ इन जीवोंका भङ्ग पृथिवीकायिक जीवोंके समान कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२३५. त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंमें प्रथम दण्डकमें कही गई ध्रुववाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका भङ्ग ओघके समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रियोंके समान है।

विशेषार्थ—त्रसोंकी कायस्थिति पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक दो हजार सागर और त्रसपर्याप्तकोंकी कायस्थिति दो हजार सागर है। इतने काल तक इनके ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका निरन्तर अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी कायस्थिति प्रमाण कहा है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रियोंके समान है,यह स्पष्ट ही है।

२३६. पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार मनोयोगी जीवोंके समान वैक्रियिककाययोगी, आहारककाययोगी, क्रोधादि चार कषायवाले, अपगतवेदी, सूक्ष्म-

अवगदवेद-सुहुमसंप०-उवसम०-सम्मामि० ।

२३७. कायजोगीसु पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० उक्क० ओघं । अणु० ज० ए०, उ० अणंतकालमसं० । तिरिक्ख०२-णीचा० उ० अणु० ओघं । सेसाणं पगदीणं मणजोगिभंगो[1] ।

२३८. ओरालिका० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसकसा०-भय-दु०-ओरा०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० उक्क० ओघं । अणु० ज० ए०, उ० बावीसं वस्ससहस्साणि देसू० । तिरिक्खगदिदंडओ उक्क० ओघं । अणु० ज० ए०, उ० तिण्णि वाससहस्साणि देसू० । सेसाणं मणजोगिभंगो ।

साम्परायसंयत, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—इन सब मार्गणाओंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होनेसे इनमें सब प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बन जाता है । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

२३७. काययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका भङ्ग ओघके समान है । अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । तिर्यञ्चगतिद्विक और नीचगोत्रके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका भङ्ग ओघके समान है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है ।

विशेषार्थ—काययोगी जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति अनन्त कालप्रमाण है । इनमें इतने काल तक प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका निरन्तर अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल अनन्त काल कहा है । ओघसे तिर्यञ्चगतिद्विक और नीचगोत्रके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जो काल कहा है वह यहाँ भी सम्भव है, इसलिए इनका भङ्ग ओघके समान कहा है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है यह स्पष्ट ही है ।

२३८. औदारिककाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका भङ्ग ओघके समान है । अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है । तिर्यञ्चगतिदण्डकके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका भङ्ग ओघके समान है । अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन हजार वर्षप्रमाण है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है ।

विशेषार्थ—औदारिककाययोगका उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्षप्रमाण है, इसलिए इस योगवाले जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है । तथा वायुकायिक जीवोंमें औदारिककाययोगका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कम तीन हजार वर्षप्रमाण है, इसलिए यहाँ तिर्यञ्चगतिदण्डकके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कम तीन हजार वर्ष कहा है । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

---

[1] आ०प्रतौ 'सेसाणं मणजोगिभंगो' इति पाठः ।

२३९. ओरालियमि० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-देवग०-चत्तारिसरीर-वेउव्वि०अंगो०-वण्ण४—देवाणु०-अगु०-उप०-णिमि०-तित्थ०-पंचंत० उ० ज० उ० ए०[1] । अणु० ज० उ० अंतो० । सेसाणं पगदीणं उ० ज० उ० ए० । अणु० ज० ए०, उ० अंतो० । आउ० ओघं । एवं वेउव्वियमि०-आहारमि० ।

२४०. कम्मइग०[2] एइंदियपगदीणं उ० ज० उ० ए०[3] । अणु० ज० ए०, उ० तिण्णि सम० । तसपगदीणं उ० ज० उ० ए० । अणु० ज० ए०, उ० बेसम० । अधवा देवगदिपंचगवज्जाणं सव्वपगदीणं उ० ज० उ०ए० । अणु० ज०ए०,उ० तिण्णिसम० ।

२३९. औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, देवगति, चार शरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। आयुकर्मका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी तथा आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—औदारिकमिश्रकाययोगमें दो आयुओंको छोड़कर सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेके अनन्तर पूर्व समयमें होता है, इसलिए ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियोंके साथ अन्य प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। किन्तु प्रथम दण्डकमें कही गई ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियोंका यहाँ शेष अन्तर्मुहूर्त काल तक अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होता है, इसलिए यहाँ ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा इनके सिवा बँधनेवाली परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए उनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। यहाँ दो आयुओंका भङ्ग ओघके समान है, क्योंकि आयुकर्मका भङ्ग त्रिभागमें या मरणसे अन्तर्मुहूर्त पूर्व होता है और जो औदारिकमिश्रकाययोगी आयुका बन्ध करता है वह लब्ध्यपर्याप्त होता है, इसलिए यहाँ ओघके समान उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल प्राप्त होनेमें कोई बाधा नहीं आती। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें इसी प्रकार अपनी अपनी प्रकृतियोंका काल घटित हो जाता है, इसलिए उनमें औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान जाननेकी सूचना की है।

२४०. कार्मणकाययोगी जीवोंमें एकेन्द्रिय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन समय है। त्रसप्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अथवा देवगतिपञ्चकको छोड़कर सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन समय है।

---

[1] आ०प्रतौ 'उ० ज० ए०' इति पाठः। [2] ता०आ०प्रत्योः 'आहारमि० असादभंगो। कंम्मइग०' इति पाठः। [3] आ०प्रतौ 'उ० ज० ए०' इति पाठः।

२४१. इत्थिवेदे पंचणाणावरणादिपढमदंडओ उ० ज० ए०, उ० बेसम० । अणु० ज० ए०, उ० पलिदो०सदपुधत्तं । सादासाद०-छण्णोक०-चदुआउ०-दोगदि-चदुजादि-आहारदुग-पंचसंठा०-पंचसंघ०-दोआणु०-आदाउज्जो०-अप्पसत्थ०-थावरादि०४-थिरादितिण्णियु०-दूभग-दुस्सर-अणादें०-णीचा० उ० ज० ए०, उ० बेसम० । अणु० ज० ए०, उ० अंतो० । पुरिस०-मणुस०-पंचिंदि०-समचदु०-ओरा०अंगो०-वज्जरि०-

---

विशेषार्थ—यहां सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध अपने अपने स्वामित्वके योग्य स्थानमें एक समयके लिए होता है, इसलिए सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। परन्तु अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धके कालके विषयमें दो सम्प्रदाय हैं। प्रथमके अनुसार जो विग्रहगतिमें एकेन्द्रियोंके बँधनेवाली प्रकृतियाँ हैं उनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय कहा है, क्योंकि अधिकसे अधिक तीन विग्रह एकेन्द्रियोंमें ही सम्भव हैं। तथा जो केवल त्रसोंमें बँधनेवालीं प्रकृतियां हैं उनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो. समय कहा है, क्योंकि त्रसोंमें अधिकसे अधिक दो विग्रह ही होते हैं। दूसरे सम्प्रदायके अनुसार देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग और तीर्थङ्कर इन पाँच प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय ही है, क्यों कि इनका बन्ध करनेवाले जीव कार्मणकाययोगमें अधिकसे अधिक दो समय तक ही रहते हैं। किन्तु शेष प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय कहा है। यहां यह तो स्पष्ट है कि जिनका एकेन्द्रियोंके कार्मणकाययोगमें बन्ध होता है उनका यह काल बन जाता है। परन्तु जिनका एकेन्द्रियोंके कार्मणकाययोगमें बन्ध नहीं होता उनका यह काल कैसे बनता है यह विचारणीय है। साधारण नियम यह है कि जो जिस जातिमें उत्पन्न होता है उसके यदि वह सम्यग्दृष्टि नहीं है तो अन्तर्मुहूर्त पहलेसे उस जातिसम्बन्धी प्रकृतियोंका बन्ध होने लगता है। पर अन्यत्र भी मरणके बाद विग्रहगतिमें यह नियम नहीं रहता ऐसा इस कथनसे स्पष्ट होता है। इसलिए एकेन्द्रियोंके विग्रहगतिमें तिर्यञ्चगतिसम्बन्धी और मनुष्यगतिसम्बन्धी सभी प्रकृतियोंका बन्ध हो सकता है यह इस कथनका तात्पर्य है। देवगतिचतुष्क और तीर्थङ्कर प्रकृतिको इस नियमका अपवाद रखा है सो उसका कारण यह है कि तीर्थङ्कर प्रकृतिका तो सदैव सम्यग्दृष्टिके ही बन्ध होता है, अतः कार्मणकाययोगमें भी इसका बन्ध करनेवाले जीवके अधिकसे अधिक दो विग्रह हो सकते हैं। और देवगतिचतुष्कका कार्मणकाययोगमें केवल मनुष्य और तिर्यञ्च सम्यग्दृष्टिके ही बन्ध होगा, इसलिए यहां भी अधिकसे अधिक दो विग्रह ही सम्भव हैं। यही कारण है कि इन पाँच प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका दूसरे सम्प्रदायके अनुसार भी उत्कृष्ट काल दो समय कहा है।

२४१. स्त्रीवेदमें पाँच ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डकके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सौ पल्य पृथक्त्वप्रमाण है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, छह नोकषाय, चार आयु, दो गति, चार जाति, आहारकद्विक, पाँच संस्थान, पाँच सहनन, दो आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। पुरुषवेद, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्र-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Nafa, Varanasi

मणुसाणु०-पसत्थ०-तस-सुभग-सुस्सर-आदें०-उच्चा० उक्क० ओघं। अणु० ज० ए०, उ० पणवण्णं पलि० देसू०। देवगदि०४ उक्क० ओघं। अणु० ज० ए०, उ० तिण्णि पलि० देसू०। ओरालि०-पर०-उस्सा०-बादर-पज्जत्त-पत्ते० उक्क० ओघं। अणु० ज० ए०, उ० पणवण्णं पलि० सादि०। तित्थ० उक्क० ओघं। अणु० ज० ए०, उ० पुव्वकोडी देसूणाणि।

२४२. पुरिसेसु पंचणाणावरणादिपढमदंडओ सादादिविदियदंडओ[1] इत्थिभंगो। णवरि सगट्ठिदी०। पुरिस० उ० ज० ए०, उ० बेसम०। एवं सव्वाणं उक्क० पदेसबंधो। अणु० ज० ए०, उ० बेछावट्ठि० सादि० दोहि पुव्वकोडीहि०। देवगदि०४

संस्थान, औदारिकशरीरआङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम पचपन पल्य है। देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य है। औदारिकशरीर, परघात, उच्छ्वास, बादर, पर्याप्त और प्रत्येकके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक पचपन पल्य है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है।

विशेषार्थ—स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट कायस्थिति सौ पल्यपृथक्त्वप्रमाण होनेसे इसमें पाँच ज्ञानावरणादि ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल सौ पल्यपृथक्त्वप्रमाण कहा है। सातावेदनीय आदिमें कुछ सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं और कुछ अध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। सम्यग्दृष्टि देवीके पुरुषवेद आदिका निरन्तर बन्ध होता रहता है, इसलिए यहाँ इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम पचपन पल्य कहा है। उत्तम भोगभूमिमें पर्याप्त होने पर मनुष्यिनीके देवगति चतुष्कका नियमसे बन्ध होता है, इसलिए यहाँ देवगतिचतुष्कके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य कहा है। देवीके और वहाँसे च्युत होने पर मिथ्यादृष्टि जीवके अन्तर्मुहूर्त काल तक औदारिकशरीर आदिका बन्ध सम्भव है, इसलिए औदारिकशरीर आदिके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक पचपन पल्य कहा है। मनुष्यिनी आठ वर्षकी होकर सम्यक्त्वको उत्पन्नकर तीर्थङ्कर प्रकृतिका एक पूर्वकोटि कालके अन्त तक निरन्तर बन्ध कर सकती है, इसलिए यहाँ तीर्थङ्कर प्रकृतिके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है।

२४२. पुरुषोंमें पाँच ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डक और सातावेदनीय आदि द्वितीय दण्डकका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि प्रथम दण्डकके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल कहते समय वह अपनी कायस्थितिप्रमाण कहना चाहिए। पुरुषवेदके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। इसी प्रकार सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो पूर्वकोटि अधिक दो छयासठ सागर है।

---

[1] ता०प्रतौ 'सा [दा] दियदंडओ' इति पाठः।

पंचिंदियदंडओ समचदु०दंडओ तित्थ० ओघं। णवरि पंचिंदियदंडओ अणु० उ० तेवट्ठि-सागरोवमसदं। मणुसगदिपंचग० अणु० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं सागरो०।

२४३. णवुंसगे पढमदंडओ विदियदंडओ तिरिक्ख०३ तिरिक्खोघं। पुरिसदंडओ सत्तमभंगो। देवगदि०४ अणु० ज० ए०, उ० पुव्वकोडी दे०। पंचिं०-ओरा०अंगो०-पर०-उस्सा०-तस०४ उक्कस्सं ओघं। अणु० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं० सादि० दोहि अंतोमुत्तेहि सादि०। ओरा०अंगो० एगमुहुत्तेहि सादि०। तित्थ० अणु० ज० ए०, उ० तिण्णिसाग० सादि०।

देवगतिचतुष्क, पञ्चेन्द्रियजातिदण्डक समचतुरस्रसंस्थानदण्डक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्द्रियजातिदण्डकके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल एक सौ त्रेसठ सागर है। मनुष्यगतिपञ्चकके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है।

विशेषार्थ—यहाँ पाँच ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डकके कालमें स्त्रीवेदी जीवोंकी अपेक्षा जो विशेषता है, उसका निर्देश मूलमें किया ही है। तात्पर्य यह है कि पुरुषवेदकी उत्कृष्ट कायस्थिति सौ सागर पृथक्त्वप्रमाण है और पाँच ज्ञानावरणादि ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल सौ सागर पृथक्त्वप्रमाण जानना चाहिए। सातावेदनीय आदि दण्डकका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंमें जैसा बतलाया है वह यहाँ भी वैसा ही है। कारण स्पष्ट है। पुरुषवेदका निरन्तर बन्ध ओघमें दो पूर्वकोटि अधिक दो छयासठ सागर बतला आये हैं, वह पुरुषवेदी जीवोंमें अविकल घटित हो जाता है, इसलिए यहाँ भी इसके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल उक्त काल प्रमाण कहा है। देवगति चतुष्क, पञ्चेन्द्रियजातिदण्डक, समचतुरस्रसंस्थानदण्डक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है, यह स्पष्ट ही है। मात्र पञ्चेन्द्रियजातिदण्डकके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल ओघसे जो एक सौ पचासी सागर कहा है उसमेंसे बाईस सागर कम हो जाता है, क्योंकि छठे नरकके बाईस सागर इसमेंसे न्यून हो जाते हैं। अतः यहाँ इस दण्डकके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल एकसौ त्रेसठ सागर कहा है। सर्वार्थसिद्धिमें मनुष्यगति पञ्चकका निरन्तर बन्ध होता रहता है, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है।

२४३. नपुंसकवेदमें प्रथम दण्डक, द्वितीय दण्डक और तिर्यञ्चगतित्रिकका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। पुरुषवेददण्डकका भङ्ग सातवीं पृथिवीके समान है। देवगतिचतुष्कके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है। पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, परघात, उच्छ्वास और त्रस-चतुष्कके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका भङ्ग ओघके समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागर है। मात्र औदारिक शरीरआङ्गोपाङ्गका यह काल एक अन्तर्मुहूर्त अधिक है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके अनुत्कृष्ट प्रदेश-बन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तीन सागर है।

विशेषार्थ—सामान्य तिर्यञ्चोंमें प्रथम और द्वितीय दण्डक तथा तिर्यञ्चगतित्रिकका जो काल कहा है वह अविकल नपुंसकवेदमें बन जाता है, इसलिए इनका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान जाननेकी सूचना की है। सम्यग्दृष्टि मनुष्य पर्याप्त नपुंसकवेदीके देवगति-चतुष्कका निरन्तर बन्ध होता रहता है और इसमें सम्यक्त्वका काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है,

२४४. मदि०-सुद० पंचणा०दंडओ तिरिक्ख०३ पंचिंदियदंडओ णवुंसगभंगो। सादासाद०-सत्तणोक०-चदुआउ०-णिरयग०-चदुजा०-पंचसंठा०-छस्संघड०-णिरयाणु०-आदाउज्जो०-अप्पसत्थ०-थावरादि०४—थिरादितिण्णियु०-दूभग-दुस्सर-अणादें० उ० ज० ए०, उ० बेसम०। अणु० ज० ए०, उ० अंतो०। मणुसगदि०२ उक्क० ओघं। अणु० ज० ए०, उ० ऍक्कत्तीसं० सादि० अंतोमुहुत्ते० णिक्खमंतस्स। देवगदि०४—समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें०-उच्चागो० उक्क० ओघं। अणु० ज० ए०, उ० तिण्णि पलि० दे०। एवं अब्भवसि०-मिच्छा०।

इसलिए यहाँ देवगतिचतुष्कके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। सातवें नरकमें पञ्चेन्द्रियजाति आदिका निरन्तर बन्ध तो होता ही है। साथ ही वहाँ जानेके पूर्व अन्तर्मुहूर्त काल तक और वहाँसे निकलनेके बाद अन्तर्मुहूर्त काल तक इनका बन्ध होता है, इसलिए यहाँ इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल दो अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागर कहा है। मात्र औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्गका नरकमें जानेके पूर्व बन्ध नहीं होता, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धके उत्कृष्ट कालमें एक अन्तर्मुहूर्त कम कर दिया है। तीसरे नरकमें साधिक तीन सागर काल तक तीर्थङ्कर प्रकृतिका निरन्तर बन्ध सम्भव है, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तीन सागर कहा है।

२४४. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणदण्डक, तिर्यञ्चगतित्रिक और पञ्चेन्द्रियजातिदण्डकका भङ्ग नपुंसकवेदी जीवोंके समान है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, सात नोकषाय, चार आयु, नरकगति, चार जाति, पाँच संस्थान, छह संहनन, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्यगतिद्विकके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल निकलनेवालेका अन्तर्मुहूर्त अधिक इकतीस सागर है। देवगतिचतुष्क, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य है। अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए।

विशेषार्थ—नपुंसकवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणादि दण्डक, तिर्यञ्चगतित्रिक और पञ्चेन्द्रियजाति दण्डकका जो काल कहा है वह यहाँ अविकल घटित हो जाता है, इसलिए यह नपुंसकवेदी जीवोंके समान जाननेकी सूचना की है। सातावेदनीय आदि प्रकृतियाँ सब परावर्तमान हैं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। मनुष्यगतिद्विकका निरन्तर बन्ध नौवें ग्रैवेयकमें और वहाँसे निकलने पर अन्तर्मुहूर्त काल तक होता रहता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागर कहा है। उत्तम भोगभूमिमें पर्याप्त होने पर कुछ कम तीन पल्य तक देवगतिचतुष्क आदिका निरन्तर बन्ध होता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य कहा है। अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीव मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी ही होते हैं, इसलिए इनका भङ्ग मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंके समान जाननेकी सूचना की है।

२४५. विभंगे पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-तिरिक्ख०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क० - ओरा०अंगो०-वण्ण०४–तिरिक्खाणु०-अगु०४-तस०४–णिमि०-णीचा०-पंचंत० उ० ज० ए०, उ० बेसम०। अणु० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० दे० : मणुसगदि०२ उक्क० ओघं। अणु० ज० ए०, उ० एक्कत्तीसं० देसू०। सेसाणं मणजोगिभंगो।

२४६. आभिणि-सुद-ओधि० पंचणा०-छदंस०-चदुसंज०-पुरिस०-भय-दु०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु० वण्ण०४–अगु०४–पसत्थ०-तस०४–सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० उ० ज० ए०, उ० बेसम०। एवं सव्वाणं उक्क०। अणु० ज० ए०, उ० छावट्ठिसाग० सादि०। सादासाद०-चदुणोक०-दोआउ०-आहारदुग-थिरादितिण्णियु० अणु० ज० ए०, उ० अंतो०। अपच्चक्खाण०४–तित्थ० अणु० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि०। पच्चक्खाण०४ अणु० ज० ए०, उ० बादालीसं० सादि०। मणुस-

---

२४५. विभंगज्ञानमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। मनुष्यगतिद्विकके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम इकतीस सागर है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—नरकमें विभंगज्ञानका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। इतने काल तक पाँच ज्ञानावरणादिका निरन्तर बन्ध होता है, इसलिए यहाँ पाँच ज्ञानावरणादिके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर कहा है। नौवें ग्रैवेयकमें विभंगज्ञानका उत्कृष्ट काल कुछ कम इकतीस सागर है। इतने काल तक यहाँ मनुष्यगतिद्विकका निरन्तर बन्ध होता है, इसलिए यहाँ इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम इकतीस सागर कहा है। शेष प्रकृतियाँ परावर्तमान हैं, इसलिए उनका भंग मनोयोगी जीवोंके समान जाननेकी सूचना है।

२४६. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। इसी प्रकार सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक छयासठ सागर है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय, दो आयु, आहारशरीरद्विक और स्थिर आदि तीन युगलके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अप्रत्याख्यानावरण चार और तीर्थङ्कर प्रकृतिके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। प्रत्याख्यानवरणचतुष्कके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल

गदिपंचग० अणु०[1] ज० ए०, उ० तेँत्तीसं० । देवगदि०४ उक्क० अणु० ओघं । एवं ओधिदं०-सम्मा० ।

२४७. मणपज्ज० पंचणा०-छदंसणा०-चदुसंज०-पुरिस०-भय-दु०-देवगदि-पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा०–क०-समचदु०–वेव्वि०अंगो०–वण्ण०४–देवाणु०–अगु०४–पसत्थ०–तस०४–सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा०-पंचंत० उ० ज० ए०, उ० वेसम० ।

साधिक व्यालीस सागर है। मनुष्यगतिपञ्चकके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका काल ओघके समान है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—आभिनिबोधिकज्ञान आदि तीन ज्ञानोंका उत्कृष्ट काल चार पूर्वकोटि अधिक छयासठ सागर है। यही कारण है कि यहाँ पर पाँच ज्ञानावरणादि ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक छयासठ सागर कहा है। सातावेदनीय आदिके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इसका पहले अनेक बार खुलासा कर आये हैं। सर्वार्थसिद्धिमें और वहाँसे निकलकर मनुष्य होने पर संयमासंयम या संयम ग्रहण करनेके पूर्वतक जीव अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कका बन्ध करता रहता है और श्रेणि आरोहण करके आठवें गुणस्थानके अन्ततक तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करता रहता है। यह काल साधिक तेतीस सागर होता है, इसलिए यहाँ इन पाँच प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका बन्ध संयमासंयम गुणस्थानतक प्रारम्भके पाँच गुणस्थानोंमें होता है, पर यहाँ आभिनिबोधिकज्ञान आदिका प्रकरण है, इसलिए यहाँ यह देखना है कि केवल सम्यक्त्वके साथ और सम्यक्त्व व संयमासंयमके साथ जीव अधिकसे अधिक कितने काल तक रहता है। केवल सम्यक्त्वके साथ रहनेका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है, इस बातका उल्लेख तो हमने इसी विशेषार्थके प्रारम्भमें किया ही है। किन्तु सम्यक्त्वी जीव कहीं केवल सम्यक्त्वके साथ और कहीं सम्यक्त्व व संयमासंयमके साथ लगातार यदि रहता है तो उस कालका योग साधिक बयालीस सागर होता है, इसलिए यहाँ प्रत्याख्यानावरण चतुष्कके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक बयालीस सागर कहा है। सर्वार्थसिद्धिमें मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिक शरीर आङ्गोपाङ्ग और वज्रर्षभनाराच संहनन इन पाँच प्रकृतियोंका निरन्तर बन्ध होता रहता है, इसलिए यहाँ इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। ओघसे देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जो काल कहा है वह यहाँ अविकल बन जाता है, इसलिए यह भङ्ग ओघके समान कहा है। अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंका काल आभिनिबोधिकज्ञानी आदिके ही समान है, इसलिए इनका भङ्ग आभिनिबोधिकज्ञानी आदिके समान कहा है।

२४७. मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है।

---

[1] ता०प्रतौ 'मणुसगदिपंचग० मणुसगदिपंचग० (?) अणु०' इति पाठः ।

अणु० ज० ए०, उ० पुव्वकोडी०[2] [देसूणा। सादासाद०-हस्स-रदि-अरदि-सोग-देवाउ०-आहारस०-आहार-अंगो० थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० उ० ज० ए०, उ० बेसम०। अणु० ज० ए०, उ० अंतोमु०। एवं संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०।]···

....

अन्तराणुगमो

२४८. ······क्कस्सभंगो। देवगदि०४ जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० एग०, उक्क० तेंत्तीसं सादि०। एइंदियदंडओ उक्कस्सभंगो। एदाणं दंडगाणं उक्कस्साणुक्कस्सबंधातो विसेसो। जहण्णपदेसबंधंतरं जह० अंतो०। सेसं पुरिसं। तित्थ० ओघं।

२४९. णवुंसगे धुवियाणं [जह०] जह० खुद्दाभवग्गहणं समऊणं, उक्क० असंखेँज्जा लोगा। अज० जह० उक्क० ए०। थीणगिद्धि०३ दंडओ[1] जह० णाणा०भंगो। अज० अणुक्कस्सभंगो। सादासाद०-पंचणोक०-पंचिंदि०-समचदु०-पर०-उस्सा०-पसत्थ०-

---

अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, देवायु, आहारकशरीर, आहारकशरीर आङ्गोपाङ्ग, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत और परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें जानना चाहिये।

विशेषार्थ—मनःपर्ययज्ञानका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है, इसलिए इसमें पाँच ज्ञानावरणादि ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। सातावेदनीय आदिके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, यह स्पष्ट ही है। संयत आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ यहाँ गिनाई हैं,उनका उत्कृष्ट काल भी कुछ कम एक पूर्वकोटि है और मनःपर्ययज्ञानके समान ही इन मार्गणाओंमें प्रकृतियोंका बन्ध होता है, इसलिए इनकी प्ररूपणा मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान जाननेकी सूचना की है।

अन्तरानुगम

२४८. ···············उत्कृष्टके समान भङ्ग है। देवगतिचतुष्कके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। एकेन्द्रियदण्डकका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। इन दण्डकोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धसे विशेष जानना चाहिये। जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। शेष पुरुषवेदके समान है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है।

२४९. नपुंसकवेदी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम क्षुल्लकभवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। स्त्यानगृद्धि तीन दण्डकके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अजघन्य प्रदेशबन्धका अन्तर अनुत्कृष्टके समान है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, पाँच नोकषाय, पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्र

---

[2] ता०प्रतौ 'पुव्वकोडिदे०। [अत्र ताडपत्रचतुष्टयं विनष्टम्]............इति निर्दिष्टम्। आ० प्रतावपि १८३, १८४, १८५, १८६, संख्याङ्कितताडपत्राणि विनष्टानीति सूचना वर्तते।

[1] आ०प्रतौ उक्क० थीणगिद्धि३ दंडओ इति पाठः।

तस०४–थिरादितिण्णियुग०-सुभग-सुस्सर-आदें० जह० णाणावरणभंगो। अज० जह० ए०, उक्क० अंतो०। अट्ठकसा०-णिरयग०-मणुसग०-आहारदुग-तिण्णिआ०-दोआणु०-उच्चा० जह० अज० ओघं। देवाउ० मणुसि०भंगो। देवगदि०४ जह० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडितिभागं देसू०। अज० जह० एग०, उक्क० अणंतकाल०। ओरालि०-ओरालि०-अंगो०-वज्जरि० जह० णाणा०भंगो[1]। अज० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडी देसू०। तित्थ० जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०।

संस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि तीन युगल, सुभग, सुस्वर और आदेयके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आठ कषाय, नरकगति, मनुष्यगति, आहारकद्विक, तीन आयु, दो आनुपूर्वी और उच्चगोत्रके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका अन्तर ओघके समान है। देवायुका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है। देवगतिचतुष्कके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त कालप्रमाण है। औदारिकशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग और वज्रर्षभनाराचसंहननके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है। तीर्थङ्करप्रकृतिके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध सूक्ष्म अपर्याप्त निगोद जीवके भवग्रहणके प्रथम समयमें होता है; इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहण प्रमाण कहा है, क्योंकि दो क्षुल्लक भवोंके प्रथम समयोंमें जघन्य प्रदेशबन्ध होनेपर उक्त अन्तर काल प्राप्त होता है। तथा सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है, इसलिए यहाँ ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। इनका जघन्य प्रदेशबन्धका काल एक समयमात्र है, इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कहा है। स्त्यानगृद्धि तीन दण्डकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामित्व ज्ञानावरणके समान होनेसे इसके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल उसके समान कहा है और इसके अजघन्य प्रदेशबन्धका अन्तर जो अनुत्कृष्ट के समान कहा है सो उसका यही अभिप्राय है कि इसके अनुत्कृष्टके समान अजघन्य प्रदेशबन्धका भी जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर बन जाता है। सातावेदनीय आदिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी यथायोग्य ज्ञानावरणके समान होनेसे इनके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल उसके समान कहा है। तथा इनका जघन्य बन्धान्तर एक समय और उत्कृष्ट बन्धान्तर अन्तर्मुहूर्त होनेसे इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। नपुंसकवेदी जीवोंमें आठ कषाय आदिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामित्व ओघके समान होनेसे तथा यहाँ इनके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका अन्तर ओघके समान प्राप्त होनेसे वह ओघके समान कहा है सो वह विचार कर जान लेना चाहिए। तथा मनुष्यिनियोंमें देवायुके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका जो अन्तर कहा है वह यहाँ नपुंसकवेदियोंमें भी बन जाता है, इसलिए उसे मनुष्यिनियोंके समान जाननेकी

---

[1] आ०प्रतौ 'जह० जह० णाणा०भंगो' इति पाठः।

२५०. अवगदवे० सव्वपगदीणं जह० अज० ज० ए०, उ० अंतो० ।

२५१. कोधकसा० पंचणा०-सत्तदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचंत० जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० उक्क० एग० । णिद्दा-पयला दोवेदणी०-णवणोक०-तिण्णिगदि-पंचजादि-तिण्णिसरीर-छस्संठा०-ओरा०अंगो०-छस्संघ०-वण्ण०४-तिण्णिआणु०-अगु०४-आदाउज्जो०[1]-दोविहा०-तसादिदसयुग०-णिमि०-तित्थ०-दोगो० जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० ए०, उक्क० अंतो० । दोआउ० जह० अज० णत्थि अंतरं । दोआउ०-

सूचना की है। देवगतिचतुष्कके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी अन्यतर अट्ठाईस प्रकृतियोंके साथ आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला असंज्ञी नपुंसक जीव होता है। यतः यह आयुबन्धके समय ही सम्भव है, इसलिए इन प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण कहा है। तथा इनका बन्ध एक समयके अन्तरसे भी सम्भव है और अनन्त कालके अन्तरसे भी सम्भव है, इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकालप्रमाण कहा है। औदारिकशरीर आदि तीन प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी यथायोग्य ज्ञानावरणके समान होनेसे इनके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल ज्ञानावरणके समान कहा है। तथा इनका नपुंसकवेदी जीवोंमें कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक कुछ कम एक पूर्वकोटिके अन्तरसे बन्ध सम्भव है,इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। नपुंसकोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य प्रदेशबन्ध नरकमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें सम्भव है, इसलिए इसके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा इसके जघन्य प्रदेशबन्धके समय अजघन्य प्रदेशबन्ध नहीं होता, इसलिए इसके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर तो एक समय कहा है और तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाला जो नपुंसकवेदी मनुष्य द्वितीयादि नरकोंमें उत्पन्न होता है, उसके अन्तर्मुहूर्त कालतक तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता; इसलिए यहाँ इसके अजघन्य प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है।

२५०. अपगतवेदी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—यहाँ घोलमान जघन्य योगसे जघन्य प्रदेशबन्ध सम्भव होनेसे जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त बन जाता है। मात्र अजघन्य प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त उपशान्तमोहमें ले जाकर प्राप्त करना चाहिए, क्योंकि सब प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त नहीं है।

२५१. क्रोधकषायमें पाँच ज्ञानावरण, सात दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय और पाँच अन्तरायके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है। निद्रा, प्रचला, दो वेदनीय, नौ नोकषाय, तीन गति, पाँच जाति, तीन शरीर, छह संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, वर्णचतुष्क, तीन आनुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसादि दस युगल, निर्माण, तीर्थङ्कर और दो गोत्रके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। दो आयुओंके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है। दो आयु और आहारकद्विकका भङ्ग मनोयोगी

---

[1] ता० प्रतौ 'तिण्णिआणु० (?) अगु० आदाउज्जो०' इति पाठः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Varanasi

आहारदुग० मणजोगिभंगो । णिरयगदिदुगं जह० अज० जह० ए०, उक्क० अंतो० । माणे पंचणा०-सत्तदंसणा०-मिच्छ०-पण्णारसक०-पंचंत० जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० उक्क० एग० । सेसाणं कोधभंगो । मायाए पंचणा०-सत्तदंसणा०-मिच्छ०-चोद्दसक०-पंचंत० जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० उक्क० ए० । सेसाणं कोधभंगो[1] । लोभे पंचणा०-सत्तदंसणा०-मिच्छ०-बारसक०-पंचंत० जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० उक्क० एग०[2] । सेसाणं कोधभंगो ।

जीवोंके समान है । नरकगतिद्विकके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । मानकषायमें पाँच ज्ञानावरण, सात दर्शनावरण, मिथ्यात्व, पन्द्रह कषाय और पाँच अन्तरायके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग क्रोधकषायवालेके समान है । मायाकषायमें पाँच ज्ञानावरण, सात दर्शनावरण, मिथ्यात्व, चौदह कषाय और पाँच अन्तरायके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग क्रोधकषायवाले जीवोंके समान है । लोभकषायमें पाँच ज्ञानावरण, सात दर्शनावरण, मिथ्यात्व, बारह कषाय और पाँच अन्तरायके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग क्रोधकषायवाले जीवोंके समान है ।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई पाँच ज्ञानावरणादिका तथा दूसरे दण्डकमें कही गई निद्रा आदिका क्रोधकषायके कालमें दो बार जघन्य प्रदेशबन्ध सम्भव नहीं है, इसलिए यहाँ इनके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है । तथा प्रथम दण्डकमें कही गई पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य प्रदेशबन्ध होते समय अजघन्य प्रदेशबन्ध नहीं होता, इसलिए यहाँ इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय कहा है । तथा निद्रादिदण्डकमें दो वेदनीय, नौ नोकषाय, तीन गति, पाँच जाति, तीन शरीर, छह संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो विहायोगति, त्रसादि दस युगल और दो गोत्र ये तो अध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं तथा शेष चार प्रकृतियोंकी आठवें गुणस्थानमें बन्धव्युच्छित्ति होकर और अन्तर्मुहूर्तमें क्रोधकषायके कालमें ही मरकर देव होनेपर पुनः इनका बन्ध होने लगता है, इसलिए इन प्रकृतियोंके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है । यहाँ सब प्रकृतियोंका यह जघन्य अन्तर एक समय, एक समय बन्ध न कराके या मध्यमें एक समयके लिए जघन्य बन्ध कराके ले आना चाहिए । तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका जघन्य प्रदेशबन्ध तृतीय त्रिभागके प्रथम समयमें ही सम्भव है, इसलिए यहाँ इनके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है । शेष दो आयु और आहारकद्विकका जघन्य प्रदेशबन्ध घोलमान जघन्य योगसे होता है, इसलिए इनका मनोयोगी जीवोंके समान अन्तर कथन बन जानेसे वह उनके समान कहा है । नरकगतिद्विकका एक तो घोलमान जघन्य योगसे जघन्य प्रदेशबन्ध होता है । दूसरे ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है । मान, माया और लोभकषायवाले जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य और

---

[1] ता०प्रतौ 'ज० उ० ए० सेसाणं । कोधभंगो' आ०प्रतौ 'जह०ए० उक्क० ए० । सेसाणं कोधभंगो' इति पाठः ।

[2] आ०प्रतौ 'अज० जह० एग० उक्क० एग०' इति पाठः ।

२५२. मदि-सुदे धुवियाणं जह० जह० खुद्दाभवग्गहणं समऊणं, उक्क० असंखेँज्जा लोगा। अज० जह० उक्क० ए०। दोवेदणी०[1]-छण्णोक०-पंचिंदि०-समच०-पर०-उस्सा०-पसत्थ०-तस०४-थिरादितिण्णियुग०-सुभग-सुस्सर-आदेँ० जह० णाणावरण-भंगो। अज० जह० ए०, उक्क० अंतो०। णवुंस०-ओरालि०-पंचसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादेँ०-णीचा जह० णाणावरणभंगो। अज० जह० एग०, उक्क० तिण्णिपलि० देसू०। दोआउ०-वेउव्वियछ० जह० अज० जह० एग०, उक्क० अणंतका०। तिरिक्ख०-मणुसाउ०-मणुसगदि०३ ओघं। तिरिक्ख०३ जह० णाणावरणभंगो। अज० जह० एग०, उक्क० ऍक्कत्तीसं साग० सादि० दोहि मुहुत्तेहि सादि०। चदुजादि-आदाव-थावर-सुहुम-अपज्ज०-साधा० जह० णाणावरणभंगो। अज० जह० एगसमयं, उक्क० तेँत्तीसं० सादि० दोहि मुहुत्तेहि सादिरेगं। एवं अब्भवसि०-मिच्छा०।

अजघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। मात्र इनमें क्रमसे एक दो और चार कषायको कम करके यह अन्तरकाल कहना चाहिए, क्योंकि मानमें क्रोधके, मायामें क्रोध और मानके तथा लोभमें चारोंके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त बन जाता है।

२५२. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहण प्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात-लोकप्रमाण है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। दो वेदनीय, छह नोकषाय, पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि तीन युगल, सुभग, सुस्वर और आदेयके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल ज्ञानावरणके समान है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। नपुंसकवेद, औदारिकशरीर, पाँच संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहननन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल ज्ञानावरणके समान है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्यप्रमाण है। दो आयु और वैक्रियिक छहके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकालप्रमाण है। तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु और मनुष्यगतित्रिकका भंग ओघके समान है। तिर्यञ्चगतित्रिकके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो मुहूर्त अधिक इकतीस सागर है। चार जाति, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो मुहूर्त अधिक तेतीस सागर है। इसी प्रकार अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ प्रथम और द्वितीय दण्डकका स्पष्टीकरण जिस प्रकार नपुंसकवेदी जीवोंमें कर आये हैं, उस प्रकार कर लेना चाहिए। तीसरे दण्डकमें कही गई नपुंसकवेद आदिके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान ही है। तथा ये सब एक तो

---

[1] आ०प्रतौ 'जह० ए० उक्क० अंतो०। दोवेदणी०' इति पाठः।

२५३. विभंगे पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४—अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० जह० जह० एग०, उक्क० छम्मासं देसूणं। अज० जह० एग०, उक्क० चत्तारिसम०। दोवेदणी०-सत्तणोक०-दोगदि-एइंदि०-पंचिंदि०-ओरालि०-छस्संठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-दोआणु०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो०-दोविहा०-तस-थावर-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-थिरादितिण्णियु०-दोगो० जह० जह० एग०, उक्क० छम्मासं देसूणं। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। दोआउ० मणजोगिभंगो। दोआउ० देवभंगो। वेउव्वियछक्क-तिण्णिजादि-सुहुम-अपज्ज०-साधार० जह० अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०।

परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं। दूसरे भोगभूमिमें पर्याप्त होने पर इनका बन्ध नहीं होता, इसलिये इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य कहा है। नरकायु, देवायु और वैक्रियिकषट्कका जघन्य प्रदेशबन्ध एक तो घोलमान जघन्य योगसे होता है। दूसरे एकेन्द्रिय और विकलत्रय जीव इनका बन्ध नहीं करते, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त कालप्रमाण कहा है। यहाँ तिर्यञ्चगति आदिका बन्ध नौवें ग्रैवेयकमें और वहाँ जानेके पूर्व तथा निकलनेके बाद अन्तर्मुहूर्त काल तक नहीं होता, इसलिये इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट अन्तर दो अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागर कहा है। चारजाति आदिका बन्ध सातवें नरकमें और वहाँ जानेके पूर्व तथा निकलनेके बाद एक-एक अन्तर्मुहूर्त तक नहीं होता, इसलिये इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट अन्तर दो अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागर कहा है। शेष कथन सुगम है।

२५३. विभङ्गज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है। दो वेदनीय, सात नोकषाय, दो गति, एकेन्द्रियजाति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, छह संस्थान, औदारिकशरीरआङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दोआनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर आदि तीन युगल और दो गोत्रके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। दो आयुओंका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। दो आयुओंका भङ्ग देवोंके समान है। वैक्रियिकषट्क, तीन जाति, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरण आदिका जघन्य प्रदेशबन्ध आयुकर्मके बन्धके समय घोलमान जघन्य योगसे होता है। यह जघन्य प्रदेशबन्ध कमसे कम एक समयके अन्तरसे भी हो सकता है और कुछ कम छह महीनाके अन्तरसे भी हो सकता है, इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना कहा है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि यद्यपि यह जघन्य प्रदेशबन्ध चारों गतियोंमें होता है पर इसका उत्कृष्ट अन्तर नरक और देवगतिमें ही सम्भव है, क्योंकि

२५४. आभिणि-सुद-ओधि० पंचणा०-छदंसणा०-सादासाद०-चदुसंज०-सत्तणोक०-पंचंत० जह० जह० वासपुधत्तं समऊणं, उक्क० छावट्ठि० सादि०। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अट्ठक० जह० जह० वासपुधत्तं समऊणं, उक्क० छावट्ठि० सादि०। अज० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडी दे०। दोआउ० उक्कस्सभंगो। मणुसगदिपंचग० जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० वासपुध०, उक्क० पुव्वकोडी दे०। देवगदि०४ जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि०। पंचिंदि०-तेजा०-क०- समचदु०-वण्ण०४-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-थिरादितिण्णियु०-

अन्तर्मुहूर्तसे अधिक काल तक इस ज्ञानकी प्राप्ति उन्हीं दो गतियोंमें सम्भव है। आगे जिन प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका यह अन्तर कहा है, वहाँ यह इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। तथा घोलमान योगका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है, इसलिए इतने काल तक पाँच ज्ञानावरणादिका निरन्तर जघन्य प्रदेशबन्ध सम्भव होनेसे इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चार समय कहा है। दो वेदनीय आदि परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। नरकायु और देवायुका जघन्य प्रदेशबन्ध भी घोलमान जघन्य योगसे होता है, इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त तथा अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चार समय मनोयोगी जीवोंके समान कहा है। तथा शेष दो आयुओंका जघन्य प्रदेशबन्ध भी घोलमान जघन्य योगसे होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना देवोंके समान कहा है। यहां यद्यपि इन दो आयुओंका जघन्य प्रदेशबन्ध चारों गतियोंमें होता है पर इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट अन्तर मनुष्यगति और देवगतिमें सम्भव नहीं है, इसलिए यह सब अन्तर देवोंके समान कहा है। वैक्रियिकषट्क आदि परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं और इनका जघन्य प्रदेशबन्ध घोलमान जघन्य योगसे होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है।

२५४ आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार संज्वलन, सात नोकषाय और पाँच अन्तरायके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम वर्षपृथक्त्वप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक छयासठ सागर है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आठ कषायोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम वर्षपृथक्त्वप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक छयासठ सागर है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है। दो आयुओंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। मनुष्यगतिपञ्चकके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। देवगतिचतुष्कके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्तविहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि तीन युगल, सुभग, सुस्वर,

सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०-तित्थि०-उच्चा० जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० एग०, उक्क० अंतो० । आहारदुगं जह० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडितिभागं देसूणं । अज० जह० ए०, उक्क० तेत्तीसं० सादि० । एवं ओधिदं०-सम्मा० ।

आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आहारकद्विकके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। इसीप्रकार अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य प्रदेशबन्ध तद्भवस्थ जीवके प्रथम समयमें होता है, इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम वर्षपृथक्त्व प्रमाण कहा है, क्योंकि किसी उक्त ज्ञानवाले जीवने मनुष्यभवके प्रथम समयमें जघन्य प्रदेशबन्ध किया और वर्षपृथक्त्व काल तक जीवन धारणकर मरा और देव होकर वहाँ भी भवके प्रथम समयमें जघन्य प्रदेशबन्ध किया तो इस प्रकार यह जघन्य अन्तरकाल उपलब्ध हो जाता है। तथा इनके जघन्य प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक छ्यासठ सागर कहनेका कारण यह है कि इतने काल तक कोई भी जीव उक्त ज्ञानोंके साथ रहकर प्रारम्भमें और अन्तमें यथायोग्य उक्त कर्मोंका जघन्य प्रदेशबन्ध कर सकता है। आगे अन्य जिन प्रकृतियोंका यह अन्तरकाल कहा है, वह इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। इन प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध एक समय तक होता है, इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कहा है और उपशान्तमोहमें पाँच ज्ञानावरणादिका तथा छठे गुणस्थानके आगे लौटकर वहाँ आनेके पूर्व मध्य कालमें असातावेदनीय आदिका यथायोग्य अन्तर्मुहूर्त काल तक बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कका संयतासंयत आदिके और प्रत्याख्यानावरण चतुष्कका संयत आदिके अधिकसे अधिक कुछ कम एक पूर्वकोटि काल तक बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। यहाँ दो आयुओंसे मनुष्यायु और देवायु ली गई हैं। इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर इन मार्गणाओंमें जो प्राप्त होता है वह यहाँ भी बन जाता है, इसलिए यहाँ यह उत्कृष्टके समान जाननेकी सूचना की है। मनुष्यगतिपञ्चकका जघन्य प्रदेशबन्ध उसी प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ देव और नारकीके होता है जो तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध कर रहा है। ऐसा जीव पुनः देव और नारकी नहीं होता, इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। पञ्चेन्द्रियजाति आदिके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालके निषेधका यही कारण जानना चाहिए। सम्यग्दृष्टि मनुष्य मनुष्यगतिपञ्चकका बन्ध नहीं करता और इसकी जघन्य आयु वर्षपृथक्त्वप्रमाण और कर्मभूमिकी अपेक्षा उत्कृष्ट आयु पूर्वकोटिप्रमाण होती है, इसलिए यहाँ मनुष्यगतिपञ्चकके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल क्रमसे उक्त प्रमाण कहा है। यहाँ उत्कृष्ट अन्तरकाल देशोन कहा है सो कारण जानकर कहना चाहिए। देवगतिचतुष्कका जघन्य प्रदेशबन्ध ऐसा प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ मनुष्य करता है जो तीर्थङ्कर प्रकृतिका भी बन्ध कर रहा है। यतः ऐसा मनुष्य नियमसे उस भवमें तीर्थङ्कर होकर मोक्ष जाता है। अतः यहाँ देवगतिचतुष्कके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा उपशमश्रेणिमें अन्तर्मुहूर्त काल तक बन्ध नहीं होता और जो जीव उपशमश्रेणिमें अन्तर्मुहूर्त तक इनका अबन्धक होकर मर कर तेतीस सागर आयुके साथ देव होता है, उसके साधिक

२५५. मणपज्ज० असाद०-अरदि-सोग-अथिर-असुभ-अजस० जह० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडी दे०। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। देवाउ० उक्कस्सभंगो। सेसाणं जह० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडितिभागं दे०। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। एवं संजदा०। एवं चेव सामाइ०-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद०। णवरि धुविय-तित्थ०[1] अज० जह० एग०, उक्क० चत्तारिस०।

तेतीस सागर काल तक इनका बन्ध नहीं होता; इसलिए यहाँ इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। पञ्चेन्द्रियजाति आदिका एक समयके अन्तरसे जघन्य प्रदेशबन्ध सम्भव है और उपशमश्रेणिमें अन्तर्मुहूर्त तक इनका बन्ध न हो यह भी सम्भव है, इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। आहारकद्विकका जघन्य प्रदेशबन्ध आयुबन्धके साथ घोलमान जघन्य योगसे होता है, इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण कहा है। तथा एक समयके लिये बीचमें जघन्य प्रदेशबन्ध होने पर अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय प्राप्त होता है और साधिक तेतीस सागर तक आहारकद्विकका बन्ध न हो यह भी सम्भव है, इसलिये इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टिमें यह अन्तर प्ररूपणा इसी प्रकार घटित कर लेनी चाहिए।

२५५. मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर अशुभ और अयशःकीर्तिके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहुर्त है। देवायुका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभाग प्रमाण है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहुर्त है। इसी प्रकार संयत जीवोंमें जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियों और तीर्थङ्कर प्रकृतिके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है।

विशेषार्थ—यहाँ असातावेदनीय आदिका जघन्य प्रदेशबन्ध घोलमान जघन्य योगसे होता है। यह सम्भव है कि इस प्रकारका योग एक समयके अन्तरसे हो और मनःपर्ययज्ञानके उत्कृष्ट कालके भीतर प्रारम्भमें और अन्तमें हो; मध्यमें न हो, इसलिए इन प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण कहा है। तथा इनका अजघन्य प्रदेशबन्ध भी एक समयके अन्तरसे सम्भव है और छठेसे आगेके गुणस्थानोंमें जाकर तथा वहाँसे लौटकर छठे गुणस्थान तक आनेमें लगनेवाले अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर इनका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। देवायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण होता है। वह अन्तर यहाँ भी सम्भव है, इसलिए यहाँ इसका भङ्ग उत्कृष्टके समान कहा है। शेष प्रकृतियोंके

---

[1] ता०प्रतौ 'धुवियतेथ० (?) अज०' आ०प्रतौ 'धुवियतेथ० अज०' इति पाठः।

२५६. असंजदे पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० जह० जह० खुद्दाभ० समऊ०, उक्क० असंखेंज्जा लोगा। अज० जह० उक्क० एग० । थीणगिद्धि०३दंडओ साददंडओ तिण्णिजादिदंडओ तित्थ०-दंडओ णवुंस०-चदुआउ०-वेउव्वियछ०-मणुस०३ ओघभंगो । चक्खु० तसपज्जत्तभंगो । अचक्खु०-भवसि० ओघं ।

२५७. किण्ण-णील-काऊ० पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० उक्क० एग० ।

जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर और उत्कृष्ट अन्तर असातावेदनीयके समान ही घटित कर लेना चाहिए। मात्र इनके जघन्य प्रदेशबन्धके उत्कृष्ट अन्तरमें फरक है। बात यह है कि इनका जघन्य प्रदेशबन्ध आयुकर्मके बन्धके समय ही होता है, इसलिए इसका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण प्राप्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। संयत जीवोंमें भी सब प्रकृतियोंका यह अन्तरकाल घटित हो जाता है, इसलिए उनके कथनको मनःपर्ययज्ञानियोंके समान जाननेकी सूचना की है। सामायिकसंयत आदि मार्गणाओंमें भी यह अन्तरकाल बन जाता है, इसलिए उनके कथनको भी मनःपर्ययज्ञानियोंके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र इन मार्गणाओंमें जो ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ हैं उनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चार समय ही प्राप्त होता है, इसलिए वह उक्त प्रमाण कहा है। यहाँ यह बात ध्यानमें लेनेकी है कि सामायिक संयम और छेदोपस्थापनासंयम यद्यपि नौवें गुणस्थान तक होते हैं और इसके पूर्व आठवें व नौवें गुणस्थानमें कुछ प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति हो लेती है, पर एक तो ऐसे जीवके नौवें गुणस्थानके आगे उक्त दो संयम नहीं रहते दूसरे नौवें गुणस्थानमें मरण होने पर भी उक्त दो संयमों का अभाव हो जाता है, इसलिए इन संयमोंमें अन्तरकालको प्राप्त करनेके लिए उपशम-श्रेणि पर आरोहण नहीं कराना चाहिए और इसलिए इन संयमोंमें जिन प्रकृतियोंका छठे और सातवें गुणस्थानमें नियमसे बन्ध होता है,वे सब इनमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ जान लेनी चाहिए।

२५६. असंयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। स्त्यानगृद्धित्रिकदण्डक, सातावेदनीयदण्डक, तीन जातिदण्डक, तीर्थङ्करप्रकृतिदण्डक, नपुंसकवेद, चार आयु, वैक्रियिक छह और मनुष्यगतित्रिकका भङ्ग ओघके समान है। चक्षुदर्शनवाले जीवोंमें त्रसपर्याप्त जीवोंके समान भङ्ग है तथा अचक्षुदर्शनवाले और भव्य जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—यहाँ पाँच ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डकके अन्तरकालका विचार जिस प्रकार नपुंसकवेदी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका कर आये हैं, उस प्रकार कर लेना चाहिए। तथा शेष प्रकृतियोंके अन्तर कालका विचार ओघप्ररूपणाका स्मरण कर कर लेना चाहिए।

२५७. कृष्ण, नील और कापोतलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट

थीणगिद्धि०३दंडओ णिरयोघं। सादासाद०-पंचणो०-देवगदि-एइंदि०-पंचिंदि०-ओरालि०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-देवाणु०-पर०-उस्सा०-आदाव-पसत्थ०-तसादिचदुयु०-थिरादितिण्णियु०-सुभग-सुस्सर-आदें० जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। दोआउ०-तित्थ० मण०भंगो। दोआउ० जह० णत्थि अंतरं। अज० णिरय-भंगो। णिरयगदिदुगं जह० एग०। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो। वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० एग०, उक्क० बावीसं साग० सत्तारस० सत्तसाग०। णवरि[1] मणुसगदि०३' सादभंगो।

अन्तरकाल एक समय है। स्त्यानगृद्धित्रिकदण्डकका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, पाँच नोकषाय, देवगति, एकेन्द्रियजाति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, देवगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, प्रशस्त विहायोगति, त्रसादि चार युगल, स्थिर आदि तीन युगल, सुभग, सुस्वर और आदेयके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। दो आयु और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। दो आयुओंके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तर काल नहीं है। अघजन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नारकियोंके समान है। नरकगतिद्विकके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर बाईस सागर, सत्रह सागर और सात सागर है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगतित्रिकका भङ्ग साता वेदनीयके समान है।

विशेषार्थ—उक्त तीन लेश्याओंमें पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य प्रदेशबन्ध सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीव भवके प्रथम समयमें करता है। इस जीवके पुनः इस अवस्थाके प्राप्त करने पर लेश्या बदल जाती है, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। सातावेदनीय आदिके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालके निषेध करनेका यही कारण है। तथा जब एक समय तक पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य प्रदेशबन्ध होता है, तब अजघन्य प्रदेशबन्ध नहीं होता; इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कहा है। स्त्यानगृद्धित्रिकदण्डकका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है, यह स्पष्ट ही है। सातावेदनीय आदि सब अध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। नरकायु, देवायु और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका जघन्य प्रदेशबन्ध सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तके तृतीय त्रिभागके प्रथम समयमें होता है, इसलिए इनके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका अन्तर नारकियोंमें जैसा कहा है, उस प्रकार घटित कर लेना चाहिए। नरकगतिद्विकका जघन्य प्रदेशबन्ध असंज्ञी जीव घोलमान योगसे आयुबन्धके समय करता है, इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कहा है। तथा ये दोनों सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। वैक्रियिकद्विकका जघन्य प्रदेशबन्ध प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ आहारक असंयत-

---

[1] ता०आ०प्रत्योः 'सत्तसाग०। णील-काउ० णवरि' इति पाठः।

२५८. तेऊए पंचणा०-पंचंत० जह० जह० पलि० सादि०, उक्क० बेसाग० सादि० । अज० जह० उक्क० एग० । थीणगिद्धि०३–मिच्छ०-अणंताणु०४–इत्थि०-णवुंस०-तिरिक्ख०-एइंदि०पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु० - आदाउज्जो०-अप्पसत्थ०-थावर-दूभग-दुस्सर-अणादें०-णीचा० जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० एग०, उक्क० बेसाग० सादि० । छदंसणा०-बारसक०-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४–अगु०४–बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि०-तित्थ० जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० उक्क० एग० । सादासाद०-उच्चा० जह० णाणा०भंगो । अज० जह० एग०, उक्क० अंतो० । पुरिस०-हस्स-रदि-अरदि-सोग-मणुसगदि-पंचिंदि०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-मणुसाणु०-पसत्थ०-थिरादितिण्णियु०-सुभग-सुस्सर-आदें० जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० ए०, उक्क० अंतो० । दोआउ० देवभंगो । देवाउ[1]०-आहारदुग० मणजोगिभंगो । देवगदि४

सम्यग्दृष्टि मनुष्य करता है, इसलिए इनके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा एक तो ये दोनों सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं। दूसरे नरकमें इनका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे बाईस सागर, सत्रह सागर और सात सागर कहा है। सातवें नरकमें मिथ्यादृष्टि ही मरता है और ऐसे जीवके वहाँसे निकलनेके बाद कृष्णलेश्याके कालमें वैक्रियिकद्विकका बन्ध नहीं होता, इसलिए यहाँ कृष्ण-लेश्यामें इन प्रकृतियोंके अजघन्य प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट अन्तर बाईस सागर कहा है। यहाँ मनुष्यगतित्रिकका भी जघन्य प्रदेशबन्ध सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीव भवके प्रथम समयमें करता है और ये सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनका भङ्ग सातावेदनीयके समान बन जानेसे उनके समान कहा है।

२५८. पीतलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर साधिक एक पल्य है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण और तीर्थङ्करके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर काल एक समय है। सातावेदनीय, असातावेदनीय और उच्चगोत्रके जघन्य प्रदेशबन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। पुरुषवेद, हास्य, रति अरति, शोक, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, स्थिर आदि तीन युगल, सुभग, सुभग, सुस्वर और आदेयके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। दो आयुओंका भङ्ग देवोंके समान है। देवायु और आहारकद्विकका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। देवगतिचतुष्कके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है।

---

[1] आ०प्रतौ 'देवाणु२' इति पाठः।

जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० पलि० सादि०, उक्क० बेसाग० सादि० । ओरा०[1] जह० अज० णत्थि अंतरं ।

२५९. पम्माए पढमदंडओ विदियदंडओ तेउ०भंगो । णवरि विदियदंडए०

अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर साधिक एक पल्य है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। औदारिकशरीरके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका जघन्य प्रदेशबन्ध मनुष्य और देवके भवग्रहणके प्रथम समयमें सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर साधिक एक पल्यप्रमाण और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागरप्रमाण कहा है। और इनके जघन्य प्रदेशबन्धका यह एक समय काल अजघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल होनेसे वह जघन्य और उत्कृष्ट एक समय कहा है। स्त्यानगृद्धि आदिका जघन्य प्रदेशबन्ध प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ देवके होता है, इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा इनके इस जघन्य प्रदेशबन्धके आगे-पीछे अजघन्य प्रदेशबन्ध होता है, इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कहा है और पीतलेश्याके प्रारम्भमें व अन्तमें मिथ्यादृष्टि होकर इनका बन्ध किया और मध्यमें सम्यग्दृष्टि रहकर अबन्धक रहा तो इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल साधिक दो सागर प्राप्त होनेसे वह उक्तप्रमाण कहा है। छह दर्शनावरण आदिके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकाल का निषेध उसी प्रकार जान लेना चाहिए, जिस प्रकार स्त्यानगृद्धि तीन आदिके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा यतः इनके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय है, अतः इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय कहा है। सातावेदनीय आदिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी पाँच ज्ञानावरणके ही समान कहा है, इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल पाँच ज्ञानावरणके समान कहा है। तथा ये सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। पुरुषवेद आदिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ देव ही है, अतः इनके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा ये सब परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका भङ्ग देवोंके समान तथा देवायु और आहारकद्विकका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है, यह स्पष्ट ही है। देवगतिचतुष्कका जघन्य प्रदेशबन्ध असंयत सम्यग्दृष्टि मनुष्य जघन्य योगसे करता है, इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा देवोंमें इनका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर साधिक एक पल्य और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर कहा है। औदारिकशरीरका जघन्य प्रदेशबन्ध प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ देव करता है, इसलिए इसके अन्तरकालका निषेध किया है और देवों और नारकियोंमें इसकी कोई प्रतिपक्ष प्रकृति नहीं, इसलिए वहाँ इसका निरन्तर बन्ध होता रहता है। तथा मनुष्यों और तिर्यञ्चोंमें लेश्या बदलती रहती है, इसलिए पीतलेश्यामें अन्तरकाल सम्भव नहीं, इसलिए इसके अजघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका भी निषेध किया है।

२५९. पद्मलेश्यामें प्रथम दण्डक और द्वितीय दण्डकका भङ्ग पीतलेश्याके समान है।

---

[1] ता०प्रतौ 'अज० जह० पलि० सादि० । ओरा०' इति पाठः ।

एइंदि०-आदाव-थावरं वज्ज। बिदियदंडए[1] पंचिंदिय-तसपविट्ठ। सादासाद०दंडओ य तेउ०भंगो। पुरिसदंडओ तेउ०भंगो। तिण्णिआउ०-देवगदि ४-आहारदुग ० तेउभंगो। णवरि अप्पप्पणो ट्ठिदी भाणिदव्वा। ओरा०-ओरा०अंगो० जह० अज० णत्थि अंतरं।

२६०. सुक्काए पंचणा०-दोवेदणी०-उच्चा०-पंचंत० जह० जह० अट्ठारस साग० सादि०, उक्क० तेत्तीसं साग० समऊ०। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। थीणगिद्धि०३दंडओ गेवज्जभंगो। छदंसणा०-चदुसंज०-सत्तणोक०-पंचिंदि०-तेजा०-क० समचदु०-वज्जरि०-वण्ण०४-अगु०४-पसत्थ० -तस०४-थिरादितिण्णियुग०-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०-तित्थ० जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अट्ठक० जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० उक्क० एग०। मणुसाउ० देवभंगो। देवाउ० मणजोगिभंगो। मणुस०४ जह० अज० णत्थि अंतरं। देवगदि०४ जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि०। आहार०२ जह० अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०।

इतनी विशेषता है कि दूसरे दण्डकमेंसे एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावरको कम कर देना चाहिए। तथा इसी दूसरे दण्डकमें पञ्चेन्द्रियजाति और त्रसको प्रविष्ट करना चाहिए। सातावेदनीय और असातावेदनीय दण्डकका भङ्ग पीतलेश्याके समान है। पुरुषवेददण्डकका भङ्ग पीतलेश्याके समान है। तीन आयु, देवगतिचतुष्क और आहारकद्विकका भङ्ग पीतलेश्याके समान है। इतनी विशेषता है कि अपनी-अपनी स्थिति कहनी चाहिए। औदारिकशरीर और औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्गके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है।

विशेषार्थ—पद्मलेश्यामें एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावरका बन्ध नहीं होता, इसलिए उन्हें कम करके उनके स्थानमें पञ्चेन्द्रियजाति और त्रसको सम्मिलित किया है। शेष विचार सुगम है। मात्र पद्मलेश्यामें अन्तरका कथन करते समय पीतलेश्याकी स्थितिके स्थानमें पद्मलेश्याकी स्थिति कहनी चाहिए।

२६०. शुक्ललेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, दो वेदनीय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर साधिक अठारह सागर है और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कम तेतीस सागर है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। स्त्यानगृद्धित्रिकदण्डकका भङ्ग ग्रैवेयकके समान है। छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, सात नोकषाय, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि तीन युगल, सुभग, सुस्वर आदेय, निर्माण और तीर्थङ्करके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तर काल नहीं है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आठ कषायोंके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। मनुष्यायुका भङ्ग देवोंके समान है। देवायुका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। मनुष्यगतिचतुष्कके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका अन्तर काल नहीं है। देवगति चतुष्कके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। आहारकद्विकके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

---

[1] ता०प्रतौ 'तदियदंडए' इति पाठः।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरणादिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी प्रथम समयवर्ती आहारक और प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ अन्यतर जीव है। इसका अभिप्राय यह है कि ऐसी योग्यतावाला मनुष्य और देव अन्यतर जीव इन प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है, इसलिए इनका जघन्य अन्तर साधिक अठारह सागर और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कम तेतीस सागर कहा है। तात्पर्य यह है कि किसी जीवको आनत-प्राणतमें उत्पन्न करा कर जघन्य प्रदेशबन्ध करावे और वहाँसे मरनेपर मनुष्य भवके प्रथम समयमें जघन्य प्रदेशबन्ध करावे। ऐसा करनेसे जघन्य अन्तरकाल प्राप्त होता है। तथा किसी एक जीवको सर्वार्थसिद्धिमें उत्पन्न कराकर प्रथम समयमें जघन्य प्रदेशबन्ध करावे और वहाँसे मरनेपर मनुष्योंमें उत्पन्न कराकर प्रथम समयमें पुनः जघन्य प्रदेशबन्ध करावे और ऐसा करके उत्कृष्ट अन्तर काल ले आवे। तथा जघन्य प्रदेशबन्धके समय अजघन्य प्रदेशबन्ध नहीं होता, और उपशमश्रेणिमें अन्तर्मुहूर्त काल तक इनका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त देखकर वह उक्त प्रमाण कहा है। सातावेदनीय और असातावेदनीय सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसलिये इनका इस अपेक्षासे यह अन्तर ले आना चाहिये। स्त्यानगृद्धि तीन दण्डकका भङ्ग ग्रैवेयकके समान विचार कर घटित कर लेना चाहिये। अर्थात् जिस प्रकार ग्रैवेयकमें इन प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तर काल नहीं बनता और अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर प्राप्त होता है, उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिए। छह दर्शनावरण आदिका जघन्य प्रदेशबन्ध यथायोग्य सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ और प्रथम समयवर्ती आहारक देवके होता है, इसलिये इनके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा जघन्य प्रदेशबन्धके समय अजघन्य प्रदेशबन्ध नहीं होता और इनमेंसे कुछ सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं और कुछका आगे नौवें आदि गुणस्थानोंमें बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। आठ कषायोंके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका अभाव तो छह दर्शनावरण आदिके समान ही जानना चाहिए। तथा इनके जघन्य प्रदेशबन्धके समय इनका अजघन्य प्रदेशबन्ध नहीं होता इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर काल एक समय कहा है। मनुष्यायुका भङ्ग देवोंके समान और देवायुका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है, यह स्पष्ट ही है। मनुष्यगतिचतुष्कका जघन्य प्रदेशबन्ध प्रथम समयवर्ती आहारक और प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ देव करता है, इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तर काल का निषेध किया है। तथा शुक्ललेश्यावाले देवोंमें ये सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ नहीं हैं, इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। देवगतिचतुष्कका जघन्य प्रदेशबन्ध ऐसा प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ और आहारक मनुष्य करता है जो तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध कर रहा है, इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा नौवें गुणस्थानसे लेकर लौटकर पुनः आठवें गुणस्थानमें आने तक इनका बन्ध नहीं होता और ऐसा जीव इनका बन्ध होनेके पूर्व मरकर यदि तेतीस सागरकी आयुवाला देव हो जाता है तो साधिक तेतीस सागर तक इनका बन्ध नहीं होता, यह देखकर इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। आहारकद्विकका घोलमान जघन्य योगसे जघन्य प्रदेशबन्ध होता है और ये सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है।

२६१. खइग० पंचणा०-छदंसणा०-सादासाद०-चदुसंज०-सत्तणोक०-उच्चा०-पंचंत० जह० जह० चदुरासीदिवाससहस्साणि समऊ०, उक्क० तेत्तीसं साग० समऊ०। [अज० ज० ए०, उक्क० अंतोमु०]। अट्ठक० जह० णाणा०भंगो। अज० ओघभंगो। मणुसाउ० देवभंगो। देवाउ० मणुसभंगो[1]। मणुसगदिपंचग० जह० अज० णत्थि अंतरं। देवगदि०४ जह० णत्थि अंतरं। अज० ओधिभंगो। पंचिंदियजादिदंडओ आहार०२ ओधिभंगो।

२६१. क्षायिकसम्यक्त्वमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार संज्वलन, सात नोकषाय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम चौरासी हजार वर्ष है और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कम तेतीस सागर है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आठ कषायोंके जघन्य प्रदेशबन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अजघन्य प्रदेशबन्धका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यायुका भङ्ग देवोंके समान है और देवायुका भङ्ग मनुष्योंके समान है। मनुष्यगतिपञ्चकके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है। देवगतिचतुष्कके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशबन्धका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। पञ्चेन्द्रियजातिदण्डक और आहारकद्विकका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—जो क्षायिकसम्यग्दृष्टि नरकमें या देवोंमें उत्पन्न होता है, वह और वहाँसे आकर जो मनुष्य होता है, वह भी अपने उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें जघन्य प्रदेशबन्धके योग्य अन्य विशेषताओंके रहने पर जघन्य प्रदेशबन्धका अधिकारी होता है; इसलिए यहाँ पर पाँच ज्ञानावरणादिके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम चौरासी हजार वर्ष और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कम तेतीस सागर कहा है। तथा जघन्य प्रदेशबन्धके समय अजघन्य प्रदेशबन्ध नहीं होता और उपशमश्रेणिमें कुछका और कुछका सातवें आदि गुणस्थानोंमें अन्तर्मुहूर्त काल तक बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। आठ कषायोंके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तर काल पाँच ज्ञानावरणके समान ही घटित कर लेना चाहिए। तथा इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका अन्तर जो ओघके समान कहा है सो जिस प्रकार ओघसे इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि प्राप्त होता है, उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए। मनुष्यायुका भङ्ग देवोंके समान और देवायुका भङ्ग मनुष्योंके समान है, यह स्पष्ट ही है। मनुष्यगतिपञ्चकका जघन्य प्रदेशबन्ध प्रथम समयवर्ती देव और नारकीके ही सम्भव है, इसलिए यहाँ इनके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। देवगतिचतुष्कका जघन्य प्रदेशबन्ध प्रथम समयवर्ती ऐसा मनुष्य करता है जो तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध कर रहा है, इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर काल अवधिज्ञानी जीवोंके समान है, यह स्पष्ट ही है। पंचेन्द्रियजातिदण्डक और आहारकद्विकका भङ्ग भी अवधिज्ञानी जीवोंके समान है, इसलिए इनका अन्तर काल वहाँ देखकर घटित कर लेना चाहिए।

---

[1] आ०प्रतौ 'मणुसगदिभंगो' इति पाठः।

२६२. वेदगे पंचणा०-छदंसणा०-चदुसंज०-पुरिस०-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० जह० जह० वासपुधत्तं समऊ०, उक्क० छावट्ठिसाग० देसू० । अज० जह० उक्क० एग० । सादासाद०-चदुणोक० जह० णाणा०भंगो। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो० । दोआउ० उक्कस्सभंगो। मणुसगदिपंचगं ओधिभंगो। देवगदि०४ जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० पलिदो० सादि०, उक्क० तेंत्तीसं० । पंचिंदियदंडओ तित्थ० जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० उक्क० एग० । आहारदुगं ओधिभंगो। थिरादितिण्णियुग० जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० एग०, उक्क० अंतो० ।

---

२६२. वेदकसम्यक्त्वमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम वर्षपृथक्त्वप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छयासठ सागर है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, और चार नोकषायके जघन्य प्रदेशबन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। दो आयुओंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। मनुष्यगतिपञ्चकका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। देवगतिचतुष्कके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर साधिक एक पल्य है और उत्कृष्ट अन्तर तेतीस सागर है। पञ्चेन्द्रियजातिदण्डक और तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। आहारकद्विकका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। स्थिर आदि तीन युगलोंके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—यहाँपर पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य प्रदेशबन्ध देव और मनुष्य पर्यायके प्रथम समयमें सम्भव है, इसलिए तो इनके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम वर्ष पृथक्त्वप्रमाण कहा है और वेदक सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल छयासठ सागर होनेसे उसके प्रारम्भमें और अन्तमें योग्य सामग्रीके मिलनेपर जघन्य प्रदेशबन्धके करानेपर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छयासठ सागर प्राप्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। तथा जघन्य प्रदेशबन्धका यह एक समय काल अजघन्य प्रदेशबन्धका अन्तर काल होनेसे इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कहा है। सातावेदनीय आदिके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल ज्ञानावरणके समान है, यह स्पष्ट ही है। तथा ये सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। दो आयुओंका भङ्ग उत्कृष्टके समान और मनुष्यगतिपञ्चकका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है, यह स्पष्ट ही है। देवगति चतुष्कका जघन्य प्रदेशबन्ध तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध करनेवाले प्रथम समयवर्ती मनुष्यके सम्भव है, इसलिए इसके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा वेदकसम्यग्दृष्टिके मरकर देवोंमें उत्पन्न होनेपर वहाँ इनका बन्ध नहीं होता और ऐसे देवोंकी जघन्य आयु साधिक एक पल्यप्रमाण और उत्कृष्ट आयु तेतीस सागरप्रमाण है, इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर साधिक एक पल्य प्रमाण और उत्कृष्ट अन्तर तेतीस सागर कहा है। पञ्चेन्द्रियजाति दण्डक और तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य प्रदेशबन्ध प्रथम समयवर्ती ऐसे देव और नारकीके होता है जो तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध कर रहा है, इसलिए इनका जघन्य प्रदेशबन्ध दूसरीबार प्राप्त न हो सकनेके कारण उसके अन्तर कालका निषेध किया है। तथा जघन्य प्रदेशबन्धका यह एक समय अजघन्य प्रदेशबन्धका

२६३. उवसम० अट्ठक० जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० उक्क० अंतो०। मणुसगदिपंचग० जह० अज० णत्थि अंतरं। देवगदिपगदीणं ज० अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। सेसाणं जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०।

२६४. सासणे धुवि० णत्थि अंतरं। अज० जह० उक्क० एग०। तिण्णिआउ०

अन्तरकाल होता है, इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कहा है। आहारकद्विकका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके जिसप्रकार घटित करके बतला आये हैं, उसप्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए। स्थिर आदि तीन युगलके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालके निषेधका वही कारण है जो पञ्चेन्द्रियजाति दण्डकके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालके निषेधके लिए दिया है। तथा ये सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है।

२६३. उपशमसम्यक्त्वमें आठ कषायोंके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तर काल नहीं है। अजघन्य प्रदेशवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्यगतिपञ्चकके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है। देवगति आदि प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशवन्धका अन्तर काल नहीं है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—आठ कषायोंका जघन्य प्रदेशबन्ध प्रथम समयवर्ती देवके सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तर कालका निषेध किया है। तथा इन आठ कषायोंकी बन्धव्युच्छित्तिके बाद उपशमसम्यक्त्वके रहते हुए पुनः इनका बन्ध अन्तर्मुहूर्तके पहले नहीं हो सकता, इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। मनुष्यगति पञ्चकका जघन्य प्रदेशबन्ध भी भवके प्रथम समयमें देवोंके सम्भव है और उसके बाद अजघन्य प्रदेशबन्ध होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। देवगति आदि प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध घोलमान जघन्य योगसे मनुष्य करता है। यतः इनका जघन्य प्रदेशबन्ध एक समयके अन्तरसे भी बन सकता है और अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे भी बन सकता है। तथा जघन्य प्रदेशबन्धके समय अजघन्य प्रदेशबन्ध नहीं होता और उपशमश्रेणिमें अन्तर्मुहूर्त कालतक इनका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। शेष प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध भवके प्रथम समयमें देवोंके सम्भव है, इसलिए तो इनके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा इनमें जो ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ हैं उनका तो जघन्य प्रदेशबन्धके समय अजघन्य प्रदेशबन्ध नहीं होता और यथास्थान इनकी बन्धव्युच्छित्ति होने पर पुनः उस स्थानमें आकर बन्ध करनेमें अन्तर्मुहूर्त काल लगता है। तथा जो अध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं उनका जघन्य बन्धान्तर एक समय और उत्कृष्ट बन्धान्तर अन्तर्मुहूर्त तो है ही, इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है।

२६४. सासादनसम्यक्त्वमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तर काल नहीं है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है। तीन आयुओंका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। देवगतिचतुष्कके जघन्य और अजघन्य प्रदेश-

मणजोगिभंगो। देवगदि०४ जह० अज० एग०, उक्क० अंतो०। सेसाणं जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०।

२६५. सम्मामि० धुविगाणं ज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अज० जह० एग०, उक्क० चत्तारिसमयं। सेसाणं जह० अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०।

२६६. सण्णीसु पंचणाणा०दंडओ जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। थीणगिद्धि०३ दंडओ जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० अंतो०, उक्क० बेछावट्ठि० देसू०। अट्ठक० जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडी दे०। इत्थि० जह० मिच्छ०भंगो। अज० जह० एग०, उक्क० ओघं। णवुंसगदंडओ

बन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—यहाँ ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध तीन गतिके प्रथम समयवर्ती आहारक और तद्भवस्थ जीवोंके सम्भव है, इसलिए यहाँ इनके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है और इस जघन्य प्रदेशबन्धके समय अजघन्य प्रदेशबन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कहा है। तीन आयुओंका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है, यह स्पष्ट ही है। देवगति चतुष्कका जघन्य प्रदेशबन्ध घोलमान जघन्य योगसे होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। शेष प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध भवके प्रथम समयमें सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। किन्तु ये अध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है।

२६५. सम्यग्मिथ्यात्वमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—यहाँ घोलमान जघन्य योगसे ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका मूलमें कहे अनुसार अन्तरकाल कहा है। शेष प्रकृतियाँ एक तो अध्रुवबन्धिनी हैं और दूसरे इनका जघन्य योगसे जघन्य प्रदेशबन्ध होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है।

२६६. संज्ञियोंमें पाँच ज्ञानावरणदण्डकके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तर काल नहीं है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। स्त्यानगृद्धि तीन दण्डकके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागर प्रमाण है। आठ कषायोंके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है। स्त्रीवेदके जघन्य प्रदेशबन्धका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान है। नपुंसकवेददण्डकका भङ्ग ओघके समान है। इतनी

ओघं। णवरि जह० णत्थि अंतरं। णिरयाउ-देवाउ० पंचिंदियपज्जत्तभंगो। तिरिक्ख-मणुसाउ० जह० जह० खुद्दा० समऊ०, उक्क० कायट्ठिदी०। अज० जह० अंतो०, उक्क० कायट्ठिदी०। णिरयगदि-णिरयाणु० जह० जह० एग०, उक्क० कायट्ठि०। अज० अणुक्क०भंगो। तिरिक्ख०३ जह० णत्थि अंतरं। अज० ओघं। दोगदि-वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-दोआणु०-उच्चा० जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० एग०, उक्क० तेंत्तीसं० सादि० अंतोमुहुत्तेण। एइंदियदंडओ जह० णत्थि अंतरं। अज० ओघं। ओरा०-ओरा०अंगो०-वज्जरि० जह० णत्थि अंतरं। अज० ओघं। आहार०२ जह० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडितिभागं दे०। अज० ज० ए०, उक्क० सागरोवमसदपुधत्तं।

विशेषता है कि इसके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तर काल नहीं है। नरकायु और देवायुका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम क्षुल्लकभवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अजघन्य प्रदेशबन्धका अन्तर अनुत्कृष्टके समान है। तिर्यञ्चगतित्रिकके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तर काल नहीं है। अजघन्य प्रदेशबन्धका अन्तर ओघके समान है। दो गति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, दो आनुपूर्वी और उच्चगोत्रके जघन्य .प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागर है। एकेन्द्रियदण्डकके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशबन्धका अन्तर काल ओघके समान है। औदारिकशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग और वज्रर्षभनाराचसंहननके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशबन्धका अन्तर काल ओघके समान है। आहारकद्विकके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्त्वप्रमाण है।

विशेषार्थ—जो असंज्ञियोंमेंसे आकर संज्ञियोंमें उत्पन्न होता है, उसके उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य प्रदेशबन्ध सम्भव है; इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तर कालका निषेध किया है। स्त्यानगृद्धित्रिकदण्डक, आठ कषाय, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद दण्डकके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालके निषेधका यही कारण जानना चाहिए। अपनी बन्धव्युच्छित्तिके बाद पाँच ज्ञानावरणादिका कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। मिथ्यात्वका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागर प्रमाण है, इसलिए स्त्यानगृद्धि त्रिकदण्डकके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर उक्त .काल प्रमाण कहा है। स्त्रीवेद अध्रुवबन्धिनी प्रकृति है, इसलिए इसके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कहा है और उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान है, यह स्पष्ट ही है। इसी प्रकार नपुंसकवेदके अजघन्य प्रदेशबन्धका भङ्ग ओघके समान घटित कर लेना चाहिए। नरकायु और देवायुका अन्तर यहाँ पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंकी मुख्यतासे ही घटित होता है, इसलिए इनका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान कहा है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका जघन्य प्रदेशबन्ध क्षुल्लकभवके

२६७. असण्णीसु पढमदंडओ मदि०भंगो। चदुआउ०-मणुसगदि०३ तिरिक्खोघ-

तृतीय त्रिभागके प्रथम समयमें सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण कहा है और यह जघन्य प्रदेशबन्ध कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें यथासमय हो और मध्यमें न हो यह भी सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण कहा है। एक बार आयुबन्ध हो कर पुनः आयुबन्धमें कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल लगता है तथा कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें विवक्षित आयुका बन्ध हो और मध्यमें अन्य आयुका बन्ध हो यह सम्भव है, इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण कहा है। नरकगतिद्विकका जघन्य प्रदेशबन्ध संज्ञी जीवके घोलमान जघन्य योगसे होता है, इसलिए यह एक समयके अन्तरसे भी हो सकता है और कुछ कम कायस्थितिके अन्तर से भी हो सकता है, इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण कहा है। तथा इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर जो एक सौ पचासी सागर अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धके अन्तरके समान कहा है सो वह यहाँ भी बन जाता है। तिर्यञ्चगतित्रिकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी ज्ञानावरणके समान ही है, इसलिए इसके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा इसके अजघन्य प्रदेशबन्धका अन्तर काल ओघके समान कहनेका कारण यह है कि ओघसे जो इसके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर एकसौ त्रेसठ सागर कहा है, वह यहाँ भी बन जाता है। दो गति आदिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी ज्ञानावरणके समान है, इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तर कालका निषेध किया है। तथा एक तो ये सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं। दूसरे यहाँ साधिक तेतीस सागर काल तक इनका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। मात्र मनुष्यगति आदिका उत्कृष्ट अन्तर लानेके लिए नरकमें उत्पन्न कराना चाहिए। और देवगतिका उत्कृष्ट अन्तर लानेके लिए उपशमश्रेणि पर आरोहण करा कर और वहीं मृत्यु करा कर देवोंमें उत्पन्न कराना चाहिए। एकेन्द्रियजातिदण्डकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी भी ज्ञानावरणके समान है, इसलिए इसके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तर कालका निषेध किया है। तथा इसके अजघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल जो ओघके समान कहा है सो ओघसे जो इसके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर एकसौ पचासी सागर बतलाया है, वह यहाँ भी घटित हो जाता है। औदारिकशरीर आदिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी ज्ञानावरणके समान ही है, इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल ओघके समान कहनेका कारण यह है कि ओघसे जो इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पल्य कहा है, वह यहाँ भी बन जाता है। आहारकद्विकका जघन्य प्रदेशबन्ध आयुबन्धके समय घोलमान जघन्य योगसे होता है, इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण कहा है। तथा ये एक तो सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं और कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें यथा समय इनका बन्ध हो और मध्यमें न हो यह सम्भव है, इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्त्व प्रमाण कहा है।

२६७. असंज्ञियोंमें प्रथम दण्डकका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है। चार आयु और मनुष्यगतित्रिकका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। वैक्रियिक छहके जघन्य

भंगो। वेउव्वि०छ० जह० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडितिभागं देसू०। अज० जह० एग०, उक्क० अणंतका०। सेसाणं जह० णाणा०भंगो। अज० ज० एग०, उक्क० अंतो०।

२६८. आहारगेसु पंचणाणावरणपढमदंडओ जह० जह० खुद्दा० समऊ०, उक्क० अंगुल० असंखें०। अज० जह० ए०, उक्क० अंतो०। थीणगिद्धि०३दंडओ[1] णवुंसग-दंडओ जह० णाणा०भंगो। अज० ओघं। दोआउ०-दोगदि-दोआणु०-उच्चा० जह० अज० जह० एग०, उक्क० अंगुलस्स असंखें०। णवरि मणुसगदि० जह० जह०

प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अनन्तकाल है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—असंज्ञियोंमें प्रथम दण्डकका भङ्ग मत्यज्ञानियोंके समान कहनेका कारण यह है कि मत्यज्ञानियोंमें प्रथम दण्डकके जघन्य प्रदेश बन्धका जो जघन्य अन्तर एक समय कम क्षुल्लक भव ग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण तथा अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय बतलाया है वह यहाँ भी घटित हो जाता है। असंज्ञियोंमें तिर्यञ्चोंकी प्रधानता है, इसलिए चार आयु और मनुष्यगतित्रिकका भङ्ग जैसा तिर्यञ्चोंमें बतलाया है,वैसा यहाँ भी जान लेना चाहिए। यहाँ वैक्रियिक छहका जघन्य प्रदेश बन्ध आयुबन्धके समय घोलमान जघन्य योगसे होता है, इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पूर्व कोटिका कुछ कम त्रिभाग प्रमाण कहा है। तथा एक तो जघन्य प्रदेशबन्धके समय अजघन्य प्रदेशबन्ध नहीं होता। साथ ही ये सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं। दूसरे एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय पर्यायमें रहते हुए इनका अधिकसे अधिक अनन्तकाल तक बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल कहा है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी ज्ञानावरणके समान होनेसे इनके जघन्य प्रदेशबन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान कहा है। तथा ये सब परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है।

२६८. आहारकोंमें पाँच ज्ञानावरण आदि प्रथम दण्डकके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम क्षुल्लक भव ग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। स्त्यानगृद्धित्रिक दण्डक और नपुंसकवेददण्डकके जघन्य प्रदेशबन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अजघन्य प्रदेशबन्धका भङ्ग ओघके समान है। दो आयु, दो गति, दो आनुपूर्वी और उच्चगोत्रके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इतनी विशेषता है

---

१. ता०प्रतौ 'अंगुल० असंखे०। थीणागिद्धि० ३ दंडओ' इति पाठः। २. ता०आ०प्रत्योः 'ज० ज० अज०' इति पाठः।

खुद्दा० समऊ० । तिरिक्खाउ०[1] जह० णाणा०भंगो । अज० ज० अंतो०, उक्क०, सागरोवमसदपुधत्तं । मणुसाउ० जह० अज० जह० अंतो०, उक्क० कायट्ठिदी० । तिरिक्ख०३ जह० णाणा०भंगो । अज० ओघं । देवगदि०४ जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० एग०, उक्क० कायट्ठि० । एइंदि०दंडओ जह० णाणा०भंगो । अज० ओघं । ओरा०-ओरा०अंगो०-वज्जरि० जह० णाणा०भंगो । अज० ओघं । आहार० २ जह० ओघं । अज० जह० एग०, उक्क० अंगुल० असंखें० । तित्थ० जह० णत्थि अंतरं अज० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अणाहार० कम्मइगभंगो ।

एवं अंतरं समत्तं ।

कि मनुष्य गतित्रिकके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम क्षुल्लक भव ग्रहण प्रमाण है । तिर्यञ्चायुके जघन्य प्रदेशबन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्त्वप्रमाण है । मनुष्यायुके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण है । तिर्यञ्चगतित्रिकके जघन्य प्रदेशबन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । अजघन्य प्रदेशबन्धका भङ्ग ओघके समान है । देवगतिचतुष्कके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण है । एकेन्द्रियजाति दण्डकके जघन्य प्रदेशबन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । अजघन्य प्रदेशबन्धका भङ्ग ओघके समान है । औदारिकशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग और वज्रर्षभनाराचसंहननके जघन्य प्रदेशबन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । अजघन्य प्रदेशबन्धका भङ्ग ओघके समान है । आहारकद्विकके जघन्य प्रदेशबन्धका भङ्ग ओघके समान है । अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तीर्थंकर प्रकृतिके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अनाहारकोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है ।

विशेषार्थ—आहारकोंमें पाँच ज्ञानावरणादिकका जघन्य प्रदेशबन्ध सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव भवके प्रथम समयमें करता है और इसकी कायस्थिति अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तरकाल एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट अन्तरकाल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा जघन्य प्रदेशबन्धके समय इनका अजघन्य प्रदेशबन्ध नहीं होता और बन्ध व्युच्छित्तिके बाद इनका यदि पुनः बन्ध हो तो अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल लगता है, इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है । स्त्यानगृद्धित्रिक दण्डक और नपुंसकवेद दण्डकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी ज्ञानावरणके ही समान होनेसे इनके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तर काल ज्ञानावरणके समान कहा है । तथा स्त्यानगृद्धित्रिक दण्डकके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागर प्रमाण और नपुंसकवेद दण्डकके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य अधिक दो छयासठ सागर जैसा

---

[1] ता०प्रतौ 'समऊ०'। णाणा० (?) तिरिक्खाउ०' आ०प्रतौ 'समऊ०। णाणा० तिरिक्खाउ० इति पाठः।

ओघसे प्राप्त होता है वैसा यहाँ भी बन जाता है, इसलिए यहाँ यह ओघके समान कहा है। दो आयु आदिका जघन्य प्रदेशबन्ध घोलमान जघन्य योगसे होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कहा है। मात्र मनुष्यगतिद्विक और उच्चगोत्रका जघन्य प्रदेशबन्ध सूक्ष्म अपर्याप्त जीवके भवके प्रथम समयमें होता है, इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण कहा है। तथा अपनी कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें यथासमय इनका बन्ध हो और मध्यमें न हो यह सम्भव है, क्योंकि एकेन्द्रिय पर्यायमें रहते हुए नरकायु, देवायु और नरकगतिद्विकका तथा अग्निकायिक और वायुकायिक पर्यायमें रहते हुए मनुष्यगतिद्विक और उच्चगोत्रका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। अपनी कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें इन प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध कराकर यह अन्तर ले आना चाहिए। तिर्यञ्चायुका जघन्य प्रदेशबन्ध सूक्ष्म अपर्याप्त जीवके दो भवोंके तृतीय भागके प्रथम समयमें दो बार करानेसे इसके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण और कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें करानेसे उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण आता है। ज्ञानावरणके जघन्य प्रदेशबन्धका यह अन्तर इतना ही है, इसलिए तिर्यञ्चायुके जघन्य प्रदेशबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान कहा है। तथा एक त्रिभागबन्धसे द्वितीय त्रिभागबन्धमें कमसे कम अन्तर्मुहूर्तका अन्तर होता है और आहारक जीव अधिकसे अधिक सौ सागरपृथक्त्व कालतक तिर्यञ्चायुका बन्ध न करे यह सम्भव है, इसलिए तिर्यञ्चायुके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्रमाण और उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्त्वप्रमाण कहा है। एक बार मनुष्यायुका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध होकर पुनः होनेमें कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल और अधिकसे अधिक कायस्थितिप्रमाण काल लगता है, इसलिए इसके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण कहा है। तिर्यञ्चगतित्रिकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी ज्ञानावरणके समान होनेसे इनका भङ्ग ज्ञानावरणके समान कहा है। तथा इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर एकसौ त्रेसठ सागर ओघके समान यहाँ भी बन जाता है, इसलिए यह भङ्ग ओघके समान कहा है। देवगतिचतुष्कका जघन्य प्रदेशबन्ध प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ असंयतसम्यग्दृष्टि आहारक मनुष्य तीर्थङ्कर प्रकृतिके साथ करता है, इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा ये एक तो परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं और दूसरे कायस्थितिप्रमाण कालतक इनका बन्ध न हो यह सम्भव है, इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण कहा है। एकेन्द्रियजातिदण्डक और औदारिकशरीरत्रिकका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है, यह स्पष्ट है, क्योंकि जघन्य स्वामित्वकी अपेक्षा ज्ञानावरणसे इनमें कोई भेद नहीं है। तथा एकेन्द्रियजातिदण्डकके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर एकसौ पचासी सागर व औदारिकशरीरत्रिकके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पल्य ओघके समान यहाँ भी बन जानेसे वह ओघके समान कहा है। आहारकशरीरद्विकका जघन्य प्रदेशबन्ध घोलमान जघन्य योगसे होता है, इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त ओघके समान यहाँ बन जानेसे वह ओघके समान कहा है। तथा ये एक तो सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं। दूसरे जघन्य प्रदेशबन्धके समय अजघन्य प्रदेशबन्ध नहीं होता और कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें इनका बन्ध हो और मध्यमें न हो यह भी सम्भव है, इसलिए इनके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके

सण्णियासपरूवणा

२६९. सण्णियासं दुविधं—सत्थाणसण्णियासं चेव परत्थाणसण्णियासं चेव। सत्थाणसण्णियासं, दुवि०—जह० उक्क०। उक्क० पगदं। दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० आभिणि० उक्क० पदेसबंधंतो सुद०-ओधि०-मणपज्ज०-केवल० णियमा बंधगो णियमा उक्कस्सं। एवं एक्केक्कस्स। एवं पंचतराइगाणं।

२७०. णिद्दाणिद्दाए उक्क० पदेसबंधं० पयलापयला-थीणगिद्धि० णियमा बंधगो णियमा उक्कस्सं। णिद्दा-पयलाणं णियमा बंधं० णियमा अणुक्क० अणंतभागूणं बंधदि। चदुदंस० णियमा बं० णियमा अणु० संखेज्जदिभागूणं बंधदि। एवं पयलापयला-

---

असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य प्रदेशबन्ध देव और नारकी भवके प्रथम समयमें करता है, इसलिए इनके जघन्य प्रदेशबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा एक तो जघन्य प्रदेशबन्धके समय इसका अजघन्य प्रदेशबन्ध नहीं होता। दूसरे उपशमश्रेणिमें एक समयके लिए अबन्धक होकर दूसरे समयमें मरकर देव होने पर पुनः इसका बन्ध होने लगता है और उपशमश्रेणिमें अन्तर्मुहूर्त कालतक इसका बन्ध नहीं होता। या जो तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाला जीव द्वितीयादि पृथिवियोंमें मरकर उत्पन्न होता है उसके अन्तर्मुहूर्त काल तक इसका बन्ध नहीं होता, इसलिए इसके अजघन्य प्रदेशबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्र्मुहूर्त कहा है। अनाहारक जीवोंका भङ्ग कार्मणकाययोगी जीवों के समान है,यह स्पष्ट ही है।

इस प्रकार अन्तरकाल समाप्त हुआ।

सन्निकर्षप्ररूपणा

२६९. सन्निकर्ष दो प्रकारका है—स्वस्थान सन्निकर्ष और परस्थान सन्निकर्ष। स्वस्थान सन्निकर्ष दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे आभिनिबोधिक ज्ञानावरणके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरणका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे इनके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। इसी प्रकार पाँचों ज्ञानावरणोंमेंसे एक-एकको मुख्य करके सन्निकर्ष होता है। तथा इसी प्रकार पाँच अन्तरायोंमेंसे एक-एकको मुख्य करके सन्निकर्ष होता है।

विशेषार्थ—इन कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी एक है और इनका एकसाथ बन्ध होता है, इसलिए पाँच ज्ञानावरणोंमेंसे किसी एकका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होनेपर शेषका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होता है। तथा इसी प्रकार पाँच अन्तरायोंमेंसे किसी एकका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होने पर शेषका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होता है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

२७०. निद्रानिद्राके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धिका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। निद्रा और प्रचलाका यह नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे अनन्तवें भाग न्यून अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। चक्षुदर्शनावरणादि चार दर्शनावरणोंका यह नियम बन्धक होता है जो नियमसे संख्यातवें भाग न्यून अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। इसी प्रकार प्रचलाप्रचला

---

१. ता०प्रतौ 'चेव [परत्थाणसण्णिकास] सत्थाणसण्णियासं' इति पाठः।

थीणगि० । णिद्दाए उक्क० [बं] पयला णियमा बं० णियमा उक्कस्सं । चदुदंस० णि० बं० णि० अणु० संखेज्जदिभागूणं बंधदि । एवं पयला । चक्खुदं० उक्क० बंधंतो अचक्खुदं०-ओधिदं०-केवलदं० णियमा बं० णिय०[1] उक्कस्सं । एवं तिण्णिदंसणा० ।

२७१. सादा० उक्क० बंधंतो असादस्स अबंधगो । असादा० उक्क० बंधंतो सादस्स अबंधगो । एवं चदुण्णं आउगाणं दोण्णं गोदाणं च ।

२७२. मिच्छ० उक्क० बं० अणंताणु० णिय० बं० णिय० उक्क० । अट्ठक०-

और स्त्यानगृद्धिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष कहना चाहिए। निद्राके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव प्रचलाका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। चार दर्शनावरणोंका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे संख्यातवें भाग न्यून अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। इसी प्रकार प्रचलाकी मुख्यतासे सन्निकर्ष कहना चाहिए। चक्षुदर्शनावरणके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण और केवलदर्शनावरणका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। इसी प्रकार तीन दर्शनावरणोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष होता है।

विशेषार्थ—प्रथम और द्वितीय गुणस्थानमें दर्शनावरणकी सब प्रकृतियोंका बन्ध होता है; इसलिए निद्रानिद्राके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव बन्ध तो सबका करता है, पर निद्रानिद्राके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जो स्वामी है वह मात्र प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धिके ही उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी है, इसलिए निद्रानिद्राके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव इन दो प्रकृतियोंके ही उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। शेषका अपने-अपने उत्कृष्ट प्रदेशबन्धको देखते हुए अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका ही बन्धक होता है। तृतीयादि गुणस्थानोंमें निद्रादिक और चक्षुदर्शनावरणचतुष्कका बन्धक होता है। उसमें भी निद्राद्विकके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी चार गतिका सम्यग्दृष्टि जीव है और चक्षुदर्शनावरण आदिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी अन्यतर सूक्ष्मसाम्परायिक जीव है, इसलिए निद्राद्विकमेंसे किसी एकका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होते समय अन्यतरका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होता है और चक्षुदर्शनावरणचतुष्कका अपने उत्कृष्टको देखते हुए नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होता है। मात्र इसके स्त्यानगृद्धित्रिकका बन्ध नहीं होता। तथा चक्षुदर्शनावरण आदिमेंसे सूक्ष्मसाम्परायमें किसी एकका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होते समय शेष तीनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होता है। मात्र इसके निद्रादिक पाँचका बन्ध नहीं होता।

२७१. सातावेदनीयके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव असातावेदनीयका अबन्धक होता है और असातावेदनीयके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव सातावेदनीयका अबन्धक होता है। इसी प्रकार चार आयु और दो गोत्रोंके विषयमें भी जानना चाहिए।

विशेषार्थ—दोनों वेदनीय, चारों आयु और दोनों गोत्रकर्म ये प्रत्येक परस्पर सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं। दोनों वेदनीयमेंसे किसी एकका बन्ध होनेपर अन्यका बन्ध नहीं होता। इसी प्रकार चारों आयुकर्मों और दोनों गोत्रकर्मोंके विषयमें जानना चाहिए, इसलिए यहाँ पर इनके सन्निकर्षका निषेध किया है।

२७२. मिथ्यात्वके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव अनन्तानुबन्धीचतुष्कका

---

[1] ता०प्रतौ 'णिय० [बं०] णि०' इति पाठः ।

भय-दु० णिय० वं० णिय० अणु० अणंतभागूणं वंधदि। कोधसंज० णिय० बं० णिय० अणु० दुभागूणं बंधदि। माणसंज० सादिरेयदिवड्ढभागूणं बंधदि। मायासंज०-लोभसंज० णिय० वं० णिय०[1] अणु० संखेँज्जगुणहीणं बंधदि। इत्थि०-णवुंस० सिया उक्कस्सं। पुरिस० सिया संखेँज्जगुणहीणं बंधदि। हस्स-रदि-अरदि-सोग० सिया अणंतभागूणं बंधदि। एवं अणंताणुबं०४-इत्थि०-णवुंस०।

२७३. अपच्चक्खाणकोध० उक्क० वं० तिण्णिक०-भय-दु० णिय० वं० णिय० उक्कस्सं। पच्चक्खाण०४ णि० वं० णिय० अणु० अणंतभागूणं बंधदि। चदुसंज० मिच्छत्तभंगो। पुरिस० णि० वं० णि० अणु० संखेँज्जगुणहीणं बंधदि। चदुणोक० सिया बं० उक्क०। एवं तिण्णिकसा०।

नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। आठ कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे अनन्तवें भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। क्रोधसंज्वलनका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। मान संज्वलनका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। मायासंज्वलन और लोभसंज्वलनका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे संख्यातगुणे हीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका कदाचित् बन्धक होता है। यदि बन्धक होता है तो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। पुरुषवेदका कदाचित् बन्धक होता है। यदि बन्धक होता है तो संख्यातगुणे हीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। हास्य, रति, अरति और शोकका कदाचित् बन्धक होता है। यदि बन्धक होता है तो नियमसे अनन्तवें भाग हीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

विशेषार्थ—तात्पर्य यह है कि मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी एक जीव है, इसलिए मिथ्यात्वके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धको मुख्य करके जो सन्निकर्ष कहा है, वह अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदको मुख्य करके भी बन जाता है। शेष कथन बन्धव्यवस्थाको जानकर घटित कर लेना चाहिए।

२७३. अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव तीन कषायों, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे अनन्तवें भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। चार संज्वलनका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। पुरुषवेदका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे संख्यातगुणे हीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। चार नोकषायोंका वह कदाचित् बन्धक होता है। यदि बन्धक होता है तो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। इसीप्रकार अप्रत्याख्यानावरण मान आदि तीन कषायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

विशेषार्थ—अप्रत्याख्यानावरण चतुष्कके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी एक जीव है, इसलिए इनका सन्निकर्ष एक समान कहा है। यहाँ पर जो चार संज्वलनोंका भङ्ग मिथ्यात्वके समान कहा है सो इसका यह अभिप्राय है कि जिस प्रकार मिथ्यात्वके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध

---

[1] ता०प्रतौ 'माणसंज० लोभसंज० णिय० [बं०] णि०' इति पाठः।

२७४ पच्चक्खाणकोध० बं० तिण्णिक०-भय-दु० णिय० बं० णिय० उक्क०। चदुसंज०-पुरिस०-चदुणोक० अपच्चक्खाणभंगो। एवं तिण्णिकसा०।

२७५. कोधसंज० उक्क० प०बं० माणसंज० णि० बं० णि० अणु० संखेँज्जदिभागूणं बंधदि। मायासंज०-लोभसंज० णि० बं० णि० अणु० संखेज्जगुणहीणं बंधदि। माणसंज० उक्क० पदे०बं० मायासंज० णि० बं० णि० अणु० संखेँज्जदिभागूणं बंधदि। लोभसंज० णि० बं० णि० अणु० संखेँज्जगुणहीणं बं०। मायाए उक्क० पदे०बं० लोभ० णि० बं० णिय० अणु० दुभागूणं बंधदि।

२७६. पुरिस० उक्क० पदे०बं० कोधसंज० णियमा अणु० दुभागूणं[1] बंधदि।

करनेवाले जीवके चार संज्वलनोंका सन्निकर्ष कहा है, उसी प्रकार यहाँ पर अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाले जीवके इनका सन्निकर्ष जानना चाहिए। इसके मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनका सन्निकर्ष नहीं कहा।

२७४. प्रत्याख्यानावरण क्रोधके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव प्रत्याख्यानावरण मान आदि तीन कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे इनके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। चार संज्वलन, पुरुषवेद और चार नोकषायोंका भङ्ग अप्रत्याख्यानावरणके समान है। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण मान आदि तीन कषायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिये।

विशेषार्थ—प्रत्याख्यानावरणचतुष्कके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी एक जीव है, इसलिए इनका सन्निकर्ष एक समान कहा है। इसके मिथ्यात्व, प्रारम्भकी आठ कषाय, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनका सन्निकर्ष नहीं कहा।

२७५. क्रोध संज्वलनके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव मान संज्वलनका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे संख्यातवें भाग हीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। माया संज्वलन और लोभसंज्वलनका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे संख्यातगुणे हीन अनुत्कृष्ट-प्रदेशोंका बन्धक होता है। मानसंज्वलनके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव माया-संज्वलनका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे संख्यातवें भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। लोभसंज्वलनका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे संख्यातगुणे हीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। मायासंज्वलनके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव लोभ-संज्वलनका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है।

विशेषार्थ—क्रोधसंज्वलनके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव शेष तीन संज्वलनोंका, मानसंज्वलनके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव माया और लोभ संज्वलनका तथा मायासंज्वलनके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव लोभसंज्वलनका ही बन्ध करता है, इसलिए यहाँ इसी अपेक्षासे सम्भव सन्निकर्ष कहा है। लोभसंज्वलनके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाले जीवके अन्य प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, इसलिए उसका अन्य किसीके साथ सन्निकर्ष नहीं कहा।

२७६. पुरुषवेदके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव क्रोधसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। मानसंज्वलनका

---

[1] ता०आ०प्रत्योः 'कोधसंज० णीचुच्चा० भागूणं' इति पाठः।

माणसंज० णियमा सादिरेयदिवड्ढभागूणं बंधदि। मायासंज०-लोभसंज० णियमा संखेँज्जगुणहीणं बंधदि।

२७७. हस्स० उक्क० पदे०बंधंतो अपच्चक्खाण०४ सिया[1]…………। ……………………………………………………………………………… …………।

२७८. ……णियमा उक्क०। अट्ठक०-भय-दुगुं० णि० बं० अणंतभागूणं बं०। कोधसंज० णि० बं० दुभागूणं बं०। माणसंज० णि० बं०[2] सादिरेयदिवड्ढभागूणं बं०। मायासंज०-लोभसंज० णि० बं० णि० संखेँज्जगुणहीणं बं०। इत्थि०-णवुंस० सिया० उक्क०। पुरिस० सिया० संखेँज्जगु०। चदुणोक० सिया० अणंतभागूणं बंधदि। एवं अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-। अपच्चक्खाण०४-सत्तणोक०-चदुसंज० मिच्छत्तभंगो। सेसाणं माणभंगो।

नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। मायासंज्वलन और लोभसंज्वलनका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे संख्यातगुणे हीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है।

विशेषार्थ—पुरुषवेदके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव मोहनीयकी पुरुषवेदके साथ चार संज्वलन प्रकृतियोंका ही बन्ध करता है, इसलिए इसके इस दृष्टिसे सम्भव सन्निकर्ष कहा है।

२७७. हास्यके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कका कदाचित् बन्धक होता है।…………………………………………………………………………………… …………।

२७८. ……नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। आठ कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे अनन्तवें भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। क्रोध संज्वलनका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। मानसंज्वलनका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। मायासंज्वलन और लोभसंज्वलनका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे संख्यातगुणे हीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका कदाचित् बन्धक होता है। यदि बन्धक होता है तो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। पुरुषवेदका कदाचित् बन्धक होता है। यदि बन्धक होता है तो नियमसे संख्यातगुणे हीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। चार नोकषायोंका कदाचित् बन्धक होता है। यदि बन्धक होता है तो नियमसे अनन्तवें भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। इसीप्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी मुख्यतासे सन्निकर्ष कहना चाहिए। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, सात नोकषाय और चार संज्वलनका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग मानकषायके समान है।

---

[1] अत्र १८८ क्रमाङ्कं ताडपत्रं विनष्टम्। [2] आ०प्रतौ 'माणसंज० बं०' इति पाठः। [3] ता०प्रतौ 'एवं अणंताणु० ४। इत्थि० णपुं०' इति पाठः।

२७९. कोधसंज० उक्क० पदे०बं० माणसंज० णि० बं० णि० संखेंज्जदिभागूणं बं०। दोण्णं संज० णि० बं० संखेंज्जगुणहीणं बं०। माणसंज० उक्क० पदे०बं० दोसंज० णि० बं० संखेंज्जदिभागूणं बं०। मायासंज० उक्क० पदे०बं० लोभसंज० णि० बं० णि० उक्क०। एवं लोभसंजल०। सेसं ओघं। लोभे ओघं।

२८०. मदि०-[सुद०] सत्तण्णं क० अपज्जत्तभंगो। णामपगदीणं पंचिंदियतिरिक्खभंगो। एवं विभंगे अब्भव०-मिच्छा०-असण्णि०।

२८१. आभिणि-सुद-ओधि० सत्तण्णं कम्माणं ओघं। मणुसगदि० उक्क० पदे०बं० पंचिंदि०-तेजा०-क०—समचदु०—वण्ण०४—अगु०४—पसत्थ०—तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि णि० बं० णि० अणु० संखेंज्जदिभागूणं बं०। ओरा०-ओरा०अंगो०-वज्जरि०-मणुसाणु० णि० बं० णि० उक्क०। थिरादितिण्णियुग० सिया संखेंज्जदिभागूणं बं०। णवरि जस० सिया संखेंज्जगुणहीणं बं०। एवं ओरा०-ओरा०अंगो०-वज्जरि०-मणुसाणु०।

२८२. देवगदि० उक्क० पदे०बं० पंचिंदि०-समचदु०-वण्ण०४-देवाणु०-

---

२७९. क्रोधसंज्वलनके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव मानसंज्वलनका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे संख्यातवें भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। दो संज्वलनोंका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे संख्यातगुणे हीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। मानसंज्वलनके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव दो संज्वलनोंका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे संख्यातवें भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। मायासंज्वलनके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव लोभसंज्वलनका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। इसीप्रकार लोभसंज्वलनकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। शेष भंग ओघके समान है। लोभकषायवाले जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है।

२८०. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग अपर्याप्त जीवोंके समान है। नामप्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। इसी प्रकार विभङ्गज्ञानी, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें जानना चाहिए।

२८१. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यगतिके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे संख्यातवें भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। औदारिकशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे इनके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित् बन्धक होता है। यदि बन्धक होता है तो संख्यातवें भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। इतनी विशेषता है कि यशःकीर्तिका कदाचित् बन्धक होकर भी संख्यातगुणे हीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। इसी प्रकार औदारिकशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२८२. देवगतिके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्र-

अगु०४-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि० णि० बं० णि० उक्क०। वेउव्वि०-तेजा०-क०-वेउव्वि०अंगो० णि० बं० तं० तु० संखेँज्जदिभागूणं बं०। आहार०२-थिरादिदोयुग०-अजस० सिया० उक्क०। जस० सिया[1] संखेँज्जगुणहीणं। देवगदिभंगो पंचिंदि०-समचदु०-वण्ण०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-थिरादिपंच०-णिमि०।

२८३. वेउव्वि० उक्क० पदे०बं० देवगदि याव णिमि० णि० बं० णि० उक्क०। थिरादिदोयुग०-अजस०[2] सिया० संखेँज्जगुणहीणं बं०। एवं तेजा०-क०-वेउव्वि०अंगो।

२८४. आहार० उक्क० पदे०बं० देवगदि०-पंचिंदि०-समचदु०-[आहारअंगो०] वण्ण०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-थिरादिपंच०-णिमि० णि० उक्क०। जस० णि० बं० संखेँज्जगुणहीणं०। वेउव्वि०-तेजा०-क०-वेउव्वि०अंगो० णि० बं० संखेँज्जदि-

संस्थान, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर और वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका नियमसे बन्धक होता है। किन्तु वह इनके उत्कृष्ट प्रदेशोंका भी बन्धक होता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका भी बन्धक होता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है तो नियमसे संख्यातवें भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। आहारकद्विक, स्थिर आदि दो युगल और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्धक होता है। यदि बन्धक होता है तो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। यशःकीर्तिका कदाचित् बन्धक होता है। यदि बन्धक होता है तो नियमसे संख्यातगुणे हीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि पाँच और निर्माणकी मुख्यतासे सन्निकर्ष देवगतिकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान है।

२८३. वैक्रियिकशरीरके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव देवगतिसे लेकर पूर्वमें कही गई निर्माण तककी प्रकृतियोंका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। स्थिर आदि दो युगल और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्धक होता है। यदि बन्धक होता है तो संख्यातगुणे हीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। इसीप्रकार तैजसशरीर, कार्मणशरीर और वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२८४. आहारकशरीरके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, आहारकआङ्गोपाङ्ग, वर्ण चतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि पाँच और निर्माणका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। यशःकीर्तिका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे संख्यातगुणे हीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर और वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका नियमसे बन्धक होता है जो नियमसे संख्यातवें भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है। इसीप्रकार आहारकशरीरकी मुख्यतासे सन्निकर्ष

---

[1] ता०आ०प्रत्योः 'उक्क०। जस० सिया० उक्क०। जस० सिया०' इति पाठः। [2] आ०प्रतौ 'थिरादिदोआयु० अजस०' इति पाठः।

भागूणं बं० । एवं आहारअंगो० । अथिर-असुभ-अजस० वेउव्विय०भंगो ।

२८५. तित्थ० उक्क० पदे०बं० देवगदिआदीणं संखेंज्जदिभागूणं बं० । जस० सिया संखेंज्जगुणहीणं ब० । एवं मणपज्ज०-संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद०-ओधिदं०-सम्मादि०-खइग०-वेदग०-उवसम०-सम्मामि० । णवरि सामाइ०-छेदो० दंसणा० इत्थिभंगो । परिहार०-संजदासंजद-वेदग०-सम्मामि० जस० सव्वाणं सिया० उक्क० ।

२८६. असंजदेसु सत्तण्णं कम्माणं णिरयभंगो । णामाणं पंचिंदियतिरिक्खभंगो । णवरि तित्थ० ओघं । किण्ण०-णील०-काउ० असंजदभंगो । तेउ० छण्णं कम्माणं णिरयभंगो । मिच्छ० उक्क०पदे०बं० अणंताणु०४ णि० बं० णि० उक्क० । बारसक०-भय-दुगुं० णि० अणंतभागूणं बं० । इत्थि०-णवुंस० सिया० उक्क० । पंचणोक० सिया० अणंतभागूणं बं० । [एवं अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०] । अपच्चक्खाण०कोध० उक्क० पदे०बं० तिण्णिक०-पुरिस०-भय-दु० णि० बं० णि० उक्क० । अट्ठक० णि० बं० णि० अणंतभागूणं बं० । चदुणोक० सिया० उक्क० । एवं तिण्णि-

कहना चाहिए । अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष वैक्रियिकशरीरकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान है ।

२८५. तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव देवगति आदि प्रकृतियोंके संख्यातवें भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है । यशःकीर्तिका कदाचित् बन्धक होता है । यदि बन्धक होता है तो नियमसे संख्यातगुणे हीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है । इसीप्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंमें दर्शनावरणका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है तथा परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, वेदकसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें यशःकीर्तिका सभीमें कदाचित् बन्धक होता है । यदि बन्धक होता है तो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्धक होता है ।

२८६. असंयत जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग नारकियोंके समान है । नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है । इतनी विशेषता है कि तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है । कृष्ण, नील और कापोतलेश्यामें असंयतोंके समान भङ्ग है । पीतलेश्यामें छह कर्मोंका भङ्ग नारकियोंके समान है । मिथ्यात्वके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव अनन्तानुबन्धीचतुष्कका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है । बारह कषाय, भय, और जुगुप्साका नियमसे अनन्तवें भाग न्यून अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है । स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका कदाचित् बन्ध करता है । यदि बन्ध करता है तो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है । पाँच नोकषायोंका कदाचित् बन्ध करता है । यदि बन्ध करता है तो नियमसे अनन्तवें भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव तीन कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है । आठ कषायोंका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे

कसा० । पच्चक्खाणकोध० उक्क० पदे०बं० तिण्णिकसा०-पुरिस०-भय-दु० णि० बं० णि० उक्क० । चदुसंज० णि० बं० णि० अणु० अणंतभागूणं बं० । चदुणोक० सिया० उक्क० । एवं तिण्णिक० । कोधसंज० उक्क० पदे०बं० तिण्णिसंज०-पुरिस०-भय-दुगुं० णि० बं० णि० उक्क० । चदुणोक० सिया० उक्क० । एवं तिण्णिसंज० । पुरिस० उक्क० पदे०बं० अपच्चक्खाण०४-चदुणोक० सिया० उक्क० । पच्चक्खाण०४ सिया० तं०तु० अणंतभागूणं बं० । चदुसंज० णि० बं० णि० तं० तु० अणंतभागूणं बं० । [भय-दु० णि० बं० णि० उक्क०] । एवं छण्णोक० ।

२८७. तिरिक्ख० उक्क० पदे०बं० सोधम्म० एइंदियदंडओ आदि पणवीसदिणामाए सह ताओ सव्वाओ सण्णियासं णादव्वाओ । मणुसग० उक्क० पदे० बं० पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णि०

अनन्तवें भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। चार नोकषायोंका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण मान आदि तीन कषायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। प्रत्याख्यानावरण क्रोधके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव प्रत्याख्यानावरण मान आदि तीन कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे इनके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। चार संज्वलनकषायोंका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे अनन्तवें भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। चार नोकषायोंका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे इनके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण मान आदि तीन कषायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। क्रोधसंज्वलनके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव मान आदि तीन संज्वलन, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे इनके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। चार नोकषायोंका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे इनके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। इसी प्रकार मान आदि तीन संज्वलनोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। पुरुषवेदके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क और चार नोकषायोंका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे इनके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनके उत्कृष्ट प्रदेशोंका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है तो नियमसे अनन्तवें भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। चार संज्वलनकषायोंका नियमसे बन्ध करता है जो इनके उत्कृष्ट प्रदेशोंका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है तो नियमसे अनन्तवें भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। इसी प्रकार छह नोकषायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिये।

२८७. तिर्यञ्चगतिके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाले जीवके सौधर्मके एकेन्द्रियदण्डकमें कही गई नामकर्मकी पचीस प्रकृतियोंके साथ उन सब प्रकृतियोंका सन्निकर्ष करना चाहिए। मनुष्यगतिके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे संख्यातवें भागहीन अनुत्कृष्ट

बं० संखेँज्जदिभागूणं बं० । समचदु०-हुंडसं०-पसत्थ०-थिरादिपंचयुग०-सुस्सर० सिया संखेँज्जदिभागूणं बं० । चदुसंठा०-छस्संघ०-अप्पसत्थ०-दुस्सर० सिया० उक्क० । ओरा०अंगो०-मणुसाणु०-[तस०] णि० बं० णि० उक्क० । एवं मणुसाणु० । देवगदि० उक्क० पदे०बं० पंचिंदि०-समचदु०-देवाणु०-पसत्थ०-तस०-सुभग-सुस्सर-आदें० णि० बं० णि० उक्क० । वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० णि० बं० णि० तं० तु० संखेँज्जदिभागूणं बं० । तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-बादरतिण्णि०[1]-णिमि० णि० बं० णि० संखेँज्जदिभागूणं बं० । आहार०२ सिया० उक्क० । थिरादितिण्णियु० सिया संखेँज्जदिभागूणं बं० । एवं पंचिंदि०-समचदु[2]०-देवाणु०-पसत्थ०-तस०-सुभग-सुस्सर-आदें० । वेउव्वि[3]०-वेउव्वि०अंगो० देवगदिभंगो । णवरि आहार०२ वज्ज । आहार०२ देवगदिभंगो । वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० णि० बं० णि० संखेज्जदिभागूणं बं० । णग्गोध० उक्क० पदे०बं० तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु[4]०-पसत्थ०-थिरादिपंचयु०-सुस्सर०

प्रदेशोंका बन्ध करता है। समचतुरस्रसंस्थान, हुण्डसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, स्थिर आदि पाँच युगल और सुस्वरका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे संख्यातवें भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। चार संस्थान, छह संहनन, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और त्रसका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। इसी प्रकार मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। देवगतिके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, सुभग, सुस्वर और आदेयका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे इनके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनके उत्कृष्ट प्रदेशोंका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है तो नियमसे संख्यातवें भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, बादर आदि तीन और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे संख्यातवें भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। आहारकशरीरद्विकका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। स्थिर आदि तीन युगलोंका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे संख्यातवें भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, सुभग, सुस्वर और आदेयकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गकी मुख्यतासे सन्निकर्ष देवगतिकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि आहारकद्विकको छोड़कर यह सन्निकर्ष कहना चाहिए। आहारकद्विककी मुख्यतासे सन्निकर्ष देवगतिकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान जानना चाहिए। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थानके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, स्थिर आदि

---

[1] आ.प्रतौ 'अगु० बादर तिण्णि' इति पाठः। [2] ता०प्रतौ 'एवं पंचिं० । समच०' इति पाठः। [3] ता०प्रतौ 'आदे० वेउव्वि०' इति पाठः। [4] आ०प्रतौ 'पदे०बं० तिरिक्खाणु०' इति पाठः।

सिया संखेंज्जदिभागूणं बं० । मणुस०-छस्संघ०-मणुसाणु०-अप्पसत्थ०-दुस्सर० सिया० उक्क० । ओरा०अंगो० णि० बं० णि० उक्क० । सेसं णि० बं० णि० संखेंज्जदिभागूणं[1] बं० । एवं तिण्णिसंठा०-ओरा०अंगो[2]०-छस्संघ०-अप्पसत्थ०-दुस्सर० । तित्थ[3]० ओघं० ।

२८८. एवं पम्माए । णवरि तिरिक्ख० उक्क० पदे०बं० पंचिंदि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णि० बं० णि० संखेंज्जदिभागूणं बं० । ओरा०-ओरा०अंगो०-तिरिक्खाणु० णि० बं० णि० उक्क० । पंचसंठा०-छस्संघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादें० सिया० उक्क० । समचदु०[4]-पसत्थ०-थिरादितिण्णियुग०-सुभग-सुस्सर-आदें० सिया० संखेंज्जदिभागूणं बं० । एवं तिरिक्खाणु०-मणुस०२[5] । देवगदि० उक्क० पदे०बं० पंचिंदि०-समचदु०-वण्ण०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि० णि० बं० णि० उक्क० । वेउव्वि०-तेजा०-क०-वेउव्वि०अंगो० णि० बं० तं० तु० संखेज्जदिभागूणं

पाँच युगल और सुस्वरका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो संख्यातवें भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। मनुष्यगति, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्गका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। शेष प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे संख्यातवें भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। इसी प्रकार तीन संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। तीर्थङ्करप्रकृतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष ओघके समान है।

२८८. पीतलेश्याके समान पद्मलेश्यामें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगतिके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे संख्यातवें भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। औदारिकशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। पाँच संस्थान, छह संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, स्थिर आदि तीन युगल, सुभग, सुस्वर और आदेयका कदाचित् बन्ध करता है जो संख्यातवें भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। देवगतिके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्र संस्थान, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर और वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका नियमसे

---

[1] ता०प्रतौ 'सेसं णि० बं० णि० णि० बं० णि० (?) संखेज्जदिभागं०' इति पाठः। [2] ता०प्रतौ 'एवं तिण्णं संठा० । ओरा०अंगो०' इति पाठः। [3] ता०प्रतौ 'दुस्सर० तित्थ०' इति पाठः। [4] ता०प्रतौ 'उक्क० समचदु०' इति पाठः। [5] ता०आ०प्रत्योः 'तिरिक्खाणु० मणुसाणु० मणुस०२' इति पाठः।

बं०। आहार०२-थिरादितिण्णियुग० सिया० उक्क०। एवमेदाओ ऍक्कमेॅक्कस्स उक्कस्साओ कादव्वाओ। ओरा० उक्क० बं० दोगदि-पंचसंठा०-छस्संघ०-दोआणु०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादें० सिया० उक्क०। पंचिंदि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णि० बं० संखेॅज्जदिभागूणं बं०। ओरा०अंगो० णि० बं० णि० उक्क०। समचदु०-पसत्थ०-थिरादितिण्णियु०-सुभग-सुस्सर-आदें० सिया० संखेॅज्जदिभागूणं बं०। एवं ओरा०भंगो[1] पंचसंठा०-ओरा०अंगो०-छस्संघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादें०।

२८९. सुक्काए सत्तण्णं कम्माणं ओघं। मणुसग० उक्क० [पदे०] बं० पंचिंदि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णि० बं० संखेॅज्जदिभागूणं बं०। ओरा०-ओरा०अंगो०-मणुसाणु० णि० बं० णि० उक्क०। समचदु०-पसत्थ०-थिरादिदोयु[2]०-सुभग-सुस्सर-आदें०-अज० सिया संखेॅज्जदिभागूणं बं०। जस० सिया० संखेॅज्जगुणहीणं बं०। पंचसंठा०-छस्संघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादें० सिया०

बन्ध करता है। जो इनके उत्कृष्ट प्रदेशोंका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है तो नियमसे संख्यातवें भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। आहारकद्विक और स्थिर आदि तीन युगलोंका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। इसी प्रकार इनका परस्पर उत्कृष्ट सन्निकर्ष कहना चाहिए। औदारिकशरीरके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव दो गति, पाँच संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे संख्यातवें भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्गका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, स्थिर आदि तीन युगल, सुभग, सुस्वर और आदेयका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे संख्यातवें भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। इस प्रकार औदारिकशरीरके समान पाँच संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२८९. शुक्ल लेश्यामें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यगतिके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे संख्यातवें भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। औदारिकशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग और मनुष्यगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, स्थिर आदि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे सख्यातवें भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो संख्यातवें भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। पाँच संस्थान, छह संहनन,

---

[1] आ०प्रतौ 'एवं ओरा०अंगो०' इति पाठः।

[2] आ०प्रतौ 'थिरादिदोभायुः' इति पाठः।

उक्क०। एवमेदाओ ऍक्कमेक्कस्स उक्कस्सियाओ कादव्वाओ। देवगदिसंजुत्ताओ पम्मभंगो। सासणे सत्तण्णं क० मदि०भंगो। सेसं पम्माए भंगो। अणाहार० कम्मइगभंगो।

एवं उक्कस्ससत्थाणसण्णिकासो समत्तो।

२९०. जहण्णए पगदं। दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० आभिणि० जह० पदे० बंधंतो चदुणाणा० णि० बं० णि० जहण्णा। एवमण्णमण्णस्स जहण्णा। एवं णवदंसणा०-पंचंत०। दोवेदणी०[1]-चदुआउ०-दोगोद० उक्कस्सभंगो।

२९१. मिच्छ० जह० पदे०बं० सोलसक०-भय-दु० णि० बं० णि० जहण्णा। सत्तणोक० सिया० बं० जहण्णा। एवं सोलसक०-णवणोक० एवमेक्कमेक्कस्स जहण्णा।

अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करता है। इसी प्रकार इनका परस्पर उत्कृष्ट सन्निकर्ष कहना चाहिए। देवगतिसंयुक्त प्रकृतियोंका भङ्ग पद्मलेश्याके समान है। सासादन सम्यक्त्वमें सात कर्मोंका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग पद्मलेश्याके समान है। अनाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्वस्थान सन्निकर्ष समाप्त हुआ।

२९०. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे आभिनिबोधिकज्ञानावरणके जघन्य प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरणका नियमसे बन्ध करता है, जो नियमसे इनके जघन्य प्रदेशोंका बन्ध करता है। इसी प्रकार इनका परस्पर जघन्य सन्निकर्ष कहना चाहिए। इसी प्रकार नौ दर्शनावरण और पाँच अन्तरायका जघन्य सन्निकर्ष जानना चाहिए। दो वेदनीय, चार आयु और दो गोत्रका भङ्ग उत्कृष्टके समान है।

विशेषार्थ—पाँचों ज्ञानावरणके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी एक जीव है, इसलिए इनमेंसे किसी एकका जघन्य प्रदेशबन्ध होते समय अन्यका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध होता है। यही कारण है कि सबका जघन्य सन्निकर्ष एक साथ कहा है। नौ दर्शनावरण और पाँच अन्तरायके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी भी पाँच ज्ञानावरणके समान है। इसलिए इनका जघन्य सन्निकर्ष भी पाँच ज्ञानावरणके समान जाननेकी सूचना की है। दो वेदनीय, चार आयु और दो गोत्र ये प्रत्येक कर्म परस्परमें सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं। इनका उत्कृष्टके समान जघन्य सन्निकर्ष नहीं बनता, इसलिए इनका भङ्ग उत्कृष्टके समान कहा है।

२९१. मिथ्यात्वके जघन्य प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव सोलह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे इनके जघन्य प्रदेशोंका बन्ध करता है। सात नोकषायोंका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे जघन्य प्रदेशोंका बन्ध करता है। इसी प्रकार सोलह कषाय और नौ नोकषायोंका परस्पर जघन्य सन्निकर्ष जानना चाहिए।

---

[1] ता०प्रतौ 'पंचंत० दोवेदणी०' इति पाठः।

२९२. णिरयग० जह० पदे०बं० पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-हुंड०-वेउव्वि०अंगो०-वण्ण०४-अगु०४-अप्पसत्थ०-तस०४-अथिरादिछ०-णिमि० णि० बं० णि० अज०[1] असंखेंज्जगुणब्भहियं बंधदि। णिरयाणु० णि० बं० णि० जहण्णा। एवं णिरयाणु०।

२९३. तिरिक्ख० जह० पदे०बं० चदुजादि-छस्संठा०-छस्संघ०-दोविहा०-थिरादिछयुग० सिया बं० जह०। ओरा०-तेजा०-क०-ओरा०अंगो०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-उज्जो०-तस०४-णिमि[2] णि० जहण्णा। एवं तिरिक्खाणु०।

विशेषार्थ—मिथ्यात्व आदि छब्बीस प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी भी एक ही जीव है, इसलिए इनका जघन्य सन्निकर्ष एक समान कहा है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियोंका तो सर्वत्र नियमसे सन्निकर्ष कहना चाहिए और सप्रतिपक्ष प्रकृतियोंका यथासम्भव विकल्पसे सन्निकर्ष कहना चाहिए। उसमें भी तीन वेद, रति-अरति और हास्य-शोक इनमेंसे एक-एक प्रकृतिको मुख्य करके सन्निकर्ष कहते समय अपनी-अपनी सप्रतिपक्ष प्रकृतियोंको छोड़कर ही सन्निकर्ष कहना चाहिए। उदाहरणार्थ तीन वेदोंमेंसे जब किसी एक वेदकी मुख्यतासे सन्निकर्ष कहा जाय तब अन्य दो वेदोंको छोड़कर ही सन्निकर्ष कहना चाहिए। इसी प्रकार रति-अरति तथा हास्य-शोकके विषयमें भी जानना चाहिए, क्योंकि तीन वेदोंमेंसे किसी एक वेदका, रति-अरतिमेंसे किसी एकका और हास्य-शोकमेंसे किसी एकका बन्ध होनेपर उनकी प्रतिपक्षभूत अन्य प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, ऐसा नियम है।

२९२. नरकगतिके जघन्य प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, अप्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, अस्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे असंख्यातगुणे अधिक अजघन्य प्रदेशोंका बन्ध करता है। नरकगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे जघन्य प्रदेशोंका बन्ध करता है। इसीप्रकार नरकगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष कहना चाहिए।

विशेषार्थ—नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी एक ही जीव है, इसलिए इनकी मुख्यतासे सन्निकर्ष एक समान कहा है। नरकगतिके साथ बँधनेवाली अन्य प्रकृतियोंका जघन्य सन्निकर्ष यथासम्भव उनके जघन्य स्वामित्वको देखकर जान लेना चाहिए।

२९३. तिर्यञ्चगतिके जघन्य प्रदेशोंका बन्ध करनेवाला जीव चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगति और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे उनके जघन्य प्रदेशोंका बन्ध करता है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, उद्योत, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। जो इनके जघन्य प्रदेशोंका नियमसे बन्ध करता है। इसीप्रकार तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चगतिके जघन्य प्रदेशबन्धके साथ बँधनेवाली यहाँ जितनी प्रकृतियाँ गिनाई हैं, उन सबके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी एक समान है; इसलिए यहाँ सन्निकर्ष तो सबका जघन्य ही कहा है। फिर भी यहाँपर केवल तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष

---

[1] आ०प्रतौ 'णि० अज्जस०' इति पाठः। [2] आ०प्रतौ 'अगु० ४ उज्जो० तस० ४ णिमि०' इति पाठः।

२९४. मणुसग० जह० पदे०बं० पंचिंदि०-ओरा०-तेजा०-क०-ओरा०अंगो०[1]-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णि० बं० णि० अज० संखेंज्जदिभागब्भहियं[2] बं०। छस्संठा०-छस्संघ०-दोविहा०-थिरादिछयुग० सिया० संखेंज्जदिभागब्भहियं बं०। मणुसाणु० णि० बं० णि० जहण्णा। एवं मणुसाणु०।

२९५. देवगदि० जह० पदे०बं० पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि० णि० बं० णि० अज० असंखेंज्ज-गुणब्भहियं बं०। वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-देवाणु० णि बं० णि० जहण्णा। थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० सिया० असंखेंज्जगुणब्भहियं बं०। तित्थ० णि० संखेंज्जभागब्भहियं बं०। एवं वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-देवाणु०।

तिर्यञ्चगतिके समान जाननेकी सूचना की है, अन्य प्रकृतियोंकी मुख्यतासे उस प्रकारके सन्निकर्णके जानने की सूचना नहीं की है सो इसका जो भी कारण है उसका स्पष्टीकरण आगेके सन्निकर्षसे स्वयमेव हो जायगा।

२९४. मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे इनके असंख्यातवें भाग अधिक अजघन्य प्रदेशोंका बन्ध करता है। छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगति और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे संख्यातवें भाग अधिक अजघन्य प्रदेशोंका बन्ध करता है। मनुष्यगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे इसका जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

विशेषार्थ—मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी एक ही जीव है, इसलिए यहाँपर मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्षको मनुष्यगतिके समान जाननेकी सूचना की है।

२९५. देवगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे असंख्यातगुणे अधिक अजघन्य प्रदेशोंका बन्ध करता है। वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग और देवगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे इनका जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे इनका असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तीर्थङ्करप्रकृतिका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे संख्यातवाँ भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसीप्रकार वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग और देवगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

विशेषार्थ—देवगतिद्विक और वैक्रियिक शरीरद्विकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी एक ही जीव है, इसलिए वैक्रियिकद्विक और देवगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष देवगतिकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान जाननेकी सूचना है।

---

[1] आ०प्रतौ 'तेजाकअंगो०' इति पाठः। [2] आ० प्रतौ 'अजस० असंखेजदिभागब्भदियं' इति पाठः।

२९६. एइंदि०[1] जह० तिरिक्खग०-ओरा०-तेजा०-क०-हुंड०-वण्ण४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-दूभग०-अणादें०-णिमि० णि० बं०णि० अज० संखेंज्जदिभागब्भहियं बं०। आदाव० सिया० जह०। थावर० णि० बं० णि० जहण्णा। उज्जो० सिया० संखेंज्जदिभागब्भहियं बं०। थिरादितिण्णयुग० सिया संखेंज्जदिभागब्भहियं बं०। एवं आदाव-थावर०।

२९७. बीइंदि० जह० पदे०बं० तिरिक्ख०-ओरा०-तेजा०-क०-हुंड०-ओरा०-अंगो०-असंप०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-उज्जो०-अप्पसत्थ०-तस०४-दूभग-दुस्सर-अणादें०-णिमि० णि० बं० णि० जहण्णा। थिरादितिण्णियुग० सिया० जह०। एवं तीइंदि०-चदुरिंदि०।

२९८. पंचिंदि० जह० पदे०बं० तिरिक्ख०-तिण्णिसरीर-ओरा०अंगो०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-उज्जो०-तस०४-णिमिणं[2] णि० बं० णि० जहण्णा।

२९६. एकेन्द्रिय जातिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, दुर्भग, अनादेय और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे संख्यातवाँ भाग अधिक अजघन्य प्रदेशका बन्ध करता है। आतपका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता हैं तो नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। स्थावरका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। उद्योत का कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे संख्यातवाँ भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे संख्यातवाँ भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसीप्रकार आतप और स्थावरकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियजातिके समान ही आतप और स्थावरके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है, इसलिए यहाँ पर आतप और स्थावरकी मुख्यतासे सन्निकर्ष एकेन्द्रियजातिकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान जाननेकी सूचना की है।

२९७. द्वीन्द्रियजातिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुंडसंस्थान, औदारिक शरीर आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसीप्रकार त्रीन्द्रियजाति और चतुरिन्द्रियजातिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष कहना चाहिए।

विशेषार्थ—द्वीन्द्रियजातिके स्थानमें एकबार त्रीन्द्रियजातिको रखकर और दूसरीबार चतुरिन्द्रियजातिको रखकर उसी प्रकार सन्निकर्ष कहना चाहिए, जिसप्रकार द्वीन्द्रियजातिकी मुख्यतासे कहा है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

२९८. पञ्चेन्द्रियजातिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, तीन शरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, उद्योत, त्रसचतुष्क

---

[1] ता०प्रतौ 'देवाणु० एइंदि' इति पाठः। [2] ता०आ०प्रत्योः 'तस०णिमियं' इति पाठः।

छस्संठा०-छस्संघ०-दो०विहा०-थिरादिछयुग० सिया० जहण्णा । एवं पंचिंदि०भंगो पंचसंठा०-पंचसंघ०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदेंज्ज त्ति । ओरा०-तेजा०-क०-हुंड०-ओरा०अंगो०-असंघ०-वण्ण०४-अगु०४-उज्जो०-अप्पसत्थ०-तस०४-थिरादितिण्णियुग०-दूभग-दुस्सर-अणादें०-णिमिणं एवमेदे०[1] तिरिक्खगदिभंगो ।

२९९. आहार० जह० पदे०बं० देवगदि-पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-वण्ण४-देवाणु०-अगु० ४-पसत्थ-तस० ४-थिरादिछ० -णिमि०-तित्थ० णि० बं० णि० अज० असंखेंज्जगुणब्भहियं बं० । आहारंगो० णि० बं० णि० जहण्णा । एवं आहार०अंगो० ।

और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे इनका जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगति और स्थिर आदि छह युगलका विकल्पसे बन्ध करता है जो नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसप्रकार पञ्चेन्द्रियजातिके समान पाँच संस्थान, पाँच संहनन, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। तथा औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और निर्माण इस प्रकार इनकी मुख्यतासे सन्निकर्ष तिर्यञ्चगतिकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यद्यपि पञ्चेन्द्रियजातिके जघन्य प्रदेशबन्धका जो स्वामी है, वही तिर्यञ्चगतिके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी है और यहाँ पर इन दोनोंकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान अन्य जिन प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्षके जाननेकी सूचना की है, उनके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी भी वही जीव है, फिर भी किस प्रकृतिका जघन्य बन्ध होते समय अन्य किन-किन प्रकृतियोंका किस प्रकारका बन्ध होता है, इस बातका विचार कर यहाँ अन्य प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्षके जाननेकी सूचना की है। तात्पर्य यह है कि पञ्चेन्द्रियजातिकी मुख्यतासे जिस प्रकार अन्य प्रकृतियोंके साथ सन्निकर्ष होता है, उस प्रकार पाँच संस्थान आदि चौदह प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष बन जाता है, इसलिए उन प्रकृतियोंकी मुख्यतासे प्राप्त होनेवाले सन्निकर्षको पञ्चेन्द्रियजातिकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान जाननेकी सूचना की है और तिर्यञ्चगतिकी मुख्यतासे जिस प्रकार अन्य प्रकृतियोंके साथ सन्निकर्ष होता है, उस प्रकार औदारिकशरीर आदि तीस प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष बन जाता है, इसलिए उन प्रकृतियोंकी मुख्यतासे प्राप्त होनेवाले सन्निकर्षको तिर्यञ्चगतिकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान जाननेकी सूचना की है।

२९९. आहारकशरीरका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और तीर्थङ्करका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। आहारकशरीर आङ्गोपाङ्गका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे इसका जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार आहारकशरीर आङ्गोपाङ्गकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

---

[1] ता०प्रतौ 'णिमियं। एवमेदे' इति पाठः।

३००. सुहुम० जह० पदे०बं०[1] तिरिक्ख०-एइंदि०-ओरा०-तेजा०-क०-हुंड०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-[पज्जत्त०-]थावर-दूभग-अणादें०-अजस०-णिमि० णि० बं० णि० अजहण्णा संखेंज्जभागब्भहियं बं०। पत्ते०-थिराथिर-सुभासुभ० सिया संखेंज्जदिभागब्भहियं बं०। साधा० सिया० जह०। एवं साधार०।

३०१. अपज्ज० जह० पदे०बं० दोगदि-चदुजा०-दोआणु० सिया० संखेंज्जदिभागब्भहियं बं०। ओरालिय याव णिमिणं ति णि० बं०[2] णि० संखेंज्जदिभागब्भहियं बं०।

३०२. तित्थ० जह० पदे०बं० मणुस०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-वण्ण०४-मणुसाणु०-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि० णि० बं० असंखेंज्जगुणब्भहियं[3] बं०। थिरादितिण्णियुग० सिया० असंखेंज्जगुणब्भहियं बं०।

विशेषार्थ—आहारकशरीर और आहारकशरीरआङ्गोपाङ्गके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी एक ही जीव है; इसलिए इन दोनोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष एक समान कहा है।

३००. सूक्ष्मप्रकृतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, पर्याप्त, स्थावर, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे इनका संख्यातवाँ भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। प्रत्येक, स्थिर, अस्थिर, शुभ और अशुभका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो संख्यातवाँ भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। साधारणका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार साधारणकी मुख्यतासे सन्निकर्ष कहना चाहिए।

विशेषार्थ—सूक्ष्म और साधारण इन दोनों प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी एक है और इन दोनोंका जघन्य प्रदेशबन्ध होते समय एक समान प्रकृतियोंका बन्ध होता है, इसलिए इनकी मुख्यतासे एक समान सन्निकर्ष कहा है।

३०१. अपर्याप्त प्रकृतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव दो गति, चार जाति और दो आनुपूर्वीका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे संख्यातवाँ भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। औदारिक शरीरसे लेकर निर्माण तककी प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे संख्यातवाँ भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है।

३०२. तीर्थङ्करप्रकृतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है।

---

[1] ता०प्रतौ 'ज० [प०] बं०' इति पाठः। [2] ता०प्रतौ 'णिमिणं तिण्णि बं०' इति पाठः। [3] ता०आ०प्रत्योः 'असंखेज्जदिगुणब्भदिय' इति पाठः।

३०३. णिरएसु[1] सत्तण्णं क० ओघं। तिरिक्खगदिसंजुत्ताओ ओघं। मणुस०-तित्थ० ओघं। एवं सत्तसु पुढवीसु। णवरि सत्तमाए मणुसगदिदुगं तित्थ०भंगो।

३०४. तिरिक्ख०-पंचिंदि०तिरिक्ख-पंचिं०पज्जत्तेसु[2] ओघभंगो। पंचिंदि०-तिरिक्खजोणिणीसु सत्तण्णं क० तिरिक्खगदिसंजुत्तदंडओ मणुसगदिदंडओ एइंदिय-दंडओ सुहुमदंडओ ओघं। णिरय० जह० पदे०बं० वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-णिरयाणु०[3] णि० बं० णि० जहण्णा। पंचिंदियादि याव णिमिणं ति णि० बं० असंखेँज्जगुणब्भहियं बं०। एवं० णिरयाणु०। देवग० जह० पदे०बं० वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-देवाणु० णि० बं० णि० जहण्णा। पंचिंदियादि याव[4] णिमिणं त्ति णि० बं० अज० असंखेँज्जगुणब्भहियं बं०। एवं देवाणु०। वेउव्वि० जह० पदे०बं० दोगदि०-दोआणु० सिया० जह०। पंचिंदि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-

---

३०३. नारकियोंमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। तिर्यञ्चगति संयुक्त प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यगति और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सातवीं पृथिवीमें मनुष्यगतिद्विकका भङ्ग तीर्थङ्कर प्रकृतिके समान है।

विशेषार्थ—ओघमें जिस प्रकार तीर्थङ्कर प्रकृतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष कहा है, उसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें मनुष्यगतिद्विककी मुख्यतासे सन्निकर्ष कहना चाहिए, क्योंकि सातवीं पृथिवीमें इनका बन्ध मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि नहीं करते। शेष प्रकृतियोंका सन्निकर्ष ओघप्ररूपणाको देखकर और स्वामित्वका विचारकर घटित कर लेना चाहिए।

३०४. सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग तथा तिर्यञ्चगति संयुक्त दण्डक, मनुष्यगतिदण्डक, एकेन्द्रियजाति दण्डक और सूक्ष्मप्रकृतिदण्डकका भङ्ग ओघके समान है। नरकगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग और नरकगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे इनका जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजातिसे लेकर निर्माण तककी प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे इनका असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार नरकगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिये। देवगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक शरीर आङ्गोपाङ्ग और देवगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। यह पञ्चेन्द्रियजातिसे लेकर निर्माण तककी प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु इनका असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार देवगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। वैक्रियिकशरीरका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव दो गति और दो आनुपूर्वीका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे इनका जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे

---

[1] ता०प्रतौ 'असंखेज्जगुणब्भ० बं० ॥४॥ णिरयेसु' आ०प्रतौ 'संखेज्जगुणब्भहिय' बं० ॥४॥ णिरएसु' इति पाठः। [2] आ०प्रतौ 'तिरिक्ख० पंचिंदि० तिरिक्ख०पज्जत्तेसु' इति पाठः। [3] ता०प्रतौ 'वेउ०अंगो। णिरयाणु०' इति पाठः। [4] आ०प्रतौ 'पंचिंदियाव' इति पाठः।

तस०४-णिमि० णि० बं० अज० असंखेँज्जगुणब्भहियं बं०। समचदु०-हुंड०-दोविहा०-थिरादिछयुग० सिया० असंखेँज्जगुणब्भहियं बं०। वेउव्वि०अंगो० णि० बं० णि० जहण्णा। एव वेउव्वि०अंगो०।

३०५. पंचिंदि०तिरि०अपज्ज० सव्वपगदीणं ओघभंगो। एवं सव्वअपज्जत्तगाणं तसाणं सव्वएइंदि०-विगलिंदिय-पंचकायाणं पज्जत्तापज्जत्तगाणं च।

३०६. मणुस०३ओघभंगो। णवरि मणुसिणीसु तिरिक्खगदिदंडओ मणुसगदिदंडओ एइंदियदंडओ ओघं। णिरयग० जह० पदे०बं० पंचिंदि०-तेजा०-क०-हुंड-वण्ण०४-अगु०४-अप्पसत्थ०[1]-तस०४-अथिरादिछ०-णिमिं० णिबं० णि० अज० असंखेँज्जगुणब्भहियं० बं०। वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० णि० बं० अज० संखेँज्जभागब्भहियं बं०। णिरयाणु० णि० बं० णि० जह०। एवं० णिरयाणु०। देवगदि० जह० पदे०बं० पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछयुग०-णिमि० णि० बं० णि० अज० असंखेँज्जगुणब्भहियं बं०। वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० णि० बं०

बन्ध करता है। किन्तु इनका असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। समचतुरस्रसंस्थान, हुण्डसंस्थान, दो विहायोगति और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो वह इनका असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इसका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

३०५. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। इसीप्रकार सब अपर्याप्त त्रसोंमें तथा सब एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पाँच स्थावर कायिकोंमें तथा इनके पर्याप्तकों और अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए।

३०६. मनुष्यत्रिकमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यिनियोंमें तिर्यञ्चगतिदण्डक, मनुष्यगतिदण्डक और एकेन्द्रियजाति दण्डकका भङ्ग ओघके समान है। नरकगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, अप्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, अस्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका संख्यातवाँ भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। नरकगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इसका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार नरकगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। देवगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है।

---

[1] ता०आ०प्रत्योः 'अगु०४ पसत्थ०' इति पाठः।

तं तु० संखेँज्जभागब्भहियं बं० । आहार०-आहार०अंगो० सिया० जह० । देवाणु०-तित्थ० णि० बं० णि० जहण्णा । एवं देवाणुपु०-तित्थ । आहार० जह० पदे० बं० देवगदि-वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-देवाणु०-तित्थ० णि० बं० जह० । सेसाणं णि० बं० णि० अज० असंखेँज्जगुणब्भहियं बं० ।

३०७ देवेसु सत्तण्णं कम्माणं ओघं । तिरिक्खगदिदंडओ मणुसगदिदंडओ एइंदियदंडओ ओघो । एवं भवण०-वाणवें[2]-जोदिसि० ।

३०८. सोधम्मीसाणेसु सत्तण्णं कम्माणं ओघो । तिरिक्ख० जह० पदे०बं० पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-उज्जो०-तस०४-णिमि० णि० बं० णि० जह० । छस्संठा[3]०-छस्संघ०-दोविहा०-थिरादिछयुग० सिया० जह० । एवं तिरिक्खाणु०-उज्जो० । मणुस० जह० पदे०बं० पंचिंदि०-तिण्णिसरी०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-वण्ण० ४-मणुसाणु०-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०-तित्थ० णि० बं० णि० [जह०] ।

यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे संख्यातवाँ भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। आहारकशरीर और आहारकशरीर आङ्गोपाङ्गका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। देवगत्यानुपूर्वी और तीर्थङ्करप्रकृतिका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार देवगत्यानुपूर्वी और तीर्थङ्करप्रकृतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। आहारकद्विकका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी और तीर्थङ्करप्रकृतिका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। शेष प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है।

३०७. देवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। तिर्यञ्चगतिदण्डक, मनुष्यगतिदण्डक और एकेन्द्रियजातिदण्डकका भङ्ग ओघके समान है। इसीप्रकार भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिए।

३०८. सौधर्म और ऐशानकल्पके देवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। तिर्यञ्चगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, उद्योत, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगति और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसीप्रकार तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उद्योतकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रियजाति, तीन शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थङ्कर प्रकृतिका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है।

---

१. ता.प्रतौ 'देवाणुपु० । तित्थ०' इति पाठः । २. ता०प्रतौ 'भवण० भवण (?) वाणवें०' इति पाठः । ३. ता.प्रतौ 'णि० ज० छस्संठा०' इति पाठः ।

थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० सिया० जह०। एवं मणुसाणु०-तित्थ०। पंचिंदि०[1] जह० पदे०बं० दोगदि०-छस्संठा०-छस्संघ०-दोआणु०-उज्जो०-दोविहा०-थिरादिछयुग०-तित्थ० सिया० जह०। ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णिय० जह०। एवं पंचिंदियभंगो ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-वण्ण०४-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-थिरादितिण्णि युग०-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०। णग्गोध० जह० पदे०बं० तिरिक्ख०-पंचिंदि०-तिण्णिसरीर-ओरा०अंगो०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-उज्जो०-तस०४-णिमि० णि० बं० णि० जह०। छस्संघ०-दोविहा०-थिरादिछयुग० सिया० जह०। एवं णग्गोध-भंगो चदुसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादें०। सणक्कुमार[2] याव सहस्सार त्ति सोधम्मभंगो। णवरि एइंदियदंडओ वज्ज।

३०९. आणद याव उवरिमगेवज्जा त्ति सत्तण्णं कम्माणं णिरयभंगो। मणुसग० जह० पदे०बं० पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-

स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसीप्रकार मनुष्यगत्यानुपूर्वी और तीर्थङ्करप्रकृतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। पञ्चेन्द्रियजातिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव दो गति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, उद्योत, दो विहायोगति, स्थिर आदि छह युगल और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसीप्रकार पञ्चेन्द्रिय जातिके समान औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि तीन युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थानका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रियजाति, तीन शरीर, औदारिकशरीरआङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, उद्योत, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। छह संहनन, दो विहायोगति और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसीप्रकार न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थानके समान चार संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। सनत्कुमार कल्पसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें सौधर्म कल्पके देवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें एकेन्द्रियजातिदण्डकको छोड़कर यह सन्निकर्ष जानना चाहिए।

३०९. आनत कल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग नारकियोंके समान है। मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच-

---

[1] ता० प्रतौ 'तित्थ पंचिंदि०' इति पाठः। [2] ता० प्रतौ 'अणादे० सणक्कुमार' इति पाठः।

वण्ण०४-मणुसाणु०-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदेँज्ज-णिमि०-तित्थ० णि० बं० णि० जहण्णा० । थिरादितिण्णियुग० सिया० जहण्णा । एवं मणुसगदिभंगो पंचिंदि०-तिण्णिसरीर-समचदु०-ओरालि०अंगो०[1]-वज्जरि०-वण्ण०४-मणुसाणु०-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-थिरादितिण्णियुग०-सुभग-सुस्सर-आदेँ०-णिमि०-तित्थ० । णग्गोध० जह० पदे०बं० मणुसगदि-पंचिंदि०-तिण्णिसरीर-ओरालि०अंगो०-वण्ण०४-मणुसाणु०-अगु०४-तस०४-णिमि० णि० बं० णि० अजह० संखेँज्जदिभागब्भहियं० बं० । पंचसंघ०-अप्पस०-दूभग-दुस्सर-अणादेँ० सिया० जह० । वज्जरि०-पसत्थ०-थिरादितिण्णियुग०-सुभग-सुस्सर-आदेँ० सिया० संखेँज्जदिभागब्भहियं बं० । एवं णग्गोधभंगो चदुसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादेँ० । अणुदिस याव सव्वट्ठ त्ति सत्तण्णं कम्माणं णिरयभंगो । णामाणं आणदभंगो ।

३१०. पंचिंदि०-तस०२ ओघभंगो । पंचमण०-तिण्णिवचि० सत्तण्णं कम्माणं ओघो । णिरयगदि० जह० पदे०बं० पंचिंदि० याव णिमिण त्ति अट्ठावीसं० णि० बं०

संहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थङ्करप्रकृतिका नियमसे प्रदेशबन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित् बन्ध करता है; यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसीप्रकार मनुष्यगतिके समान पञ्चेन्द्रियजाति, तीन शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीरआङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि तीन युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थङ्कर प्रकृतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थानका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, तीन शरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका नियमसे संख्यातवाँ भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्त विहायोगति, स्थिर आदि तीन युगल, सुभग, सुस्वर और आदेयका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातवाँ भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थानके समान चार संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग नारकियोंके समान है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग आनतकल्पके समान है।

३१०. पञ्चेन्द्रियद्विक और त्रसद्विकमें ओघके समान भङ्ग है। पाँचों मनोयोगी और तीन वचनयोगी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। नरकगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रियजातिसे लेकर निर्माणतक अट्ठाईस प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता

---

[1] आ० प्रतौ तिण्णिसरीर ओरालि० अंगो०' इति पाठः।

[2] आ० प्रतौ 'ओरालि० वण्ण ४-मणुसाणु०' इति पाठः।

णि० संखेँज्जभागब्भहियं बं० । णिरयाणु० णि० बं० णि० जह० । एवं णिरयाणु० । [तिरिक्ख० जह० पदे०बं० ओरालि०-] ओरालि०अंगो०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-उज्जो०-तस०४-णिमि० णि० बं० णि० जह० । तेजा०-क० णि० बं० णि० संखेँज्जभागब्भहियं बं० । चदुजादि-छस्संठा०-छस्संघ०-दोविहा०-थिरादिछ्युग० सिया० जह० । एवं तिरिक्खगदिभंगो हुंड०-असंप०-तिरिक्खाणु०-उज्जो०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादेँ० । मणुसग० जह० पदे०बं० पंचिंदि०-ओरालि०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-वण्ण०४-मणुसाणु०-[अगु० ४-] पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदेँ०-णिमि०-तित्थ० णि० बं० णि० जह० । तेजा०-क० णि० बं० णि० संखेँज्जभागब्भहियं बं० । थिरादितिण्णियुग० सिया० जह० । एवं मणुसगदिभंगो मणुसाणु०-तित्थ० । देवग० जह० पदे०बं० पंचिंदि०-समचदु०-वण्ण०४ याओ पसत्थाओ णिमि०-तित्थ० णि० बं० णि० अज० संखेँज्जभागब्भहियं बं० । वेउव्वि०-तेजा०-क०-वेउव्वि०अंगो० णि० बं० णि० तं० तु० संखेँज्जभागब्भहियं बं० । आहार०२ सिया० जह० । एवं देवाणु० ।

है जो नियमसे संख्यातवाँ भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। नरकगत्यानुपूर्वीका नियमसे प्रदेशबन्ध करता है जो नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार नरकगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। तिर्यञ्चगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव औदारिकशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, उद्योत, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तैजसशरीर और कार्मणशरीरका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातवाँ भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगति और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगतिके समान हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थङ्करप्रकृतिका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तैजसशरीर और कार्मणशरीरका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातवाँ भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार मनुष्यगतिके समान मनुष्यगत्यानुपूर्वी और तीर्थङ्करप्रकृतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। देवगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, इस प्रकार निर्माण पर्यन्त जितनी प्रशस्त प्रकृतियाँ हैं उनका और तीर्थङ्करप्रकृतिका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातवाँ भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर और वैक्रियिकशरीरआङ्गोपाङ्गका नियमसे बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातवाँ भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। आहारकद्विकका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे

वेउव्वि० जह० पदे०बं० देवगदि-पंचिंदि०-आहार०-तेजा०-क०-दोअंगो०-देवाणु० णि० बं० णि० जह० । पंचिंदियादि याव णिमिणं तित्थ० णिय० बं० अज० संखेंज्जभागब्भहियं बं० । एवं आहार०-तेजा०-क०-दोअंगो० । पंचिंदि० जह० पदे०बं० सोधम्मभंगो । णवरि तेजा०-क० णि० बं० णि० संखेंज्जभागब्भहियं बं० । तिण्णिजादि० ओघं । णवरि तेजा०-क० णि० बं० णि० संखेंज्जभागब्भहियं० । चदुसंठा०-चदुसंघ० सोधम्मभंगो । णवरि तेजा०-क० णि० बं० संखेंज्जभागब्भहियं० । वचि०-असच्चमोस० ओघं । णवरि वेउव्वियछ० पंचिंदियजोणिणिभंगो ।

३११. कायजोगि-ओरालिय० ओघो । ओरालियमि० ओघो । णवरि देवग० जह० पदे०बं० वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-देवाणु०-तित्थ० णि० बं० णि० जह० । पंचिंदियादि याव णिमिण त्ति णि० बं० णि० अज० असंखेंज्जगुणब्भहियं० । थिरादितिण्णियुग० सिया० असंखेंज्जगुणब्भहियं० । एवं वेउव्विय०४-तित्थ० ।

जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसीप्रकार देवगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। वैक्रियिकशरीरका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, आहारकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, दो आङ्गोपाङ्ग और देवगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियम से जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजातिसे लेकर निर्माणतककी प्रकृतियोंका और तीर्थङ्करप्रकृतिका नियमसे बन्ध करता है जो इनका संख्यातवाँ भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसीप्रकार आहारकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर और दो आङ्गोपाङ्गकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। पञ्चेन्द्रियजातिके जघन्य प्रदेशोंका बन्ध करनेवाले जीवका भङ्ग सौधर्मकल्पके समान है। इतनी विशेषता है कि यह तैजसशरीर और कार्मणशरीरका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातवाँ भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तीन जातिका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि यह तैजसशरीर और कार्मणशरीरका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातवाँ भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। चार संस्थान और चार संहननका भङ्ग सौधर्मकल्पके समान है। इतनी विशेषता है कि तैजसशरीर और कार्मणशरीरका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातवाँ भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। वचनयोगी और असत्यमृषावचनयोगी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें वैक्रियिकषट्कका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंके समान है।

३११. काययोगी और औदारिककाययोगी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि देवगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी और तीर्थङ्करप्रकृतिका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करघा है। पञ्चेन्द्रियजातिसे लेकर निर्माण तककी प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसीप्रकार वैक्रियिकचतुष्क और तीर्थङ्करकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

३१२. वेउव्वियका० सत्तण्णं क० णामाणं[1] सोधम्मभंगो। एवं वेउव्वियमि०। आहार०-आहारमि[2]० कोधसंज० जह० पदे०ब० तिण्णिसंज०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दुगुं० णि० बं० णि०जह०। एवमेदाओ ऍक्कमेंक्कस्स जहण्णा। अरदि० जह० पदे०बं० चदुसंज०-पुरिस०-भय-दु० णि० बं० णि० अज० संखेंज्जदिभागब्भहियं०। सोग० णि० बं० जह०। एवं सोग०। देवगदि० जह० पदे०बं० पंचिंदियादि याव णिमिण त्ति णि० बं० णि० जहण्णा। एवं देवगदिभंगो[3] पसत्थाणं तित्थयरसहिदाणं। अथिर० जह० पदे०बं० देवगदिपसत्थाणं णि० बं० णि० अज० संखेंज्जभागब्भहियं०। असुभ-अजस० सिया० जह०। सुभ-जस०-तित्थ० सिया० संखेंज्जभागब्भहियं०। एवं असुभ-अजस०। सेसाणं कम्माणं ओघं।

३१३. कम्मइगे सव्वाणं० ओघं। णवरि देवगदि० जह० पदे०बं० वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-देवाणु० णि० बं० णि० जह०। तित्थ० णि० बं० संखेंज्जदिभाग-

३१२. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंकी और नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग सौधर्मकल्पके समान है। इसीप्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें जानना चाहिए। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें क्रोधसंज्वलनका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव तीन संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार इन सब प्रकृतियोंका परस्पर जघन्य सन्निकर्ष जानना चाहिए। अरतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातवाँ भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। शोकका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसीप्रकार शोककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। देवगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रियजातिसे लेकर निर्माण तककी प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार देवगतिके समान तीर्थङ्करप्रकृति सहित प्रशस्त प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। अस्थिर-प्रकृतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव देवगति आदि प्रशस्त प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातवाँ भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। अशुभ और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। शुभ, यशःकीर्ति और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातवाँ भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसीप्रकार अशुभ और अयशःकीर्तिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। शेष कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है।

३१३. कार्मणकाययोगी जीवोंमें सब कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि देवगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग और देवगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तीर्थङ्करप्रकृतिका निययसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे संख्यातवाँ भाग अधिक

---

[1] ता०प्रतौ 'क०। णामाणं' इति पाठः। [2] ता०प्रतौ 'वेउव्वियमि० आहार०-आहारमि०' इति पाठः। [3] ता०प्रतौ 'जहण्णा। देवगदिभंगो' इति पाठः।

ब्भहियं० । सेसं पंचिंदियादि याव णिमिण त्ति णि० बं० णि० अज० असंखेंज्जगुणब्भहियं० । थिरादितिण्णियुग० सिया० असंखेंज्जगुणब्भहियं । एवं देवगदि०४ ।

३१४. इत्थिवेदे० पंचिंदियतिरिक्खजोणिणिभंगो । णवरि० तित्थ० जह० बं० आहार०२ सिया० जह० । सेसाणं देवगदि याव णिमिण त्ति णि० बं० असंखें०-गुणब्भ० । पुरिसेसु ओघभंगो । णवुंसगेसु ओघभंगो । वेउव्वियछ० जोणिणिभंगो । अवगदवेदे ओघं । कोधादि०४-असंजं०-चक्खुदं०-अचक्खुदं०-तिण्णिले०-भवसि०-सण्णि-आहारग त्ति ओघं । णवरि किण्ण०-णील० तित्थ० जह० पदे०बं० देवगदिदुवं०[1] णि० असंखेंज्जगु० । थिरादितिण्णियुग० सिया० असंखेंज्जगुण० । काउ० तित्थ० जह० पदे०बं० मूलोघं ।

३१५. मदि०-सुद०-अब्भव०-मिच्छा०-असण्णि० पंचिंदियतिरिक्खजोणिणिभंगो । विभंगो वचिजोगिभंगो । णवरि णिरयगदि० जह० पदे०बं० वेउव्वियदुगं णिरयाणु० णि० जह० । पंचिंदियादिसेसाणं णि० बं० संखेंज्जभागब्भहियं० । एवं णिरयाणु० ।

अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजातिसे लेकर निर्माण तककी शेष प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसीप्रकार देवगतिचतुष्ककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

३१४. स्त्रीवेदमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि तीर्थङ्करप्रकृतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव आहारकद्विकका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। देवगतिसे लेकर निर्माण तककी शेष प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेदी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। नपुंसकवेदी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। मात्र इनमें वैक्रियिकषट्कका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंके समान है। अपगतवेदी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। क्रोधादि चार कषायवाले, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि कृष्ण और नील लेश्यामें तीर्थङ्करप्रकृतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव देवगतिद्विकका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। कापोतलेश्यामें तीर्थङ्करप्रकृतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका भङ्ग मूलोघके समान है।

३१५. मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंके समान भङ्ग है। विभङ्गज्ञानी जीवोंमें वचनयोगी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें नरकगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव वैक्रियिकद्विक और नरकगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति आदि शेष प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका

---

[1] ता०प्रतौ 'देवगदिधुवं' इति पाठः।

वेउव्वियदुगं एवं चेव। णवरि[1] दोगदि० सिया० जह०। दोविहा०-थिरादिछ्युग० सिया० संखेंज्जभागब्भहियं०। देवगदि० जह० पदे०बं० वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-देवाणु० णि० जह०। सेसाओ पंचिंदियादि याव[2] जसगि०-णिमिण त्ति णि० बं० णि० संखेंज्जभागब्भहियं०।

३१६. आभिणि०-सुद०-ओधि० सत्तण्णं० कम्माणं ओघं। मणुसगदि० जह० पदे०बं० मणुसगदिसंजुत्ताओ तीसिगाओ णि० बं० णि० जहण्णा। एवं तीसिगाओ ऍक्कमेंक्कस्स जहण्णा। देवग० जह० पदे०बं० वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-देवाणु० णि० बं० णि० जह०। सेसाणं णि० बं० अज० संखेंज्जभागब्भहियं०। एवं वेउव्वियदुगं देवाणु०। आहारदुगं० ओघं[3]। एवं ओधिदं०-सम्मा०-खइग०-वेदग०-उवसम०-सम्मामि०।

३१७. मणपज्ज० सत्तण्णं कम्माणं आहारकायजोगिभंगो। देवगदि० जह० पदे०बं० पंचिंदियादि याव णिमिण त्ति तित्थ[4]० णि० बं० णि० जह०। वेउव्वि०-

नियमसे संख्यातवाँ भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार नरकगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। तथा इसीप्रकार वैक्रियिकद्विककी मुख्यतासे भी सन्निकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि यह दो गतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका वह नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो विहायोगति और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातवाँ भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। देवगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग और देवगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजातिसे लेकर यशःकीर्ति और निर्माणतक शेष प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातवाँ भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है।

३१६. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव मनुष्यगतिसंयुक्त तीस प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार तीस प्रकृतियोंकी मुख्यता से परस्पर जघन्य सन्निकर्ष जानना चाहिए। देवगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग और देवगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। शेष प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातवाँ भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसीप्रकार वैक्रियिकद्विक और देवगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। आहारकद्विकका भङ्ग ओघके समान है। इसीप्रकार अवधिदर्शनवाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए।

३१७. मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग आहारककाययोगी जीवोंके समान है। देवगतिका जघन्य प्रदेशबन्धं करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रियजातिसे लेकर निर्माणतककी प्रकृतियोंका और तीर्थङ्कर प्रकृतिका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध

---

[1] ता०प्रतौ 'चेव णवरि' इति पाठः। [2] ता०प्रतौ 'पंचिंदिय याव' इति पाठः। [3] आ०प्रतौ 'देवाणु०। चक्खु० ओघं' इति पाठः। [4] ता०प्रतौ 'णिमिण त्ति। तित्थ०' इति पाठः।

तेजा०-क०-वेउव्वि०अंगो[1]० णि० बं० तं तु० संखेँज्जभागब्भहियं०। आहार०२ सिया[2]० जह०। एवमेदाओ देवगदि० सह ऐँक्कमेँक्कस्स जहण्णाओ। अथिर० जह० पदे०बं० देवगदिधुविगाणं णि० संखेँज्जभा०। असुभ[3]-अजस० सिया० जह०। सुभ-जस० सिया० संखेँज्जभागब्भहियं०। एवं असुभ-अजस०। एवं संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०। एवं संजदासंज०। णवरि देवगदि० जह० पदे०बं० वेउव्विय०-[वेउव्वियअंगो०-देवाणु०-] णि० बं० णि० जहण्णा। सुहुमसं० अवगद०भंगो।

३१८. तेउ० सत्तण्णं[4] क० देवोघं। तिरिक्खगदिदंडओ[5] मणुसगदिदंडओ पंचिंदियदंडओ सोधम्मभंगो। देवगदिदंडओ आहार०२दंडओ[6] ओधिभंगो। एवं पम्माए। णवरि एइंदिय-आदाव-थावरं वज्ज। सुक्काए सत्तण्णं क० देवभंगो। मणुसगदिदंडओ णग्गोध०दंडओ आणदभंगो। देवगदिदंडओ तेउ०भंगो।

करता है। वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर और वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातवाँ भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। आहारकद्विकका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इस प्रकार देवगति सहित इन प्रकृतियोंकी मुख्यतासे परस्पर नियमसे जघन्य सन्निकर्ष करता है। अस्थिरप्रकृतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव देवगति आदि ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातवाँ भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। अशुभ और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। शुभ और यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातवाँ भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अशुभ और अयशःकीर्तिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत और परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार संयतासंयत जीवोंके भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि संयतासंयतोंमें देवगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीरआङ्गोपाङ्ग और देवगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें अपगतवेदी जीवोंके समान भङ्ग है।

३१८. पीतलेश्यामें सात कर्मोंका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। तिर्यञ्चगतिदण्डक, मनुष्यगतिदण्डक और पञ्चेन्द्रियजातिदण्डकका भङ्ग सौधर्मकल्पके देवोंके समान है। देवगतिदण्डक और आहारकद्विकदण्डकका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसमें एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावरको छोड़कर सन्निकर्ष कहना चाहिए। शुक्ललेश्यामें सात कर्मोंका भङ्ग देवोंके समान है। मनुष्यगतिदण्डक और न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थानदण्डकका भङ्ग आनतकल्पके समान है। देवगतिदण्डकका भङ्ग पीतलेश्याके समान है।

---

[1] ता॰प्रतौ 'वेउ० ते० वेउ०अंगो०' इति पाठः। [2] आ॰प्रतौ 'आहार०सिया०' इति पाठः। [3] आ॰प्रतौ '–धुविगाणं······असुभ' इति पाठः। [4] आ॰प्रतौ 'अवगदभंगो।······सत्तण्णं' इति पाठः। [5] आ॰प्रतौ 'तिरिक्खदंडओ' इति पाठः। [6] आ॰प्रतौ देवगदिदंडओ २ दंडओ' इति पाठः।

३१९. सासणे सत्तण्णं क० देवगदिभंगो। तिरिक्खगदिदंडओ मणुसगदिदंडओ ओघो। देवगदि० जह० पदे०बं० पंचिंदियादि याव णिमिण त्ति णि० बं० णि० अज[1]० असंखेँज्जगुणब्भहियं०। वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-देवाणु० णि० बं० णि० जह०। एवं० वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-देवाणु०।

३२०. असण्णी० तिरिक्खोघं। णवरि वेउव्वियछ० जोणिणिभंगो। अणाहार० कम्मइगभंगो।

एवं जहण्णओ सत्थाणसण्णियासो समत्तो।

३२१. परत्थाणसण्णियासं दुविधं—जह० उक्क० च। उक्क० पगदं। दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० आभिणि० उक्क० पदे०बं० चदुणा०-चदुदंस०-सादा०-जस०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। एवमेदाओ ऍक्कमेँक्कस्स उक्कस्सिगाओ।

३२२. णिद्दाणिद्दाए उक्क० पदे०बं० पंचणा०-चदुदंसणा०-पंचंत० णि० बं० णि० अणु० संखेँज्जभागूणं बं०। पयलापयला-थीणगिद्धि-मिच्छ०-अणंताणु०४ णि० बं० णि० उक्क०। णिद्दा-पयला-अट्ठक०-भय-दु० णि० बं० णि० अणु० अणंतभागूणं०। सादा०-उच्चा० सिया० संखेँज्जदिभागूणं। असादा०-इत्थि०-णवुंस०-

---

३१९. सासादनसम्यक्त्वमें सात कर्मोंका भङ्ग देवोंके समान है। तिर्यञ्चगतिदण्डक और मनुष्यगतिदण्डकका भङ्ग ओघके समान है। देवगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रियजातिसे लेकर निर्माण तककी प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग और देवगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग और देवगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

३२०. असंज्ञियोंमें सामान्य तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें वैक्रियिक छहका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंके समान है। अनाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है।

इस प्रकार जघन्य स्वस्थान सन्निकर्ष समाप्त हुआ।

३२१. परस्थानसन्निकर्ष दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे आभिनिबोधिकज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इस प्रकार इनमेंसे किसी एकका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होते समय अन्य सबका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होता है।

३२२. निद्रानिद्राका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा, प्रचला, आठ कषाय भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। सातावेदनीय और उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध

---

[1] ताःप्रतौ 'णि०। अज०' इति पाठः।

वेउव्वियछ० -आदाव०-णीचा० सिया० उक्क० । कोधसंज० णि० बं० णि० अणु० दुभागूणं० । माणसंज० सादिरेयदिवड्ढभागूणं० । मायसंज०-लोभसंज० णि०बं० णि० अणु० संखेँज्जगुणहीणं० । पुरिस०-जस० सिया० यदि बं० संखेँज्जगुणहीणं० । हस्स-रदि-अरदि-सोग० सिया० णि० यदि बं० अणु० अणंतभागूणं० । दोगदि-पंचजादि-ओरालि०-छस्संठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-दोआणु०-पर०-उस्सा०-उज्जो०-दोविहा०-तसादिणवयुग०-अज० सिया० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं० । तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० णि० बं० णि० तं०तु० संखेँज्जभागूणं० । एवं पयलापयला-थीणगिद्धि०-मिच्छ[1]०-अणंताणुबं०४ ।

३२३. णिद्दाए उक्क० पदे०बं० पंचणाणा[2]०-चदुदंसणा०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-[अगु०४-] तस०४-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० अणु० संखेँज्जदि-भागूणं० । पयला-भय-दु० णि० बं० णि० [उक्क०] । सादा०-मणुस०-ओरालि०-

करता है । यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । असातावेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, वैक्रियिकषट्क, आतप और नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है । यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । क्रोधसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । मानसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । मायसंज्वलन और लोभसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातगुणा हीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । पुरुषवेद और यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है । यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातगुणा हीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । हास्य, रति, अरति और शोकका कदाचित् बन्ध करता है । यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । दो गति, पाँच जाति, औदारिकशरीर, छह संस्थान, औदारिक शरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस आदि नौ युगल और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है । यदि बन्ध करता है तो इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है । यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है । यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । इसी प्रकार प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए ।

३२३. निद्राका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क त्रसचतुष्क, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातवाँ भाग हीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । प्रचला, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । सातावेदनीय मनुष्यगति, औदारिकशरीर,

---

[1] आ.प्रतौ 'थीणगिद्धि ३ मिच्छ०' इति पाठः । [2] आ.प्रतौ 'चदुणाणा०' इति पाठः ।

ओरालि०अंगो०-मणुसाणु०-थिराथिर-सुभासुभ-अजस[1]० सिया० संखेँज्जदिभागूणं०। असादा०-अपच्चक्खाण०४-चदुणोक० सिया० यदि बं० णि० उक्क०। पच्चक्खाणा०४ सिया० तं० तु० अणंतभागूणं०। कोधसंज० णि० बं० दुभागूणं०। माणसंज० सादिरेयदिवड्ढभागूणं०। मायासंज०-लोभसंज०-पुरिस०-[जस०] णि० बं० संखेँज्जगुणहीणं०। देवगदि-वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-वज्जरि०देवाणु०-तित्थ० सिया० तं० तु० संखेँज्जदिभागूणं बं०। आहारदुगं सिया० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं बं०। समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदे[2]० णि० बं० णि० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं० बं०। एवं पयला०।

३२४. असाद० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-चदुदंस०-पंचंत० णि० बं० णि० अणु० संखेँज्जदिभागूणं बं०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-णिरय०-णिरयाणु०-आदाव०-णीचा० सिया० उक्क०। णिद्दा-पयला-भय-दु० णि० बं०

आङ्गोपाङ्ग, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। असातावेदनीय, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे अनन्त भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। क्रोधसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मानसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मायासंज्वलन, लोभसंज्वलन, पुरुषवेद और यशःकीर्तिका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, देवगत्यानुपूर्वी और तीर्थङ्करप्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। आहारकद्विकका कदाचित् करता है। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसीप्रकार प्रचला प्रकृतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

३२४. असातावेदनीयका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप और नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा, प्रचला, भय, और

---

१. आ.प्रतौ 'सुभासुभ जस० अजस०' इति पाठः। २. आ०प्रतौ 'पयला।...उक्क०' इति पाठः।

तं०तु० अणंतभागूणं बं० । अट्ठक०-चदुणोक०[1] सिया० तं०तु० अणंतभागूणं बं० । कोधसंज० णि० बं० दुभागूणं बं० । माणसंज० सादिरेयदिवड्ढभागूणं बं० । माया-संज०-लोभसंज० णि० बं० संखेँज्जगुणहीणं बं० । पुरिस०-जस० सिया० संखेँज्जगुण-हीणं बं० । तिण्णिगदि-पंचजादि-दोसरीर-छस्संठा०-दोअंगोवंग-छस्संघ-तिण्णिआणु०-पर०-उस्सा०-उज्जो०-दोविहा०-तसादिणवयुग०-अज०-तित्थ० सिया० तं०तु० संखेँज्जदि-भागूणं बं० । तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० णि० बं० तं०तु० संखेँज्जदि-भागूणं बं० । उच्चा० सिया० संखेँज्जदिभागूणं बं० ।

३२५. अपच्चक्खाणकोध० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-चदुदंस०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० संखेँज्जदिभागूणं बं० । णिद्दा-पयला-तिण्णिक०-भय-दु० णि० बं० णि० उक्क० । सादा०-मणुस०-ओरालि०-ओरालि०अंगो०-मणुसाणु०-थिराथिर-सुभासुभ-अजस० सिया० संखेँज्जदिभागूणं बं० ।

जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। आठ कषाय और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। क्रोध संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मान संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मायासंज्वलन और लोभसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेद और यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन गति, पाँच जाति, दो शरीर, छह संस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस आदि नौ युगल, अयशःकीर्ति और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माण का नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

३२५. अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा, प्रचला, तीन कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। सातावेदनीय, मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता

---

[1] आ० प्रतौ 'बं० । चदुणोक०' इति पाठः ।

असाद०-चदुणोक० सिया० उक्क० । [पञ्चक्खाणा०४ णि० बं० णि० अणंतभागूणं० ।] कोधसंज० दुभागूणं बं० । माणसंज० सादिरेयदिवड्ढभागूणं बं० । मायासंज०-लोभसंज०-पुरिस० णि० बं० णि० संखेँज्जगुणहीणं बं० । देवगदि-वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-देवाणु० सिया० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं बं० । समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदेँ० णि० बं० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं बं० । वज्जरि० सिया० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं बं० । जस० सिया० संखेँज्जगु० । तित्थ० सिया० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं बं० । एवं तिण्णिकसा० ।

३२६. पच्चक्खाणकोध० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-चदुदंसणा०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० संखेँज्जदिभागूणं बं० । णिद्दा-पयला-तिण्णिक०-भय-दु० णि० बं० णि० उक्क० । सादा०-

है तो नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। असातावेदनीय और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे अनन्त भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। क्रोधसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मानसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मायासंज्वलन, लोभसंज्वलन और पुरुषवेदका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीरआङ्गोपाङ्ग और देवगत्यानुपूर्वीका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। वज्रर्षभनाराच संहननका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे संख्यात भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण मान आदि तीन कषायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

३२६. प्रत्याख्यानावरण क्रोधका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा, प्रचला, तीन कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। सातावेदनीय, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो

थिराथिर-सुभासुभ-अजस० सिया० संखेज्जदिभागूणं बं० । असादा०-चदुणोक०-तित्थ० सिया० उक्क० । देवगदि-वेउव्वि०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-देवाणु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें० णि० बं० तं० तु० संखेँज्जदिभागूणं बं० । चदुसंज०-पुरिस०-जस० अपच्चक्खाणभंगो । एवं तिण्णिक० ।

३२७. कोधसंज० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-चदुदंसणा०-सादा०[1]-जस०-उच्चा० पंचंत० णि० संखेँज्जदिभागूणं बं० । माणसंज० णि० बं० संखेँज्जदिभागूणं बं० । मायासंज० दुभागू० । लोभसंज०[2] संखेँज्जगु० ।

३२८. माणसंज० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-चदुदंसणा०-सादा०-मायासंज०-जस०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० संखेँज्जदिभागूणं बं० । लोभसंज० णि० बं० संखेँज्जगुणहीणं बं० । एवं मायासंज० । णवरि लोभसंज० दुभागूणं बं० ।

इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। असातावेदनीय, चार नोकषाय और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। देवगति, वैक्रियिकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार संज्वलन, पुरुषवेद और यशःकीर्तिका भङ्ग अप्रत्याख्यानावरणके समान है। अर्थात् अप्रत्याख्यानावरणके समय इनके साथ जिस प्रकारका सन्निकर्ष कह आये हैं, उसी प्रकारका यहाँ पर भी जानना चाहिये। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण मान आदि तीन कषायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

३२७. क्रोधसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मानसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मायासंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। लोभसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

३२८. मानसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, मायासंज्वलन, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। लोभसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार मायासंज्वलनकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यह लोभसंज्वलनका दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

---

[1] ता० आ० प्रत्योः 'चदुसंज० सादा०' इति पाठः ।

[2] ता० प्रतौ 'मायसं० दूभग० (दुभागू०) लोभसंज०' इति पाठः ।

३२९. लोभसंज० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-चदुदंस०-सादा०-जस०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० संखेंज्जदिभागूणं बं० ।

३३०. इत्थि० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-चदुदंसणा०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि०-पंचंत० णि० बं० संखेंज्जदिभागूणं० बं० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ णि० बं० णि० उक्क० । णिद्दा-पयला-अट्ठक०-भय-दु० णि० अणंतभागूणं बं० । सादा०-दोगदि-ओरालि०-हुंड०-ओरालि०अंगो०-असंप०-दोआणु०-उज्जो०-अप्पसत्थ०-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-दुस्सर-अणादें०-अजस०-उच्चा० सिया० संखेंज्जदिभागूणं बं० । असादा० देवग०-वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-देवाणु०-णीचा० सिया० उक्क० । चदुसंज०-[जस० णिद्दाणिद्दाए भंगो] । चदुणोक० सिया० अणंतभागूणं बं० । पंचसंठा०[1]-पंचसंघ०पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें० सिया बं० सिया अबं० । यदि बं० णि० तं० तु० संखेंज्जदिभागूणं बं० ।

३३१. णवुंस० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-चदुदंस-पंचंत० णि[2]० बं० संखेंज्जदि-

३२९. लोभसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है ।

३३०. स्त्रीवेदका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । निद्रा, प्रचला, आठ कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । सातावेदनीय, दो गति, औदारिकशरीर, हुण्डसंस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, दो आनुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति और उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है । यदि बन्ध करता है तो संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । असातावेदनीय, देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है । यदि बन्ध करता है तो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । चार संज्वलन और यशःकीर्तिका भङ्ग निद्रानिद्राके समान है । चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है । यदि बन्ध करता है तो नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । पाँच संस्थान, पाँच संहनन, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता । यदि बन्ध करता है तो कदाचित् उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है और कदाचित् अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है ।

३३१. नपुंसकवेदका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन

---

[1] ता० आ० प्रत्यो० 'चदुसंज० ओघं । पंचसंठा०' इति पाठः । २. आ०प्रतौ 'पंचणा० चदुसंज० पंचंत०' इति पाठः ।

भागूणं बं०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबं०४ णि० बं० णि० उक्क०। णिद्दा-पयला-अट्ठक०-भय-दु० णि० बं० णि० अणु० अणंतभागूणं बं०। सादा०-उच्चा० सिया० संखेंज्जदिभागूणं बं०। असादा०-णिरय०-वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-णिरयाणु०-आदाव-णीचा[1]० सिया उक्क०। चदुसंज० इत्थिभंगो। चदुणोक० सिया० अणंतभागूणं बं०। दोगदि-पंचजादि-ओरालि०-पंचसंठा-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-दोआणु०-पर०-उस्सा०-उज्जो०-अप्पसत्थ०-तसादि०४युगल-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-दुस्सर-अणादें०-अजस० सिया० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं बं०। [तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० णि० बं० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं बं०।] समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें० सिया० संखेंज्जदिभागूणं बं०। जस० सिया०[2] संखेंज्जदिगुणहीणं बं०।

३३२. पुरिस० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-चदुदंस०-सादा०-जस०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० संखेंज्जदिभागूणं बं०। कोधसंज० दुभागूणं बं०। माणसंज० सादिरेयं

अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा, प्रचला, आठ कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। सातावेदनीय और उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। असातावेदनीय, नरकगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप और नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार संज्वलनका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। चार नोकषायोंका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो गति, पाँच जाति, औदारिकशरीर, पाँच संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, त्रसादि चार युगल, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यात भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

३३२. पुरुषवेदका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। क्रोधसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मान संज्वलनका नियमसे

---

[1] आ०प्रतौ 'आदाव थावर णीचा०' इति पाठः। [2] आ०प्रतौ 'संखेज्जदिभागूणं बं० सिया०' इति पाठः।

दिवड्ढभागूणं बं०। मायासंज०-लोभसंज० णि० बं० संखेंज्जगुणहीणं बंधदि।

३३३. हस्स० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-चदुदंस०-[उच्चा०-] पंचंत[1]० णि० बं० णि० अणु० संखेंज्जदिभागूणं बं०। णिद्दा-पयला-असादा-अपच्चक्खाण०-४ सिया० उक्क०। साद०-मणुस०-पंचिंदि० - ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो[2]०-वण्ण०४-मणुसाणु०-अगु०४-तस०४-थिरादिदोयुगल-अजस०-णिमि० सिया० संखेंज्जदिभागूणं बं०। आहार०२ सिया० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं बं०। [चदुपच्चक्खाण०-] चदुसंज०-पुरिस० णिद्दाए भंगो। रदि-भय-दुगुं० णि० बं० णि० उक्क०। देवगदि-समचदु०-वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-वज्जरि०-देवाणु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें०-तित्थ० सिया० तं० तु० संखेंज्जदिभागूणं बं०। जस० सिया० विट्ठाणपदिदं बंधदि संखेंज्जहीणं संखेंज्जगुणहीणं वा बंधदि। एवं रदि०।

३३४. अरदि[3]० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-चदुदंस०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-

बन्ध करता है जो इसका नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मायासंज्वलन और लोभसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

३३३. हास्यका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा, प्रचला, असातावेदनीय और अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। सातावेदनीय, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि दो युगल, अयशःकीर्ति और निर्माणका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। आहारकद्विकका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्क, चार संज्वलन और पुरुषवेदका भङ्ग निद्राके समान है। रति, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। देवगति, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो द्विस्थानपतित बन्ध करता है, कदाचित् संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है और कदाचित् संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार रतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिये।

३३४. अरतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण,

---

[1] ता०प्रतौ 'पंचणा० पंचंत०' इति पाठः। [2] आ०प्रतौ 'पंचिंदि० ओरालि० अंगो०' इति पाठः। [3] ता०आ०प्रत्योः 'रदि भयदुगुं० अरदि०' इति पाठः।

वण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० अणु० संखेँज्जदिभागूणं बं० । [साद०-मणुस०-ओरालि०-ओरालि-अंगो०-मणुसाणु०-थिराथिर-सुभासुभ-अजस० सिया०संखेँज्जदिभागूणं बं० ।] असाद०-अपच्चक्खाण०४ सिया० उक्क० । पच्चक्खाण०४ सिया० तं०तु० अणंतभागूणं बं°[1]० । चदुसंज०-पुरिस०-[जस०] णिद्दाए भंगो । णिद्दा-पयला-[सोग०-] भय-दु० णि० बं० णि० उक्क० । देवग०-वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-वज्जरि०-देवाणु०-तित्थ० सिया० तं० तु० संखेँज्जदिभागूणं बं० । समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदेँ० णि० बं० णि० तं० तु० संखेँज्जदिभागूणं बं० । एवं सोगं ।

३३५. भय० उक्क० पदे०बं[2]० पंचणा०-चदुदंसणा०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० संखेँज्जदिभागूणं बं० । णिद्दा-पयला-असाद०-अपच्चक्खाण०४-चदुणोक० सिया० उक्क० । सादा०-मणुस०-पंचिंदि०-ओरालि०-[तेजा०-क०-] ओरालि०अंगो०-वण्ण०४-

पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। सातावेदनीय, मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे संख्यात भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। असातावेदनीय और अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार संज्वलन, पुरुषवेद और यशःकीर्तिका भङ्ग निद्राके समान है। निद्रा, प्रचला, शोक भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, देवगत्यानुपूर्वी और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार शोककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

३३५. भयका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा, प्रचला, असातावेदनीय, अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। सातावेदनीय, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क,

---

[1] आ०प्रतौ 'अपच्चक्खाण०४ सिया० तं तु० सिया० तं तु० अणंतभागूणं बं० ।' इति पाठः ।

[2] ता०प्रतौ 'एवं सोगं भय । ३प० बं०' इति पाठः ।

मणुसाणु०-अगु०४-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-अजस०-णिमि० सिया० संखेँज्जदिभागूणं बं०। जस हस्सभंगो[1]। पच्चक्खाण०४ सिया० तं०तु० अणंतभागूणं[2] बं०। चदुसंज०-पुरिस०-[जस०] णिद्दाए भंगो। दुगुं० णि० बं० णि० उक्क०। देवग०-वेउव्वि०-आहार०दुग-समचदु०-वेउव्विअंगो०-वज्जरि०—देवाणु०-पसत्थ० - सुभग-सुस्सर-आदेँ०-तित्थ० सिया० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं बं०। एवं दुगुं०।

३३६. णिरयाउ[3]० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-णवदंस०-असाद०-मिच्छ०-बारसक०-णवुंस०-अरदि-सोग-भय-दुगुं०-णिरयग०-पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-हुंड०-वेउव्वि०अंगो०-वण्ण०४-णिरयाणु०-अगु०४-अप्पसत्थ०-तस०४—अथिरादिछ०-णिमि०-णीचा०-पंचंत० णि० बं० णि० अणु० संखेँज्जदिभागूणं बं०। चदुसंज० णि० बं० णि० संखेँज्जगुणहीणं बं०। तिरिक्खाउ० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-बारसक०-भय-दु०-तिरिक्ख०-तिण्णिसरीर-वण्ण०४—तिरिक्खाणु०-अगु०-उप०--णिमि०-[णीचा०] पंचंत० णि० बं० णि० अणु० संखेँज्जदिभागूणं बं०। दोवेद०-छण्णोक०-

स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, अयशःकीर्ति और निर्माणका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। यशस्कीर्तिका भङ्ग हास्यकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान है। प्रत्याख्यानावरण चारका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेश बन्ध करता है तो नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार संज्वलन, पुरुषवेद और यशःकीर्तिका भङ्ग निद्राकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान है। जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। देवगति, वैक्रियिकशरीर, आहारकद्विक, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और तीर्थङ्करप्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार जुगुप्साकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

३३६. नरकायुका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, बारह कषाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, नरकगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, अप्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, अस्थिर आदि छह, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तिर्यञ्चायुका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, तीन शरीर, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, छह नोकषाय, पाँच जाति, छह संस्थान, औदारिक-

---

[1] आ०प्रतौ 'हस्सरदिभंगो' इति पाठः। [2] आ०प्रतौ 'सिया० अणंतभागूणं' इति पाठः।
[3] ता०प्रतौ 'एवं दुगु-(गुं)। णिरयाउ०' इति पाठ।

पंचजा०-छस्संठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो०-दोविहा०-तसादिणवयुग०-अज० सिया० संखेँज्जदिभागूणं बं० । चदुसंज० णि० बं० णि० अणु० संखेँज्जगुणहीणं बं० । पुरिस०-जस० सिया० संखेँज्जगुणहीणं बं० । मणुसाउ० उक्क[1]० पदे०बं० पंचणा०--छदंस०-अट्ठक०--भय-दु० - मणुस० - पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा-क०-ओरालि०अंगो०-वण्ण०४--मणुसाणु०--अगु०-उप०-तस०--बादर०-पत्ते०-णिमि०-पंचंत० णि० बं० णि० अणु० संखेँज्जदिभागूणं बं० । थीणगिद्धि०३-सादासाद०-मिच्छ०-अणंताणु०४--छण्णोक०-छस्संठा०-छस्संघ०-पर०-उस्सा०-दोविहा०-पज्जत्तापज्ज०-थिरादिपंचयुग०-अज०-तित्थ०-दोगो० सिया० संखेँज्जदिभागूणं बं० । चदुसंज० णि० बं० णि० संखेँज्जगुणहीणं बं० । पुरिस०-जस० सिया० संखेँज्जगुणहीणं बंधदि । देवाउ० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-छदंस०-सादावे०-हस्स-रदि-भय-दु०-देवगदि-पंचि०-वेउव्वि०[2]-तेजा०-क०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-वण्ण०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्थ० तस०४-थिरादिपंच०-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० अणु० संखेँज्जदिभागूणं बं० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-बारसक०-इत्थि०-आहारदुग-तित्थ० सिया० संखेँज्जदिभागूणं बं० ।

शरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसादि नौ युगल और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेद और यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मनुष्यायुका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, प्रत्येक, निर्माण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धि तीन, सातावेदनीय, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, छह नोकषाय, छह संस्थान, छह संहनन, परघात, उच्छ्वास, दो विहायोगति, पर्याप्त, अपर्याप्त, स्थिर आदि पाँच युगल, अयशःकीर्ति, तीर्थङ्कर और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेद और यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। देवायुका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि पाँच, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, बारह कषाय, स्त्रीवेद, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृति का कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे

---

[1] आ०प्रतौ 'मणुसाणु० उक्क०' इति पाठः। [2] ता०आ०प्रत्योः 'देवगदिपंच वेउव्वि०' इति पाठः।

चदुसंज० णि० बं० णि० संखेँज्जगु० । पुरिस० सिया० संखेँज्जगु० । जस० णि० संखेँज्जगु० ।

३३७. णिरयग० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-चदुदंस०-पंचंत० णि० बं० णि० अणु० संखेँज्जदिभागूणं बं० । थीणगिद्धि०३-असाद०-मिच्छ०-अणंताणु०४-णवुंस०-णीचा० णि० बं० णि० उक्क० । णिद्दा-पयला-अट्ठक०-अरदि-सोग-भय-दु० णि० बं० णि० अणंतभागूणं बं० । चदुसंज० मिच्छत्तभंगो । एवं सव्वाणं णामपगदीणं मिच्छत्तपाओँग्गाणं णामसत्थाणभंगो[1] । एवं णिरयाणु०-अप्पसत्थ०-दुस्सर० ।

३३८. तिरिक्ख० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-चदुदंसणा०-पंचंत० णि० बं० णि० संखेँज्जदिभागूणं बं० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबं०४-णवुंस०-णीचा० णि० बं० णि० उक्क० । णिद्दा-पयला-अट्ठक०भय-दु० णि० बं० अणंतभागूणं बं० । सादा० सिया० संखेँज्जदिभागूणं बं० । असादा०-बादर-सुहुम[2]०-पत्ते०-साधार० सिया० उक्क० । चदुसंज० मिच्छत्तभंगो । चदुणोक० सिया० अणंतभागूणं बं० । णामाणं

संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेदका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। यशःकीर्तिका नियमसे बन्ध करता है जो इसका संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

३३७. नरकगतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धि तीन, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, नपुंसकवेद और नीचगोत्रका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा, प्रचला, आठ कषाय, अरति, शोक, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार संज्वलनका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। इसी प्रकार मिथ्यात्व प्रायोग्य सब नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग नामकर्मके स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार नरकात्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

३३८. तिर्यञ्चगतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, नपुंसकवेद और नीचगोत्रका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा, प्रचला, आठ कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। सातावेदनीयका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। असातावेदनीय, बादर, सूक्ष्म, प्रत्येक और साधारणका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार संज्वलनका भंग मिथ्यात्वके

---

[1] ता०प्रतौ मिच्छत्तपाओग्गाणं । णामसत्थाणभंगो' इति पाठः । [2] ता०प्रतौ 'असाद० बार० सुहुम०' आ०प्रतौ 'असादा० बारसक० सुहुम०' इति पाठः ।

सत्थाणभंगो। एवं तिरिक्खगदिभंगो एइंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०-उप०-थावर०-बादर-सुहुम-अपज्ज०-पत्ते०-साधार०-अथिरादिपंच-णिमिणं।

३३९. मणुसग० उक्क० पदे०बं० हेट्ठा उवरि तिरिक्खगदिभंगो। णामाणं सत्थाणभंगो। एवं मणुसाणु०।

३४०. देवग० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-चदुदंस०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० संखेंज्जदिभागूणं बं०। थीणगिद्धि०३-असादा०-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि० सिया० उक्क०। णिद्दा-पयला-अट्ठक०-चदुणोक० सिया० तं०तु० अणंतभागूणं बं०। सादा० सिया० संखेंज्जदिभागूणं बं०। कोधसंज० णि० बं० दुभागूणं बं०। माण-संज० सादिरेयं दिवड्ढभागूणं बं०। मायासंज०-लोभसंज० णि० बं० संखेंज्जगुणहीणं बं०। पुरिस०-जस० सिया० संखेंज्जगुणहीणं०। भय-दु० णि० बं० तं० तु०

समान है। चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भंग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगतिके समान एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, अस्थिर आदि पाँच और निर्माणकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

३३९. मनुष्यगतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी और आगेकी प्रकृतियोंका भङ्ग तिर्यञ्चगतिकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान है। तथा नामकर्मकी प्रकृतियोंका भंग स्वस्थानसन्निकर्षके समान है।

३४०. देवगतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धि तीन, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार और स्त्रीवेदका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा, प्रचला, आठ कषाय और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। सातावेदनीयका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। क्रोध-संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मानसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मायासंज्वलन और लोभसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातगुणा हीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेद और यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातगुणा हीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भंग

अणंतभागूणं बं० । णामाणं सत्थाणभंगो । एवं देवगदिभंगो वेउव्वि[1]०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-देवाणु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें० ।

३४१. बीइंदि[2]०-तीइंदि०-चदुरिं०-पंचिंदियजादीणं हेट्ठा उवरिं तिरिक्खगदिभंगो । णामाणं सत्थाणभंगो । एवं ओरालि०अंगो०-असंपत्त०-पर०-उस्सा०-आदा-उज्जो०-तस-पज्जत्त-थिर-सुभाणं । णवरि[3] एदेसिं णामाणं अप्पप्पणो सत्थाणं कादव्वं ।

३४२. आहार० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-चदुदंसणा०-सादा०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० संखेंज्जदिभागूणं बं० । णिद्दा-पयला० सिया० उक्क० । कोधसंज० णि० दुभागूणं बं० । माणसंज सादिरेयं दिवड्ढभागूणं बं० । मायासंज०-लोभसंज०-पुरिस० णि० बं० णि० संखेंज्जगुण० । हस्स-रदि-भय-दु० णि० बं० णि० उक्क० । णामाणं सत्थाणभंगो । एवं आहार०अंगोवंग० ।

३४३. णग्गोध० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-चदुदंसणा०-पंचंत० णि० बं०

स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इस प्रकार देवगतिके समान वैक्रियिकशरीर, समचतुरस्र-संस्थान, वैक्रियिकशरीर आंगोपांग, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

३४१. द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति और पञ्चेन्द्रियजातिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी और बादकी प्रकृतियोंका भङ्ग तिर्यञ्चगतिकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, त्रस, पर्याप्त, स्थिर और शुभ प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इन प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष कहते समय नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग अपने-अपने स्वस्थान सन्निकर्षके समान कहना चाहिए।

३४२. आहारकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यात भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा और प्रचलाका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। क्रोध-संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मानसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मायासंज्वलन, लोभसंज्वलन और पुरुषवेदका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। हास्य, रति, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार आहारकशरीर आङ्गोपाङ्गकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

३४३. न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थानका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यात-

---

[1] ता०प्रतौ 'देवगदिभंगो । वेउ०' इति पाठः । [2] ता०प्रतौ 'आदे० बीइंदि०' इति पाठः । [3] ता०आ०प्रत्योः 'थिर-सुभगाणं णवरि' इति पाठः ।

णि० संखेँज्जदिभागूणं बं०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ णि० बं० णि० उक्क०। णिद्दा-पयला-अट्ठक०-भय-दु० णि० बं० अणु० अणंतभागूणं बं०। सादा०-उच्चा० सिया० संखेँज्जदिभागूणं बं०। चदुसंज० तिरिक्खगदिभंगो। पुरिस० सिया० संखेँज्जगुणहीणं० बं०। असादा०-इत्थि०-णवुंस०-णीचा० सिया० उक्क०। चदुणोक० सिया० अणंतभागूणं बं०। णामाणं सत्थाणभंगो। एवं तिण्णिसंठा०-चदुसंघ०।

३४४. वज्जरि० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-चदुदंसणा०-पंचंत० णि० बं० संखेँज्जदिभागूणं बं०। थीणगिद्धि०३-[असादा०-] मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-णीचा० सिया० उक्क०। णिद्दा[1]-पयला०-अपच्चक्खाण०४-भय-दु० णि० बं० तं० तु० अणंतभागूणं बं०। सादा०-उच्चा० सिया० संखेँज्जदिभागूणं बं०। पच्चक्खाण०[2]४-णि० बं० अणंतभागूणं बं०। चदुसंज० तिरिक्खगदिभंगो। पुरिस०-जस० सिया०

भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा, प्रचला, आठ कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। सातावेदनीय और उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार संज्वलनका भङ्ग तिर्यञ्चगतिकी मुख्यतासे कहे इनके सन्निकर्षके समान है। पुरुषवेदका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। असातावेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार नोकषायोंका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार तीन संस्थान और चार संहननकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

३४४. वज्रर्षभनाराचसंहननका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा, प्रचला, अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। सातावेदनीय और उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार संज्वलनका भङ्ग तिर्यञ्चगतिकी मुख्यतासे कहे गये इनके सन्निकर्षके समान है। पुरुषवेद और यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार नोकषायोंका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट

---

[1] ता०प्रतौ 'उक्क० णिद्दा' इति पाठः। [2] ता०प्रतौ 'संखेज्जदिभागे (गू०) पच्चक्खाण ४' इतिपाठः।

संखेँज्जगुणही० । चदुणोक० सिया० तं०तु० अणंतभागूणं बं०। णामाणं सत्थाणभंगो ।

३४५. [तित्थ०] उक्क० पदे०बं० पंचणा०-चदुदंस०-देवगदि-पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-वण्ण०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० अणु० संखेँज्जदिभागूणं बं० । णिद्दा-पयला-असादा०-अप्पच्चक्खाण०४-हस्स-रदि-अरदि-सोग० सिया० उक्क० । सादावे०-थिराथिर-सुभासुभ-अजस० सिया० संखेँज्जदिभागूणं बं० । पच्चक्खाण०४ सिया० तं०तु० अणंतभागूणं बंधदि । कोधसंज० दुभागूणं । माणसंज० सादिरेयं दिवड्ढभागूणं । मायासंज०-लोभसंज०- पुरिस० णि[1]० बं० णि० अणु० संखेँज्जगुणहीणं बं० । भय-दु० णि० बं० उक्क० । जस० सिया० संखेँज्जगुणहीणं बं० । णीचा० णवुंसग०भंगो ।

३४६. णिरएसु आभिणि० उक्क० पदे०बं० चदुणा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०।

प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थानसन्निकर्षके समान है।

३४५. तीर्थङ्करप्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा, प्रचला, असातावेदनीय, अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क, हास्य, रति, अरति और शोकका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। सातावेदनीय, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे इनका संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। क्रोधसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मानसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मायासंज्वलन, लोभसंज्वलन और पुरुषवेदका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नीचगोत्रका भङ्ग नपुंसकवेदकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान है। अर्थात् नपुंसकवेदका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका अन्य प्रकृतियोंके साथ जिस प्रकार सन्निकर्ष कहा है उसी प्रकार नीचगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका अन्य प्रकृतियोंके साथ सन्निकर्ष कहना चाहिए।

३४६. नारकियोंमें आभिनिबोधिकज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार

---

[1] आ०प्रतौ 'लोभसंज० णि०' इति पाठः।

थीणगिद्धि०३-दोवेद०-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-उज्जो०-तित्थ०-[दोगोद०] सिया० बं० उक्क[1]०। छदंस०-बारसक०-भय-दु० णि० बं० तं०तु० अणंतभागूणं बं०। पंचणोक० सिया० तं० तु० अणंतभागूणं बं०। दोगदि-छस्संठा०-छस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-थिरादिछयुग० सिया० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं०। पंचिंदि०-तिण्णिसरीर-ओरालि०अंगो०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णि० बं० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं बं०। एवं चदुणाणा०-दोवेदणी०-पंचंत०।

३४७. णिद्दाणिद्दाए उक्क० पदे०बं० पंचणा०-दोदंस०-मिच्छ०-अणंताणु०४-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। छदंसणा०-बारसक०-भय-दु० णि० बं० णि० अणंतभागूणं बं०। दोवेदणी०-इत्थि०-णवुंस०-मणुस०-मणुसाणु०-उज्जो०-दोगोद० सिया० उक्क०। पंचणोक० सिया० अणंतभागूणं बंधदि। सेसाणं णामाणं आभिणि०-

ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, उद्योत, तीर्थङ्कर और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पाँच नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो गति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तीन शरीर औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार शेष चार ज्ञानावरण, दो वेदनीय और पाँच अन्तरायकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

३४७. निद्रानिद्राका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, दो दर्शनावरण, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उद्योत और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पाँच नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी शेष प्रकृतियोंका भंग आभिनिबोधिक ज्ञानावरणके

---

[1] आ०प्रतौ 'णवुंस० उक्क०' इति पाठः।

भंगो । णवरि तित्थयरं णत्थि । एवं दोदंसणा०-मिच्छ०-अणंताणुबं०४–इत्थि०-णवुंस०-णीचा० ।

३४८. णिद्दाए उक्क० पदे०बं० पंचणा०-पंचदंसणा०-बारसक०-पुरिस०-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । दोवेदणी०-चदुणोक०-तित्थ० सिया० उक्क० । मणुस०–पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-वण्ण०४-मणुसाणु०-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि० णि० बं० णि० तं०तु० संखेज्जदिभागूणं बं० । थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० सिया० तं० तु० संखेँज्जदिभागूणं बं० । एवं पंचदंस०-बारसक०-सत्तणोक० ।

३४९. तिरिक्खाउ० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-णवदंस० - मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-तिरिक्ख०-पंचिंदि०-तिण्णिसरीर०-ओरा०अंगो०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-तस०४-णिमि०-णीचा०-पंचंत० णि० बं० णि० अणु० संखेँज्जदिभागूणं बं० । दो-वेद०-सत्तणोक०-छस्संठा०-छस्संघ०-उज्जो०-दोविहा०-थिरादिछयुग० सिया० संखेँज्जदि-

समान है । इतनी विशेषता है कि इसके तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता । इसी प्रकार दो दर्शनावरण, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और नीचगोत्रकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए ।

३४८. निद्राका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, पाँच दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । दो वेदनीय, चार नोकषाय और तीर्थङ्कर-प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है । यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र-संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है । यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता । यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है । यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । इसी प्रकार पाँच दर्शनावरण, बारह कषाय और सात नोकषायकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए ।

३४९. तिर्यञ्चायुका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रियजाति, तीन शरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु चतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । दो वेदनीय, सात नोकषाय, छह संस्थान, छह संहनन, उद्योत, दो विहायोगति और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है । यदि बन्ध करता है तो

---

१. ता०प्रतौ 'सेसाणं आमिणि०भंगो' इति पाठः ।

भागूणं बं० । मणुसाउ०[1] उक्क० पदे०बं० पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-भय-दु०-मणुसग०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि० अंगो०-वण्ण०४-मणुसाणु०-अगु०४-तस०४-णिमि०-पंचंत० णि० बं० णि० संखेँज्जदिभागूणं बं० । थीणगिद्धि०३-दोवेदणी०-मिच्छ०-अणंताणु०४—सत्तणोक०—छस्संठा०-छस्संघ०-दोविहा०-थिरादिछयुग०-तित्थ०-दोगोद० सिया० संखेँज्जदिभागूणं० ।

३५०. तिरिक्ख०[2] उक्क० पदे०बं० पंचणा०-थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबं०४-णीचा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । छदंसणा०-बारसक०-भय-दु० णि० बं० णि० अणंतभागूणं बं० । दोवेदणी०-इत्थि०-णवुंस० सिया० उक्क० । पंचणोक० सिया० अणंतभागूणं[3] बं० । णामाणं सत्थाणभंगो । एवं तिरिक्खाणु०-उज्जो० ।

३५१. मणुस० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । थीणगिद्धि०३-दोवेदणी०-मिच्छ०—अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०—[दोगोद०] सिया०

इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मनुष्यायुका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, सात नोकषाय, छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगति, स्थिर आदि छह युगल, तीर्थङ्कर और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है । यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है ।

३५०. तिर्यञ्चगतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पाँच नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थानसन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उद्योतकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

३५१. मनुष्यगतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

---

[1] ता०प्रतौ 'संखेज्जदिभागूणं। मणुसाउ०' इति पाठः। [2] ता०प्रतौ 'संखेज्जदिभागू०। [एतच्चिन्हान्तर्गतः पाठः ताडपत्रीयमूलप्रतौ पुनरुक्तोस्ति]। तिरिक्ख. इति पाठः। [3] आ०प्रतौ 'णवुंस० सिया० अणंतभागूणं बं०' इति पाठः।

उक्क० । छदंसणा०-बारसक०-भय-दु० णि० बं० णि० तं०तु० अणंतभागूणं बं० । पंचणोक० सिया० तं०तु० अणंतभागूणं बं० । णामाणं सत्थाणभंगो ।

३५२. पंचिंदि०-ओरालि० -तेजा०-क० -समचदु० -ओरालि०अंगो० - वज्जरि०-वण्ण०४-मणुसाणु०-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-थिरादितिण्णियुग०-सुभग - सुस्सर -आदें०-णिमि० हेट्ठा उवरिं मणुसगदिभंगो। णामाणं सत्थाणभंगो। पंचसंठा०-पंचसंघ० अप्पसत्थ-दूभग-दुस्सर-अणादें० हेट्ठा उवरिं तिरिक्खगदिभंगो । णामाणं सत्थाणभंगो ।

३५३. तित्थ उक्क० पदे०बं० पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-पुरिस०-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । दोवेद०-चदुणोक० सिया० उक्क० । णामाणं सत्थाणभंगो ।

३५४. उच्चा० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । थीणगिद्धि०३-[दोवदणी०]-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०दूभग-दुस्सर-अणादें०-तित्थ० सिया० उक्क० । छदंस०-बारसक०-भय-दु०

छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पाँच नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इसका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नाम कर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।

३५२. पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु-चतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि तीन युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी और बादकी प्रकृतियोंका भङ्ग मनुष्यगतिकी मुख्यतासे इन प्रकृतियोंका कहे गये सन्निकर्षके समान है। तथा नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी और बादकी प्रकृतियोंका सन्निकर्ष तिर्यञ्चगतिकी मुख्यतासे कहे गये इन प्रकृतियोंके सन्निकर्षके समान है। तथा नामकर्मकी प्रकृतियोंका सन्निकर्ष स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।

३५३. तीर्थङ्कर प्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।

३५४. उच्चगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता

णि० बं० णि० तं०तु० अणंतभागूणं बं०। पंचणोक० सिया० तं०तु० अणंतभागूणं बं०। मणुस०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-[ओरालिअंगो०-] वण्ण०४-मणुसाणु०-अगु०४-तस०४-णिमि० णि० बं० णि० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं बं०। समचदु०-वज्जरि०-पसत्थ०थिरादितिण्णियुग०-सुभग-सुस्सर-आदें० सिया० तं० तु० संखेँज्जदिभागूणं बं०। एवं पढम-विदिय-तदिएसु। चउत्थि-पंचमि-छट्ठीए तित्थयरं वज्ज णिरयोघो। णवरि मणुस०२ एसिं आगच्छदि तेसिं णि० उक्क०।

३५५. सत्तामाए आभिणि० उक्क० बं० चदुणा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। थीणगिद्धि०३-दोवेदणी०-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-मणुस०-मणुसाणु०-उज्जो०-दोगोद० सिया० बं० उक्क०। छदंसणा० बारसक०भय-दु० णि०[1] बं० णि० तं०तु० अणंतभागूणं बं०। पंचणोक० सिया० तं०तु० अणंतभागूणं बं०।

है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पाँच नोकषायोंका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्ण चतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यात भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। समचतुरस्र संस्थान, वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्त विहायोगति, स्थिर आदि तीन युगल, सुभग, सुस्वर और आदेयका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् सामान्य नारकियोंके समान प्रथम, द्वितीय और तृतीय पृथिवीमें जानना चाहिए। चतुर्थ, पञ्चम और षष्ठ पृथिवीमें तीर्थङ्कर प्रकृतिको छोड़कर सामान्य नारकियोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगतिद्विक जिनके आती है, उनके नियमसे उत्कृष्ट होती है।

३५५. सातवीं पृथिवीमें आभिनिबोधिकज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धि त्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उद्योत और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पाँच नोकषायका कदाचित् बन्ध

---

[1] ता०आ०प्रत्योः 'भयदु० खिमि० णि०' इति पाठः।

तिरिक्ख०-छस्संठा०-छस्संघ०-तिरिक्खाणु०-दोविहा०-थिरादिछयुग० सिया० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं ब०। पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णि० बं० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं बं०। एवं चदुणा०-दोवेदणी०-पंचंत०।

३५६. णिद्दाणिद्दाए उक्क० पदे०बं० पंचणा०-दोदंस०-मिच्छ०-अणंताणु०४-णीचा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। छदंस०-बारसक०-भय-दु० णि० बं० णि० अणंतभागूणं बं०। दोवेद०-इत्थि०-णवुंस०-उज्जो० सिया० उक्क०। पंचणोक० सिया० बं० अणंतभागूणं बं०। तिरिक्ख०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-तस०४-णिमि[1]० णि० बं० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं बं०। छस्संठा०-छस्संघ०-दोविहा०-थिरादिछयुग० सिया० तं०तु०

करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तिर्यञ्चगति, छह संस्थान, छह संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माण का नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार चार ज्ञानावरण, दो वेदनीय और पाँच अन्तरायकी मुख्यतासे सन्निकर्ष कहना चाहिए।

३५६. निद्रानिद्राका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, दो दर्शनावरण, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पाँच नोकषायोंका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगति और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट

---

[1] आ०प्रतौ 'वण्ण४ अगु० तस४ णिमि०' इति पाठः।

संखेंज्जदिभागूणं बं० । एवं थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबं०४-इत्थि-णवुंस०-णीचा० ।

३५७. णिद्दाए उक्क० पदे०बं० पंचणा०-पंचदंस०-बारसक०-पुरिस०-भय-दु०-मणुस०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु० - ओरालि०अंगो० - वज्जरि०-वण्ण०४-मणुसाणु०-अगु०४—पसत्थ०-तस०४—सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । दोवेदणी०-चदुणोक०-थिरादितिण्णियुग० सिया० उक्क० । एवं पंचं० [दंसणा०-] बारसक०[1]-सत्तणोक०-मणुसगदिदुगं० । सेसाणं चउत्थिभंगो । णवरि मिच्छत्तपाओंग्गाणं तिरिक्खगदिदुगं०[2], वा उक्का० ।

३५८. तिरिक्खेसु आभिणि० उक्क० पदे०बं० चदुणा०-पंचंत[3]० णि० बं० णि० उक्क० । थीणगिद्धि०३-दोवेदणी०-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-वेउव्वियछ०-आदाव दोगोद० सिया० उक्क० । अपच्चक्खाण०४-पंचणोक० सिया० तं०तु० अणंतभागूणं बं० । [छदंस०-] अट्ठक०-भय-दु० णि० बं० णि० तं०तु० अणंतभागूणं बं० ।

प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । इसी प्रकार स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और नीचगोत्रकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए ।

३५७. निद्राका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, पाँच दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । दो वेदनीय, चार नोकषाय, और स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित् बन्ध करता है । यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । इस प्रकार पाँच दर्शनावरण, बारह कषाय, सात नोकषाय और मनुष्यगतिद्विककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । शेष प्रकृतियों का भङ्ग चौथी पृथिवीके समान है । इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वप्रायोग्य प्रकृतियोंमें तिर्यञ्चगतिद्विक को उत्कृष्ट कहना चाहिए ।

३५८. तिर्यञ्चोंमें आभिनिबोधिकज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, वैक्रियिकषट्क, आतप और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है । यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क और पाँच नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता । यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है । यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । छह दर्शनावरण, आठ कषाय, भय और जुगुप्सा का नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है । यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन

---

[1] ता०प्रतौ 'एवं पंचंत [व]० बारस०' इति पाठः । [2] ता०प्रतौ 'तिरिक्खगदिधुवं०' इति पाठः । [3] ता०प्रतौ 'चदुणो० पंचंत०' आ०प्रतौ 'चदुणोक० पंचंत०' इति पाठः ।

दोगदि-पंचजादि-ओरालि०-छस्संठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-दोआणु०-पर०-उस्सा०-उज्जो०-दोविहा०-तसादिदसयुग० सिया० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं बं०। तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० णि० बं० णि० तं० तु० संखेंज्जदिभागूणं बं०। एवं चदुणा०-असादा०-पंचंत०।

३५९. णिद्दाणिद्दाए उक्क० पदे०बं० पंचणा०-दोदंसणा०-मिच्छ०[1]-अणंताणु०४-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। छदंस०-बारसक०-भय-दु० णि० बं० अणंतभागूणं बं०। दोवेदणी०-इत्थि०-णवुंस०-वेउव्वियछ०-आदाव-दोगोद० सिया० उक्क०। पंचणोक० सिया० अणंतभागूणं बं०। दोगदि-पंचजादि-ओरालि०-छस्संठा-ओरालि०-अंगो०-छस्संघ०-दोआणु०-पर०-उस्सा०-उज्जो०-दोविहा[2]०-तसादिदसयुग० सिया० तं० तु० संखेंज्जदिभागूणं० बं०। तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० णि० बं० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं बं०। एवं दो दंस०-मिच्छ०-अणंताणु०४।

अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो गति, पाँच जाति, औदारिकशरीर, छह संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, उद्योत दो विहायोगति और त्रसादि दस युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यात भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार चार ज्ञानावरण, असातावेदनीय और पाँच अन्तरायकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

३५९. निद्रानिद्राका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, दो दर्शनावरण, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चतुष्क और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, वैक्रियिक छह, आतप और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पाँच नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो गति, पाँच जाति, औदारिकशरीर, छह संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, दो विहायोगति, और त्रसादि दस युगलका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार दो दर्शनावरण, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

---

[1] ता०आ० प्रत्योः 'दोवेदणी० मिच्छ०' इति पाठः। [2] आ०प्रतौ 'उस्सा० दोविहा० इति पाठः।

३६०. णिद्दाए उक्क० पदे०बं० पंचणा०-पंचदंसणा०-पुरिस०-भय-दु०-देवग०-वेउव्वि०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-देवाणु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । दोवेदणी०-अपच्चक्खाण०४-चदुणोक० सिया० उक्क० । अट्ठक० णि० बं० णि० तं०तु० अणंतभागूणं बं० । पंचिंदि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णि० बं० अणु० संखेँज्जदिभागूणं बं० । थिरादितिण्णियु० सिया० संखेँज्जदिभागूणं बं० । एवं पंचदंस०-सत्तणोक० ।

३६१. सादा० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-पंचंत० णि० बं० उक्क० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-देवगदि०४-आदाव-दोगोद० सिया० उक्क० । छदंस०-अट्ठक०-भय-दु० णि० बं० णि० तं०तु० [अणंतभागूणं बं०] । अपच्चक्खाण०४-पंचणोक० सिया० तं०तु० अणंतभागूणं बं० । दोगदि-पंचजादि-ओरालि०-छस्संठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-दोआणु०-पर०-उस्सा०-[उज्जो०-] पसत्थ०-तस०४-[युग०-] थिरादितिण्णियुग०-सुभग-सुस्सर०-आदें० सिया० तं० तु० संखेँज्जदिभागूणं बं० ।

३६०. निद्राका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, पाँच दर्शनावरण, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, देवगति, वैक्रियिकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क और चार नोकषायोंका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। आठ कषायोंका नियमसे बन्ध करता है, किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है, तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार पाँच दर्शनावरण और सात नोकषायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

३६१. सातावेदनीयका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, देवगतिचतुष्क, आतप और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, आठ कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क और पाँच नोकषायोंका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो गति, पाँच जाति, औदारिकशरीर, छह संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क युगल, स्थिर आदि तीन युगल, सुभग, सुस्वर और आदेयका कदाचित्बन्ध करता है। यदि

तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० णि०[1] बं० णि० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं बं०। अप्पसत्थ०-दुस्सर० सिया० संखेँज्जदिभागूणं बं०। दूभग-अणादें० सिया० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं बं०।

३६२. अपच्चक्खाणकोध० उक्क० पदे०बं० णिद्दाए भंगो। णवरि अट्ठक० णि० बं० णि० अणंतभागूणं बं०। एवं तिण्णिक०।

३६३. पच्चक्खाणकोध० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-छदंसणा०-सत्तक०-पुरिस०-भय-दु०-देवगदि०४-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। सेसं णिद्दाए भंगो। एवं सत्तण्णं कम्माणं।

३६४. इत्थि० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबं०४-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। छदंसणा०-बारसक०-भय-दु० णि० बं० णि० अणु० अणंतभागूणं बं०। दोवेदणी०-देवगदि०४-दोगोद० सिया० उक्क०। चदुणोक०

बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दुर्भग और अनादेयका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

३६२. अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका भङ्ग निद्राकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान है। इतनी विशेषता है कि यह आठ कषायोंका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण मान आदि तीन कषायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

३६३. प्रत्याख्यानावरण क्रोधका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सात नोकषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, देवगतिचतुष्क, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। शेष भङ्ग निद्राकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण क्रोध आदि सात कर्मोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

३६४. स्त्रीवेदका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, देवगतिचतुष्क और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो

---

[1] आ०प्रतौ 'उप० णि०' इति पाठः।

सिया० अणंतभागूणं बं० । दोगदि-ओरालि०-हुंड०-ओरालि०अंगो०-असंपत्त०-दोआणु०-अप्पसत्थ०-थिरादितिण्णियुग-दूभग-दुस्सर-अणादें० सिया० संखेंज्जदिभागूणं बं० । पंचिंदि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णि० बं० संखेंज्जदिभागूणं बं० । पंचसंठा०-पंचसंघ०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें० सिया० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं बं० । उज्जो० सिया० संखेंज्जदिभागूणं बं० ।

३६५. णवुंस० उक्क० पदे०बं० हेट्ठा उवरिं इत्थि०भंगो । णामाणं णिरयगदि०४-आदाव०[1] सिया० उक्क० । दोगदि-पंचजादि-ओरालि०-पंचसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ-दोआणु०-पर०-उस्सा०-उज्जो०-अप्पसत्थ०-तस०४-[युग०-] थिरादितिण्णियुग०-दूभग-दुस्सर-अणादें० सिया० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं बं० । [तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-

इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार नोकषायोंका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो गति, औदारिकशरीर, हुण्डसंस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन, दो आनुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पाँच संस्थान, पाँच संहनन, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

३६५. नपुंसकवेदका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी और बादकी प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष स्त्रीवेदका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके इन प्रकृतियोंकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान जानना चाहिए। यह नामकर्मकी प्रकृतियोंमेंसे नरकगतिचतुष्क और आतपका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो गति, पाँच जाति, औदारिकशरीर, पाँच संस्थान, औदारिकशरीरआङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क युगल, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यात भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त

---

१. ता०प्रतौ 'णामाणं । णिरयगदि० ४ अदाव०' इति पाठः ।

उप०-णिमि० णि० बं० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं बं० ।] समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें० सिया० संखेँज्जदिभागूणं बं० ।

३६६. णिरयाउ० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०-अरदि-सोग-भय-दु०-णिरयगदिअट्ठावीस-णीचा०-पंचंत० णि० बं० णि० अणु० संखेँज्जदिभागूणं बं० । तिरिक्खाउ० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-तिरिक्ख० - ओरालि०-तेजा० - क०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०-उप०-णिमि०-णीचा०-पंचंत० णि० बं० णि० अणु० संखेँज्जदिभागूणं बं० । दोवेदणी०-सत्तणोक०-पंचजादि-छस्संठा०-ओरा०अंगो० - छस्संघ० - पर०-उस्सा०-आदा-उज्जो०-दोविहा०-तसादिदसयुग० सिया० बं० संखेँज्जदिभागूणं बं० । एवं मणुसाउ०-देवाउ० । णवरि अप्पप्पणो पगदीओ णादव्वाओ ।

३६७. णिरयग० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-थीणगिद्धि०३-असादावे०-मिच्छ०-अणंताणुबं०४-णवुंस०-णीचा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । छदंसणा०-बारसक०-अरदि-सोग-भय-दु० णि० बं० णि० अणंतभागूणं बं० । णामाणं सत्थाण०भंगो । एवं णिरयाणु०-अप्पसत्थ०-दुस्सर० ।

विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयका कदाचित बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है ।

३६६. नरकायुका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, नरकगति आदि अट्ठाईस प्रकृतियाँ, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तिर्यञ्चायुका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, सात नोकषाय, पाँच जाति, छह संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति और त्रसादि दस युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार मनुष्यायु और देवायुकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अपनी-अपनी प्रकृतियाँ जाननी चाहिए ।

३६७. नरकगतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिक, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, नपुंसकवेद, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, अरति, शोक, भय, और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार नरकगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

३६८. तिरिक्ख० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-णवुंस०-णीचा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । छदंसणा०-बारसक०-भय-दु० णि० बं० णि० अणंतभागूणं बं० । दोवेदणी० सिया० उक्क० । चदुणोक० सिया० बं० अणंतभागूणं बं० । णामाणं सत्थाण०भंगो । एवं तिरिक्खगदिभंगो मणुसगदि-पंचजादि-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड० - ओरालि०अंगो०-असंपत्त० - वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-मणुसाणु०-अगु०४-आदाउज्जो०-तस०४[युग०-] थिरादितिण्णियुग०-दूभग-अणादें०-णिमि० । णवरि णामाणं अप्पप्पणो सत्थाण०भंगो कादव्वो ।

३६९. देवगदि० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । थीणगिद्धि०३-दोवेदणी०-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि० सिया० उक्क० । छदंस०-अट्ठक०-भय-दु० णि० बं० णि० तं०तु० अणंतभागूणं बं० । अपच्चक्खाण०४-पंचणोक० सिया० तं तु० अणंतभागूणं बं० । णामाणं सत्थाण०भंगो । एवं देवगदि-भंगो वेउव्वि० -समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-देवाणु०-पसत्थ-सुभग-सुस्सर-आदें० ।

३६८. तिर्यञ्चगतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, नपुंसकवेद, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीयका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार नोकषायोंका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगतिके समान मनुष्यगति, पाँच जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, आतप, उद्योत, त्रसचतुष्क युगल, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग, अनादेय और निर्माणकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि नाम कर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग अपने-अपने स्वस्थान सन्निकर्षके समान जानना चाहिए।

३६९. देवगतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और स्त्रीवेदका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, आठ कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबंध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। अप्रत्याख्यानावरण-चतुष्क और पाँच नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इस प्रकार देवगतिके समान

---

१. ता०प्रतौ देवगदिभंगो । वेउ०' इति पाठः ।

३७०. णग्गोध० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-थीणगिद्धि० ३-मिच्छ०-अणंताणु०४-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । छदंस०-बारसक०-भय-दु० णि० बं० णि० अणंतभागूणं बं० । दोवेदणी०-इत्थि०-णवुंस०-दोगोद० सिया० उक्क० । पंचणोक० सिया० अणंतभागूणं बं० । णामाणं सत्थाण०भंगो । एवं तिण्णि०संठा०[1]-पंचसंघ० ।

३७१. उच्चा० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-पंचंत० णि० बं० उक्क० । थीणगिद्धि०३-दोवेदणी०-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-देवगदि०४-चदुसंठा०-पंचसंघ० सिया० उक्क० । छदंस०-अट्ठक०-भय-दु० णि० बं० णि० तं० तु० अणंतभागूणं बं० । अपच्चक्खाण०४-पंचणोकसायं[2] सिया० अणंतभागूणं बं० । मणुस०-[ओरालि०-] हुंड०-ओरालि०अंगो०-असंप०-मणुसाण०-अप्पसत्थ० -थिरादितिण्णियुग०-दूभग-दुस्सर-अणादें० सिया० संखेंज्जदिभागूणं बं० । पंचिंदि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-

वैक्रियिकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए ।

३७०. न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थानका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । दो वेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है । यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । पाँच नोकषायोंका कदाचित् बन्ध करता है । यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है । इसी प्रकार तीन संस्थान और पाँच संहननकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिये ।

३७१. उच्चगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, देवगतिचतुष्क, चार संस्थान और पाँच संहननका कदाचित् बन्ध करता है । यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । छह दर्शनावरण, आठ कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है । यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क और पाँच नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है । यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । मनुष्यगति, औदारिकशरीर, हुण्डसंस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयका कदाचित् बन्ध करता है । यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका

---

[1] ता०आ०प्रत्योः एवं चदुसंठा०' इति पाठः । [2] ता०आ०प्रत्योः 'अपच्चक्खाण ४ चदुणोकसायं' इति पाठः ।

णिमि० णि० बं० णि० संखेंज्जदिभागूणं बं०। समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें० सिया० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं बं०। एवं पंचिंदि०तिरिक्ख०३।

३७२. पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० आभिणि० उक्क० पदे०बं० चदुणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। दोवेदणी०-सत्तणोक०-आदाव-दोगो० सिया० उक्क०। दोगदि-पंचजादि-छस्संठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-दोआणु०-पर०-उस्सा०-उज्जो०-दोविहा०-तसादिदसयुग० सिया० तं० तु० संखेंज्जदिभागूणं बं०। ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० णि० बं० णि० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं बं०। एवं चदुणा०-णवदंस०-दोवेद०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-णीचा०-पंचंत०।

३७३. इत्थि० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। दोवेद०-चदुणोक०-दोगोद० सिया० उक्क०। दोगदि-हुंडसं०-असंपत्त०-दोआणु०-उज्जो०-थिरादितिण्णियुग०-दूभग-अणादें० सिया० संखेंज्जदि-

नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चत्रिकमें जानना चाहिए।

३७२. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, सात नोकषाय, आतप और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, दो विहायोगति और त्रसादि दस युगलका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार चार ज्ञानावरण, नौदर्शनावरण दो वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

३७३. स्त्रीवेदका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, चार नोकषाय और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो गति, हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, दो आनुपूर्वी, उद्योत, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग और अनादेयका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे

भागूणं बं० । पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णि० बं० णि० संखेंज्जदिभागूणं बं० । पंचसंठा०-पंचसंघ०-दोविहा०-सुभग-दुस्सर-आदे० सिया० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं बं० । एवं पुरिस० ।

३७४. तिरिक्खाउ० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-तिरिक्ख०-ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०- अगु०-उप० -णिमि०-णीचा०-पंचंत० णि० बं० णि० संखेंज्जदिभागूणं बं० । दोवेदणी०-सत्तणोक०-[पंचजादि-] छसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो०-दोविहा०-तसादिदसयुग० सिया० संखेंज्जदिभागूणं बं० । एवं मणुसाउ० । णवरि पाओग्गाओ पगदीओ कादव्वाओ ।

३७५. तिरिक्ख० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०-भय-दु०-णीचा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । दोवेद०-चदुणोक० सिया० उक्क० । णामाणं सत्थाण०भंगो । हेट्ठा उवरिं तिरिक्खगदिभंगो । इमाणं मणुसग०-पंचजादि-तिण्णिसरीर-हुंड०-ओरालि०अंगो०-असंपत्त०-वण्ण०४-मणुसाणु०-अगु०४-आदाउज्जो०-

संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रस चतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पाँच संस्थान, पाँच संहनन, दो विहायोगति, सुभग, दो स्वर और आदेयका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार पुरुषवेदकी मुख्यतासे उत्कृष्ट सन्निकर्ष जानना चाहिए।

३७४. तिर्यञ्चायुका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, सात नोकषाय, पाँच जाति, छह संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति और त्रस आदि दस युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार मनुष्यायुकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसके प्रायोग्य प्रकृतियाँ करनी चाहिए।

३७५. तिर्यञ्चगतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, भय, जुगुप्सा, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। तथा इन प्रकृतियोंकी अपेक्षा नामकर्मसे पूर्वकी और बादकी प्रकृतियोंका भङ्ग तिर्यञ्चगतिके समान है। इन मनुष्यगति पाँच जाति, तीन शरीर, हुण्डसंस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन,

तस०४[युग-]:थिरादितिण्णियुग०-दूभग-अणादें०[1]-णिमि० णामाणं०[2] अप्पप्पणो सत्थाण०भंगो ।.पंचसंठा-पंचसंघ०-दोविहा०-सुभग-दुस्सर-आदें०[3] हेट्ठा उवरिं सो चेव भंगो । णवरि इत्थि०-पुरिस०-उच्चा० सिया० उक्क० ।

३७६. उच्चा० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । दोवेद०-सत्तणोक०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-दोविहा०-सुभग-दुस्सर-आदेंज्ज सिया० उक्क० । मणुस०-पंचिंदि०-तिण्णिसरीर-ओरालि०-अंगो०-वण्ण०४-मणुसाणु०-अगु०४-तस०४-णिमि० णि० बं० णि० संखेंज्जदिभागू० । हुंड०-असंप०-थिरादितिण्णियुग०-दूभंग-अणादें० सिया० संखेंज्जदिभागूणं बं० । एवं सव्वअपज्जत्ताणं सव्वएइंदिय-विगलिंदिय-पंचकायाणं । णवरि तेउ०-वाउ० मणुसगदि०३ वज्ज ।

३७७. मणुसा०३ ओघं । देवेसु आभिणि० उक्क० पदे०बं चदुणा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । थीणगिद्धि०३-दोवेदणी०-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-

---

वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, आतप, उद्योत, त्रसचतुष्क युगल, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग, अनादेय और निर्माण नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग अपने-अपने स्वस्थानके समान है। पाँच संस्थान, पाँच संहनन, दो विहायोगति, सुभग, दो स्वर और आदेयकी मुख्यता पूर्वकी और बादकी प्रकृतियोंका वही भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेद, पुरुषवेद और उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

३७६. उच्चगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, सात नोकषाय, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, दो विहायोगति, सुभग, दो स्वर और आदेयका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, तीन शरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग और अनादेयका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार सब अपर्याप्त जीवोंके तथा सब एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें मनुष्यगतित्रिकको छोड़कर सन्निकर्ष कहना चाहिए।

३७७. तीन प्रकारके मनुष्योंमें ओघके समान भङ्ग है। देवोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, आतप, तीर्थङ्कर प्रकृति और दो गोत्रका

---

[1] ता०आ०प्रत्योः 'दूभग दुस्सर अणादे०' इति पाठः। [2] ता०प्रतौ 'णिमि०। णामाणं' इति पाठः। [3] ता०प्रतौ 'सुभग दुस्सर आदेज्ज' इति पाठः।

णवुंस०-आदाव-तित्थ०-दोगोद० सिया० उक्क०। छदंस०-बारसक०-भय-दु० णि० बं० णि० तं०तु० अणंतभागूणं० बं०। पंचणोक० सिया० तं०तु० अणंतभागूणं बं०। दोगदि-दोजादि-छस्संठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-दोआणु०-उज्जो०-दोविहा०-तस-थावर-थिरादिछयुग०[1] सिया० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं बं०। ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णि० बं० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं बं०। एवं चदुणा०-दोवेद०-पंचंत०।

३७८. णिद्दाणिद्दाए उक्क० पदे०बं० पंचणा०-दोदंस०-मिच्छ०-अणंताणु०४-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। छदंस०-बारसक०-भय-दु० णि० बं० णि० अणु० अणंतभागूणं बं०। दोवेद०-इत्थि०-णवुंस०मणुस०-मणुसाणु०-आदाव०-णीचुच्चा० सिया० उक्क०। पंचणोक० सिया० अणंतभागूणं बं०। तिरिक्ख०-दोजादि-छस्संठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-तिरिक्खाणु०-उज्जो०-दोविहा०-तस-थावर-

कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभाग हीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पाँच नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो गति, दो जाति, छह संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, स्थावर और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार चार ज्ञानावरण, दो वेदनीय और पाँच अन्तरायकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

३७८. निद्रानिद्राका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, दो दर्शनावरण, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, मनुष्यगति मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, नीचगोत्र और उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पाँच नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अंनुत्कृष्ट प्रदेशन्ध करता है। तिर्यञ्चगति, दो जाति, छह संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, स्थावर और स्थिर आदि

---

[1] आ०प्रतौ 'थावरादि छ्युग' इति पाठः।

थिरादिछयुग०[1] सिया० तं० तु० संखेँज्जदिभागूणं बं०। ओरालि०-तेजा-क०-वण्ण०४-अगु०४-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णि० बं० णि० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं बं०। एवं दोदंस०-मिच्छ०-अणंताणु०४-णवुंस०-णीचा०।

३७९. णिद्दाए० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-पंचदंस०-बारसक०-पुरिस०-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। सादासाद०-चदुणोक०-तित्थ० सिया० उक्क०। मणुसग०-पंचिंदि०-समचदु०-ओरा०अंगो०-वज्जरि०-मणुसाणु०-पसत्थ०-तस०-सुभग[2]-सुस्सर-आदें० णि० बं० णि० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं बं०। ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णि० बं० संखेँज्जदिभागूणं बं०। थिरादितिण्णियुग० सिया० संखेँज्जदिभागूणं बं०। एवं णिद्दाए भंगो पंचदंस०-बारसक०-सत्तणोक०।

३८०. इत्थि० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-

छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार दो दर्शनावरण, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, नपुंसकवेद और नीचगोत्रकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

३७९. निद्राका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, पाँच दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, सुभग, सुस्वर और आदेयका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इस प्रकार निद्राके समान पाँच दर्शनावरण, बारह कषाय और सात नोकषायकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

३८०. स्त्रीवेदका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका

---

[1] आ०प्रतौ 'थावरादि छयुग०' इति पाठः। [2] आ०प्रतौ 'पसत्थ० सुभग' इति पाठः।

पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। छदंस०-बारसक०-भय-दु० णि० बं० णि० अणंतभागूणं बं०। दोवेद०-मणुस०-मणुसाणु०-दोगोद० सिया० उक्क०। [चदुणोक० सिया० अणंतभागूणं० बं०।] तिरिक्ख०-हुंड०-तिरिक्खाणु०-उज्जो०-थिरादितिण्णियुग०-दूभग-अणादें० सिया० संखेँज्जदिभागूणं बं०। पंचिंदि०-ओरालि०अंगो०-तस० णि० बं० णि० तं० तु० संखेँज्जदिभागूणं बं०। ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णि० बं० णि० संखेँज्जदिभागूणं बं०। पंचसंठा०-छस्संघ०-दोविहा०-सुभग-सुस्सर-दुस्सर-आदें० सिया० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं बं०।

३८१. दोआउ० णिरयगदिभंगो।

३८२. तिरिक्खग० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-णवुंस०-णीचा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। छदंस०-बारसक०-भय-दु० णि० बं० णि० अणंतभागूणं बं०। सादासाद० सिया० उक्क०। चदुणोक० सिया० अणंतभागूणं बं०। णामाणं सत्थाण०भंगो। एवं तिरिक्खगदिभंगो एइंदि०-तिण्णिसरीर-

नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तिर्यञ्चगति, हुण्डसंस्थान, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग और अनादेयका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीरआङ्गोपाङ्ग और त्रसका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पाँच संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगति, सुभग, सुस्वर, दुःस्वर और आदेयका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

३८१. दो आयुओंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जिस प्रकार नरकगतिमें नारकियोंमें कह आये हैं उस प्रकार है।

३८२. तिर्यञ्चगतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, नपुंसकवेद, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। सातावेदनीय और असातावेदनीयका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इस प्रकार तिर्यञ्चगतिके समान एकेन्द्रियजाति,

हुंडसं०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-आदाबुज्जो०-थावर[1]-बादर - पज्जत्त-पत्ते०-थिरादि-तिण्णियुग०-दूभग-अणादें०-णिमिण त्ति।

३८३. मणुस० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-पंचंत[2]० णि० बं० णि० उक्क०। थीणगिद्धि०३-सादासाद०-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-दोगो० सिया० उक्क०। छदंस०-बारसक०-भय-दु० णि० बं० णि० तं०तु० अणंतभागूणं बं०। पंचणोक० सिया० तं० तु० अणंतभागूणं बं०। णामाणं[3] सत्थाण०भंगो। एवं मणुसगदिभंगो पंचिंदि०-समचदु० - ओरालि०अंगो०-वज्जरि० - मणुसाणु० - पसत्थ०-तस-सुभग-सुस्सर-आदें०। णामाणं सत्थाण०भंगो।

३८४. णग्गोध० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-तिण्णिदंस०-मिच्छ०-अणंताणु०४-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। छदंस०-बारसक०-भय-दु० णि० बं० णि० अणंतभागूणं बं०। दोवेदणी०-इत्थि०-णवुंस०-दोगोद० सिया० उक्क०। पंचणोक० सिया०

तीन शरीर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, आतप, उद्योत, स्थावर, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग, अनादेय और निर्माणकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिये।

३८३. मनुष्यगतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, सातावेदनीय, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पाँच नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इस प्रकार मनुष्यगतिके समान पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, सुभग, सुस्वर और आदेयकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।

३८४. न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थानका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, तीन दर्शनावरण, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पाँच नोकषायका कदाचित्

---

[1] आ०प्रतौ 'अगु० ४ थावर' इति पाठः। [2] ता०प्रतौ 'प० बं० पंचंता० (पंचणा०) पंचंत०' इति पाठः। [3] ता०प्रतौ 'अणंतभागू०। ❋पंचणोक० सिया० तं० तु० अणंतभागू०❋ [चिह्नान्तर्गतपाठः पुनरुक्तः प्रतीयते]। णामाणं' इति पाठः।

अणंतभागूणं बं० । णामाणं सत्थाण०भंगो । एवं णग्गोधभंगो तिण्णिसंठा०[1]-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दुस्सर० ।

३८५. तित्थ०[2] उक्क० पदे०बं० पंचणा०-छदंस०-बारसक०-पुरिस०-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । सादासाद०-चदुणोक० सिया० उक्क० । णामाणं सत्थाण०भंगो ।

३८६. उच्चा० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-पंचंत० णि बं० णि० उक्क० । थीणगिद्धि०३-दोवेदणी०-मिच्छ०-अणंताणु०४ - इत्थि०-णवुंस०-अप्पसत्थ० - चदुसंठा०-पंचसंघ०-दूभग-दुस्सर-अणादें०-तित्थ० सिया० उक्क० । छदंस०-बारसक०-भय-दु० णि० बं० णि० तं०तु० अणंतभागूणं बं० । पंचणोक० सिया० तं०तु० अणंतभागूणं बं० । मणुस०-पंचिंदि०-ओरालि०अंगो०-मणुसाणु०-तस० णि० बं० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं बं० । ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-बादर०३-णिमि० णि० बं० णि०

बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थानके समान तीन संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

३८५. तीर्थङ्करप्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थानसन्निकर्षके समान है।

३८६. उच्चगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अप्रशस्त विहायोगति, चार संस्थान, पाँच संहनन, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पाँच नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और त्रसका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, बादरत्रिक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन

---

[1] ता०प्रतौ 'णग्गोदभंगो । तिण्णिसंठा' इति पाठः । [2] ता०प्रतौ 'दुस्सर० तित्थ०' इति पाठः ।

संखेंज्जदिभागूणं बं० । समचदु०-वज्जरि०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें० सिया० बं० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं बं० । हुंडसं०-थिरादितिण्णियु० सिया० संखेंज्जदिभागूणं बं० । एवं भवण०-वाणवें०-जोदिसि० । णवरि तित्थ० वज्ज । मणुस०-मणुसाणु० एसिं आगच्छदि तेसिं सिया०[1] उक्क० ।

३८७. सोधम्मीसाणे देवोघं । सणक्कुमार याव सहस्सार त्ति णिरयोघं । आणद याव णवगेवज्जा त्ति[2] सहस्सारभंगो । णवरि तिरिक्खगदि०४ वज्ज । अणुदिस याव सव्वट्ठ त्ति आभिणि०[3] उक्क० पदे०बं० चदुणा०-छदंसं०-बारसक०-पुरिस०-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । दोवेद०-चदुणोक०-तित्थ० सिया० उक्क० । मणुस०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-वण्ण४-मणुसाणु०-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि० णि० बं० णि० तं०तु०

अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। हुण्डसंस्थान और स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् सामान्य देवोंके समान भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें तीर्थङ्कर प्रकृतिको छोड़कर सन्निकर्ष कहना चाहिए। तथा मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वी जिनके आती है, उनके कदाचित् बन्ध होता है और कदाचित् बन्ध नहीं होता। यदि बन्ध होता है तो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होता है।

३८७. सौधर्म और ऐशानकल्पमें सामान्य देवोंके समान भङ्ग है। सनत्कुमारसे लेकर सहस्रार कल्पतकके देवोंमें सामान्य नारकियोंके समान भङ्ग है। आनतकल्पसे लेकर नौ ग्रैवेयकतकके देवोंमें सहस्रारकल्पके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें तिर्यञ्चगतिचतुष्कको छोड़कर सन्निकर्ष कहना चाहिए। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें आभिनिबोधिकज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, चार नोकषाय और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीरआङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध

---

[1] ता०प्रतौ 'तेसिं सा (सि) या०' इति पाठः । [2] ता०प्रतौ 'णवकेवेज त्ति' इति पाठः ।
[3] ता०प्रतौ 'सव्वट्ठत्ति । आभिणि०' इति पाठः ।

संखेँज्जदिभागूणं बं० । थिरादितिण्णियुग० सिया० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं बं० ।

३८८. मणुसाउ० उक्क० पदे०बं० धुविगाणं० णि० बं० संखेँज्जदिभागूणं बं० । सादा०छयुग०-तित्थ० सिया० संखेँज्जदिभागूणं बं० ।

३८९. मणुसगदि० उक्क० पदे०बं०. पंचणा०-छदंस०-बारसक०-पुरिस०-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । सादासाद०-चदुणोक० सिया० उक्क० । णामाणं सत्थाण०भंगो० । एवं मणुसगदिभंगो सव्वाणं णामाणं ।

३९०. तित्थ० उक्क० पदे०बं० हेट्ठा उवरि मणुसगदिभंगो । णामाणं अप्पप्पणो सत्थाण०भंगो ।

३९१. पंचिंदि०–तस–पज्जत्त–पंचमण०–पंचवचि०–कायजोगि० ओघभंगो । ओरालियकायजोगि० मणुसगदिभंगो । ओरालियमि० उक्क० पदे०बं० चदुणा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । थीणगिद्धि०३-दोवेद०-मिच्छ०–अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-आदाव-तित्थ०-णीचुच्चा० सिया० उक्क० । छदंस०-बारसक०-भय-दु० णि०

भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार इस बीजपदके अनुसार नामकर्मके अतिरिक्त पूर्वोक्त सब प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिये ।

३८८. मनुष्यायुका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। साता आदि छह युगल अर्थात् साता-असाता, हास्य-शोक रति-अरति, स्थिर आदि तीन युगल और तीर्थङ्करप्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

३८९. मनुष्यगतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थानसन्निकर्षके समान है। इस प्रकार मनुष्यगतिके समान नामकर्मकी यहाँ बँधनेवाली सब प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

३९०. तीर्थङ्करप्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी और बादकी प्रकृतियोंका भङ्ग मनुष्यगतिकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग अपने-अपने स्वस्थानसन्निकर्षके समान है।

३९१. पञ्चेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रियपर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी और काययोगी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। औदारिककाययोगी जीवोंमें मनुष्यगतिके अर्थात् मनुष्योंके समान भङ्ग है। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें आभिनिबोधिकज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, आतप, तीर्थङ्कर, नीचगोत्र और उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध

बं० णि० तं०तु० अणंतभागूणं बं० । पंचणोक० सिया० तं०तु० अणंतभागूणं बं० । तिण्णिगदि-पंचजादि–दोण्णिसरीर-छस्संठा०–दोअंगो०–छस्संघ० - तिण्णिआणु०-पर०-उस्सा०-[उज्जो०-] दोविहा०-तसादिदसयुग० सिया० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं बं० । तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० णि० बं०[1] णि० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं बं० । एवं चदुणा०-सादासाद०-पंचंत० ।

३९२. णिद्दाणिद्दाए उक्क० पदे०बं० पंचणा०-दोदंस०-मिच्छ०-अणंताणु०४-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । छदंस०-बारसक०-भय-दु० णि० बं० णि० अणंतभागूणं बं० । दोवेदणी०-इत्थि०-णवुंस०-आदाव०-दोगोद० सिया० उक्क० । पंचणोक० सिया० अणंतभागूणं बं० । दोगदि-पंचजादि-पंचसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-दोआणु०-पर०-उस्सा०-उज्जो०-अप्पसत्थ०-तसादिचदुयुग०-थिरादितिण्णियुग०-दूभग-

करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पाँच नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन गति, पाँच जाति, दो शरीर, छह संस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, दो विहायोगति और त्रस आदि दस युगलका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार चार ज्ञानावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय और पाँच अन्तरायकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिये।

३९२. निद्रानिद्राका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, दो दर्शनावरण, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, आतप और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पाँच नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो गति, पाँच जाति, पाँच संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात उच्छ्वास, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस आदि चार युगल, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं

---

[1] आ०प्रतौ 'उप० णि० बं०' इति पाठः ।

दुस्सर-अणादें० सिया० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं बं०। तिण्णिसरीर-वण्ण०४-अगु०-उप० णिमि० णि० बं० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं बं०। समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें० सिया० संखेंज्जदिभागूणं बं०। एवं दोदंस०-मिच्छ०-अणंताणु०४-णवुंस०-णीचा०।

३९३. णिद्दाए उक्क० पदे०बं० पंचणा०-पंचदंस०-बारसक०-पुरिस०-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। दोवेदणी०-चदुणोक०-तित्थ० सिया० उक्क०। देवगदि०४-समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें० णि० बं० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं बं०। पंचिंदि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णि० बं० संखेंज्जदिभागूणं बं०। थिरादितिण्णियुग० सिया० संखेंज्जदिभागूणं बं०। एवं पंचदंस०-बारसक०-सत्तणोक०।

३९४. इत्थि० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। छदंस०-बारसक०-भय-दु० णि० बं० णि० अणंत-

करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन शरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार दो दर्शनावरण, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, नपुंसकवेद और नीचगोत्रकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिये।

३९३. निद्राका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, पाँच दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, चार नोकषाय और तीर्थङ्कर-प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। देवगतिचतुष्क, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार पाँच दर्शनावरण, बारह कषाय और सात नोकषायकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिये।

३९४. स्त्रीवेदका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धि त्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध

भागूणं बं० । दोवेदणी०-दोगोद० सिया० उक्क० । चदुणोक० सिया० अणंतभागूणं बं० । दोगदि-समचदु०-हुंड०-असंपत्त०-दोआणु०-उज्जो०-पसत्थ०-थिरादिपंचयुग०-सुस्सर० सिया० संखेंज्जदिभागूणं बं० । पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०-अंगो०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णि० बं० णि० संखेंज्जदिभागूणं बं० । चदुसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दुस्सर० सिया० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं बं० ।

३९५. आउ० अपज्जत्तभंगो । णवरि याओ पगदीओ बंधदि ताओ णियमा असंखेंज्जगुणहीणं बं० सिया० संखेंज्जगुणहीणं० ।

३९६. तिरिक्ख० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-णवुंस०-णीचा०-पंचंत० णि० उक्क० । छदंस०-बारसक०-भय-दु० णि० बं० अणंतभागूणं बं० । दोवेदणी० सिया० उक्क० । चदुणोक० सिया० अणंतभागूणं बं० । णामाणं सत्थाण०भंगो । एवं तिरिक्खगदिभंगो मणुस० । पंचजादि[1]-तिण्णिसरीर-पंचसंठा०-

करता है । दो वेदनीय और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है । यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है । यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । दो गति, समचतुरस्रसंस्थान, हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, दो आनुपूर्वी, उद्योत, प्रशस्त विहायोगति, स्थिर आदि पाँच युगल और सुस्वरका कदाचित् बन्ध करता है । यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकशरीरआङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । चार संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है । किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है । यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है ।

३९५. आयुकर्मका भङ्ग अपर्याप्त जीवोंके समान है । इतनी विशेषता है कि जिन प्रकृतियोंको नियमसे बाँधता है उन्हें असंख्यातगुणहीन बाँधता है और जिन प्रकृतियोंको कदाचित् बाँधता है उन्हें संख्यातगुणहीन बाँधता है ।

३९६. तिर्यञ्चगतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, नपुंसकवेद, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । दो वेदनीयका कदाचित् बन्ध करता है । यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है । यदि बन्ध करता है तो वह इनका अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थानसन्निकर्षके समान है । इसीप्रकार तिर्यञ्चगतिके समान मनुष्यगतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । पाँच जाति, तीन

---

[1] ता० प्रतौ 'मणुस० पंचजादि' इति पाठः ।

ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-वण्ण०४-मणुसाणु०-अगु०४-आदाउज्जो०-अप्पसत्थ०-तसादि-चदुयुगल०-थिरादितिण्णियुग०-दूभग-दुस्सर-अणादें०-णिमि० हेट्ठा उवरिं तिरिक्खगदि-भंगो। णामाणं अप्पप्पणो सत्थाण०भंगो। णवरि चदुसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दुस्सर० इत्थि०-णवुंस०-उच्चा० सिया० उक्क०। पुरिस० सिया० अणंतभागूणं बं०।

३९७. देवग० उक्क० बं० पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-पुरिस०-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। सादासाद०-चदुणोक० सिया० उक्क०। णामाणं सत्थाण०भंगो। एवं देवगदि० ४।

३९८. तित्थ० हेट्ठा उवरिं देवगदिभंगो। णामाणं सत्थाण०भंगो।

३९९. उच्चा० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। थीणगिद्धि०३-सादासाद०-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-चदुसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दुस्सर० सिया० उक्क०। छदंस०-बारसक०-भय-दु० णि० बं० णि० तं०तु० अणंतभागूणं बं०। पंचणो० सिया० तं०तु० अणंतभागूणं बं०। मणुस०-ओरालि०-

शरीर, पाँच संस्थान, औदारिकशरीरआङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस आदि चार युगल, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग, दुःस्वर अनादेय और निर्माणकी मुख्यतासे नामकर्मकी प्रकृतियोंके पूर्वकी और बादकी प्रकृतियोंका भङ्ग तिर्यञ्चगतिकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान है। तथा नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग अपने-अपने स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इतनी विशेषता है कि चार संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेदका कदाचित् बन्ध करता है जो इसका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

३९७. देवगतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार देवगति-चतुष्ककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

३९८. तीर्थङ्कर प्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी और बादकी प्रकृतियोंका भङ्ग देवगतिकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।

३९९. उच्चगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, सातावेदनीय, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, चार संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पाँच नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और

हुंड०-ओरालि०अंगो०-असंप०-मणुसाणु०-थिरादितिण्णियु०-दूभग-अणादें० सिया० संखेंज्जदिभागूणं बं०। देवगदि०४-समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें० सिया० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं बं०। [पंचिदि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णि० बं० णि० संखेंज्जदिभागूणं बं०]। तित्थ० सिया० उक्क०।

४००. वेउव्वि०-वेउव्वि०मि० देवोघं। आहार०-आहारमि० सव्वट्ठ०भंगो। णवरि अप्पप्पणो पाओंग्गाओ पगदीओ कादव्वाओ।

४०१. कम्मइ० आभिणि० उक्क० पदे०बं० चदुणा[1]०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। थीणगिद्धि०३-सादासाद०-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-आदाव०-दोगोद० सिया० उक्क०। छदंस०-बारसक०-भय-दु० णि० बं० तं०तु० अणंतभागूणं बं०। पंचणोक० सिया० तं०तु० अणंतभागूणं० बं०। तिण्णिगदि-पंचजादि-दोसरीर-

कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मनुष्यगति, औदारिकशरीर, हुण्डसंस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग और अनादेयका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। देवगतिचतुष्क, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीर्थङ्करप्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

४००. वैक्रियिककाययोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सामान्य देवोंके समान भङ्ग है। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सर्वार्थसिद्धिके देवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अपनी-अपनी प्रकृतियाँ करनी चाहिए।

४०१. कार्मणकाययोगी जीवोंमें आभिनिबोधिकज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, सातावेदनीय, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, आतप और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पाँच नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन गति, पाँच जाति, दो शरीर,

---

[1] आ०प्रतौ 'पदे०बं० पंचणा०' इति पाठः।

छस्संठा०-दोअंगो०-छस्संघ०-तिण्णिआणु०-पर०-उस्सा०-उज्जो०[1]-दोविहा०-तसादिदस-युग०-तित्थ० सिया० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं बं०। तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० णि० बं० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं बं०।एवं चदुणाणा०-दोवेदणी०[2]-पंचंत०।

४०२. णिद्दाणिद्दाए उक्क० पदे०बं० पंचणा०-दोदंसणा०-मिच्छ०-अणंताणु०४-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। एवं ओरालियमिस्स०भंगो।

४०३. णिद्दाए उक्क० पदे०बं० पंचणा०-पंचदंस०-बारसक०-पुरिस०-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। दोवेदणी०-चदुणोक० सिया० उक्क०। मणुसग०-ओरालि०-ओरालि०अंगो०-मणुसाणु०-थिरादितिण्णियुग० सिया० संखेंज्जदिभागूणं बं०। देवगदि०४-वज्जरि०-तित्थ० सिया० तं० तु० संखेंज्जदिभागूणं बं०। [पंचिंदि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-तस४-णिमि० णि० बं० संखेंज्जदिभागूणं बं०] समचदु०-पसत्थ० सुभग-सुस्सर-आदें० णि० बं० णि० तं० तु० संखेंज्जदिभागूणं

छह संस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस आदि दस युगल और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार चार ज्ञानावरण, दो वेदनीय और पाँच अन्तरायकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४०२. निद्रानिद्राका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, दो दर्शनावरण, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इस प्रकार यहाँ औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है।

४०३. निद्राका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, पाँच दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। देवगतिचतुष्क, वज्रर्षभनाराचसंहनन और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयका नियमसे बन्ध करता

---

[1] आ०प्रतौ 'उस्सा० आदाउज्जो०' इति पाठः। [2] आ०प्रतौ 'चदुणोक० दोवेदणी०' इति पाठः।

बं०। एवं चदुदंस०-बारसक०-सत्तणोक०।

४०४. इत्थि० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। छदंसणा०-बारसक०-भय-दु० णि० बं० अणंतभागूणं बं०। दोवेद०-दोगोद० सिया० उक्क०। चदुणोक० सिया० अणंतभागूणं बं०। दोगदि-दोसंठा०-असंपत्त०-दोआणु०-उज्जो०-पसत्थ०-थिरादितिण्णियुग०-सुभग-सुस्सर-आदें० सिया० संखेंज्जदिभागूणं बं०। चदुसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दुस्सर० सिया० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं[1] बं०। सेसाणं णियमा संखेंज्जदिभागूणं बं०।

४०५. तिरिक्ख० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-णवुंस०-णीचा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। छदंस०-बारसक०-भय-दु० णि० बं० णि० अणंतभागूणं बं०। दोवेदणी० सिया० उक्क०। चदुणोक० सिया० अणंत-

है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार चार दर्शनावरण, बारह कषाय, और सात नोकषायकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४०४. स्त्रीवेदका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय और दो गोत्र का कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो गति, दो संस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, दो आनुपूर्वी, उद्योत, प्रशस्त विहायोगति, स्थिर आदि तीन युगल, सुभग, सुस्वर और आदेयका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। शेष प्रकृतियोंका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

४०५. तिर्यञ्चगतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क नपुंसकवेद, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीयका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थानसन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार मनुष्यगतिकी,

---

[1] आ०प्रतौ 'सिया० संखेज्जदिभागूणं' इति पाठः।

भागूणं बं० । णामाणं सत्थाण०भंगो । एवं मणुसग० । पंचजादि-ओरालि०-पंचसंठा०-ओरालि०अंगो०पंचसंघ०-दोआणु०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो० -अप्पसत्थ०-तसादिचदु-युगल-थिरादितिण्णियुग०-दूभग-दुस्सर-अणादें०. हेट्ठा उवरिं० तिरिक्खगदिभंगो । णवरि चदुसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दुस्सर० इत्थि०-णवुंस०-उच्चा० सिया० उक्क० । पुरिस० सिया० अणंतभागूणं बं० । णामाणं सत्थाण०भंगो ।

४०६. देवग० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-पुरिस०-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । दोवेदणी०-चदुणोक० सिया० उक्क० । वेउव्वि-०समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-देवाणुपु०-पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर-आदेँज्ज० णियमा उक्कस्सं । एवं देवगदिभंगो वेउव्वि०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-देवाणु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें० ।

४०७. तित्थ० उक्क० पदे०बं० हेट्ठा उवरिं देवगदिभंगो । णामाणं सत्थाण०भंगो।

४०८. उच्चा० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । थीणगिद्धि०३-दोवेदणी०-मिच्छत्त०-अणंताणु०४-इत्थि०णवुंस०-चदुसंठा०-पंचसंघ०-

मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। पाँच जाति, औदारिकशरीर, पाँच संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, पाँच संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, त्रसादि चार युगल, स्थिरादि तीन युगल, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयकी मुख्यतासे नामकर्मसे पूर्वकी और बादकी प्रकृतियोंका भङ्ग तिर्यञ्चगतिकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान है। इतनी विशेषता है कि चार संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, और उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेदका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।

४०६. देवगतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। वैक्रियिकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार देवगतिके समान वैक्रियिक शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयकी मुख्यतासे सन्निकर्ष समझना चाहिए।

४०७. तीर्थङ्करप्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी और बादकी प्रकृतियोंका भङ्ग देवगतिकी मुख्यतासे इन प्रकृतियोंके कहे गए सन्निकर्षके समान है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।

४०८. उच्चगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, चार संस्थान, पाँच संहनन,

अप्पसत्थ०-दुस्सर० सिया० उक्क०। छदंस०-बारसक०भय-दु० णि० बं० तं०तु० अणंतभागूणं बं०। पंचणोक०[1] सिया० तं०तु० अणंतभागूणं बं०। पंचिंदि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णि० बं० णि० संखेंज्जदिभागूणं बं०। मणुस[2]०-ओरालि०-हुंड०-ओरालि०अंगो०-असंपत्त०-मणुसाणु०-थिरादितिण्णियुग०-दूभग-अणादें० सिया० संखेंज्जदिभागूणं बं०। देवगदि०४-समचदु०-वज्जरि०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें०-तित्थ० सिया० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं बं०।

४०९. इत्थिवे० आभिणि० उक्क० पदे०बं० चदुणा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। थीणगिद्धि०३-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-णिरय०-णिरयाणु०-आदाव०-तित्थ०-दोगोद० सिया० उक्क०। णिद्दा-पयला-अट्ठक०-छण्णोक० सिया० तं० तु० अणंतभागूणं बं०। चदुसंज० णि० बं० णि० तं०तु० अणंतभागूणं बं०। पुरिस०-जस०

अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेश बन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पाँच नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे इनका अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मनुष्यगति, औदारिकशरीर, हुण्डसंस्थान, औदारिक शरीर आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग और अनादेयका कदाचित् बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। देवगतिचतुष्क, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर आदेय और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

४०९. स्त्रीवेदी जीवोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप, तीर्थङ्कर और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा, प्रचला, आठ कषाय और छह नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और

---

[1] ता०आ०प्रत्योः 'बं०। चदुणोक०' इति पाठः। [2] आ०प्रतौ 'अणंतभागूणं बं० मणुस०' इति पाठः।

सिया० तं० तु० संखेँज्जगुणहीणं बं०। तिण्णिगदि-पंचजादि-पंचसरीर-छस्संठा०-तिण्णिअंगो०-छस्संघ०-वण्ण०४-तिण्णिआणु०-अगु०४-उज्जो०-दोविहा०-तसादिणवयुग०-अजस०-णिमि० सिया० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं बं०। एवं चदुणा०-पंचंत०।

४१०. णिद्दाणिद्दाए उक्क० पदे०बं० तिरिक्खगदिभंगो। णवरि पुरिस०-जस० सिया० संखेँज्जगुणहीणं० बं०। एवं० दोदंस०-मिच्छ०-अणंताणु०४।

४११. णिद्दाए उक्क० पदे०बं० पंचणा०-पयला०भय-दु०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। चदुदंस० णि० बं० अणंतभागूणं बं०। सादासाद०-अपच्चक्खाण०४-चदुणोक०-वज्जरि०-तित्थ० सिया० उक्क०। पच्चक्खाण०४ सिया० तं०तु० अणंतभागूणं बं०। चदुसंज० णि० बं० णि० तं०तु० अणंतभागूणं बं०। पुरिस० णि०

अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेद और यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन गति, पाँच जाति, पाँच शरीर, छह संस्थान, तीन आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, वर्णचतुष्क, तीन आनुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसादि नौ युगल, अयशःकीर्ति और निर्माणका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार चार ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४१०. निद्रानिद्राका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका भङ्ग तिर्यञ्चगतिमें इस प्रकृतिकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान है। इतनी विशेषता है कि यह पुरुषवेद और यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातगुणाहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार दो दर्शनावरण, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४११. निद्राका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, प्रचला, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार दर्शनावरणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, चार नोकषाय, वज्रर्षभनाराच संहनन और तीर्थङ्करप्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। संज्वलनचतुष्कका नियमसे बन्ध करता है। जो उत्कृष्ट भी करता है और अनुत्कृष्ट भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट करता है तो नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेश बन्ध करता है। पुरुषवेदका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

बं० संखेँज्जगुणहीणं बं० । मणुस०-ओरालि०-ओरालि०अंगो०-मणुसाणु०-थिराथिर-सुभासुभ-अजस० सिया० संखेँज्जदिभागूणं बं० । पंचिंदि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णि० बं० संखेँज्जदिभागूणं बं० । समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें० णि० बं० णि० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं बं० । देवगदि०४-आहार०२ सिया० संखेँज्जदिभागूणं बं० । जस० सिया० संखेँज्जगुणहीणं बं० । एवं पयला० ।

४१२. चक्खुदं० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-तिण्णिदंस०-सादा०-चदुसंज०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । पुरिस०-जस० णि० बं० णि० तं०तु० संखेँज्जगुणहीणं बं० । हस्स-रदि-भय-दु०-तित्थ० सिया० उक्क० । वेउव्वि०४-आहार०२-समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें० सिया० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं बं० । पंचिंदि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-थिर-सुभ०-णिमि० सिया० संखेँज्जदिभागूणं बं० । एवं तिण्णिदंस० ।

मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। देवगतिचतुष्क और आहारकद्विकका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार प्रचलाकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४१२. चक्षुदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, तीन दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेद और यशःकीर्तिका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। हास्य, रति, भय, जुगुप्सा और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। वैक्रियिकचतुष्क, आहारकद्विक, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, स्थिर, शुभ और निर्माणका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार तीन दर्शनावरणकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४१३. साद० उक्क० पदे०बं० आभिणि०भंगो। णवरि णिरयगदिपगदीओ वज्ज। अप्पसत्थ०-दुस्सर० सिया० संखेंज्जदिभागूणं बं०।

४१४. असाद० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-णिरय०-णिरयाणु०-आदाव०-तित्थ०-दोगोद० सिया० उक्क०। चदुदंस० णि० बं० णि० अणु० अणंतभागूणं बं०। दोण्णिदंस०-चदुसंज०-भय-दु० णि० बं० णि० तं०तु० अणंतभागूणं बं०। अट्ठक०-चदुणोक० सिया० तं०तु० अणंतभागूणं बं०। पुरिस०-जस० सिया० संखेंज्जदिगुणहीणं०। तिण्णिगदि-पंचजादि[1]-दोसरीर-छस्संठा०-दोअंगो०-छस्संघ०-तिण्णिआणु०-पर०-उस्सा०-उज्जो०-दोविहा०-तसादिणवयुग०-अजस० सिया० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं बं०। तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० णि० बं० णि० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं बं०।

४१३. सातावेदनीयका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका भङ्ग आभिनिबोधिक ज्ञानावरणकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान है। इतनी विशेषता है कि नरकगति सम्बन्धी प्रकृतियोंको छोड़ देना चाहिये। तथा अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

४१४. असातावेदनीयका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप, तीर्थङ्कर और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार दर्शनावरणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। आठ कषाय और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेद और यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन गति, पाँच जाति, दो शरीर, छह संस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस आदि नौ युगल और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

---

[1] आ०प्रतौ 'तिण्णिगदि चदुजादि' इति पाठः।

४१५. अपच्चक्खाणकोध० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-णिद्दा-पयला-तिण्णिक०-भय-दु०-पंचंत० णि० बं० उक्क० । चदुदंस०-अट्ठक० णि० बं० णि० अणंतभागूणं बं० । पुरिस०-जस० णि० बं० णि० संखेँज्जदिगुणहीणं० । णवरि जस० सिया० । सादासाद०-चदुणोक०-[वज्जरि०-] तित्थ० सिया० उक्क० । मणुस०-ओरालि०-ओरालि०अंगो०-मणुसाणु०-थिराथिर-सुभासुभ-अजस० सिया० संखेँज्जदिभागूणं बं० । देवगदि०४ सिया० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं बं० । पंचिंदि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णि० बं० संखेँज्जदिभागूणं बं० । समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदेँ० णि० बं० णि० तं० तु० संखेँज्जदिभागूणं बं० । एवं तिण्णिक० । पच्चक्खाणकोध० उक्क० अपच्चक्खाणभंगो । णवरि मणुसगदिपंचगं वज्ज । एवं तिण्णिक० ।

४१६. कोधसंज० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-तिण्णिसंज०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । णिद्दा-पयला-दोवेदणी०-चदुणोक०-तित्थ० सिया० उक्क० । चदुदंस०

४१५. अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, निद्रा, प्रचला, तीन कषाय, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार दर्शनावरण और आठ कषायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेद और यशःकीर्तिका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यात गुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इतनी विशेषता है कि यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय, वज्रर्षभनाराचसंहनन और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यात-भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। देवगतिचतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण मान आदि तीन कषायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। प्रत्याख्यानावरणक्रोधके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धकी मुख्यतासे सन्निकर्ष अप्रत्याख्यानावरणक्रोधकी मुख्यतासे कहे गए सन्निकर्षके समान है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगतिपञ्चकको छोड़कर यह सन्निकर्ष कहना चाहिए। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण मान आदि तीन कषायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष कहना चाहिए।

४१६. क्रोधसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, तीन संज्वलन, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा, प्रचला, दो वेदनीय, चार नोकषाय और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार

णि० बं० णि० तं०तु० अणंतभागूणं बं० । पुरिस० णि० बं० तं०तु० संखेँज्जदिगुणहीणं० । देवगदि०४-आहार०२-समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें० सिया० बं० तं० तु० संखेँज्जदिभागूणं बं० । पंचिंदि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-अजस०-णिमि० सिया० संखेँज्जदिभागूणं बं० । जस० सिया० तं०तु० संखेँज्जगुणही० । एवं तिण्णिसंज० । इत्थि०-णवुंस० तिरिक्ख०भंगो । णवरि जस० सिया० संखेँज्जगुणहीणं० ।

४१७. पुरिस उक्क० पदे०बं० पंचणा०-चदुदंस०-सादा०-चदुसंज०-जस०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० ।

४१८. हस्स० उक्क० पदे०बं० पंचणा० रदि-भय-दु०[1]-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । णिद्दा-पयला-सादासाद०-अपच्चक्खाण०४-वज्जरि०-तित्थ०[2] सिया०

दर्णनावरणका नियमसे बन्ध करता है, किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेदका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इसका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। देवगतिचतुष्क, आहारकद्विक, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, अयशःकीर्ति और निर्माणका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार मान आदि तीन संज्वलनोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी मुख्यतासे सन्निकर्ष तिर्यञ्चोंमें इनकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

४१७. पुरुषवेदका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

४१८. हास्यका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, रति, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा, प्रचला, सातावेदनीय, असातावेदनीय, अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क, वज्रर्षभनाराचसंहनन और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो

---

[1] ता०प्रतौ 'रा (र) दिभयदु०' इति पाठः । [2] ता०प्रतौ 'वजरि० । तित्थ०' इति पाठः ।

उक्क० । चदुदंस०-चदुसंज० णि० बं० णि० तं०तु० अणंतभागूणं बं० । पच्चक्खाण०४ सिया० तं०तु० अणंतभागूणं बं० । पुरिस० णियमा संखेँज्जगुणहीणं बं० । मणुस०-ओरालि०-ओरालि०अंगो०-मणुसाणु०-थिराथिर-सुभासुभ-अजस० सिया० संखेँज्जदिभागूणं बं० । देवगदि०४-आहार०२ सिया० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं बं० । पंचिंदि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि० संखेँज्जदिभागूणं[1] बं० । जस० सिया० तं०तु० संखेँज्जगुणही० । एवं रदीए ।

४१९. अरदि० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-णिद्दा-पयला-सोग-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । चदुदंस० णि० बं० अणंतभागूणं बं० । दोवेद०-अपच्चक्खाण०४-तित्थ० सिया० उक्क० । पच्चक्खाण०४ सिया० तं०तु० अणंतभागूणं

इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार दर्शनावरण और चार संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेदका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। देवगति चतुष्क और आहारकद्विकका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार रतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४१९. अरतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, निद्रा, प्रचला, शोक, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार दर्शनावरणका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध

---

[1] ता०प्रतौ 'णिमि० सिया० संखेज्जदिभा०' इति पाठः।

बं० । चदुसंज० णि० बं० णि० तं०तु० अणंतभागूणं बं० । पुरिस० णि० संखेँज्जगुणही० । णामाणं ओघभंगो । णवरि वज्जरि०-तित्थयं०[1] सिया० उक्कस्सं० । एवं सोग० ।

४२०. णिरयाउ० उक्क० पंचणा०-णवदंस०-असाद०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-णिरयगदिअट्ठावीस-णीचा०-पंचंत० णि० संखेँज्जदिभागूणं बं० । एवं सव्वाउगाणं । णवरि पुरिस०-जस० सिया० संखेँज्जगुणही० । तिण्णिगदि-पंचजादि० सव्वाओ णामपगदीओ पंचिंदियतिरिक्खभंगो । णवरि जस० एसिं० आगच्छदि तेसिं संखेँज्जगुणहीणं बं० ।

४२१. देवग० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-उच्चा०-पंचंत० णि० उक्क० । थीणगिद्धि०३-दोवेद०-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-आहार०२ सिया० उक्क० । णिद्दा-पयला-अट्ठक०-चदुणोक० सिया० तं०तु० अणंतभागूणं बं० । [चदुदंस० णि० बं०

भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेदका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि वज्रर्षभनाराचसंहनन और तीर्थङ्करप्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार शोककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४२०. नरकायुका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, नरकगति आदि अट्ठाईस प्रकृतियाँ, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार सब आयुओंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पुरुषवेद और यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन गति और पाँच जाति आदि सब नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। इतनी विशेषता है कि यशःकीर्ति जिनके आती है, उनका संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

४२१. देवगतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद और आहारकद्विकका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा, प्रचला, आठ कषाय और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार दर्शनावरणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध

---

[1] ता०प्रतौ 'वज्जरि० । तित्थय०' इति पाठः ।

णि० तं०तु० अणंतभागूणं ।] पुरिस०-जस० सिया० संखेँज्जगुणहीणं० । [चदुसंज०-] भय-दु० णि० बं० णि० तं०तु० अणंतभागूणं बं० । णामाणं सत्थाण०भंगो ।

४२२. आहार० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-सादा०-चदुसंज०-हस्स-रदि-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० उक्क० । णिद्दा-पयला सिया० उक्क० । चदुदंस णि० बं० णि० तं०तु० अणंतभागूणं बं० । [पुरिस० णि० बं० णि० संखेज्जगुणहीणं ।] णामाणं सत्थाण०भंगो । एवं आहारंगो० ।

४२३. वज्जरि० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । थीणगिद्धि०३-[दोवेदणी०-] मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-चदुसंठा०-णीचुच्चा० सिया० उक्क० । णिद्दा-पयला-अपच्चक्खाण०४-[भय-दु०-] णि० तं तु० अणंतभागूणं बं० । चदुदंस०-अट्ठका० णि० बं० णि० अणु० अणंतभागूणं बं० । पुरिस०-जस०

करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेद और यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार संज्वलन, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।

४२२. आहारकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, साता-वेदनीय, चार संज्वलन, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा और प्रचलाका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार दर्शनावरणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेदका नियमसे बन्ध करता है। जो नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार आहारकशरीर आङ्गोपाङ्गकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४२३. वज्रर्षभनाराचसंहननका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, चार संस्थान, नीचगोत्र और उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा, प्रचला, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार दर्शनावरण और आठ कषायका नियमसे बन्ध करता है। जो नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेद और यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध

सिया० संखेंज्जगुणहीणं। चदुणोक० सिया० तं० तु० अणंतभागूणं बं०। णामाणं सत्थाण०भंगो।

४२४. तित्थ० उक्क० प०बं० पंचणा०-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। णिद्दा-पयला-दोवेदणी०-अपच्चक्खाण०४-चदुणोक० सिया० उक्क०। चदुदंस०-चदुसंज० णि० बं० णि० तं०तु० अणंतभागूणं बं०। पच्चक्खाण०४ सिया० तं०तु० अणंतभागूणं०। पुरिस० णि० बं० संखेंज्जगुणही०। जस० सिया० संखेंज्जगुणही०। णामाणं सत्थाण०भंगो।

४२५. उच्चा० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। थीणगिद्धि०३-दोवेदणी०-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-चदुसंठा०-चदुसंघ०-तित्थ० सिया० उक्क०। णिद्दा-पयला-अट्ठक०-छण्णोक० सिया० तं०तु० अणंतभागूणं बं०। चदुदंस०-चदुसंज० णि० बं० णि० तं०तु० अणंतभागूणं बं०। पुरिस०-

---

करता है। चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।

४२४. तीर्थङ्करप्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा, प्रचला, दो वेदनीय, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार दर्शनावरण और चार संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेदका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे इसका संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।

४२५. उच्चगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, चार संस्थान, चार संहनन और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा, प्रचला, आठ कषाय और छह नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार दर्शनावरण और चार संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट

जस० सिया० तं०तु० संखेँज्जगुणहीणं०[1] बं० । मणुस०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-ओरालि०अंगो०-असंपत्त०-वण्ण०४-मणुसाणु०-अगु०४-अप्पसत्थ०-तस०४-थिरादितिण्णियुग०-दूभग-दुस्सर-अणादें०-अजस०-णिमि० सिया० संखेँज्जदिभागूणं बं० । देवगदि सह गदाओ[2] छप्पगदीओ समचदु०-[वज्जरि०-] पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें० सिया० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं बं० । णीचागोदं ओघं । णवरि चदुसंज० कोधसंज०भंगो । एवं इत्थिवेदभंगो पुरिस-णवुंसगेसु । णवरि आभिणि० उक्क० पदे०बं० तित्थ० सिया० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं बं० । एवमेदेसिं तित्थयरं आगच्छदि तेसिं एदेण कमेण णेदव्वं । अपगदवे० ओघं० ।

४२६. कोधकसाईसु आभिणि० उक्क० पदे०बं० इत्थिवेदभंगो[3] । णवरि

प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेद और यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, अप्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति और निर्माणका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। देवगतिके साथ बँधनेवाली छह प्रकृतियाँ देवगति, वैक्रियिक शरीर, आहारकशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, आहारकशरीर आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नीचगोत्रकी मुख्यतासे सन्निकर्ष ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि चार संज्वलनका भङ्ग क्रोधसंज्वलनके समान है। इसी प्रकार स्त्रीवेदी जीवोंके समान पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव तीर्थङ्करप्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार जिनके तीर्थङ्कर प्रकृति आती है, उनका इसी क्रमसे सन्निकर्ष ले जाना चाहिए। अपगतवेदी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है।

४२६. क्रोधकषायवाले जीवोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि चार संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी

---

[1] ता०आ० प्रत्यो 'संखेज्जदिगुणहीणं' इति पाठः । [2] ता०प्रतौ 'सहगा (ग) दाओ' इति पाठः ।
[3] ता०आ० प्रत्यो 'पदे०बं० एदमदंडओ इत्थिवेदभंगो' इति पाठः ।

चदुसंज० णि० बं० णि० तं० तु० दुभागूणं बं०। तित्थ० सिया० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं[1] बं०। एवं चदुणा०-पंचंत०।

४२७. थीणगिद्धि०३दंडओ इत्थिवेदभंगो। णवरि संज० दुभागूणं। णिद्दा-पयलाबंधओ इत्थिवेदभंगो०। णवरि चदुसंज० णि० दुभागूणं बं०। वज्जरि० तित्थ० आभिणि०भंगो। चक्खुदं० उक्क० पदे०बं० इत्थिवेदभंगो। णवरि चदुसंज० णि० तं०तु० दुभागूणं बं०। एवं तिण्णं दंस०। सादा० उक्क० पदे०बं० इत्थि० भंगो। णवरि चदुसंज० णि० बं० तं०तु० दुभागूणं। तित्थकरं सिया० तं० तु० संखेँज्जदिभागूणं बं०। असाद० इत्थि०भंगो। चदुसंज० णि० दुभागूणं बं०। तित्थ० सिया० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं[2] बं०। अट्ठक० इत्थि०भंगो। णवरि चदुसंज०

करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार चार ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४२७. स्त्यानगृद्धित्रिकदण्डकका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि यह संज्वलनका दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा और प्रचलाका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि यह चार संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। वज्रर्षभनाराचसंहनन और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग आभिनिबोधिक ज्ञानावरणके समान है। चक्षुदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि चार संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार तीन दर्शनावरणकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। सातावेदनीयका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि वह चार संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। असातावेदनीयकी मुख्यतासे सन्निकर्ष स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। वह चार संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट बन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। आठ कषायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता

---

[1] आ०प्रतौ 'सिया० संखेज्जदिभागूणं' इति पाठः। [2] आ०प्रतौ 'सिया० सखेज्जदिभागूणं' इति पाठः।

णिय० दुभागूणं बं०। वज्जरि०-तित्थ० आभिणि०भंगो। कोधसंज० उक्क० पदे०बं[1]० पंचणा०-चदुदंस०-सादा०-तिण्णिसंज०-जस०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। एवं तिण्णिसंज०। इत्थि०-णवुंस० इत्थि०भंगो। णवरि चदुसंज० णि० बं० णि० अणु० दुभागूणं०। पुरिस० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-चदुदंस०-सादा०-जस०-उच्चा०-पंचंत० णि[2]० उक्क०। चदुसंज० णि० बं० दुभागूणं०। हस्स-रदिदंडओ इत्थिवेदभंगो। णवरि चदुसंजलणाणं[3] णि० दुभागूणं बं०। वज्जरि[4]०-तित्थ० आभिणि०भंगो। एवं पंचणोक०। चदुआउ० इत्थिवेदभंगो। णवरि[5] चदुसंज० णि० संखेंज्जगुणही०। एसिं पुरिस[6]०-जस० आगच्छदि तेसिं सिया० संखेंज्जगुणहीणं०। णामा-गोदाणं ओघभंगो। णवरि चदुसंज० णि० बं० दुभागूणं बं०। पुरिस०-जस०

है कि वह चार संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। वज्रर्षभनाराचसंहनन और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग आभिनिबोधिक ज्ञानावरणके समान है। क्रोधसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, तीन संज्वलन, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार तीन संज्वलनोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी मुख्यतासे सन्निकर्ष स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि वह चार संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेदका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। हास्य-रतिदण्डकका मुख्यतासे सन्निकर्ष स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि चार संज्वलनोंका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। वज्रर्षभनाराचसंहनन और तीर्थङ्करप्रकृतिका भङ्ग आभिनिबोधिकज्ञानीके समान है। इसी प्रकार पाँच नोकषायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। चार आयुओंकी मुख्यतासे सन्निकर्षका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि चार संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। जिनके पुरुषवेद और यशःकीर्ति आती हैं, उनका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्म और गोत्रकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि चार संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेद और यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है या नियमसे बन्ध करता है। बन्धके समय इनका संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता हैं। इतनी और विशेषता है कि यशः-

---

[1] ता०प्रतौ 'कोधसंज० ज० (उ०) बं०' इति पाठः। [2] ता०आ० प्रत्योः 'पंचंत० णवरि ज० णि०' इति पाठः। [3] ता०प्रतौ 'चदुसंजया (लणा) णं' आ०प्रतौ 'चदुसंजदाणं' इति पाठः। [4] ता०प्रतौ 'दुभं (भागू०)। वज्जरि०' इति पाठः। [5] ता०प्रतौ 'चदुआउ० सीदिभंगो (?) णवरि' आ०प्रतौ 'चदुआउ० सीदिभंगो। णवरि' इति पाठः। [6] आ०प्रतौ 'एसिं पुरिस० पुरिस०' इति पाठः।

सिया० वा णियमा वा संखेँज्जगु० । णवरि जस०-उच्चा० उक्क०[1] चदुसंज० णि० तं०तु० दुभागूणं बं० ।

४२८. माणकसाइसु आभिणि० उक्क० बं० चदुणा०-पंचंत० णि० बं० उक्क० । थीणगिद्धि०३-दोवेद०-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-णिरय०-णिरयाणु०-आदाव०-दोगोद० सिया० उक्क० । णिद्दा-पयला-अट्ठक०-छण्णोक० सिया० तं०तु० अणंतभागूणं बं० । चदुदंस० णि० बं० तं० तु० अणंतभागूणं बं० । कोधसंज० सिया० तं० तु० दुभागूणं बं० । तिण्णिसंज० णि० बं० णि० तं०तु० विट्ठाणपदिदं बं० संखेँज्जदिभागहीणं बं० सादिरेयं दिवड्ढभागूणं बं० । पुरिस०-जस० सिया० तं० तु० संखेँज्जगुणही० । तिण्णिगदि-पंचजादि-तिण्णिसरीर-छस्संठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-तिण्णिआणु०-पर०-उस्सा०-उज्जो०-दोविहा०-तसादिणवयुग०-अज०सिया० तं०

कीर्ति और ऊँचगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

४२८. मानकषायवाले जीवोंमें आभिनिबोधिकज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा, प्रचला, आठ कषाय और छह नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार दर्शनावरणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। क्रोधसंज्वलनका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इनका दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन संज्वलनोंका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे दो स्थान पतित अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है, संख्यात भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है और साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेद और यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन गति, पाँच जाति, तीन शरीर, छह संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस आदि नौ युगल और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध

---

[1] ता०आ०प्रत्योः 'णामागोदाणं ओघभंगो। पुरिस० जस० सिया० वा णियमा वा संखेज्जगु०। णवरि चदुदंस० णि बं० दुभागूणं बं०। णवरि चदु०संज उच्चा० उक्क०' इति पाठः।

तु० संखेंज्जदिभागूणं बं०। वेउव्वि०-आहार०२-[वण्ण४-अगु०-उप०-] णिमि०-तित्थ० सिया० तं० तु० संखेंज्जदिभागूणं बं०। वेउव्वि०अंगो० सिया० तं०तु० सादिरेयं दिवड्ढभागूणं बं०। एवं चदुणाणा०-पंचंत[1]०।

४२९. णिद्दाणिद्दाए उक्क० पदे०बं० पंचणा०-दोदंस०-मिच्छ०-अणंताणु०४-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। छदंस०-अट्ठक०-भय-दु० णि० बं० अणंतभागूणं० बं०। दोवेदणी०-इत्थि०-णवुंस०-वेउव्वियछ०-आदाव०-दोगोद० सिया० उक्क०। कोधसंज० णि० बं० णि० अणु० दुभागूणं० बं०। तिण्णिसंज० णि० बं० णि० सादिरेयं दिवड्ढभागूणं० बं०। पुरिस०-जस० सिया० संखेंज्जगुणहीणं०। चदुणोक० सिया० अणंतभागूणं बं०। दोगदि-पंचजादि-ओरालि०-छसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-दोआणु०-पर०-उस्सा०-उज्जो०-[दोविहा०-]तसादिणवयुग०-अजस०-सिया०

करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। वैक्रियिकशरीर, आहारकद्विक, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और तीर्थङ्करप्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। वैक्रियिक शरीर आङ्गोपाङ्गका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इसका नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार चार ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४२९. निद्रानिद्राका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, दो दर्शनावरण, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, आठ कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, वैक्रियिकषट्क, आतप और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। क्रोधसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन संज्वलनोंका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेद और यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो गति, पाँच जाति, औदारिकशरीर, छह संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस आदि नौ युगल और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता

---

[1] ता०आ०प्रत्योः 'चदुणोक० पंचंत०' इति पाठः।

तं तु० संखेंज्जदिभागूणं[1] बं०। तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० णि०[2] बं० णि० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं बं०। एवं दोदंस०-मिच्छ०-अणंताणु०४।

४३०. णिद्दाए उक्क० पदे०बं०[3] पंचणा०-पयला-भय-दु०-उच्चागो०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। चदुदंस० णि० बं० णि० अणंतभागूणं बं०। दोवेदणी०-अपच्चक्खाण०४-चदुणोक० सिया० उक्क०। पच्चक्खाण०४ सिया० तं० तु० अणंतभागूणं बं०। कोधसंज० णि० बं० दुभागूणं बं०। तिण्णिसंज० णि० बं० सादिरेयं दिवड्ढभागूणं बंधदि। पुरिस० णि० संखेंज्जगुणही०। मणुस०-ओरालि०-ओरालि०-अंगो०-मणुसाणु०-थिराथिर-सुभासुभ-अज० सिया० संखेंज्जदिभागूणं बं०। देवगदि-वेउव्वि०-आहार०-आहार०अंगो०[4]-देवाणु०-तित्थ० सिया० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं बं०। पंचिंदि०-तेजा०-क०-वण्ण०४ अगु०४-तस०४-णिमि० णि० बं० णि०

है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार दो दर्शनावरण, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी मुख्यतासे सन्निकर्ष कहना चाहिए।

४३०. निद्राका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, प्रचला, भय, जुगुप्सा उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार दर्शनावरणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धं करता है। क्रोधसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेदका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। देवगति, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, आहारकशरीर आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका

---

[1] आ०प्रतौ 'सिया०.संखेजदिभागूणं' इति पाठः। [2] ता० प्रतौ 'णिमि० णिमि० (?) णि०' इति पाठः। [3] ता०प्रतौ 'णिद्दाए जह० (उ०) बं०' इति पाठः। [4] ता०प्रतौ 'वेउ० [अंगो०] आहारंगो०' आ०प्रतौ 'वेउव्वि० आहार०अंगो०' इति पाठः।

संखेंज्जदिभागूणं बं०। समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें० णि० बं० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं बं०। वेउव्वि०अंगो० सिया० तं०तु० सादिरेयं दुभागूणं बं०। वज्जरि० सिया० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं बं०। जस०[1] सिया० संखेंज्जगु०। एवं पयला०।

४३१. चक्खुदं० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-तिण्णिदंस०-सादा०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। कोधसंज० सिया० तं०तु० संखेंज्जगु०। तिण्णिसंज० णि० बं० णि० तं०तु० विट्ठाणपदिदं० संखेंज्जदिभागूणं बं० सादिरेयं दिवड्ढभागूणं बं०। पुरिस०-[जस०] सिया० तं०तु० संखेंज्जगुणही०। हस्स-रदि-भय-दु० सिया० उक्क०। देवगदि०-वेउव्वि०-आहार०-समचदु०-आहारंगो०-देवाणु०[2]-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-

नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इसका नियमसे साधिक दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। वज्रर्षभनाराचसंहननका कदाचित बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार प्रचलाकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४३१. चक्षुदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, तीन दर्शनावरण, सातावेदनीय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। क्रोधसंज्वलनका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इसका संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे दो स्थानपतित, संख्यातभागहीन और साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेद और यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। हास्य, रति, भय और जुगुप्साका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। देवगति, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, समचतुरस्र संस्थान, आहारकशरीर आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है

---

[1] ता०प्रतौ 'वेउव्वि०अंगो० सिया० तं तु० संखेज्जदिभा०। जस०' इति पाठः। [2] ता०प्रतौ 'आहारंगो०। देवाणु०' इति पाठः।

आदेँ०-तित्थ० सिया० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं ब०। पंचिंदि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-तस ४-थिर[1]-सुभ०-[णिमि०] सिया० संखेँज्जदिभागूणं ब०। वेउव्वि०अंगो० सिया० तं०तु० सादिरयं दुभागूणं०। एवं तिण्णिदंस०।

४३२. सादा०[2] आभिणि०भंगो। णवरि णिरय०-णिरयाणु० वज्ज। अप्पसत्थ०-दुस्सर० सिया० संखेँज्जदिभागूणं ब०।

४३३. असादा० उक्क० पदे०ब० पंचणा०-पंचंत० णि० ब० णि० उक्क०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-णिरय०-णिरयाणु०-आदाव०-दोगोद०[3] सिया० उक्क०। णिद्दा-पयला-भय-दु० णि० बं० णि० तं०तु० अणंतभागूणं ब०। चदुदंस० णि० बं० णि० अणंतभागूणं बं०। अट्ठक०-चदुणोक०

और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, स्थिर, शुभ और निर्माणका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इसका नियमसे साधिक दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अचक्षुदर्शनावरण आदि तीन दर्शनावरणकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४३२. सातावेदनीयकी मुख्यतासे सन्निकर्षका भङ्ग आभिनिबोधिकज्ञानावरणकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान है। इतनी विशेषता है कि नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीको छोड़कर सन्निकर्ष कहना चाहिए। अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

४३३. असातावेदनीयका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा, प्रचला, भय, और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार दर्शनावरणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। आठ कषाय और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट

---

[1] आ० प्रतौ 'तस थिर' इति पाठः। [2] ता०प्रतौ 'तिण्णिदंस० साद०' इति पाठः। [3] ता०आ० प्रत्योः 'आदाव तित्थ दोगोद०' इति पाठः।

सिया० तं०तु० अणंतभागूणं ब०। कोधसंज० णि० ब० णि० दुभागूणं ब०। तिण्णिसंज० णि० ब० णि० सादिरेयं दिवड्ढभागूणं ब०। पुरिस०-जस० सिया० संखेंज्जगु०। तिण्णिगदि-पंचजादि-दोसरीर-छस्संठा०-दोअंगोवंग०-छस्संघ०-तिण्णिआणु०-पर०-उस्सा०-उज्जो०-दोविहा०-तसादिणवयुग०-अज० सिया० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं ब०। तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० णि० ब०[1] णि० संखेंज्जदिभागूणं। तित्थ० सिया० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं ब०।

४३४. अपच्चक्खाणकोध० उक्क० पदे०ब० पंचणा०-णिद्दा-पयला-तिण्णिक०-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० ब० णि० उक्क०। चदुदंस०-पच्चक्खाण०४ णि० ब० णि० अणंतभागूणं। दोवेद०-चदुणोक० सिया० उक्क०। कोधसंज० णि० ब० दुभागूणं। तिण्णिसंज० णियमा सादिरेयं[2] दिवड्ढभागूणं०। पुरिस० णियमा संखेंज्जगुणहीणं। मणुस०-[ओरालि०]-ओरालि०अंगो०-मणुसाणु०-थिराथिर-सुभासुभ-

प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। क्रोधसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेद और यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन गति, पाँच जाति, दो शरीर, छह संस्थान, दो शरीरआङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस आदि नौ युगल और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

४३४. अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, निद्रा, प्रचला, तीन कषाय, भय, जुगुप्सा उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार दर्शनावरण और प्रत्याख्यानावरण चतुष्कका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। क्रोधसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेदका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग,

---

[1] ता०प्रतौ 'अगु० ४ उप० णि० बं०' इति पाठः। [2]. ता०प्रतौ 'कोधसंज० णिय० सादिरेयं' इति पाठः।

अजस० सिया० संखेँज्जदिभागूणं ब०। देवगदि०४ वज्जरि०-तित्थ० सिया० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं ब०। पंचिंदि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णि० ब० संखेज्जदिभागूणं ब०। समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदेँ० णि० ब० णि० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं ब०। जस० सिया० संखेँज्जगुणही०। एवं तिण्णिक०। एवं चेव पच्चक्खाण०४। णवरि मणुसगदिपंचगं वज्ज।

४३५. कोधसंज० उक्क० पदे०ब० पंचणा०-चदुदंसणा०-सादा०-जस०-उच्चा०-पंचंत० णि० ब० णि० उक्क०। तिण्णिसंज० णि० ब० णि० संखेँज्जदिभागूणं०।

४३६. माणसंज० उक्क० पदे०ब० पंचणा०-चदुदंस०-सादा०-दोसंज०-जस०-उच्चा०-पंचंत० णि० ब० णि० उक्क०। एवं दोसंज०।

४३७. इत्थि०[1] उक्क० पदे०ब० पंचणा०-थीणगि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-

मनुष्यगत्यानुपूर्वी, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। देवगतिचतुष्क, वज्रर्षभनाराचसंहनन और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण मान आदि तीन कषायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। प्रत्याख्यानावरणचतुष्ककी मुख्यतासे सन्निकर्ष इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगतिपञ्चकको छोड़कर सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४३५. क्रोधसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

४३६. मानसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, दो संज्वलन, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार दो संज्वलनकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४३७. स्त्रीवेदका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका

---

[1] आ०प्रतौ 'दोदंस०। इत्थि०' इति पाठः।

पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । छदंस०-अट्ठक०-भय-दु० णि० बं० णि० अणु० अणंतभागूणं बं० । दोवेदणी०-देवगदि०४-दोगोद० सिया० उक्क० । कोधसंज० णि० दुभागूणं बं० । तिण्णिसंज० णियमा बं० सादिरेयदिवड्ढभागूणं बं० । चदुणोक० सिया० अणंतभागूणं बं० । दोगदि-ओरा०-हुंड०-ओरालि०अंगो०-असंप०-दोआणु०-उज्जो०-अप्पसत्थ०-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-दुस्सर-अणादें०-अजस० सिया० संखेंज्जदिभागूणं बं० । पंचसंठा-पंचसंघ०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें० सिया० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं बं० । पंचिंदि०-तेजा०-क०-वण्ण०४ अगु०४-तस०४-[णिमि०] णि० संखेंज्जदिभागूणं बं० । जस० सिया० संखेंज्जगुणही० ।

४३८. णवुंस० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-पंचंत० णि० उक्क० । सेसाणं इत्थि०भंगो । णवरि णामाणं ओघभंगो ।

४३९. पुरिस० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-चदुदंस०-सादा०-जस०-उच्चा०-पंचंत०

नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, आठ कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, देवगतिचतुष्क और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। क्रोधसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो गति, औदारिकशरीर, हुण्डसंस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, दो आनुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पाँच संस्थान, पाँच संहनन, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

४३८. नपुंसकवेदका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है।

४३९. पुरुषवेदका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो

णि० बं० णि० उक्क० । कोधसंज० णि० बं० दुभागूणं बं० । तिण्णिसंज० सादिरेयं दिवड्ढभागूणं बं० ।

४४०. हस्स० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-रदि-भय-दु०-[उच्चा०-] पंचंत० णि० बं० उक्क० । णिद्दा-पयला-दोवेद०-अपच्चक्खाण०४ सिया० उक्क० । चदुदंस० णि० बं० णि० तं०तु० अणंतभागूणं बं० । पच्चक्खाण०४ सिया० तं०तु० अणंतभागूणं बं० । कोधसंज० णि० बं० णि० दुभागूणं बं० । तिण्णिसंज० णि० बं० सादिरेयं दिवड्ढभागूणं बं० । पुरिस०[1] णि० संखेँज्जगुणही० । मणुसगदि-पंचिंदि०-ओरा०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-वण्ण०४-मणुसाणु०-अगु०४-तस०४-थिराथिर[2]-सुभासुभ-अजस०-णिमि० सिया० संखेँज्जदिभागूणं बं० । देवग०-वेउव्वि०-आहार०-समचदु०-आहार०अंगो०[3]-वज्जरि०-देवाणु०-[पसत्थ०-] सुभग-सुस्सर-आदें०-तित्थ० सिया०

इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। क्रोध संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

४४०. हास्यका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, रति, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा, प्रचला, दो वेदनीय और अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार दर्शनावरणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। क्रोधसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेदका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, अयशःकीर्ति और निर्माणका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। देवगति, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, आहारकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और तीर्थङ्करप्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

---

[1] ता०प्रतौ 'दिवड्ढगो० (भागूणं)। पुरि०' इति पाठः । [2] आ०प्रतौ 'तस थिराथिर' इति पाठः । [3] ता०प्रतौ 'समच० अ (आ) हार० अंगो०' इति पाठः ।

तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं बं०। वेउव्वि०अंगो० सिया० तं०तु० सादिरेयं दुभागूणं०। जस० सिया० संखेंज्जगुणहीणं०। एवं रदि-भय-दु०।

४४१. अरदि० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-णिद्दा-पयला-सोग-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। चदुदंस० णि० बं० अणंतभागूणं बं०। दोवेद०-अपच्चक्खाण०४ सिया० उक्क०। पच्चक्खाण०४ सिया० तं०तु० अणंतभागूणं बं०। कोधसंज० णि० दुभागूणं बं०। तिण्णिसंज० णि० सादिरेयं दिवड्ढभागूणं बं०। पुरिस०-जस० सिया० संखेंज्जगुणही०। णवरि पुरिस० णि०। णामाणं[1] हस्सभंगो। णवरि वेउव्वि०अंगो० सिया० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं बं०। पंचिंदियादिपगदीओ णि० बं०। एवं सोग०।

वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे साधिक दो भागहीन अनुत्कृष्टप्रदेशबन्ध करता है। यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार रति, भय और जुगुप्साकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४४१. अरतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, निद्रा, प्रचला, शाक, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार दर्शनावरणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय और अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। क्रोधसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेद और यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इतनी विशेषता है कि पुरुषवेदका नियमसे बन्ध करता है। इसके नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग हास्य प्रकृतिकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान है। इतनी विशेपता है कि यह वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तथा यह पञ्चेन्द्रियजाति आदि प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है। इसी प्रकार शोककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

---

[1] ता०प्रतौ 'पुरि० सिया (?)। णामाणं' आ०प्रतौ 'पुरिस० सिया०। णामाणं' इति पाठः।

४४२. णिरयाउ० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-बारसक०-णवुंस०-अरदि-सोग-भय-दु०-णिरयगदिअट्ठावीस-णीचा०-पंचंत० णि० बं० अणु० संखेंज्जदिभागूणं बं०। चदुसंज० णि० बं० णि० संखेंज्जगुणही०। तिण्णमाउगाणं[1] ओघभंगो।

४४३. णिरयगदि० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-थीणगिद्धि०३-असादा०[2]-मिच्छ०-अणंताणु०४-णवुंस०-णीचा०-पंचंत०[3] णि० बं० णि० उक्क०। छदंस०-अट्ठक०-अरदि-सोग-भय-दु० णि० बं० णि० अणंतभागूणं बं०। कोधसंज० णि० बं० दुभागूणं बं०। तिण्णिसंज० णि० बं० सादिरेयं दिवड्ढभागूणं बं०। णामाणं सत्थाण०भंगो। एवं णिरयाणु०-अप्पसत्थ०-दुस्सर०।

४४४. तिरिक्ख० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-णवुंस०-णीचा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। छदंस०-अट्ठक०-भय-दु० णि० बं० णि० अणंतभागूणं बं०। [दोवेदणी० सिया उक्क०।] कोधसंज० णि० बं० दुभागूणं०

४४२. नरकायुका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, बारह कषाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, नरकगति आदि अट्ठाईस प्रकृतियाँ, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियम से संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन आयुओंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष ओघके समान है।

४४३. नरकगतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिक, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, नपुंसकवेद, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, आठ कषाय, अरति, शोक, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। क्रोधसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार नरकगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४४४. तिर्यञ्चगतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, नपुंसकवेद, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, आठ कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीयका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। क्रोध संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे दो

---

[1] ता०आ०प्रत्योः 'संखेज्जगुणही०। एवं तिण्णमाउगाणं' इति पाठः। [2] ता०आ०प्रत्योः 'थीणगिद्धि०३ सादा०' इति पाठः। [3] ता०प्रतौ 'णीचा० एवं(?) पंचंत०' आ०प्रतौ 'णीचा० एवं पंचंत०' इति पाठः।

बं०। तिण्णिसंज० णि० बं० सादिरेयं दिवड्ढभागूणं बं०। चदुणोक० सिया० अणंतभागूणं बं०। णामाणं सत्थाणभंगो। एवं तिरिक्खगदिभंगो मणुसगदि-पंचजादि-ओरालि०-तेजा०-क०-पंचसंठा०-ओरालि०अंगो०—पंचसंघ०-वण्ण०४-दोआणु०-अगु०४-[आदाव-उज्जो०] तसादिचदुयुग०[1]-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-अणादें०[2]-अजस०-णिमि०। णवरि चदुसंठा०-चदुसंघ० इत्थि०-णवुंस-उच्चा० सिया० उक्क०। पुरिस० सिया० संखेज्जगुणही०। णामाणं अप्पप्पणो सत्थाणभंगो।

४४५. देवग० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। थीणगि०३-[दोवेदणी०-] मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि० सिया० उक्क०। णिद्दा-पचला-अट्ठक०-चदुणोक० सिया० तं तु० अणंतभागूणं बं०। चदुदंस०-भय-दु० णि० बं० तं तु० अणंतभागूणं बं०। कोधसंज० णि० बं० दुभागूणं०। तिण्णिसंज० सादिरेयं

भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थानसन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगतिकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान मनुष्यगति, पाँच जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, पाँच संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, पाँच संहनन, वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, आतप, उद्योत, त्रस आदि चार युगल, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति और निर्माणकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि चार संस्थान और चार संहननका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेदका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग अपने अपने स्वस्थानसन्निकर्षके समान है।

४४५. देवगतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और स्त्रीवेदका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा, प्रचला, आठ कषाय और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार दर्शनावरण, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। क्रोधसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे

---

[1] ता०आ०प्रत्योः 'अगु०४ अप्पसत्थ० तसादिचदुयुग०' इति पाठः। [2] ता०आ०प्रत्योः 'दूभग दुस्सर अणादें' इति पाठः।

दिवड्ढभागूणं बं० । पुरिस० सिया० संखेज्जगुणही० । णामाणं सत्थाण०भंगो । एवं देवाणु० । एवं हेट्ठा उवरिं देवगदिभंगो इमेसिं वेउव्वि०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-वज्जरि०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदे० । णामाणं सत्थाण०भंगो । णवरि णवुंस०-णीचागोदं पि अत्थि ।

४४६. आहार० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-सादा०-हस्स-रदि-भय-दु०-उच्चा०-पंचत० णि० बं० णि० उक्क० । दोदंस० सिया० उक्क० । चदुदंस० णि० बं० णि० तं तु० अणंत०भागूणं बं० । कोधसंज० णि० बं० दुभागूणं बं० । तिण्णिसंज० णि० बं० सादिरेयं दिवड्ढभागूणं बं० । पुरिस०-जस० णि० बं० णि० संखेज्जगुणही० । णामाणं सत्थाण०भंगो । [एवं आहारंगो०] ।

४४७. तित्थ० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । णिद्दा-पयला०-दोवेद०-अपच्चक्खाण०४-चदुणोक० सिया० उक्क० ।

साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेदका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थानसन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार देवगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इसी प्रकार नामकर्मसे पूर्वकी और बादकी प्रकृतियोंकी अपेक्षा देवगतिकी मुख्यतासे कहे गए सन्निकर्षके समान वैक्रियिकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेय इन प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेद और नीचगोत्र भी है।

४४६. आहारकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, सातावेदनीय, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो दर्शनावरणका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार दर्शनावरणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। क्रोधसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेद और यशःकीर्तिका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार आहारकशरीर आङ्गोपाङ्गकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४४७. तीर्थङ्कर प्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा, प्रचला, दो वेदनीय, अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध

चदुदंस० णि० बं० णि० तं० तु० अणंतभागूणं० बं० । पच्चक्खाण०४ णि० बं० तं०तु० अणंतभागूणं० । कोधसंज० णि० बं० दुभागूणं० । तिण्णिसंज० णि० बं० सादिरेयं दिवड्ढभागूणं० । पुरिस० णि० बं० संखेंज्जगुणही० । णामाणं सत्थाण०भंगो ।

४४८. उच्चा० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०—अणंताणु०४—इत्थि०—णवुंस०—चदुसंठा०—चदुसंघ० सिया० उक्क० । णिद्दा-पयला-अट्ठक०-छण्णोक० सिया० तं०तु० अणंतभागूणं बं० । कोधसंज० सिया० तं०तु० दुभागूणं०[1] । तिण्णिसंज० णि० बं० णि० तं०तु० सादिरेयं दिवड्ढभागूणं० चदुभागूणं० । पुरिस०-जस० सिया० तं०तु० संखेंज्जगुणहीणं० । मणुसग०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-ओरालि०-असंपत्त०-वण्ण०४-मणुसाणु०-अगु०४—

करता है। चार दर्शनावरणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। क्रोधसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेदका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थानसन्निकर्षके समान है।

४४८. उच्चगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण और पाँच अन्तराय का नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, चार संस्थान और चार संहननका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा, प्रचला, आठ कषाय और छह नोकषाय का कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। क्रोधसंज्वलनका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन और साधिक चार भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेद और यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी अगुरुलघुचतुष्क,

---

[1] ता०आ०प्रत्योः 'कोधसंज० णि० बं० दुभागूणं०' इति पाठः ।

अप्पसत्थ०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-दुस्सर-अणादें०-अजस०-णिमि० सिया० संखेंज्जदिभागूणं०। देवगदि-वेउव्वि०-आहार० समचदु०-दोअंगो०-वज्जरि०-देवाणु०-पसत्थ०-सुभग०-सुस्सर-आदें०-तित्थ० सिया० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं०।णीचा० ओघं।

४४९. मायकसाईसु आभिणि०दंडओ माणकसाइभंगो। णवरि कोधसंज० सिया० तं०तु० दुभागूणं०। माणसंज० सिया० तं० तु० सादिरेयं दिवड्ढभागूणं० वं० संखेज्जदिभागूणं वा। माया-लोभाणं णि० वं० णि० तं०तु० संखेंज्जदिभागहीणं वा संखेंज्जगुणहीणं वा। एवं चदुणा०-पंचंत०।

४५०. णिद्दाणिद्दाए दंडओ माणकसाइभंगो। णवरि कोधसंज० णि० वं० दुभागूणं वं०। माणसंज० णि० सादिरेयं दिवड्ढभागूणं०। मायसंज०-लोभसंज० णि० वं० संखेंज्जगुणही०। एवं दोदंसणा०-मिच्छ०-अणंताणु०४।

अप्रशस्तविहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति और निर्माण का कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। देवगति, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और तीर्थङ्करप्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नीचगोत्रकी मुख्यता से सन्निकर्ष ओघके समान है।

४४९. मायाकषायवाले जीवोंमें आभिनिबोधिकदण्डकका भङ्ग मानकषायवाले जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि यहाँ आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव क्रोधसंज्वलनका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इसका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मानसंज्वलनका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इसका नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन या संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मायासंज्वलन और लोभसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इनका नियमसे संख्यातभागहीन या संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार चार ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४५०. निद्रानिद्रादण्डकका भङ्ग मानकषायवाले जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि इसका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव क्रोधसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मानसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मायासंज्वलन और लोभसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार दो दर्शनावरण, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कको मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४५१. णिद्दाए दंडओ माण०भंगो। णवरि कोधसंज० णि० दुभागूणं०। माणसंज० सादिरेयं० दिवड्ढभागूणं०। माया-लोभे० पुरिस० णि० संखेँज्जगुणही०। एवं पयला०।

४५२. चक्खुदं०दंडओ माणकसाइभंगो। णवरि कोधसंज० सिया० तं०तु० दुभागूणं०। माणसंज० सिया० तं०तु० संखेँज्जभागहीणं० वा सादिरेयं दिवड्ढभागूणं०। माया-लोभ० णि० बं० तं०तु० संखेँज्जगुणहीणं वा दुभागूणं वा तिभागूणं वा। पुरिस० सिया० तं०तु० संखेँज्जगुणहीणं०। जस० णि० तं०तु० संखेँज्जगुणहीणं०। एवं तिण्णिदंस०।

४५३. सादं माणकसाइभंगो। णवरि चदुसंज० आभिणि०भंगो। आसाददंडओ

४५१ निद्रादण्डकका भङ्ग मानकषायवाले जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि निद्राका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव क्रोधसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियम से दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मानसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मायासंज्वलन, लोभसंज्वलन और पुरुषवेदका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार प्रचलाकी मुख्यता से सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४५२. चक्षुदर्शनावरणदण्डकका भङ्ग मानकषायवाले जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि इसका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव क्रोधसंज्वलनका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इसका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मानसंज्वलन का कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यात भागहीन या साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मायासंज्वलन और लोभसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका संख्यातगुणहीन या दो भागहीन या तीन भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेदका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। यशःकीर्तिका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इसका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अचक्षुदर्शनावरण आदि तीन दर्शनावरणकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४५३. सातावेदनीय दण्डकका भङ्ग मानकषायवाले जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि चार संज्वलनका भङ्ग आभिनिबोधिक ज्ञानावरणके समान है। अर्थात् यहाँ पर आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके चार संज्वलनका जिस प्रकार सन्निकर्ष कहा है उसी प्रकार सातावेदनीयका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके जानना चाहिए। असातावेदनीयदण्डकका भङ्ग मानकषायवाले जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है

माणकसाइभंगो। णवरि चदुसंजलणाणं णिद्दाए भंगो। अपच्चक्खाण०४-पच्चक्खाण०४ दंडओ माणकसाइभंगो। णवरि चदुसंज० णिद्दाए भंगो।

४५४. कोधसंज० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-चदुदंस०-साद०-जस०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० [णि० उक्क०। माणसंज० णि० बं०] चदुभागूणं। माया-लोभसंज० णि० बं० संखेँज्जगुणहीणं। माणसंज० उक्क० पदे०बं० पंचणा० चदुदंस०-साद०-जस०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। माया-लोभसंज० णि० बं० संखेँज्जदिभागूणं०। मायाए उक्क० पदे०बं० पंचणा०-चदुदंस०-साद०-लोभसंज०-जस०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० उक्क०। एवं लोभसंज०।

४५५. इत्थि०-णवुंस० माणभंगो। णवरि कोधसंज० णि० बं० दुभागूणं०। माणसंज० णि० सादिरेयं दिवड्ढभागूणं०। माया-लोभसंज० णि० संखेँज्जगुणही०। पुरिस० माणभंगो। णवरि चदुसंज० इत्थि०भंगो। छण्णोक० माणकसाइभंगो। णवरि

कि चार संज्वलनका भङ्ग निद्राके समान है। अर्थात् यहाँ पर निद्राका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके चार संज्वलनका जिसप्रकार सन्निकर्ष कहा है उसी प्रकार असातावेदनीयका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके जानना चाहिए। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क और प्रत्याख्यानावरण चतुष्कदण्डकका भङ्ग मानकषायवाले जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि चार संज्वलनका भङ्ग निद्राके समान है। अर्थात् यहाँ पर निद्राका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके जिस प्रकार चार संज्वलनका भङ्ग कहा है उसी प्रकार उक्त आठ कषायोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके जानना चाहिए।

४५४. क्रोधसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मानसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे चार भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मायासंज्वलन और लोभसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मानसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मायासंज्वलन और लोभसंज्वलनका नियम बन्ध करता है जो इनका संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मायासंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, लोभसंज्वलन, यशःकीर्ति उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार लोभसंज्वलनकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४५५. स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका भङ्ग मानकषायवाले जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव क्रोधसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता हैं जो इसका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मानसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मायासंज्वलन और लोभसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेदका भङ्ग मानकषायवाले जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि इसका उत्कृष्ट बन्ध करनेवाले जीवके चार संज्वलनका भङ्ग स्त्रीवेदकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान है। छह नोकषायोंका भङ्ग मानकषायवाले जीवोंके समान है। इतनी विशेषता

चदुसंजलणाणं णिद्दाए भंगो। चत्तारिआउ० ओघो। णामाणं सव्वाणं माणकसाइभंगो। णवरि कोधसंज० णि० दुभागूणं०। माणसंज० सादिरेयं दिवड्ढभागूणं। माया-लोभसंज० णि० बं० संखेंज्जगुणही०। णवरि जस० बं० चदुसंज० चक्खुदंस०भंगो। लोभकसाइसु मूलोघं।

४५६. मदि०-सुद० आभिणि० उक्क० पदे०बं० चदुणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। सादासाद०-सत्तणोक०-वेउव्वियछ०-आदाव-दोगो० सिया० उक्क०। दोगदि-पंचजादि-ओरालि०-छस्संठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-दोआणु०-उज्जो०-दोविहा०-तसादिदसयु० सिया० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं बं०। तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० णि० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं बं०। पर०-उस्सा० सिया० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं०[1]। एवं चदुणा०-णवदंसणा०-सादा-

है कि इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके चार संज्वलनका भङ्ग निद्राकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान है। चार आयुओंकी मुख्यतासे सन्निकर्षका भङ्ग ओघके समान है। नामकर्मकी सब प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष मानकषायवाले जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव क्रोधसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मानसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। माया-संज्वलन और लोभसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियों में से इतनी और विशेषता है कि यशःकीर्ति का उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके चार संज्वलनोंका भङ्ग चक्षुदर्शनावरणकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्ष के समान है। लोभकषायवालोंमें मूलोघके समान भङ्ग है।

४५६. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें आभिनिबोधिकज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, सात नोकषाय, वैक्रियिक छह, आतप और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो गति, पाँच जाति, औदारिकशरीर, छह संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, उद्योत, दो विहायोगति और त्रसादि दस युगलका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। परघात और उच्छ्वासका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार चार

---

[1] ता०प्रतौ 'सिया० संखेज्जदिभागूणं' इति पाठः।

साद०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-पंचंत०। णवरि सादा०-हस्स-रदीणं णिरय०-णिरयाणु० वज्ज०। अप्पसत्थ०-दुस्सर० सिया० संखेज्जदिभागूणं बं०।

४५७. इत्थि० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-णवदंसणा०-[मिच्छ०-सोलसक० भय-दु०पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०]। दोवेद०चदुणोक०-देवगदि०४-दोगोद०[1] सिया० उक्क०। दोगदि-ओरालि०-हुंड०-ओरालि०अंगो०-असंप०-दोआणु०-उज्जो०-अप्पसत्थ०-थिरादितिण्णियुग०-दूभग-दुस्सर-अणादे० सिया० संखेज्जदिभागूणं०। पंचिंदि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णि० बं० संखेज्जदिभागूणं बं०। पंचसंठा०-पंचसंघ०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदे० सिया० तं तु० संखेज्जदिभागूणं०। एवं पुरिस०।

४५८. णिरयाउ० उक्क० पदे०बं० पंचणा०–[णवदंस०-असादा०-मिच्छ-सोल] स०-णवुंस०-अरदि-सोग-भय-दु०-णिरयगदिअट्ठावीस[2]-णीचा०-पंचंत० णि० बं० णि०[3]

ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय और पाँच अन्तरायकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सातावेदनीय, हास्य और रतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष कहते समय नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीको छोड़कर सन्निकर्ष कहना चाहिए। तथा इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव अप्रशस्तविहायोगति और दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

४५७. स्त्रीवेदका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, चार नोकषाय, देवगतिचतुष्क और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो गति, औदारिकशरीर, हुण्डसंस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, दो आनुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पाँच संस्थान, पाँच संहनन, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार पुरुषवेदकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४५८. नरकायुका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, नरकगति आदि अट्ठाईस प्रकृतियाँ, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका

---

[1] ता०प्रतौ 'पंचणा०······[कोधोवेद० चदुणोक० देवगदि० ४] दोगो०' आ०प्रतौ 'पंचणा० णवदंसणा०··· :को दोवेद० चदुणोक० देवगदि०४ दोगोद०' इति पाठः। [2] ता०प्रतौ 'पंचणा०······[णवदंसणा० असाद० मिच्छ० सोलसक० णवुंस० अरदि सोगभयदु०] णिरयगदिअट्ठावीसं' आ०प्रतौ 'पंचणा०······णवुंस० अरदि सोग भय दु० णिरयगदिअट्ठावीसं' इति पाठः। [3] ता०प्रतौ 'णि० [बं०] णि० पंचंत० णि०' इति पाठः।

संखेँज्जदिभागूणं० । एवं तिण्णं आउगाणं अप्पप्पणो पगदीहि णेदव्वा ।

४५९. णिरय० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०-अरदि-सोग-भय-दु०-णीचा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । णामाणं सत्थाण०भंगो । णामाणं हेट्ठा उवरिं णिरयगदिभंगो । णामाणं अप्पप्पणो सत्थाणभंगो कादव्वो । णवरि देवग० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०[1]-सोलसक०-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । सादासाद०-छणोक०[2] सिया० उक्क० । णामाणं सत्थाण०भंगो । एवं देवगदि०४ । णवरि वेउव्वि०दुगस्स णवुंस० णीचागोदं पि अत्थि । समचदु० उक्क० पदे०बं० देवगदिभंगो । एवं पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर-आदेँज्जाणं । चदुसंठा०-पंचसंघ०[3] उक्कस्सं प०बंधंतो सादासादा०-सत्तणोक०-णीचुच्चागो० सिया० उक्क० । दोगोदं तिरिक्खगदिभंगो० । विसेसो जाणिदव्वो । एवं विभंग०-अब्भव०-मिच्छा०-असण्णि त्ति ।

नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार शेष तीन आयुओंकी मुख्यतासे अपनी-अपनी प्रकृतियोंके साथ सन्निकर्ष जान लेना चाहिए ।

४५९. नरकगतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थानसन्निकर्षके समान है। नामकर्मकी अन्य प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी और बादकी प्रकृतियोंका भङ्ग नरकगतिकी मुख्यतासे इन प्रकृतियोंके कहे गये सन्निकर्षके समान है। तथा नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग अपने-अपने स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इतनी विशेषता है कि देवगतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय और छह नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार देवगति चतुष्ककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि वैक्रियिकद्विकका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवालेके नपुंसकवेद और नीचगोत्र भी है। समचतुरस्रसंस्थानका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके देवगतिकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान भङ्ग है। इसी प्रकार प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। चार संस्थान और पाँच संहननका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव सातावेदनीय, असातावेदनीय, सात नोकषाय, नीचगोत्र और उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो गोत्रकी मुख्यतासे सन्निकर्ष तिर्यञ्चगतिमें इनकी मुख्यतासे जिस प्रकार सन्निकर्ष कहा है उसके समान है। जो विशेष हो वह जान लेना चाहिए। इसी प्रकार अर्थात् मत्यज्ञानी जीवोंके समान विभङ्गज्ञानी, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें जानना चाहिए ।

---

[1] ता०आ०प्रत्योः 'णवरि .....स० मिच्छ०' इति पाठः । [2] ता०प्रतौ 'सादासाद० णोक०' आ०प्रतौ 'सादासाद सत्तणोक०' इति पाठः । [3] ता०प्रतौ 'आदेज्जाणं चदुसंठा० । पंचसंघ०' इति पाठः ।

४६०. आभिणि०-सुद०-ओधि० आभिणि०दंडओ ओघो। णिद्दाए उक्क० पदे०बं० पंचणा०-चदुदंसणा०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० संखेँज्जदिभागूणं बं०। पयला-भय-दु० णि० बं० णि० उक्क०। सादा० सिया० संखेज्जभागू०। असादा०-अपच्चक्खाण०४-चदुणोक० सिया० उक्क०। पच्चक्खाण०४ सिया० तं०तु० अणंतभागूणं०। कोधसंज० णि० बं० णि० दुभागू०। माणसंज० सादिरेयं दिवड्ढभागूणं०। मायासंज०-लोभसंज०-पुरिस० णि० संखेँज्जगुणही०[1]। दोगदि-तिण्णिसरीर-दोअंगो०-वज्जरि०-दोआणु०-थिराथिर-सुभासुभ-अजस० तित्थ० सिया० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं०। पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदेँ०-णिमि० णि० बं०[2] णि० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं०। वेउव्वि०अंगो० सिया० तं०तु०

४६० आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, और अवधिज्ञानी जीवोंमें आभिनिबोधिकज्ञानावरणदण्डकका भङ्ग ओघके समान है। निद्राका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। प्रचला, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। सातावेदनीयका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। असातावेदनीय, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। क्रोधसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मानसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मायासंज्वलन, लोभसंज्वलन और पुरुषवेदका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो गति, तीन शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, दो आनुपूर्वी, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, अयशःकीर्ति और तीर्थङ्करप्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्तविहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इसका नियमसे साधिक दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध

---

[1] ता०आ० प्रत्योः 'संखेज्जदिभागूणं' इति पाठः। [2] ता०प्रतौ 'आदे० णि० बं०' इति पाठः।

सादिरेयं दुभागूणं। जस० सिया० संखेॅज्जगुणही०। एवं पयला०।

४६१. असादा० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-चदुदंसणा०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० संखेॅज्जदिभागूणं०। णिद्दा-पयला-भय-दु० णि० बं० णि० उक्क०। अपच्चक्खाण०४ चदुणोक० सिया० उक्क०। पच्चक्खाण०४ सिया० तं०तु० अणंतभागूणं। चदुसंज०-पुरिस० सव्वाओ णामाओ णिद्दाए भंगो कादव्वो। एवं अरदि-सोगाणं।

४६२. अपच्चक्खाण०४-पच्चक्खाण०४ णिद्दाए भंगो। णवरि अप्पप्पणो तिण्णिक०[1]-भय-दु० णि० बं० णि० उक्क०। चदुसंज०-पुरिस० मूलोघो। दोआउ० ओघो। णवरि पाओॅग्गाओ कादव्वाओ।

४६३. मणुसग० उक्क० पदे०बं० पंचणा० - चदुदंस०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० संखेॅज्जदिभागूणं०। णिद्दा-पयला-अपच्चक्खाण०४-भय-दु० णि० बं० णि० उक्क०।

करता है तो इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार प्रचलाकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४६१ असातावेदनीयका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा, प्रचला, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। अप्रत्याख्यानावरण चार और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्क का कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार संज्वलन, पुरुषवेद और नामकर्मकी सब प्रकृतियोंका भङ्ग निद्राकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान जानना चाहिए। इसी प्रकार अरति और शोककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४६२. अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क और प्रत्याख्यानावरणचतुष्ककी मुख्यतासे सन्निकर्ष निद्राकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इन दोनों प्रकारकी कषायोंमेंसे विवक्षित क्रोधादि दो-दो कषायोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव अपने-अपने तीन कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार संज्वलन और पुरुषवेदकी मुख्यतासे सन्निकर्ष मूलोघके समान है। दो आयुओंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि अपने-अपने प्रायोग्य प्रकृतियाँ करनी चाहिए।

४६३. मनुष्यगतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यात भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा, प्रचला, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियम अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध

---

[1] ता०प्रतौ 'अप्पप्पणो०। तिण्णिक०' इति पाठः।

पच्चक्खाण०४ णि० बं० अणंतभागूणं०। कोधसंज०[1] णि० दुभागूणं०। माणसंज० णि० सादिरेयं दिवड्ढभागूणं०। मायसंज०-लोभसंज०-पुरिस० णि० बं० संखेँज्जगुणही०। णामाणं सत्थाण०भंगो। एवं ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-मणुसाणु०।

४६४. हस्स० उक्क० पदे०बं० ओघं। एवं रदि-भय-दु०। णामाणं हेट्ठा उवरिं मणुसगदिभंगो। णामाणं अप्पप्पणो सत्थाण०भंगो। णवरि देवगदिआदीणं णिद्दा-पयला-अपच्चक्खाण०४ सिया० उक्क०। पच्चक्खाण०४ सिया० तं० तु० अणंतभागूणं०। एवं आभिणि०भंगो ओधिदं०-सम्मादि०-खइग०-उवसम०।

४६५. मणपज्जवे आभिणि०दंडओ[2] ओघो। णिद्दाए उक्क० पदे०बं० पंचणा०-चदुदंसणा०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० संखेँज्जदिभागूणं०। पयला-भय-दु० णि० बं० उक्क०। सादा० सिया०[3] संखेँज्जदिभागूणं०। असादा०-चदुणोक० सिया० उक्क०।

करता है। क्रोधसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियम से दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मानसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मायासंज्वलन, लोभसंज्वलन और पुरुषवेदका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार अर्थात् मनुष्यगतिकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान औदारिकशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४६४. हास्यका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवको मुख्यतासे सन्निकर्ष ओघके समान है। इसी प्रकार रति, भय और जुगुप्साकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। नामकर्मकी प्रकृतियोंमेंसे विवक्षित प्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्व और बादकी प्रकृतियोंका भङ्ग मनुष्यगतिकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग अपने-अपने स्वस्थानसन्निकर्षके समान है। इतनी विशेषता है कि देवगति आदिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव निद्रा, प्रचला और अप्रत्याख्यानावरण चतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह उनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार आभिनिबोधिकज्ञानी जीवोंके समान अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए।

४६५ मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें आभिनिबोधिकज्ञानावरणदण्डकका भङ्ग ओघके समान है। निद्राका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। प्रचला, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। सातावेदनीयका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। असातावेदनीय और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

---

[1] ता०प्रतौ 'अणंतभा०४ (?) कोधसंज०' इति पाठः। [2] ता०प्रतौ 'उवसम० मणपज्जव०। आभिणिदंडओ' इति पाठः। [3] ता०प्रतौ 'बं० उ० साद० सिया०' इति पाठः।

चदुसंज० ओघो। पुरिस० णि० संखेंज्जगुणही०। देवग०-पंचिंदि०-तिण्णिसरीर-समचदु०-वण्ण०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं। आहारदुग-थिराथिर-सुभासुभ-अजस० सिया० तं० तु० संखेंज्जदि-भागूणं। वेउव्वि०अंगो० सिया० तं० तु० सादिरेयं दुभागूणं०। तित्थ० सिया० उक्क०। जस० सिया० संखेंज्जगुणही०। एवं पयला०। एदेण कमेण सव्वाओ पगदीओ णादव्वाओ। एवं संजदाणं।

४६६. सामाइ०-छेदो० आभिणि०[1] उक्क० पदे०बं० पंचणा०-चदुदंसणा०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। णिद्दा-पयला-सादासाद०-छण्णोक०-तित्थ० सिया० उक्क०। कोधसंज० सिया० तं०तु० दुभागूणं०। माणसंज० सिया० तं०तु०

चार संज्वलन का भङ्ग ओघके समान है। पुरुषवेदका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, तीन शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेश-बन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। आहारकद्विक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह उसका साधिक दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो वह इसका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो वह इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार प्रचलाका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका सन्निकर्ष जानना चाहिए। तथा इस क्रमसे सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका सन्निकर्ष जानना चाहिए। इसी प्रकार अर्थात् मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान संयत जीवोंमें सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४६६. सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा, प्रचला, सातावेदनीय, असातावेदनीय, छह नोकषाय और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। क्रोसंधज्वलन का कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुकृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इसका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मानसंज्वलनका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह

---

[1] ता०प्रतौ 'एवं संजदाणं सामा० छेदो०। आभिणि०' इति पाठः।

सादिरेयं दिवड्ढभागूणं० संखेँज्जदिभागूणं वा। मायसंज० सिया० तं०तु० संखेँज्जगुणही० दुभागूणं० तिभागूणं वा। अथवा मायाए सिया० तं०तु० विट्ठाणपदिदं बं० संखेँज्जदिभागहीणं० संखेँज्जगुणहीणं वा। लोभसंज० णि० बं० तं०तु० संखेँज्जगुणही०। पुरिस० सिया० तं०तु० संखेँज्जगुणही०। देवगदिआदीणं सव्वाणं णामाणं सिया० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं०। वेउव्वि०अंगो० सिया० तं०तु० सादिरेयं दुभागूणं। जस० सिया० तं०तु० संखेँज्जगुणहीणं०। एवं चदुणा०-सादा०-उच्चा०-पंचंत०।

४६७. णिद्दाए उक्क० पदे०बं० पंचणा०-पयला-भय-दु०-उच्चागो०-पंचंत०

इसका नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन या संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। माया संज्वलनका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इसका नियमसे संख्यातगुणहीन, दो भागहीन या तीन भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। अथवा मायाका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इसका नियमसे द्विस्थानपतित बन्ध करता है या संख्यातभागहीन या संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। लोभ संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इसका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेदका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। देवगति आदि सब नामकर्मकी प्रकृतियोंका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इसका नियमसे साधिक दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके समान चार ज्ञानावरण, सातावेदनीय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४६७. निद्राका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, प्रचला, भय, जुगुप्सा उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध

णि० बं० णि० उक्क०। चदुदंस० णि० बं० अणंतभागूणं। सादासाद०-चदुणो०-तित्थ० सिया० उक्क०। कोधसंज० णि० बं० दुभागूणं०। माणसंज० णि० सादिरेयं दिवड्ढभागूणं०। मायासं०-लोभसं०-पुरिस० णि० बं० संखेंज्जगुणहीणं[1] बं०। देवगदिअट्ठावीसं णि० बं० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं०। णवरि वेउव्वि०अंगो० णि० तं०तु० सादिरेयं दुभागूणं०। आहारदुग-थिराथिर-सुभासुभ-अजस० सिया० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं०। जस० सिया० संखेंज्जगुणही०। एवं पयला०।

४६८. असाद० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-णिद्दा-पयला-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। चदुदंस० णि० बं० अणंतभागूणं०। चदुसंज०-[चदुणोक०] णिद्दाए भंगो। पुरिस० णि० संखेंज्जगुणहीणं०। णामाणं णिद्दाए भंगो। एवं

करता है। चार दर्शनावरणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय और तीर्थङ्करप्रकृति का कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। क्रोधसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मानसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मायासंज्वलन, लोभसंज्वलन और पुरुषवेदका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। देवगति आदि अट्ठाईस प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इतनी विशेषता है कि वैक्रियिक शरीर आङ्गोपाङ्गका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इसका उत्कृट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इसका नियमसे साधिक दो भागहीन अनुकृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। आहारकद्विक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो वह इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् निद्राका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये सन्निकर्षके समान प्रचलाका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका सन्निकर्ष कहना चाहिए।

४६८. असातावेदनीयका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, निद्रा, प्रचला, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार दर्शनावरणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार संज्वलन और चार नोकषायका भङ्ग निद्राका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये संन्निकर्षके समान है। पुरुषवेदका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसके नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग निद्राका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार अर्थात् असातावेदनीयका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध

---

[1] ता०आ०प्रत्योः 'संखेज्जदिभागूणं' इति पाठः।

छण्णोक० । णवरि अरदि-सोगाणं आहारदुगं वज्ज ।

४६९. चक्खुदं० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-तिण्णिदंस०-सादा०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । चदुसंज० आभिणि०भंगो । पुरिस०-जस० सिया० तं०तु० संखेँज्जगुणही० । णवरि जस० णि० । णामाणं सव्वाणं मणपज्जवभंगो ।

४७०. जस०[1] उक्क० पदे०बं० पंचणा०-चदुदंस०-सादावेद०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० उक्क० । कोधसंज० सिया० तं०तु० दुभागूणं० । माणसंज० सिया० तं०तु० सादिरेयं दिवड्ढभागूणं वा चदुभागूणं वा । मायासंज० सिया० तं०तु० संखेँज्जगुणही० दुभागूणं० तिभागूणं वा । लोभसंज० णि० बं० तं०तु० संखेँज्जगुणही० । पुरिस०

करनेवाले जीवका जिस प्रकार सन्निकर्ष कहा है, उसी प्रकार छह नोकषायोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका सन्निकर्ष कहना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अरति और शोकका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके आहारकद्विकको छोड़कर सन्निकर्ष कहना चाहिए।

४६९. चक्षुदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, तीन दर्शनावरण, सातावेदनीय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार संज्वलनका भङ्ग आभिनिबोधिकज्ञानी जीवोंके जिस प्रकार कह आये हैं उस प्रकार है। पुरुषवेद और यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इतनी विशेषता है कि वह यशःकीर्तिका नियमसे बन्ध करता है। नामकर्मकी सब प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान है।

४७०. यशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। क्रोधसंज्वलनका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इसका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मानसंज्वलनका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इसका नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन या चार भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मायासंज्वलनका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इसका संख्यातगुणहीन या दो भागहीन या तीन भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। लोभसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इसका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

---

[1] ता०आ०प्रत्योः 'मणपज्जवभंगो। णवरि जस०' इति पाठः।

सिया० तं०तु० संखेँज्जगुणही० । एवं सेसाओ वि पगदीओ एदेण कमेण णेदव्वाओ। णामाणं हेट्ठा उवरिं णिद्दाए भंगो । णामाणं सत्थाण०भंगो ।

४७१. परिहारेसु आभिणि० उक्क० पदे०बं० चदुणा०-छदंस०-चदुसंज०-पुरिस०-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । सादासाद०-चदुणोक०-तित्थ० सिया० उक्क० । देवगदिअट्ठावीसं० णि० बं० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं० । णवरि वेउव्वि [अंगो०] सादिरेयं दुभागूणं० । आहारदुग-थिरादितिण्णियुग० सिया० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं । एवं चदुणा०-छदंस०-सादा०-चदुसंज०-छण्णोक०-उच्चा०-पंचंत० ।

४७२. असादा०[1] उक्क० पदे०बं० आभिणि०भंगो । णवरि आहारदुगं वज्ज ।

पुरुषवेदका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंकी मुख्यतासे भी इसी क्रमसे सन्निकर्ष ले जाना चाहिए। मात्र नामकर्मसे पूर्वकी और बादकी प्रकृतियोंका भङ्ग निद्राकी मुख्यतासे कहे गए सन्निकर्षके समान है। तथा नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।

४७१. परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें आभिनिबोधिकज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है, सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। देवगति आदि अट्ठाईस प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो उनका वह नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इतनी विशेषता है कि वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका वह नियमसे साधिक दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। आहारकद्विक और स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह उनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार चार ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, छह नोकषाय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। अर्थात् जिस प्रकार आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका सन्निकर्ष कहा है, उसी प्रकार इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका सन्निकर्ष कहना चाहिए।

४७२. असातावेदनीयका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये सन्निकर्षके समान सन्निकर्ष कहना चाहिए। इतनी विशेषता है कि आहारकद्विकको छोड़कर यह सन्निकर्ष कहना चाहिए

---

[1] ता०प्रतौ 'पंचंत असाद०' इति पाठः।

वेउव्वि [अंगो०] णि० तं०तु० संखेँज्ञदिभागूणं० ।

४७३. देवाउ० ओघं । सव्वाओ पगदीओ संखेँज्ञदिभागूणं० ।

४७४. देवगदि० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-छदंस०-चदुसंज०[1]-पुरिस०-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० उक्क० । सादासाद०-चदुणोक० सिया० उक्क० । णामाणं सत्थाण०भंगो । एवं सव्वाणं णामाणं हेट्ठा उवरिं देवगदिभंगो । णामाणं अप्पप्पणो सत्थाण०भंगो ।

४७५. सुहुमसंप० ओघभंगो । संजदासंजदेसु आभिणि० उक्क० पदे०बं० चदुणा०-छदंसणा०-अट्ठक०-पुरिस०-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । सादासाद०-चदुणोक०-तित्थ० सिया० उक्क० । देवगदिपणवीसं० णि० बं० तं०तु० संखेँज्ञदिभागूणं । थिरादितिण्णियु० सिया० तं०तु० संखेँज्ञदिभागूणं बं० । एदेण

तथा वह वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इसका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इसका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

४७३. देवायुका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके ओघके समान भङ्ग है। मात्र वह सब प्रकृतियोंका संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

४७४. देवगतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार सब नामकर्मकी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी और बादकी प्रकृतियोंका भङ्ग देवगतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके जिस प्रकार इन प्रकृतियोंका सन्निकर्ष कहा है, उस प्रकार है तथा नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग अपने अपने स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।

४७५. सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। संयतासंयत जीवोंमें आभिनिबोधिकज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। देवगतिचतुष्क आदि पच्चीस प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी क्रमसे सब प्रकृतियोंका

---

[1] ता०आ० प्रत्योः 'छदंस० सादा० चदुसंज०' इति पाठः।

कमेण सव्वपगदीओ णेदव्वाओ ।

४७६. असंजदेसु आभिणि० उक्क० पदे०बं० चदुणा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । थीणगिद्धि०३-दोवेद०-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-णिरय०-णिरयाणु०-आदाव०-दोगोद० सिया० उक्क० । छदंस०-बारसक०-भय-दु० णि० बं० णि० तं०तु० अणंतभागूणं । पंचणोक० सिया० तं०तु० अणंतभागूणं० । तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० णि० बं० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं० । सेसाओ पगदीओ सिया० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं० । एवं चदुणाणा०-असाद०[1]-पंचंत० । थीणगिद्धिदंडओ[2] तिरिक्खगदिभंगो ।

४७७. णिद्दाए उक्क० पदे०बं० पंचणा०-पंचदंस०-बारसक०-पुरिस०-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । दोवेदणी०-चदुणोक० सिया० उक्क० ।

उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध कराके उनकी मुख्यतासे सन्निकर्ष ले जाना चाहिए ।

४७६. असंयतोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है । यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है । यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । पाँच नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता । यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है । यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है । यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । शेष प्रकृतियोंका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता । यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है । यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । इसी प्रकार चार ज्ञानावरण, असातावेदनीय और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिए । स्त्यानगृद्धित्रिकदण्डकका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका भङ्ग तिर्यञ्चगति मार्गणामें इन प्रकृतियोंकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान जानना चाहिए ।

४७७. निद्राका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, पाँच दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । दो वेदनीय और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है । यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । मनुष्यगति,

---

[1] ता०प्रतौ 'एवं चदुणो० । असाद०' आ०प्रतौ 'एवं चदुणोक० असाद०' इति पाठः । [2] ता० प्रतौ० 'पंचंत० थीणगिद्धिदंडओ' इति पाठः ।

मणुस०-[ओरालि०-] ओरालि०अंगो०--मणुसाणु० - थिरादितिण्णियुग० सिया० संखेंज्जदिभागूणं० । देवगदि-वेउव्वियदुग०-वज्जरि०-देवाणु-तित्थ० सिया० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं० । पंचिंदि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णि० बं० णि० संखेंज्जदिभागूणं० । समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें० णि० बं० णि० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं० । एवं पंचदंस०-बारसक०-सत्तणोक० ।

४७८. सादा० उक्क० पदे०बं० पंचणा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०[1]-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-आदाव-दोगोद० सिया० उक्क० । छदंस०-बारसक०-भय-दु०-णि० बं० णि० तं०तु० अणंतभागूणं० । पंचणोक० सिया०[2] अणंतभागूणं० । तिण्णिगदि-पंचजादि-दोसरीर-छस्संठा०-दोअंगो०-छस्संघ०-तिण्णिआणु०-पर०-उस्सा०-उज्जो०[3]-पसत्थ०-तसादिणवयुगल-सुस्सर० सिया० तं०तु० संखेंज्जदि-

औदारिकशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। देवगति, वैक्रियिकद्विक, वज्रर्षभनाराचसंहनन, देवगत्यानुपूर्वी और तीर्थङ्करप्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् निद्राका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्षके समान पाँच दर्शनावरण, बारह कषाय और सात नोकषायका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४७८. सातावेदनीयका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, आतप और दोगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पाँच नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन गति, पाँच जाति, दो शरीर, छह संस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, प्रशस्त विहायोगति, त्रस आदि नौ युगल और सुस्वरका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध

---

[1] ता०प्रतौ 'उक्क० थीण० ३ मिच्छ' इति पाठः । [2] आ०प्रतौ 'पंचणा० सिया०' इति पाठः । [3] ता०आ०प्रत्योः 'छस्संघ......उज्जो०' इति पाठः ।

भागूणं । अप्पसत्थ०-दुस्सर० सिया० संखेंज्जदिभागूणं० । तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप० णि० बं० णि० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं । एवं एदेण बीजेण सव्वाओ पगदीओ णेदव्वाओ ।

४७९. चक्खु०-अचक्खु०ओघं । किण्ण-णील-काउ० असंजदभंगो । णवरि किण्ण-णीलाणं तित्थयरं हेट्ठिम-उवरिमाणं सिया० बं० उक्क० । णत्थि अण्णो विगप्पो ।

४८०. तेऊए आभिणि० उक्क० पदे०बं० चदुणा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-सादासाद०-इत्थि०-णवुंस०-दोगोद० सिया०[1] उक्क० । छदंस०-चदुसंज०-भय-दु० णि० तं०तु० अणंतभागूणं । अट्ठक०-पंचणोक० सिया० तं०तु० अणंतभागूणं० । तिण्णिगदि-दोजादि-दोसरीर-आहार०दुग-छस्संठा०-दोअंगो०-छस्संघ०-तिण्णिआणु०-उज्जो०-दोविहा०-तस-थावर-थिरादि-

करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और उपघातका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी बीजपदके अनुसार अन्य सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध कराके उनकी मुख्यतासे सन्निकर्ष ले जाना चाहिए।

४७९. चक्षुदर्शनवाले और अचक्षुदर्शनवाले जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्यावाले जीवोंमें असंयत जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि कृष्ण और नीललेश्यामें अधस्तन और उपरिम प्रकृतियों का उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव तीर्थङ्करप्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है, अन्य विकल्प नहीं है।

४८०. पीतलेश्यामें आभिनिबोधिकज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका नियम से बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, सातावेदनीय, असातावेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। आठ कषाय और पाँच नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तीन गति, दो जाति, दो शरीर, आहारकद्विक, छह संस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, स्थावर, स्थिर आदि छह युगल और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित्

---

[1] ता०प्रतौ 'थीणगि०३……[सादासाद० इत्थि० णवुंस० दोगो०] सिया० इति पाठः।

छयुग०-तित्थ० सिया० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं। तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णि० बं० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं। एवं चदुणा०-पंचंत०।

४८१. णिद्दाणिद्दाए उक्क० पदे०बं०[1] पंचणा०-दोदंस०-मिच्छ०-अणंताणु०४-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। छदंस०-बारसक०-भय-दु० णि० बं० अणंतभागूणं०। दोवेद०-इत्थि०-णवुंस०-दोगदि०-वेउव्वि०-[वेउव्वि०-] अंगो०-दोआणु०-आदाव०-दोगोद० सिया० उक्क०। [पंचणोक० सिया० अणंतभागूणं बं०]। तिरिक्ख०-दोजादि-ओरालि०-छस्संठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-तिरिक्खाणु०-[उज्जो०-]दोविहा०-तस-थावर-थिरादिछयुग० सिया० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं०। तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि०[2] णि० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं०। एवं दोदंस०-

---

बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माण का नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार चार ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४८१. निद्रानिद्राका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, दो दर्शनावरण, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, दो गति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, दो आनुपूर्वी, आतप और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पाँच नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तिर्यञ्चगति, दो जाति, औदारिकशरीर, छह संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, स्थावर और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इनका संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् निद्रानिद्राका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये सन्निकर्षके समान दो दर्शनावरण,

---

[1] ता०प्रतौ 'तं तु०।……[ए० उक्क० पदे०] बं०' आ०प्रतौ 'तं तु०……ए० उक्क० पदे०बं०' इति पाठः। [2] ता०प्रतौ 'अगु०४……[अत्र क्रमांकरहितः ताडपत्रोस्ति] णिमि०'. आ०प्रतौ 'अगु०४ ……णिमि०' इति पाठः।

मिच्छ०-अणंताणु०४ ।

४८२. णिद्दाए उक्क० पदे०बं० पंचणा०-पंचदंस०-पुरिस०-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । सादासाद०-अपच्चक्खाण०४-चदुणोक० सिया० उक्क० । पच्चक्खाण०४ सिया० तं०तु० अणंतभागूणं । चदुसंज० णिय० तं०तु० अणंतभागूणं । दोगदि-दोण्णिसरीर-दोअंगो०-वज्जरि०-दोआणु०-तित्थ० सिया० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं० । पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०[1]४-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि० णि० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं०[2] । वेउव्वि०अंगो० सिया० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं० । णवरि तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-बादर०३-णिमि० णि० तं०तु० णत्थि । ओरालियसरी०-थिरादितिण्णियुग० सिया० संखेंज्जदि-

मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका सन्निकर्ष कहना चाहिए।

४८२. निद्राका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, पाँच दर्शनावरण, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो वह इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो गति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, दो आनुपूर्वी और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इतनी विशेषता है कि तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, बादरत्रिक और निर्माण इन प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध होकर भी 'तं०तु०' पठित बन्ध नहीं होता। औदारिकशरीर और स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् निद्राका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये

---

[1] 'आ० प्रतौ तेजाक० वण्ण०४' इति पाठः । [2] ता०प्रतौ 'णि० [तं तु०] संखेज्जदि भा०' इति पाठः ।

भागूणं। एवं० पंचदंस०-सत्तणोक०। एदेण कमेण णेदव्वं।

४८३. एवं पम्माए। णवरि एइंदि०३ वज्ज। सुक्काए आभिणि०दंडओ मूलोघ। णिद्दाणिद्दाए उक्क० पदे०बं० पंचणा०-चदुदंसणा०-पंचंत० णि० बं० णि० संखेंज्जदिभागूणं०। दोदंस०-मिच्छ०-अणंताणु०४ णि० बं० णि० उक्क०। णिद्दा-पयला-अट्ठक०-भय-दु० णि० बं० अणंतभागूणं०। दोवेदणी०-छण्णोक०-दोगदि[1]-दोसरीर-पंचसंठा०-दोअंगो०-छस्संघ०[2]-दोआणु०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादें०-[दोगोद०.] सिया० उक्क०। कोधसंज० णि० बं० दुभागूणं। माणसंज० णि० बं० सादिरेयं दिवड्ढभागूणं०। मायासं०-लोभसं० णि० बं० णि० संखेंज्जगुणही०। पुरिस० सिया० संखेंज्जगु०। पंचिंदि०[3]-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णि० बं० णि० तं०तु० संखेंज्जभागूणं०। समचदु०-[वज्जरि०-] पसत्थ०-थिरादिदोण्णियुग०[4]-सुभग-

उक्त सन्निकर्षके समान पाँच दर्शनावरण और सात नोकषायोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका सन्निकर्ष जानना चाहिए। तथा इसी क्रमसे अन्य प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध कराके उनकी अपेक्षा सन्निकर्ष ले जाना चाहिए।

४८३. इसी प्रकार अर्थात् पीतलेश्याके समान पद्मलेश्यामें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रियजाति त्रिकको छोड़कर सन्निकर्ष कहना चाहिए। शुक्ललेश्यामें आभिनिबोधिकज्ञानावरणदण्डकका भङ्ग मूलोघके समान है। निद्रानिद्राका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो दर्शनावरण, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। निद्रा, प्रचला, आठ कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, छह नोकषाय, दो गति, दो शरीर, पाँच संस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर अनादेय और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। क्रोधसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मानसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे साधिक डेढ़ भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मायासंज्वलन और लोभसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पुरुषवेदका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्तविहायोगति, स्थिर आदि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय और अयशःकीर्तिका कदाचित्

---

[1] ता०प्रतौ 'अणंतभागूणं। दोगदि' आ०प्रतौ 'अणंतभागूणं।........दोगदि' इति पाठः।
[2] आ०प्रतौ 'दोअंगो० पंचसंघ०' इति पाठः। [3] आ०प्रतौ 'लोभसं० णि० बं० णि० संखेज्जगुणही०। पंचिंदि०' इति पाठः। [4] ता०आ०प्रत्योः 'थिरादितिण्णियुग०' इति पाठः।

सुस्सर-आदें०-अजस० सिया० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं० । जस० सिया० संखेंज्जगुणही० । एवं०[1] थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०[2]-णीचा० । णवरि इत्थि०-णवुंस०-णीचा० मणुसगदिपंचग० णि० बं० णि० उक्क० । पंचसंठा०-छस्संघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादें० सिया० उक्क० । अट्ठावीससंजुत्ताओ धुवियाओ पगदीओ णि० बं० संखेंज्जदिभागूणं० । याओ परियत्तमाणियाओ ताओ सिया० संखेंज्जदिभागूणं० । देवगदि०४ वज्ज । एदेण बीजेण णेदव्वाओ भवंति ।

४८४. भवसि० ओघं । वेदगस० आभिणि० उक्क० पदे०बं० चदुणाणा छदंस०[3]-पुरिस०-भय-दु०-उच्चा०-पंचंतं० णि० बं० णि० उक्क० । दोवेद० अपच्चक्खाणावरण०४-[चदुणोक०] सिया०[4] उक्क० । दोगदि-तिण्णिसरीर-दोअंगो०-वज्जरि०-

बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातगुणहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् निद्रानिद्राका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये उक्त सन्निकर्षके समान स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और नीचगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्ष कहना चाहिए। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और नीचगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव मनुष्यगतिपञ्चकका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पाँच संस्थान, छह संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। अट्ठाईस प्रकृतिसहित ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। जो परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, उनका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। मात्र देवगतिचतुष्कको छोड़ देना चाहिए। इस बीज पदके अनुसार शेष सब सन्निकर्ष जान लेना चाहिए।

४८४. भव्योंमें ओघके समान भङ्ग है। वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, पुरुषवेद, भय जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियम से उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो गति, तीन शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, दो आनुपूर्वी, स्थिर आदि तीन युगल और तीर्थङ्करप्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और

---

[1] ता०आ०प्रत्योः 'संखेज्जदि० । एवं' इति पाठः । [2] ता०प्रतौ 'मिच्छ०......[इत्थि०] णपु' इति पाठः । [3] आ०प्रतौ 'चदुणोक० छदंस०' इति पाठः । [4] ता०प्रतौ 'अपच्च [क्खाणावरण०४-] सिया०' इति पाठः ।

दोआणु०-थिरादितिण्णियुग०-तित्थ० सिया० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं०। पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि० णि० बं० तं०तु० संखेंज्जभागूणं। वेउव्वि०अंगो० सिया० तं०तु० सादिरेयं दुभागूणं। पच्चक्खाण०४ सिया० तं०तु० अणंतभागूणं०। चदुसंज० णि० बं० णि० तं०तु० अणंतभागूणं०। एवं णेदव्वं।

४८५. सासणे आभिणि० उक्क० पदे०बं० चदुणा०-णवदंस०-सोलसक०[1]-भय-दु०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क०। दोवेदणी०-छण्णोक०-दोगदि-वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-दोआणु०-उज्जो०-दोगोद० सिया० उक्क०। तिरिक्ख०-ओरालि०-पंचसंठा०-ओरालि०अंगो०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-दोविहा०-थिरादिछयुग० सिया० तं०तु० संखेंज्जदिभागूणं०। पंचिंदि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि०[2]

अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे इसका साधिक दो भागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। चार संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभागहीन अनुत्कृष्ट-प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार सब सन्निकर्ष जान लेना चाहिए।

४८५. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, छह नोकषाय, दो गति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, दो आनुपूर्वी, उद्योत और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। तिर्यञ्चगति, औदारिकशरीर, पाँच संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनु-

---

[1] ता०आ०प्रत्योः 'चदुणा०......सोलसक०' इति पाठः। [2] आ०प्रतौ 'अगु० पसत्थ० तस०४ णिमि०' इति पाठः।

णि० बं० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं० । एवं चदुणाणा०-दोवेदणी०[1] णवदंस०-सोलसक०-अट्ठणोक०-दोगोद०-पंचंत० । णवरि णीचा० देवगदि०४ वज्ज । एवं एदेण[2] बीजेण णेदव्वाओ ।

४८६. सम्मामि० आभिणि० उक्क० पदे०बं० चदुणा०-छदंस०-बारसक०-पुरिस०-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० उक्क० । दोवेदणी०-चदुणोक०[3]-दोगदि-दोसरीर-दोअंगो०-वज्जरि०-दोआणु० सिया० उक्क० । पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४-अगु०४-पसत्थ०[4]-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि० णि० बं० तं०तु० संखेँज्जदिभागूणं० । थिरादितिण्णियु० सिया० संखेँज्जभागूणं० । आहार० ओघं० । अणाहार० कम्मइगभंगो ।

एवं उक्कस्सपरत्थाणसण्णियासो समत्तो ।

त्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये उक्त सन्निकर्षके समान चार ज्ञानावरण, दो वेदनीय, नौ दर्शनावरण, सोलह कषाय, आठ नोकषाय, दो गोत्र और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्ष कहना चाहिए। इतनी विशेषता है कि नीचगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके देवगतिचतुष्कको छोड़कर सन्निकर्ष कहना चाहिए। इस प्रकार इस बीजपदके अनुसार सब सन्निकर्ष ले जाना चाहिए।

४८६. सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें आभिनिबोधिकज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, चार नोकषाय, दो गति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन और दो आनुपूर्वीका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभागहीन अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। आहारक मार्गणामें ओघके समान भङ्ग है और अनाहारक मार्गणामें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है।

इस प्रकार उत्कृष्ट परस्थान सन्निकर्ष समाप्त हुआ।

---

[1] आ०प्रतौ 'चदुणोक० दोवेदणी०' इति पाठः। [2] ता०प्रतौ 'एवं णा०…एदेण' इति पाठः।
[3] आ०प्रतौ 'उक्क०। चदुणोक०' इति पाठः। [4] आ०प्रतौ 'अगु० पसत्थ' इति पाठः।

४८७. एत्तो णाणापगदिबंधसण्णिकासस्स साधणत्थं णिदरिसणाणि वत्तइस्सामो। मूलपगदिविसेसो पिंडपगदिविसेसो उत्तरपगदिविसेसो[1] एदे तिण्णि विसेसा आवलियाए असंखेँज्जदिभा०। किं पुण पवाइज्जंत्तेण उवदेसेण मूलपगदिविसेसेण कम्मस्स अवहारकालो थोवो। पिंडपगदिविसेसेण कम्मस्स अवहारकालो असंखेँज्जगुणो। उत्तरपगदिविसेसेण कम्मस्स अवहारकालो[2] असंखेँज्जगुणो। अण्णेण[2] उवदेसेण मूलपगदिविसेसो आवलियवग्गमूलस्स असंखेँज्जदिभागो। पिंडपगदिविसेसो पलिदोवमस्स वग्गमूलस्स असंखेँज्जदिभागो। उत्तरपगदिविसेसो पलिदोवम० असंखेँज्जदिभागो। एदेण अट्ठपदेण उक्कस्सपरत्थाणसण्णिकासस्स साधणपदा णादव्वा। मिच्छत्तस्स भागो कसाय-णोकसाएसु गच्छदि। अणंताणु०४ भागो कसाएसु गच्छदि। मूलपगदीओ अट्ठ। उत्तरपगदीओ पंचणाणावरणादि०। पिंडपगदीओ बंधण[3]-सरीर-संघाद-सरीर-अंगोवंग-वण्णपंच-दोगंध-रसपंच-अट्ठफास० एदाओ पिंडपगदीओ। अट्ठविधबंधगस्स० ४,२१,२२ एवं याव तीसं०। सत्तविधबंधगस्स० २४,२५ एवं याव तीसं०। छव्विध बंधगस्स० २८,२९ एवं याव तीसं० पगदिविसेसो णेदव्वाओ।

४८८. जहण्णपरत्थाणसण्णिकासे पगदं। दुविधो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण आभिणि० जहण्णपदेसग्गं बंधंतो चदुणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-

४८७. आगे नाना प्रकृतियोंके बन्धके सन्निकर्षकी सिद्धि करनेके लिए उदाहरण बतलाते हैं—मूलप्रकृतिविशेष, पिण्डप्रकृतिविशेष और उत्तर प्रकृतिविशेष ये तीन विशेष आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। किन्तु प्रवर्तमान उपदेशके अनुसार मूलप्रकृति विशेषसे कर्मका अवहारकाल स्तोक है। पिण्डप्रकृतिविशेषसे कर्मका अवहारकाल असंख्यातगुणा है। उत्तरप्रकृतिविशेषसे कर्मका अवहारकाल असंख्यातगुणा है। अन्य उपदेशके अनुसार मूलप्रकृतिविशेष आवलिके प्रथम वर्गमूलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। पिण्डप्रकृतिविशेष पल्यके वर्गमूलके असंख्यातवें भागप्रमाण है और उत्तरप्रकृतिविशेष पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इस अर्थ पदके अनुसार उत्कृष्ट परस्थानसन्निकर्षके साधनपद जानने चाहिए। मिथ्यात्वका भाग कषायों और नोकषायोंको मिलता है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भाग कषायोंको मिलता है। मूलप्रकृतियाँ आठ हैं। उत्तर प्रकृतियाँ पाँच ज्ञानावरणादि रूप हैं। पिण्डप्रकृतियाँ—बन्धन, शरीर संघात, शरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्ण पाँच, दो गन्ध, पाँच रस और आठ स्पर्श ये पिण्डकृतियाँ हैं। आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाले जीवके चार, इक्कीस और बाईससे लेकर तीस प्रकृति तक, सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाले जीवके चौबीस और पच्चीस प्रकृतियोंसे लेकर तीस प्रकृतियों तक और छह प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाले जीवके अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतियोंसे लेकर तीस प्रकृतियों तक प्रकृतिविशेष जानना चाहिए।

४८८. जघन्य परस्थान सन्निकर्षका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे आभिनिबोधिकज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार

---

[1] ता०प्रतौ 'उत्तरपगदिविसेसा' इति पाठः। [2] आ०प्रतौ 'विसेसेण अवहारकालो' इति पाठः।
[2] ता०प्रतौ 'असंखेज्जगु० [णो]······उपदेसेण' इति पाठः। [3] ता०प्रतौ 'उत्तरपगदीए पंचणाणावरणादि० पिं० बंधण' इति पाठः।

पंचंत० णि० बं० णि० जह० । दोवेद०[1]-सत्तणोक०-आदाव-दोगोद० सिया० बंधगो सिया० अबंधगो । यदि बंधगो णियमा जहण्णा । दोगदि-पंचजादि-छस्संठा०-ओरालि०-अंगो०-छस्संघ०-दोआणु०-पर०-उस्सा०-उज्जो०-दोविहा०-तसादिदसयुग० सिया० तं०तु० जहण्णा वा अजहण्णा वा । जहण्णादो अजहण्णा संखेँज्जदिभागब्भहियं बंधदि । ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप-णिमि० णि० बं० तं०तु० संखेँज्जदिभागब्भहियं बंधदि । एवं चदुणा०-णवदंस[2]-दोवेद०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-पंचंत०[3] । णवरि इत्थि०-पुरिस० एइंदि०-विगलिंदि०-आदाव-थावरादितिण्णि० वज्ज । णवरि इत्थि०-पुरिस० जह० पदे०बंधंतो मणुसगदिदुगं उज्जो०-दोवेद०-चदुणो०-दोगोद० सिया० जहण्णा ।

४८९. णिरयाउ० जह० पदे०बं० पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०-अरदि - सोग-भय - दु०—पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा०—क०-हुंड०-वेउव्वि०अंगो०-

ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, सात नोकषाय, आतप और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, औदारिक शरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, दो विहायोगति और त्रसादि दस युगलका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो वह अपने जघन्यकी अपेक्षा संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो अपने जघन्यकी अपेक्षा संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् आभिनिबोधिकज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये उक्त सन्निकर्षके समान चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय और पाँच अन्तरायका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है स्त्रीवेद और पुरुषवेदका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके एकेन्द्रियजाति, विकलेन्द्रियजाति, आतप और स्थावर आदि तीनको छोड़कर सन्निकर्ष कहना चाहिए। तथा इतनी और विशेषता है कि स्त्रीवेद और पुरुषवेदका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव मनुष्यगतिद्विक, उद्योत, दो वेदनीय, चार नोकषाय और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है।

४८९. नरकायुका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क,

---

[1] ता०प्रतौ 'सोलस०भ [यदुगु०]···दोवेद' आ०प्रतौ 'सोलसक० भयदु०······दोवेद० इति पाठः । [2] आ०प्रतौ 'चदुणो०णवदंस०' इति पाठः । [3] ता०आ०प्रत्योः 'मिच्छ······पंचंत०' इति पाठः ।

वण्ण०४-अगु०४-अप्पसत्थ०[1]-तसादि०४-अथिरादिछ०-णिमि०-णीचा० - पंचंत० णि० बं० णि० अजहण्णा असंखेँज्जगुणब्भहियं०। णिरयगदि-णिरयाणु० णि० बं० णि० जह०। एवं णिरयगदि-णिरयाणु०।

४९०. तिरिक्खाउ०[2] जह० पदे०बं० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-तिरिक्ख०-ओरालि०-तेजा०-क० -वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०-उप०-णिमि०-णीचागो०-पंचंत० णि० बं० णि० अजह० असंखेँज्जगुणब्भहियं०। दोवेद०-सत्तणोक०-पंचजा०-छस्संठा०[3]–ओरालि०अंगो०–छस्संघ०-पर०–उस्सा०-आदाउज्जो०–दोविहा०-तसादिदसयुग० सिया० असंखेँज्जगुणब्भहियं०।

४९१. मणुसाउ० जह० पदे०बं० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-मणुसगइ-पंचिंदि०-ओरालि० - तेजा०-क० - ओरालि०अंगो०-वण्ण०४-मणुसाणु०[4]-अगु०-उप०-तस-बादर-पत्ते०-णिमि०-पंचंत० णि० अजह० असंखेँज्जगुणब्भहियं०। दोवेद०-सत्तणोक०-छस्संठा०-छस्संघ०-पर०-उस्सा० - दोविहा०-पज्जत्तापज्जत्त०-थिरादि-छयुग०-दोगोद० सिया० अणंतगुणब्भहियं०।

अगुरुलघुचतुष्क, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस आदि चार, अस्थिर आदि छह, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् नरकायुका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये उक्त सन्निकर्षके समान नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्ष कहना चाहिए।

४९०. तिर्यञ्चायुका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, सात नोकषाय, पाँच जाति, छह संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति और त्रस आदि दस युगलका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है।

४९१. मनुष्यायुका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, प्रत्येक, निर्माण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, सात नोकषाय, छह संस्थान, छह संहनन, परघात, उच्छ्वास, दो विहायोगति, पर्याप्त, अपर्याप्त, स्थिर आदि छह युगल और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है।

---

[1] आ०प्रतौ 'अगु०४ पसत्थ०' इति पाठः। [2] ता०आ०प्रत्यो० 'णिरय······तिरिक्खाउ०' इति पाठः। [3] आ०प्रतौ 'पंचजा० पंचसंठा०' इति पाठः। [4] ता०प्रतौ 'मणुस [गइ]···वण्ण०४ मणुसाणु०' आ०प्रतौ 'मणुसगइ······वण्ण०४ मणुसाणु०' इति पाठः।

४९२. देवाउ० जह० पदे०बं० पंचणा०-णवदंस०-सादा०-मिच्छ०-सोलसक०-हस्स-रदि-भय-दु०-देवगदि-पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क० - समच० - वेउव्वि०अंगो०[1]-वण्ण०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्थ-तस०४-थिरादिछ-उच्चागोद० णि० बं० णि० असंखेँज्जगुणब्भहियं०[2] । इत्थि०-पुरिस० सिया० असंखेँज्जगुणब्भहियं० ।

४९३. तिरिक्ख० जह० पदे०बं० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ० सोलसक०-भय-दु०-णीचा०-पंचंत० णि० बं० णि० जह० । दोवेद०-सत्तणोक० सिया० जह० । णामाणं सत्थाण०भंगो । एवं तिरिक्खगदिभंगो मणुसगदि[3]-पंचजादि-तिण्णिसरीर-छस्संठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-वण्ण०४-दोआणु०-अगु०४-आदाउज्जो०-दोविहा०-तसादि०दसयुग०-णिमि० हेट्ठा उवरिं० ।णामाणं अप्पप्पणो सत्थाण०भंगो । मणुसगदि-दुगस्स दोगोद० सिया०[4] जह० । चदुजादि-आदाव-थावरादि०४ जह० पदे०बंधं० इत्थि०-पुरिसवेदा णागच्छंति ।

४९२. देवायुका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और उच्चगोत्रका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। स्त्रीवेद और पुरुषवेदका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है।

४९३. तिर्यञ्चगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता हैं। दो वेदनीय और सात नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो नियमसे इनका जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये उक्त सन्निकर्षके समान मनुष्यगति, पाँच जाति, तीन शरीर, छह संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसादि दस युगल और निर्माणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी और बादकी प्रकृतियोंका सन्निकर्ष जानना चाहिए। तथा नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग अपने-अपने स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगतिद्विकका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तथा चार जाति, आतप और स्थावर आदि चारका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव स्त्रीवेद और पुरुषवेदका बन्ध नहीं करते।

---

[1] आ०प्रतौ 'तेजाक० वेउव्वि० अंगो० इति पाठः । [2] ता०प्रतौ 'थिरादिछ.....'असं० गुणब्भ०' आ०प्रतौ 'थिरादिछयुग० दोगोद० सिया० असंखेज्जगुणब्भहियं' इति पाठः । [3] ता०प्रतौ 'तिरिक्खगदिभंगो । मणुसगदि' इति पाठः । [4] ता०प्रतौ 'सत्वा [त्था] णभंगो ।'....'सिया' आ०प्रतौ 'सत्थाणभंगो । सिया०' इति पाठः ।

४९४. देवगदि०[1] जह० पदे०बं० पंचणा०-छदंस०-बारसक०-भय-दु०-पुरिस०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० अजह० असंखेँज्जगुणब्भहियं०। दोवेद०-चदुणोक० सिया० असंखेँज्जगुणब्भहियं०। णामाणं सत्थाण०भंगो। एवं वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-देवाणु०।

४९५. आहार० जह० पदे०बं० पंचणा०-छदंसणा०-सादा०-चदुसंज०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० अजह० असंखेँज्जगुणब्भ०। णामाणं सत्थाण०भंगो।

४९६. तित्थ०[2] जह० पदे०बं० पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-पुरिस०-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० अजह० असंखेँज्जगुणब्भ०। दोवेद०-चदुणोक० सिया० असंखेँज्जगुणब्भ०। णामाणं सत्थाण०भंगो।[1]

४९७. उच्चा० जह० पदे०बं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय दु०-पंचंत० णि० बं० णि० जह०। दोवेद०-सत्तणोक० सिया० जह०। मणुसग०[3]-मणुसाणु०

४९४. देवगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार अर्थात् देवगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये उक्त सन्निकर्षके समान वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग और देवगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४९५. आहारकशरीरका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थानसन्निकर्षके समान है।

४९६. तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।

४९७. उच्चगोत्रका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय और सात नोकषायका कदाचित्

---

[1] ता०प्रतौ 'पुरिसवेदाणा गच्छंति। देवग०' आ०प्रतौ 'पुरिसवेदायां गच्छन्ति। देवगदि०' इति पाठः।
[2] ता०प्रतौ 'णामा [यं सत्थायाभंगो]तित्थ०' इति पाठः। [3] ता०प्रतौ 'सिया० मणुसग०' इति पाठः।

णि० जह० । पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णि० बं० अजह० संखेँज्जभागब्भ० । छस्संठा०-छस्संघ०[1]-दोविहा०-थिरादिछयुग० सिया० संखेँज्जभागब्भहियं बंधदि० ।

४९८. आदेसेण णेरइएसु आभिणि० जह० पदे०बं० चदुणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-पंचंत० णि० बं० णि० जह० । दोवेद०-सत्तणोक०-मणुस०-मणुसाणु०-उज्जो०-दोगोद० सिया० जह० । तिरिक्ख०-छस्संठा-छस्संघ०-तिरिक्खाणु०-दोविहा०-थिरादिछयुग० सिया० तं०तु० संखेँज्जभागब्भहियं० । पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णि० बं० णि० अजह० संखेँज्जदिभागब्भ०[2] । एवं चदुणा०-णवदंस०-दोवेद०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-दोगोद०-पंचंत० । णवरि उच्चागो० तिरिक्खगदितिगं वज्ज मणुसगदिदुगं

बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगति और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है।

४९८. आदेशसे नारकियोंमें आभिनिबोधिकज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, सात नोकषाय, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उद्योत और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तिर्यञ्चगति, छह संस्थान, छह संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये उक्त सन्निकर्षके समान चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, दो गोत्र और पाँच अन्तरायका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्ष

---

[1] ता०प्रतौ संखेज्जभागब्भ० ।· · · ·[छस्संठा]० छस्संघ०' आ०प्रतौ संखेज्जभागब्भ० । · · · · · 'छस्संठा० छस्संघ०' इति पाठः । [2] ता०प्रतौ 'तस० णिमि० णि० बं० [णि०]· · ·संखेज्जदिभागब्भ०' आ०प्रतौ० 'तस०४-णिमि० णि० बं० णि० अजह० संखेज्जभागब्भ०' इति पाठः ।

णि० बं० णि० जह० । धुवियाणं[1] पंचिंदियादीणं णि० संखेँज्जदिभागब्भ० । परियत्तियाणं सिया० संखेँज्जदिभागब्भ० ।

४९९. तिरिक्खाउ० जह० पदे०बं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-तिरिक्ख०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-तस०४-णिमि०-णीचा०-पंचंत० णि० बं० णि० अजह० असंखेँज्जगुणब्भ०[2] । दोवेद०-सत्तणोक०-छस्संठा०-छस्संघ०-उज्जो०-दोविहा०-थिरादिछयुग० सिया० असंखेँ०गुणब्भ० ।

५००. मणुसाउ० जह० पदे०बं० धुवियाणं सम्मत्तपगदीणं णि० बं० । तित्थ० सिया० असंखेँज्जगुणब्भ० । थीणगिद्धि०३-दोवेद०-मिच्छ०-अणंताणु०४-सत्तणोक०-छस्संठा०-छस्संघ०-दोविहा०-थिरादिछयुग०-दोगोद० सिया० असंखेँज्जगुणब्भहियं० ।

५०१. तिरिक्ख० जह० पदे०बं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-

जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि उच्चगोत्रका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगतित्रिकको छोड़कर मनुष्यगतिद्विकका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तथा पञ्चेन्द्रियजाति आदि ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका भी नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। परावर्तमान प्रकृतियोंका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है।

४९९. तिर्यञ्चायुका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसें असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, सात नोकषाय, छह संस्थान, छह संहनन, उद्योत, दो विहायोगति और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है।

५००. मनुष्यायुका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव ध्रुवबन्धवाली सम्यक्त्वसम्बन्धी प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है। तथा तीर्थङ्करप्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि इसका बन्ध करता है तो ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके साथ इसका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, सात नोकषाय, छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगति, स्थिर आदि छह युगल और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है।

५०१. तिर्यञ्चगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शना-

---

१. आ०प्रतौ 'मणुसगदिदुगं० णि० बं० धुवियाणं' इति पाठः।

२. ता० प्रतौ० 'पंचंत० [णि० बं० णि० अज०] असंखेज्जगुणब्भ०' इति पाठः।

भय-दु०-णीचा०-पंचंत० णि० ब० णि० जह०[1] । दोवेद०-सत्तणोक० सिया० जह० । णामाणं सत्थाण०भंगो । एवं सव्वाणं णामाणं हेट्ठा उवरिं तिरिक्खगदिभंगो । णामाणं अप्पप्पणो सत्थाण०भंगो । णवरि मणुसगदिदुगस्स दोगोदं अत्थि ।

५०२. तित्थं जह० पदे०बं० पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुं०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० अजह० असंखेँ०गुणब्भहियं० । दोवेद०-चदुणोक० सिया० असंखेँ०गुणब्भहियं० । णामाणं सत्थाण०भंगो ।

५०३. एवं सत्तसु पुढवीसु । णवरि विदिय-तदिय० [सादा०] जह० पदे०बं० पंचणा०[2]-छदंसणा०-बारसक०-भय-दुगुं० - मणुस०-पंचिंदि० - ओरालि०-तेजा० - क०-ओरालि०अंगो०-वण्ण०४-मणुसाणु०-अगु०४-तस०४-णिमि०-पंचंत० णि० बं० णि० अजह० असंखेँज्जगुणब्भ० । थीणगिद्धि०३-दोवेद०-मिच्छ०[3]-अणंताणु०४-सत्तणोक०-छस्संठा०-छस्संघ०-दोविहा०-थिरादिछयुग०-दोगोद० सिया० असंखेँज्जगुणब्भ० ।

वरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय और सात नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार नामकर्मकी सब प्रकृतियोंमेंसे विवक्षित प्रकृतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी और बादकी प्रकृतियोंका भङ्ग तिर्यञ्चगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये उक्त सन्निकर्षके समान है। तथा नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग अपने-अपने स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगतिद्विकका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके दो गोत्रका यथायोग्य बन्ध होता है।

५०२. तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।

५०३. इसी प्रकार अर्थात् सामान्य नारकियोंमें कहे गये उक्त सन्निकर्षके समान सातों पृथिवियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि दूसरी और तीसरी पृथिवीमें साता-वेदनीयका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, सात नोकषाय, छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगति, स्थिर आदि छह युगल और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे

---

[1] ता०प्रतौ 'णीचा० [पंचंत० णि० बं० णि०] जह०' इति पाठः। [2] ता०प्रतौ 'तदिय··· [जह० पदे०] बं० पंचणा०' आ०प्रतौ 'तदिय० जह० पदे०बं० पंचणा०' इति पाठः। [3] आ०प्रतौ 'थीणगिद्धि ३ मिच्छ०' इति पाठः।

तित्थ० सिया० जह० । तित्थ० जह० पदे०बं० मणुसाउ० णि० बं० णि० जह० । सेसाणं धुवपगदीणं णि० बं० णि० अजह० असंखें०गुणब्भहि० । सत्तमाए मणुस० जह०[1] पदे०बं० सम्मत्तपाओंग्गाणं धुवियाणं णि० बं० णि० अजह० असंखेंज्जगुणब्भहियं० । परियत्तमाणिगाणं सिया०[2] असंखें०गुणब्भहियं । एवं मणुसाणु०-उच्चा० ।

५०४. तिरिक्ख०-पंचिंदि०तिरिक्ख०-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-जोणिणीसु[3] ओघो । णवरि जोणिणीसु णिरयाउ० जह० पदे०बं० णिरय०-वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-णिरयाणु० णि० जह० । सेसाणं णि० बं० णि० अजह० असंखेंज्जगुणब्भहियं० । देवाउ० जह० पदे०बं० देवगदि-वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-देवाणु० णि० बं० णि० जह० । सेसाणं धुवियाणं णि० अजह० असंखेंज्जगुणब्भहियं० । परियत्तमाणिगाणं सिया०[4]

असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है । तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता । यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है । तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव मनुष्यायुका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है । शेष ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है । सातवीं पृथिवीमें मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव सम्यक्त्वप्रायोग्य ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है । परावर्तमान प्रकृतियोंका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता । यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है । इसी प्रकार अर्थात् मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके समान मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका सन्निकर्ष जानना चाहिए ।

५०४. सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनियोंमें नरकायुका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव नरकगति, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग और नरकगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है । शेष प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है । देवायुका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग और देवगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है । शेष ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है । परावर्तमान प्रकृतियोंका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता । यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है । स्त्रीवेद और पुरुषवेदका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता ।

---

[1] आ०प्रतौ 'सत्तमाए जह०' इति पाठः । [2] ता.प्रतौ 'परियत्तमाणिगाणं ⊛सिया०' इति पाठः । [3] ता०प्रतौ 'उच्चा० तिरिक्ख० पंचिं० तिरि० । पंचिंदियतिरिक्खपजत्तजोणिणीसु' इति पाठः । [4] ता०प्रतौ 'वेउ०अंगो० [देवाणु०]……धुवियाणं णि० अज० असंखे० गु० परियत्तमाणिगाणं ⊛ [चिह्नान्तर्गतपाठः ताड़पत्रीयमूलप्रतौ पुनरुक्तोस्ति] ।……[अत्र ताड़पत्रमेकं विनष्टम्] सिया०' इति पाठः ।

असंखेँज्जगुणब्भ० । इत्थि-पुरिस० सिया० असंखेँज्जगुणब्भहि० ।एवं देवगदि-देवाणु० । वेउव्वि० जह० पदे०बं० दोआउ०-दोगदि-दोआणु० सिया० जह० । वेउव्वि०अंगो० णि० जह० । सेसं दुगदिभंगो । एवं वेउव्वि० वेउव्वि०अंगो० ।

५०५. पंचिंदि०तिरिक्खअपज्ज० सव्वअपज्जत्ताणं एइंदिय-विगलिंदिय-पंचकायाणं च मूलोघं । णवरि तेज०-वाउ० मणुसगदि०४ वज्ज ।

५०६. मणुस०-मणुसपज्जत्त-मणुसि० ओघो । णवरि मणुसिणीसु देवाउ० जह० पदे०बं० पंचणा०-छदंसणा०-सादा०-चदुसंज०-हस्स-रदि-भय-दुगुं०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-पसत्थ० - थिरादिछ० -णिमि०[1]-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० अजह० असंखेँज्जगुणब्भ० । थीणगि०३-मिच्छ०-बारसक०-इत्थि०-पुरिस० सिया० असंखेँज्जगुणब्भ० । देवगदि०३ णि०[2] बं० णि० तं०तु० संखेँज्जदिभागब्भहियं० । आहारदुग-तित्थ० सिया० जह० । वेउव्वि० अंगो० णि०[3]

यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् देवायुका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके समान देवगति और देवगत्यानुपूर्वीका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिए। वैक्रियिकशरीरका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव दो आयु, दो गति और दो आनुपूर्वीका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग दो गतिके समान है। इसी प्रकार अर्थात् वैक्रियिकशरीरका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके समान वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिए।

५०५. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तक, सब अपर्याप्तक, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंमें मूलोघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें मनुष्यगतिचतुष्कको छोड़कर सन्निकर्ष करना चाहिए।

५०६. मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यिनियोंमें देवायुका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, स्थिर आदि छह युगल, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, बारह कषाय, स्त्रीवेद और पुरुषवेदका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। देवगतित्रिकका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। आहारकद्विक और तीर्थङ्करप्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य

---

[1] आ०प्रतौ 'वण्ण० तस० ४ पसत्थ० थिरादिछयुग० णिमि०' इति पाठः।

[2] ता०आ०प्रत्योः 'देवगदि०४णि०' इति पाठः। [3] ता०आ०प्रत्योः 'वेउव्वि० णि०' इति पाठः।

बं० णि० तं०तु० सादिरेयं दुभागब्भहियं० । वेउव्वि० जह० पदे०बं० देवाउ०-देवग०-आहारदुग-देवाणु०-तित्थ० णि० बं० णि० जह० । वेउव्वि०अंगो० णि० जहण्णा । एवं वेउव्वि०अंगो० । आहार० जह० पदे०बं० देवाउ०-देवग०-वेउव्वि०-वेउव्वि०-अंगो०-आहार०अंगो०-देवाणु०-तित्थ० णि० बं० णि० जहण्णा । एवं आहारंगो० ।

५०७. देवगदि० देवेसु[3] भवण०-वाणवें०-जोदिसिय० पढमपुढविभंगो । सोधम्मीसाणेसु आभिणि० जह० पदे०बं० चदुणा०-पंचंत० णि० बं० जहण्णा । थीणगिद्धि०३-दोवेदणी०-मिच्छ० - अणंताणु०४ -इत्थि० - णवुंस०-आदाव० - तित्थ० - दोगोद० सिया० जहण्णा । छदंस०-बारसक०-भय-दु० णि० बं० तं०तु० अणंतभागब्भहियं० । पंचणोक० सिया० तं०तु० अणंतभागब्भहियं० । दोगदि-दोजादि-

प्रदेशबन्ध करता है। वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु इसका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इसका नियमसे साधिक दो भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। वैक्रियिकशरीरका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव देवायु, देवगति, आहारकद्विक, देवगत्यानुपूर्वी और तीर्थङ्करप्रकृतिका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् वैक्रियिकशरीरका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके समान वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका सन्निकर्ष जानना चाहिए। आहारकशरीरका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव देवायु, देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, आहारकशरीर आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी और तीर्थङ्करप्रकृतिका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् आहारकशरीरका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके समान आहारकशरीर आङ्गोपाङ्गका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिए।

५०७. देवगतिमें देवोंमें तथा भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें पहली पृथिवीके समान भङ्ग है। सौधर्म और ऐशान कल्पके देवोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, आतप, तीर्थङ्कर और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। पाँच नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो गति, दो जाति, छह संस्थान, औदारिक-

---

[3] ता०प्रतौ 'एवं आहारंगो० देवगदि। देवेसु' इति पाठः ।

छस्संठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-दोआणु०-उज्जो०-दोविहा०-तस-थावर-थिरादिछयुग०[1] सिया० तं०तु० संखेंज्जदिभागब्भहियं। ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णि० तं०तु० संखेंज्जदिभागब्भ०। एवं चदुणा०-सादासाद०-पंचंत०।

५०८. णिद्दाणिद्दाए जह० पदे०बं० पंचणा०-अट्ठदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-पंचंत० णि० बं० णि० जहण्णा। दोवेदणी०-सत्तणोक०-आदाव०-दोगोद० सिया० जहण्णा। तिरिक्ख०-दोजादि-छस्संठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-तिरिक्खाणु०-उज्जो०-दोविहा०-तस-थावर-थिरादिछयुग०[2] सिया० तं० तु० संखेंज्जदिभागब्भहियं०। मणुसग०-मणुसाणु० सिया० संखेंज्जभागब्भहियं०। ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमिणं णियमा० बं० तं०तु० संखेंज्जदिभागब्भहियं०।

शरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, स्थावर और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यात भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु चतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके समान चार ज्ञानावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय और पाँच अन्तरायका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिए।

५०८. निद्रानिद्राका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, आठ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, सात नोकषाय, आतप और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तिर्यञ्चगति, दो जाति, छह संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, स्थावर और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी

---

[1] आ०प्रतौ 'तसादि थावरादिछयुग०' इति पाठः। [2] आ०प्रतौ 'तसथावरादिछयुग०' इति पाठः।

एवं० अट्ठदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-णीचागोदं। णवरि इत्थि०-पुरिसवे० जह० बंध० एइंदियतिगं वज्ज। उज्जोव० सिया० जहण्णा।

५०९. दोआउ० णिरयभंगो। णवरि तिरिक्खाउ० जह० पदे०बं० एइंदियतिग० सिया० असंखेँज्जगुणब्भहियं०।

५१०. तिरिक्ख० जह० पदे०बं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-णीचा०-पंचंत० णियमा बं० णियमा जहण्णा। दोवेदणीय-सत्तणोकसायं सिया० जहण्णा। णामाणं सत्थाण०भंगो। एवं तिरिक्खगदिभंगो एइंदि०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-आदाउज्जोव-अप्पसत्थ०-थावर-दूभग-दुस्सर-अणादें०।

५११. मणुसग० जह० बं० पंचणा०-उच्चा०-पंचंत० णियमा० बंध० णियमा जहण्णा। छदंस०-बारसक०-पुरिस०-भय-दु० णि० बं० णि० अजह० अणंतभागब्भहियं०। दोवेदणी० सिया० जहण्णा। चदुणोक० सिया० अणंतभागब्भहियं।

प्रकार अर्थात् निद्रानिद्राका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके समान आठ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय और नीचगोत्रका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेद और पुरुषवेदका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके एकेन्द्रियजाति आदि तीनको छोड़कर सन्निकर्ष करना चाहिए। वह उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है।

५०९. दो आयुओंका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्ष जिस प्रकार नारकियोंमें कह आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चायुका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव एकेन्द्रियजातित्रिकका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है।

५१०. तिर्यञ्चगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय और सात नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके समान एकेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिए।

५११. मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीयका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता

णामाणं सत्थाण०भंगो। एवं मणुसाणु०-तित्थ०।

५१२. पंचिंदि० जह०[1] पदे०बं० पंचणाणावरणी०-पंचंत० णियमा बंध० णियमा जहण्णा। थीणगिद्धि०३-दोवेदणी०-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०[2]-णवुंस०-दोगोद० सिया० जहण्णा। छदंसणा०-बारसक०-भय-दुगुं० णियमा बंध० तं०तु० अणंतभागब्भहियं०। पंचणोक० सिया० तं० तु० अणंतभागब्भहियं०। णामाणं सत्थाण०भंगो। एवं पंचिंदियजादिभंगो तिण्णिसरीर-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरिस०-वण्ण०४-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-थिरादितिण्णियुग०-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०। एदेण बीजेण याव सव्वट्ठ त्ति णेदव्वं।

५१३. पंचिंदिय०-तस०२ मूलोघं। पंचमण०-तिण्णिवचि०[3] आभिणि० जह० पदे०बं० चदुणा०-पंचंत० णियमा बं० णियमा जहण्णा। थीणगिद्धि०३-दोवेदणीय-

है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार अर्थात् मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके समान मनुष्यगत्यानुपूर्वी और तीर्थङ्कर-प्रकृतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिए।

५१२. पञ्चेन्द्रियजातिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता है। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। पाँच नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियजातिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके समान तीन शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच-संहनन, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि तीन युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिए। तथा आगे सर्वार्थसिद्धिके देवों तक इसी बीज पदके अनुसार अर्थात् सौधर्म-ऐशान कल्पमें जिस प्रकार कहा है उसे ध्यानमें रखकर सन्निकर्ष ले आना चाहिए।

५१३. पञ्चेन्द्रियद्विक और त्रसद्विकमें मूलोघके समान भङ्ग है। पाँच मनोयोगी और तीन वचनयोगी जीवोंमें आभिनिबोधिकज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद,

---

[1] ता०प्रतौ 'मणुसाणु०। तित्थ० पंचंत० जह०' आ०प्रतौ मणुसाणु० तित्थ०। पंचंत० जह०' इति पाठः। [2] आ०प्रतौ 'दोवेदणी० अणंताणु०४ इत्थि०' इति पाठः। [3] आ०प्रतौ 'पंचमण० पंचवचि० तिण्णिवचि०' इति पाठः।

मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-चदुआउग०-णिरयग०-णिरयाणु०-आदाव-दोगोद० सिया० जह०। छदंसणा०-चदुसंज०-भय-दु० णियमा० बं० तं तु० अणंतभागब्भहियं बंधदि। अट्ठक०-पंचणोक० सिया० तं तु० अणंतभागब्भहियं बंधदि त्ति। तिगदि-पंचजादि० तिण्णिसरीरं छस्संठाणं दोअंगोवंगं छस्संघडणं तिण्णिआणुपुव्वि० पर० उस्सासं उज्जोवं दोविहा० तसादिदसयुगलं तित्थयरं सिया० तं तु० संखेज्जदिभागब्भहियं बंधदि। तेजा-कम्मइग०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० णियमा बंधदि तं तु० संखेज्जदिभागब्भहियं बंधदि। वेउव्वि०अंगो० सिया० तं० तु० विट्ठाणपदिदं बंधदि संखेज्जभागब्भहियं बंधदि संखेज्जगुणब्भहियं वा। एवं चदुणाणावरणीयं पंचंतराइगं।

५१४. णिद्दाणिद्दाए जह० पदे०बं० पंचणाणा०-अट्ठदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुं०-पंचंत० णि० बं० णि० जह०। दोवेद०-सत्तणोक०-चदुआउ०-णिरयग०-

नपुंसकवेद, चार आयु, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। आठ कषाय और पाँच नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबंध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तीन गति, पाँच जाति, तीन शरीर, छह संस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस आदि दस युगल और तीर्थङ्करप्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यात भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तैजसशरीर, कार्मणशर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उसका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो उसका द्विस्थान पतित बन्ध करता है, संख्यातभाग अधिक बन्ध करता है या संख्यातगुणा अधिक बन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् आभिनिबोधिकज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके समान चार ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिए।

५१४. निद्रानिद्राका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, आठ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, सात नोकषाय, चार आयु, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है और

णिरयाणु०-आदाव-दोगोद०[1] सिया० जह० । तिरिक्ख०-पंचजादि-ओरालि०-छस्संठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-तिरिक्खाणु०-पर०-उस्सा० - उज्जो० - दोविहा०[2]-तसादिदस-युग० सिया० संखेँज्जदिभागब्भहियं बंधदि । दोगदि-वेउव्वि०-दोआणु० सिया० संखेँज्जदिभागब्भहियं[3] बं० । तेजा०-क० णि० संखेँज्जदिभागब्भहियं बं० । वण्ण०४-अगु०[4]-उप०-णिमि णि० बं० तं०तु० संखेँज्जदिभागब्भहियं बं० । वेउव्वि०अंगो० सिया० बं० सिया० अबं० । यदि बं० अजह० संखेँज्जगुणब्भहियं० । एवं णिद्दाणिद्दाए[5] भंगो० अट्ठदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु० ।

५१५. सादा० आभिणि०भंगो । णवरि णिरयगदितिगं वज्ज ।

५१६. असादा० जह० पदे०बं० पंचणा०पंचंत० णि० बं० णि०[6] जह० । थीणगिद्धि०३ - मिच्छ० - अणंताणु०४ - इत्थि० - णवुंस०-तिण्णिआउ०-णिरयगदि०२-

कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तिर्यञ्चगति, पाँच जाति, औदारिकशरीर, छह संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, दो विहायोगति और त्रस आदि दस युगलका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो गति, वैक्रियिकशरीर और दो आनुपूर्वीका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तैजसशरीर और कार्मणशरीरका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार निद्रानिद्राका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके समान आठ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिए।

५१५. सातावेदनीयका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका सन्निकर्ष भङ्ग आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके समान है। इतनी विशेषता है कि नरकगतित्रिकको छोड़कर सन्निकर्ष कहना चाहिए।

५१६. असातावेदनीयका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तीन आयु, नरकगति-

---

१. ता०प्रतौ 'णिरयाणु० आ···गोद०' आ०प्रतौ 'णिरयाणु० दोगोद०' इति पाठः । २. आ०प्रतौ 'उस्सा० दोविहा०' इति पाठः । ३. ता०प्रतौ 'वेउव्वि० [दोआणु०]···संखेज्जदिभा०' इति पाठः । ४. ता०प्रतौ 'संखेज्जदिभा० वण्ण० ४ अगु०' इति पाठः । ५. आ०प्रतौ 'एवं णिद्दाए' इति पाठः । ६. ता०प्रतौ 'ज० बं० पंचंत० णि० [बं०] णि०' आ०प्रतौ 'जह० पदे० बं० पंचंत० णि० बं० णि०' इति पाठः ।

आदाव०-तित्थ०-[दोगोद०] सिया० जह० । छदंस० बारसक०-भय-दु० णि०[1] तं०तु० अणंतभागब्भहियं० । पंचणोक० सिया० तं० तु० अणंतभागब्भहियं बं० । दोगदि[2]-पंचजादि-ओरालि०-छस्संठा० - ओरालि०अंगो०-छस्संघ० -,दोआणु० - पर० - उस्सा०-उज्जो०-दोविहा०-तसादिदसयुग० सिया० तं०तु० संखेँज्जदिभागब्भहियं बं० । तेजा०-क० णिद्दाए भंगो । वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० णि० तं०तु० संखेँज्जदिभागब्भहियं बं० । वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०[3] सिया० संखेँज्जगुणब्भहियं बं० ।

५१७. इत्थि० जह० पदे०बं० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-पंचंत० णि० बं० .णि० जह० । दोवेदणी०-चदुणोक०-तिण्णिआउ०-उज्जो०[4]-दोगोद० सिया० जह० । तिरिक्ख०-ओरालि०-छस्संठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-तिरिक्खाणु०-

द्विक, आतप, तीर्थङ्कर और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। पाँच नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका अनन्तभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो गति, पाँच जाति, औदारिकशरीर, छह संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, दो विहायोगति और त्रस आदि दस युगलका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तैजसशरीर और कार्मणशरीरका भङ्ग निद्राका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके इनका जिस प्रकार सन्निकर्ष कह आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिए। वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है।

५१७. स्त्रीवेदका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, चार नोकषाय, तीन आयु, उद्योत और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तिर्यञ्चगति, औदारिकशरीर, छह संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति

---

[1] ता०प्रतौ 'छ [दंसणा० णि० बं०] णि०' आ०प्रतौ 'छदंस……णि०' इति पाठः ।
[2] आ०प्रतौ 'तं तु० । दोगदि०' इति पाठः । [3] आ०प्रतौ 'वेउव्वि० सिया० वेउव्वि०अंगो०' इति पाठः ।
[4] ता०प्रतौ 'भयदु० [पंचदंस०]……उज्जो०' आ०प्रतौ 'भय-दु० पंचदंस……उज्जो०' इति पाठः ।

दोविहा॰-थिरादिछयुग॰ सिया॰ तं॰तु॰ संखेँज्जदिभागब्भहियं बं॰ । दोगदि-वेउव्वि॰-दोआणु॰ सिया॰ संखेँज्जदिभागब्भहियं बं॰ । पंचिंदि॰-तेजा॰-क॰-वण्ण॰४-अगु॰४-तस॰४-णिमि॰ णि॰ बं॰ तं॰तु॰ संखेँज्जदिभागब्भहियं बं॰ । णवरि तेजा॰-क॰ तं॰तु॰ णत्थि । वेउव्वि॰अंगो॰ सिया॰ संखेँज्जदिभागब्भहियं॰ संखेँज्जगुणब्भहियं॰ । पुरिस॰ इत्थि॰भंगो ।

५१८. णवुंस॰ जह॰ पदे॰बं॰ पंचणा॰-णवदंस॰-मिच्छ॰-सोलसक॰-भय-दु॰-पंचंत॰[1] णि॰ बं॰ णि॰ [जह॰]। दोवेद॰-चदुणोक॰-तिण्णिआउ॰-णिरय॰-णिरयाणु॰-आदाव॰-दोगोद॰ सिया॰ जह॰ । तिरिक्ख॰-पंचजादि-ओरालि॰-छस्संठा॰-ओरा॰अंगो॰-छस्संघ॰-तिरिक्खाणु॰-पर॰-उस्सा॰-उज्जो॰-दोविहा॰-तसादिदसयुग॰ सिया॰ तं॰तु॰

और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता । यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है । यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है । दो गति, वैक्रियिकशरीर और दो आनुपूर्वीका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता । यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है । पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है । यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है । इतनी विशेषता है कि तैजसशरीर और कार्मणशरीरका तंतु॰ बन्ध नहीं होता । वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता । यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है या संख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है । पुरुषवेदका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका सन्निकर्ष भङ्ग स्त्रीवेदका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्षके समान है ।

५१८. नपुंसकवेदका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है । दो वेदनीय, चार नोकषाय, तीन आयु, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता । यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है । तिर्यञ्चगति, पाँच जाति, औदारिकशरीर, छह संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, दो विहायोगति और त्रस आदि दस युगलका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता । यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है । यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेश-

---

[1] ता॰प्रतौ 'इत्थि॰···पंचंत॰' आ॰प्रतौ 'इत्थि॰ भंगो॰ ।······पंचंत॰' इति पाठः ।

संखेँज्जभागब्भहियं बं० । मणुस०-वेउव्वि०-मणुसाणु० सिया० संखेँज्जदिभागब्भहियं बं० । तेजा०-क० णियमा संखेँज्जदिभागब्भहियं० । वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० णि० बं० तं०तु० संखेँज्जदिभागब्भहियं बं० । वेउव्वि०अंगो० सिया० संखेँज्जदिभागब्भहियं बं० । अरदि-सोग० णवुंसगभंगो[1] । हस्स-रदि-भय-दु० णिद्दाए भंगो ।

५१९. णिरयाउ० जह० पदे०बं० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०-अरदि-सोग-भय-दु०-णिरय०-णिरयाणु०-णीचा०-पंचंत० णि० बं० णि० जहण्णा । पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-हुंड०-वण्ण०४-अगु०४-अप्पसत्थ०-तस०४-अथिरादिछ०-णिमि० णि० संखेँज्जदिभागब्भहियं० । वेउव्वि०अंगो० णि० सादिरेयं दुभागब्भहियं बं० ।

५२०. तिरिक्खाउ०[2] जह० पदे०बं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-णीचा०-पंचंत० णि० बं० णि० जह०[3] । दोवेद०-सत्तणोक०-आदा० सिया०

बन्ध करता है। मनुष्यगति, वैक्रियिकशरीर और मनुष्यगत्यानुपूर्वीका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तैजसशरीर और कार्मणशरीरका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। अरति और शोकका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्षका भङ्ग नपुंसकवेदका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके समान है। हास्य, रति, भय और जुगुप्साका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्षका भङ्ग निद्राका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके समान है।

५१९. नरकायुका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, अप्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, अस्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे साधिक दो भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है।

५२०. तिर्यञ्चायुका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, सात नोकषाय

---

१. ता०प्रतौ 'सिया···[संखेज्जदिभा०]···णवुंसकभंगो' आ०प्रतौ 'सिया० संखेज्जदिभागब्भहियं बं० ।··· णवुंसगभंगो' इति पाठः । २. ता०प्रतौ 'सादिरेयं दुभागूणवि० (गब्भादियं) एवं णिरय० २ । तिरिक्खाउ०' आ०प्रतौ 'सादिरेयं दुभागब्भहियं बं० । एवं णिरय० । तिरिक्खाउ०' इति पाठः । ३. ता०प्रतौ 'णीचा··· [पंचंत० णि०] जह०' आ०प्रतौ 'णीचा० पंचंत सिया० जह०' इति पाठः ।

जह० । तिरिक्ख०-ओरालि०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० णि० बं तं०तु० संखेज्जदिभागब्भहियं बं० । पंचजादि-छस्संठा०-ओरा०अंगो०-छस्संघ०-पर०-उस्सा०-उज्जो०-दोविहा०-तसादिदसयुग० सिया० तं०तु० संखेज्जदिभागब्भहियं[1] बं० । तेजा०-क०-णि० बं० संखेज्जदिभागब्भ० ।

५२१. मणुसाउ० जह० प०बं० पंचणा०[2]-पंचंत० णि० बं० णि० जह० । थीणगिद्धि०३-दोवेद०-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-अपज्ज० - तित्थ०-दोगोद० सिया० जह० । छदंस०-बारसक०-भय-दु० णि० बं० णि० तं०तु० अणंतभागब्भहियं बं० । पंचणोक० सिया० तं० तु० अणंतभागब्भहियं बं० । मणुस०-पंचिंदि०-ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वण्ण०४-मणुसाणु० - अगु०-उप०-तस-बादर - पत्ते०-णिमि०

और आतपका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तिर्यञ्चगति, औदारिकशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। पाँच जाति, छह संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, दो विहायोगति और त्रस आदि दस युगलका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तैजसशरीर और कार्मणशरीरका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है।

५२१. मनुष्यायुका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अपर्याप्त, तीर्थङ्कर और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। पाँच नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक

---

[1] ता०प्रतौ 'सिया० ''[तं तु०] संखेज्जदिभा०' आ०प्रतौ 'सिया तं तु० संखेज्जदिभागब्भहियं' इति पाठः । [2] ता०प्रतौ 'ज० [पदे० बं०] पंचणा०' इति पाठः ।

णि० तं०तु० संखेंज्जदिभागब्भहियं बं०। तेजा०-क० णि० संखेंज्जदिभागब्भहियं बं०। समचदु०-वज्जरि०-[पर०-उस्सा०-] पसत्थ०-पज्जत्त०-थिरादितिण्णियुग०-सुभग-सुस्सर-आदें० सिया० तं० तु० संखेंज्जदिभागब्भहियं बं०। पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-[अपज्जत्त-] दूभग-दुस्सर-अणादें० सिया० संखेंज्जदिभागब्भ०।

५२२. देवाउ० जह० पदे०बं० पंचणा०-सादा०-[उच्चा०-] पंचंतरा० णि० बं० णि० जह०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि० सिया० जह०। छदंसणा०-चदुसंज०-हस्स-रदि-भय-दु० णि० बं० तं०तु० अणंतभागब्भहियं बं०। अट्ठक०-पुरिस० सिया० तं०तु० अणंतभागब्भहियं बं०। देवगदि-वेउव्वि०-तेजा०-क०-देवाणु० णि० तं०तु० संखेंज्जदिभागब्भहियं०। पंचिंदि०-समचदु०-वण्ण०४-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०[1] णि० बं० णि० अजह० संखेंज्जदिभागब्भहि०। वेउव्वि०-

अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तैजसशरीर और कार्मणशरीरका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराचसंहनन, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, पर्याप्त, स्थिर आदि तीन युगल, सुभग, सुस्वर और आदेयका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, अपर्याप्त, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है।

५२२. देवायुका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, सातावेदनीय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और स्त्रीवेदका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, हास्य, रति, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। आठ कषाय और पुरुषवेदका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। देवगति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर और देवगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है

---

[1] आ०प्रतौ 'थिरादिछयु० णिमि०' इति पाठः।

अंगो॰ णि॰ तं॰तु॰ सादिरेयं दुभाग॰ संखेँज्जदिभागब्भ॰। आहारदुगं सिया॰ तं॰तु॰ संखेँज्जदिभागब्भहियं॰। तित्थ॰ सिया॰ संखेँज्जदिभागब्भ॰।

५२३. णिरय॰ जह॰ पदे॰बं॰ पंचणा॰-णवदंस॰-असादा॰-मिच्छ॰-सोलसक॰-णवुंस॰-अरदि-सोग-भय-दु॰-णिरयाउ॰-णिरयाणु॰-णीचा॰-पंचंत॰ णि॰ बं॰ णि॰ जहण्णा। पंचिंदि॰-वेउव्वि॰-तेजा॰-क॰-हुंड॰-वण्ण॰४-अगु॰४-अप्पसत्थ॰-तस॰४-अथिरादिछ॰-णिमि॰[1] णि॰ संखेँज्जदिभागब्भ॰। वेउव्वि॰अंगो॰ णि॰ संखेँज्जगु॰।

५२४. तिरिक्ख॰ जह॰ पदे॰बं॰ पंचणा॰-णवदंसणा॰-मिच्छ॰-सोलसक॰-भय-दु॰–तिरिक्खाउ॰–ओरालि॰[2]-ओरालि॰अंगो॰–वण्ण॰४–तिरिक्खाणु॰–अगु॰४-उज्जो॰-तस॰४-णिमि॰-णीचा॰-पंचंत॰ णि॰ बं॰ णि॰ जह॰। दोवेद॰-सत्तणोक॰-चदुजादि-छस्संठा॰-छस्संघ॰-दोविहा॰-थिरादिछयुग॰ सिया॰ जह॰। तेजा॰-क॰[3]

जो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उसका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इसका नियमसे साधिक दो भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है या संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। आहारकद्विकका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है।

५२३. नरकगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, नरकायु, नरकगत्यानुपूर्वी, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, अप्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, अस्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे संख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है।

५२४. तिर्यञ्चगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चायु, औदारिकशरीर, औदारिकशरीर-आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, उद्योत, त्रसचतुष्क, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, सात नोकषाय, द्वीन्द्रियसे पंचेन्द्रिय तक चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगति और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध

---

[1] आ॰प्रतौ 'अथिरादिछयु॰ णिमि॰' इति पाठः। [2] ता॰आ॰ प्रत्योः 'तिरिक्खाउ॰ ओरालि॰' इति पाठः। [3] आ॰प्रतौ 'सिया॰ तं तु॰। तेजाक॰' इति पाठः।

णि० बं० णि० संखेँज्जदिभागब्भ०। एवं तिरिक्खगदिभंगो हुंड०-असंप०-तिरिक्खाणु०-उज्जो०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादेँ०।

५२५. मणुसग० जह० पदे०बं० पंचणा०-[मणुसाउ०-] पंचिंदि०-[ओरालि०-] ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-वण्ण०४-मणुसाणु० -अगु०४-पसत्थ० - तस०४ - सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० जह०। छदंस०-बारसक०-पुरिस०-भय-दु० णिय० अणंतभागब्भ०। दोवेदणी०-थिरादितिण्णियुग० सिया० जह०। चदुणोक० सिया० अणंतभागब्भहि०। तेजा०-क० णिय० संखेँज्जदिभागब्भ०।

५२६. देवगदि जह० पदे०बं० पंचणा०-सादा०-देवाउ०-देवाणु०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० जह०। छदंस०-चदुसंज०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दु० णि० अणंतभागब्भ०। अट्ठक० सिया० अणंतभागब्भ०। पंचिंदि०-समचदु०-वण्ण०४-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि० णि० अजह० संखेँज्जदिभाग०[1]। वेउव्वि०-

करता है। तैजसशरीर और कार्मणशरीरका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके समान हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिए।

५२५. मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, मनुष्यायु, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय और स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तैजसशरीर और कार्मणशरीरका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है।

५२६. देवगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, सातावेदनीय, देवायु, देवगत्यानुपूर्वी, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। आठ कषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। वैक्रियिकशरीर, तैजस

---

[1] आ०प्रतौ 'अजह० असंखेज्जदिभाग०' इति पाठः।

तेजा०-क० णि० तं०तु० संखेज्जदिभा० । आहार०२ सिया० जह० । वेउव्वि०अंगो० णि० तं०तु० सादिरेयं दुभागब्भ० । तित्थ० णियमा० संखेँज्जदिभागब्भ० । एवं देवाणु० ।

५२७. एइंदि० जह० पदे०बं० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०-भय-दुगुं०-थावर०-णीचा०-पंचंत० णि० बं० जह० । दोवेद०-चदुणोक०-आदाव० सिया० जह० । तिरिक्खगदिसंजुत्ताओ णि० बं० संखेँज्जदिभागब्भ० । उज्जो०-थिरादि-तिण्णियुग० सिया० संखेँज्जदिभा० । एवं आदाव-थावर० ।

५२८. बीइंदि०-तीइंदि०-चदुरिंदि० हेट्ठा उवरिं एइंदियभंगो । णामाणं सत्थाण०भंगो ।

५२९. पंचिंदि० जह० पदे०बं० पंचणा०-ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वण्ण०४-

शरीर और कार्मणशरीरका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। आहारकद्विकका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु इसका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इसका नियमसे साधिक दो भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तीर्थङ्करप्रकृतिका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे संख्यात भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् देवगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गए सन्निकर्षके समान देवगत्यानुपूर्वीका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका सन्निकर्ष कहना चाहिए।

५२७. एकेन्द्रियजातिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, भय, जुगुप्सा, स्थावर, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, चार नोकषाय और आतपका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तिर्यञ्चगतिसंयुक्त प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। उद्योत और स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यात भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार एकेन्द्रियजातिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गए उक्त सन्निकर्षके समान आतप और स्थावरका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका सन्निकर्ष जानना चाहिए।

५२८. द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति और चतुरिन्द्रियजातिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी और बादकी प्रकृतियोंका भङ्ग एकेन्द्रियजातिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके इन प्रकृतियोंके कहे गए सन्निकर्षके समान जानना चाहिए। तथा नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।

५२९. पञ्चेन्द्रियजातिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, औदारिकशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण

अगु॰४-तस॰४-णिमि॰-पंचंत॰ णि॰ बं॰ णि॰ जह॰। थीणगि॰३-दोवेद॰-मिच्छ॰-अणंताणु॰४-इत्थि॰-णवुंस॰-दोआउ॰-दोगदि-छस्संठा॰-छस्संघ॰-दोआणु॰-उज्जो॰-दोविहा॰-थिरादिछयुग॰-तित्थ॰-दोगोद॰ सिया॰ जह॰। छदंस॰-बारसक॰-भय-दुगुं॰ णि॰ तं॰तु॰ अणंतभागब्भ॰। पंचणोक॰ सिया॰ तं॰तु॰ अणंतभागब्भ॰। तेजा॰-क॰ णि॰ संखेंज्जदिभागब्भ॰। एवं-पंचिंदियजादिभंगो॰ समचदु॰-वज्जरि॰-पसत्थ॰-सुभग-सुस्सर-आदें॰-ओरालि॰-ओरालि॰अंगो॰-वण्ण॰४-अगु॰४-तस॰४-थिरादितिण्णियुग॰-णिमि॰[1] एदाणं पंचिंदियभंगो।

५३०. वेउव्वि॰ जह॰ पदे॰बं॰ पंचणा॰-सादा॰-देवाउ॰-देवग॰-आहार॰-तेजा॰-क॰-दोअंगो॰-देवाणु॰-उच्चा॰-पंचंत णि॰ बं॰ णि॰ जह॰। छदंस॰-चदुसंज॰-पुरिस॰-हस्स-रदि-भय-दु॰ णि॰ बं॰[2] अणंतभागब्भ॰। पंचिंदि॰-समचदु॰-वण्ण॰४-अगु॰४-पसत्थ॰-तस॰४-थिरादिछ॰-णिमि॰[3]-तित्थ॰ णि॰ बं॰ णि॰ अजह॰

और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धि तीन, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, दो आयु, दो गति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, उद्योत, दो विहायोगति, स्थिर आदि छह युगल, तीर्थङ्कर और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। पाँच नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तैजसशरीर और कार्मणशरीरका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियजातिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गए सन्निकर्षके समान समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, औदारिकशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि तीन युगल और निर्माण इनका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिए।

५३०. वैक्रियिकशरीरका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, सातावेदनीय, देवायु, देवगति, आहारकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रस चतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और तीर्थङ्कर प्रकृतिका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी

---

[1] ता॰प्रतौ 'तस॰ णिमि॰' इति पाठः। [2] आ॰प्रतौ 'रदि णि॰ बं॰' इति पाठः। [3] आ॰प्रतौ 'थिरादिछयु॰ णिमि॰' इति पाठः।

संखेँज्जदिभागब्भ०। एवं आहार०-तेजा०-क०[1]-दोअंगो०। चदुसंठा०-चदुसंघ० तिरिक्खगदिभंगो। णवरि पंचिंदि० धुव०।

५३१. सुहुम० जह० पदे०बं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०-भय-दु०-णीचा०-पंचंत० णि० बं० णि० जह०। दोवेद०-चदुणोक०-साधार० सिया० जह०। तिरिक्खाउ० णि० जह०। तिरिक्ख०-एइंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-[थावर०-पज्जत्त०-] दूभग-अणादें०-अजस०-णिमि० णि० अजह० संखेँज्जदिभागब्भहियं। पत्तेय०-थिराथिर-सुभासुभ० सिया० संखेँज्जदिभागब्भ०। एवं साधार०।

५३२. अपज्ज० जह० पदे०बं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०-भय-दु०-णीचा०-पंचंत० णि० बं० णि० जह०। दोवेद०-चदुणोक०-दोआउ० सिया० जह०। दोगदि-चदुजादि-दोआणु० सिया० संखेँज्जदिभागब्भ०। ओरालि०-तेजा०-क०-

प्रकार अर्थात् वैक्रियिकशरीरका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये उक्त सन्निकर्षके समान आहारकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर और दो आङ्गोपाङ्गका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका कहना चाहिए। चार संस्थान और चार संहननका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका सन्निकर्ष तिर्यञ्चगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये सन्निकर्षके समान जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्द्रियजातिका नियमसे बन्ध करता है।

५३१. सूक्ष्मकर्मका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, भय, जुगुप्सा, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, चार नोकषाय और साधारणका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तिर्यञ्चायुका नियमसे बन्ध करता है जो इसका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, स्थावर, पर्याप्त, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। प्रत्येक, स्थिर, अस्थिर, शुभ और अशुभका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् सूक्ष्मकर्मका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये उक्त सन्निकर्षके समान साधारण कर्मका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका सन्निकर्ष कहना चाहिए।

५३२. अपर्याप्तका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, भय, जुगुप्सा, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, चार नोकषाय और दो आयुका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो गति, चार जाति और दो आनुपूर्वीका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर,

---

[1] ता०प्रतौ 'आहार०। ते० क०' इति पाठः।

हुंड०-ओरालि०अंगो०-असंप०-वण्ण०४-अगु०-उप०-तस०-बादर-पत्ते० - अथिरादिपंच०-णिमि०[1] णि० अजह० संखेँज्जदिभागब्भ० ।

५३३. तित्थ० मणुसगदिभंगो । उच्चा० जह० पदे०बं० पंचणा०-पंचंत० णि० बं० णि० जह० । थीणगिद्धि०३-दोवेद०-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-दोआउ० सिया० जह० । छदंस०-चदुसंज०-भय-दु० णि० बं० तं० तु० अणंतभागब्भहियं । अट्ठक०-पंचणोक० सिया० तं०तु० अणंतभागब्भहियं० । दोगदि-तिण्णिसरीर-[समचदु०-] दोअंगो०-वज्जरि०-दोआणु०-पसत्थ० -थिरादितिण्णियुग०-सुभग - सुस्सर-आदेँ० - तित्थ० सिया० तं०तु० संखेँज्जदिभागब्भहियं० । [पंचिंदि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णि० बं० णि० अजह० संखेँज्जभागब्भहियं बं०]। पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादेँ० सिया० संखेँज्जभागब्भहियं० । वेउव्वि०अंगो०

कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, प्रत्येक, अस्थिर आदि पाँच और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है।

५३३. तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका सन्निकर्ष मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये सन्निकर्षके समान जानना चाहिए। उच्चगोत्रका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और दो आयुका कदाचित् बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। आठ कषाय और पाँच नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो गति, तीन शरीर, समचतुरस्र-संस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, दो आनुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, स्थिर आदि तीन युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इसका नियमसे साधिक दो भाग अधिक अजघन्य

---

[1] ता० प्रतौ 'अथिरादिपंच० णि० णिमि०' इति पाठः।

सिया० तं०तु० सादिरेयं दुभाग० संखेँज्जदिभागब्भहियं वा।

५३४. वचिजो०-असच्चमोसवचि० तसपज्जत्तभंगो। णवरि दोआउ०-वेउव्वियछ० जोणिणि०भंगो। आहारदुगं तित्थ० ओघं। कायजोगि० ओघं। ओरालियका० ओघभंगो। णवरि सुहुमपढमसमयसरीरपज्जत्तयस्स सामित्तादो सण्णिकासो कादव्वो। चदुआउ०-वेउव्वि०छक्क-आहारदुग-तित्थयराणं सह याओ पगदीओ आगच्छंति ताओ असंखेँज्जगुणाओ एदेण बीजेण णेदव्वाओ सव्वपगदीओ। ओरालियमि० ओघं। णवरि देवगदिपंचगं मणुसभंगो। वेउव्वियका०-वेउव्वियमि० सोधम्मभंगो।

५३५. आहार०-आहार०मि० आभिणि० जह० पदे०बं० चदुणा०-छदंस०-सादा०-चदुसंज०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दुगुं०-देवाउ०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० जह०। देवगदि[1]-पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-वण्ण०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि० णि० बं० णि० तं०तु० संखेँज्जदि-

प्रदेशबन्ध करता है या संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है।

५३४. वचनयोगी और असत्यमृषावचनयोगी जीवोंमें त्रसपर्याप्त जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि दो आयु और वैक्रियिकषट्कका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका सन्निकर्ष भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंके समान है। तथा आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। काययोगी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। औदारिककाययोगी जीवोंमें भी ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि शरीरपर्याप्त होकर जो सूक्ष्म जीव प्रथम समयमें स्थित है वह यथायोग्य प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी होता है, इसलिए यहाँ इस बातको ध्यानमें रखकर सन्निकर्ष कहना चाहिए। तथा चार आयु, वैक्रियिकषट्क, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिके साथ जो प्रकृतियाँ आती हैं, वे नियमसे असंख्यातगुणी अजघन्य प्रदेशबन्धवाली होती हैं। इस बीजपदके अनुसार सब प्रकृतियोंका सन्निकर्ष ले जाना चाहिए। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि देवगतिपञ्चकका भङ्ग मनुष्योंके समान है। वैक्रियिककाययोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सौधर्मकल्पके देवोंके समान भङ्ग है।

५३५. आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें आभिनिबोधिकज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवायु, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इसका

---

[1] ता०प्रतौ 'जह० देवगदि' इति पाठः।

भागब्भ० । तित्थ० सिया० जह० । एवं चदुणा०-छदंस०-सादा०-चदुसंज०-पंचणोक०-देवाउ०-उच्चा०-पंचंत० ।

५३६. असादा०[1] जह० पदे०बं० पंचणा०-छदंस०-चदुसंज०-पुरिस०-भय-दु०-देवगदि-पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-वण्ण०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० अजह० संखेंज्जभागब्भ० । हस्स-रदि-थिर-सुभ-जस०-तित्थ० सिया० संखेंज्जदिभागब्भ० । अरदि-सोग० सिया० जह० । अथिर-असुभ-अजस० सिया० तं०तु० संखेंज्जदिभा० । एवं अरदि-सोगाणं ।

५३७. देवग० जह० पदे०बं० पंचणा०-छदंसणा०-सादा०-चदुसंज०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दु०-देवाउ०-पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-वण्ण०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०[2]-णिमि०-तित्थ०-उच्चा०-पंचंत०

नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् आभिनिबोधिकज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये उक्त सन्निकर्षके समान चार ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पाँच नोकषाय, देवायु, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिए।

५३६. असातावेदनीयका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रस चतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। हास्य, रति, स्थिर, शुभ, यशःकीर्ति और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। अरति और शोकका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यात भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् असातावेदनीयका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये उक्त सन्निकर्षके समान अरति और शोकका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका सन्निकर्ष जानना चाहिए।

५३७. देवगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवायु, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका

---

[1] ता०प्रतौ 'पंचंत० असाद०' इति पाठः। [2] ता०प्रतौ 'अगु० ४ तस ४ थिरादिछ०' इति पाठः।

णि० बं० णि० जह० । एवं देवगदिभंगो सव्वाणं पसत्थाणं णामाणं ।

५३८. अथिर० जह० पदे०बं० सादावे०-हस्स-रदि-सुभ-जस० सिया० संखेँज्जदिभागब्भ० । असादा०-अरदि-सोग-असुभ-अजस० सिया० जह० । सेसाओं[1] णि० बं० णि० अजह० संखेँज्जदिभागब्भ० । एवं असुभ-अजस० ।

५३९. कम्मइग० मूलोघभंगो । इत्थिवेदेसु पंचिंदियतिरिक्खजोणिणिभंगो । णवरि आहार०-आहार०अंगो०-तित्थ० मणुसि०भंगो । पुरिस० पंचिंदियतिरिक्खभंगो । णवरि आहारदुग-तित्थ० ओघो । णंवुंसगे संठाणं[2] मूलोघं । णवरि वेउव्वियछक्कं जोणिणिभंगो । तित्थयरं ओघं णेरइगस्स भवदि ।

५४०. अवगदवेदेसु आभिणि० जह० पदे०बंधंतो चदुणा०-चदुदंसणा०-सादावे०-जसगि०-उच्चागो०-पंचंतरा० णि० वं० णियमा जहण्णा । कोधसंज० सिया० जह० । माणसंज० सिया० तं०तु० संखेँज्जदिभागब्भ० । मायासंज० सिया० तं०तु०

नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार देवगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये उक्त सन्निकर्षके समान नामकर्मकी सब प्रशस्त प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका सन्निकर्ष जानना चाहिए।

५३८. अस्थिर प्रकृतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव सातावेदनीय, हास्य, रति, शुभ और यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। असातावेदनीय, अरति, शोक, अशुभ और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। शेष प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् अस्थिरप्रकृतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये उक्त सन्निकर्षके समान अशुभ और अयशःकीर्तिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्ष कहना चाहिए।

५३९. कार्मणकाययोगी जीवोंमें मूलोघके समान भङ्ग है। स्त्रीवेदी जीवोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि आहारकशरीर, आहारकशरीरआङ्गोपाङ्ग और तीर्थङ्करप्रकृतिका भङ्ग मनुष्यिनीके समान है। पुरुषवेदी जीवोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि आहारकद्विक और तीर्थङ्करप्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। नपुंसकवेदी जीवोंमें स्वस्थान मूलोघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि वैक्रियिकषट्कका पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंके समान भङ्ग है। तीर्थङ्करप्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। इसका जघन्य स्वामी नारकी होता है।

५४०. अपगतवेदी जीवोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। क्रोधसंज्वलनका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। मानसंज्वलनका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता

---

[1] ता०प्रतौ 'जह० सेसाओ' इति पाठः । [2] ता०प्रतौ 'णपुंसके० सं (स) ठाणं'

संखेॅज्जदिभागब्भ० संखेॅज्जगुणब्भहियं वा । लोभसंज० णियमा तं०तु० संखेॅज्जदिभागब्भ० संखेॅज्जगुणब्भहियं वा चदुभागब्भहियं वा । एवं चदुणा०—चदुदंस०-सादा०-जस०-उच्चा०-पंचंत० ।

५४१. कोधसंज० जह० पदे०बं० पंचणा०-चदुदंस०-सादा०-तिण्णिसंज०-जस०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० जह० । एवं तिण्णिसंज० ।

५४२. कोध-माण-माया-लोभं ओघं । मदि-सुद० सव्वाणं ओघं । णवरि वेउव्वियछक्कं जोणिणिभंगो ।

५४३. विभंगे आभिणि० जह० पदे०बं० चदुणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-पंचंत० णि० बं० णि० जह० । दोवेद०-सत्तणोक०-चदुआउ०-वेउव्वियछ०-आदाव-दोगोद०[1] सिया० जह० । दोगदि[2]-पंचजादि-ओरालि०-छस्संठा०-ओरालि०-

है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। मायासंज्वलनका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातभाग अधिक या संख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। लोभसंज्वलनका नियमसे प्रदेशबन्ध करता है। किन्तु वह इसका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इसका नियमसे संख्यातभाग अधिक या संख्यातगुणा अधिक या चार भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये उक्त सन्निकर्षके समान चार ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय का जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिए।

५४१. क्रोधसंज्वलनका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, तीन संज्वलन, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् क्रोधसंज्वलनका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये उक्त सन्निकर्षके समान तीन संज्वलनका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्ष कहना चाहिए।

५४२. क्रोधकषायवाले, मानकषायवाले, मायाकषायवाले और लोभकषायवाले जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि इनमें वैक्रियिकषट्कका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंके समान है।

५४३. विभङ्गज्ञानी जीवोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, सात नोकषाय, चार आयु, वैक्रियिकषट्क, आतप और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो गति, पाँच जाति, औदारिकशरीर, छह संस्थान, औदारिकशरीर

---

[1] आ०प्रतौ 'वेउव्वियछ० आहार० दोगोद०' इति पाठः । [2] आ०प्रतौ 'सिया० दोगदि' इति पाठः ।

अंगो०-छस्संघ०-दोआणु०-पर०[1]-उस्सा०-उज्जो०-दोविहा०-तसादिदसयुग० सिया० तं० तु० संखेँज्जदिभागब्भ०। तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० णि० बं० तं०तु० संखेँज्जदिभागब्भं०। एवं चदुणा०-णवदंस०-दोवेद०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-दोगोद०-पंचतरा०। णवरि सादावेद० बंधंतस्स० णिरयगदितिगं वज्ज असादावेदणीयं बंधंतस्स देवाउ० वज्ज०।

५४४. इत्थि० जह० पदे०बं० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-पंचंत० णि० बं० णि० जह०। दोवेद०-चदुणोक०-तिण्णिआउ०-दोगदि-वेउव्वि०-वेउव्वि-अंगो०-दोआणु०-उज्जो०-दोगोद० सिया० जह०। तिरिक्ख०-ओरालि०-छस्संठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-तिरिक्खाणु०-दोविहा०-थिरादिछयु० सिया० तं०तु० संखेँज्जदिभागब्भ०। पंचिंदि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णि० बं०

आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, दो विहायोगति और त्रस आदि दस युगलका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये उक्त सन्निकर्षके समान चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, दो गोत्र और पाँच अन्तरायका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सातावेदनीयका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके नरकगतित्रिकको छोड़कर सन्निकर्ष कहना चाहिए। तथा असातावेदनीयका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके देवायुको छोड़कर सन्निकर्ष कहना चाहिए।

५४४. स्त्रीवेदका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, चार नोकषाय, तीन आयु, दो गति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, दो आनुपूर्वी, उद्योत और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तिर्यञ्चगति, औदारिकशरीर, छह संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रस चतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यात

---

[1] आ०प्रतौ 'छस्संघ० पर०' इति पाठः।

तं०तु० संखेँज्जदिभागब्भ०। एवमेदेण कमेण णेदव्वाओ सव्वाओ पगदीओ। एवं पुरिस०। हस्स-रदीणं साद०भंगो। अरदि-सोगाणं असाद०भंगो। णामाणं हेट्ठा उवरिं आभिणि०भंगो। णामाणं सत्थाण०भंगो।

५४५. आभिणि०-सुद-ओधिणा० आभिणि० जह० पदे०बं० चदुणा०-छदंसणा०[1]-बारसक०-पुरिस०-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० जह०। दोवेद०-चदुणोक० सिया० जह०। दोगदि-दोसरीर-दोअंगो०-वज्जरि०-दोआणु०-थिरादि-तिण्णियुग०-तित्थ० सिया० तं० तु० संखेँज्जदिभागब्भ०। पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि० णि० तं०तु० संखेँज्जदिभागब्भ०। एवं चदुणा०-छदंसणा०-दोवेद०-बारसक०-सत्तणोक०-उच्चा०-पंचंत०।

भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार इस क्रमसे सब प्रकृतियोंका सन्निकर्ष ले जाना चाहिए। इसी प्रकार पुरुषवेदका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्ष कहना चाहिए। तथा हास्य और रतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सातावेदनीयका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके समान सन्निकर्ष कहना चाहिए और अरति व शोकका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके असातावेदनीयका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके समान सन्निकर्ष कहना चाहिए। नामकर्मकी प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले पृथक्-पृथक् जीवके नामकर्मसे पूर्वकी और बादकी प्रकृतियोंका भङ्ग आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये सन्निकर्षके समान है। तथा नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।

५४५. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो गति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, दो आनुपूर्वी, स्थिर आदि तीन युगल और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये उक्त सन्निकर्षके समान चार ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, दो वेदनीय, बारह कषाय, सात नोकषाय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्ष कहना चाहिए।

---

[1] ता०प्रतौ 'चदुणो० छदंस०' इति पाठः।

५४६. मणुसाउ० जह० पदे०बं० पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुं०-मणुसगदि० उवरि याव उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० अजह० असंखेँज्जगुणब्भ०। दोवेद०-चदुणोक०-थिरादितिण्णियुग०-तित्थ० सिया० बं० सिया० अबं०। यदि बं० णि० अजह० असंखेँज्जगुणब्भ०। एवं देवाउ०। णवरि देवाउगपाओँग्गपगदीओ णादव्वाओ भवंति। आहारदुगं सिया० तं०तु० संखेँज्जदिभागब्भ०। तित्थ० सिया० असंखेँज्जगुणब्भ०।

५४७. मणुस० जह० पदे०बं० पंचणा०-छदंस०-बारसक०-पुरिस०-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० ज०। दोवेद०[1]-चदुणोक० सिया० जह०। णामाणं[2] सत्थाण०भंगो। एवं सव्वणामाणं। णवरि देवगदि० जह० पदे०बं० पंचणा०-छदंस०-बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुं०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० जह०। दोवेद०-चदुणोक०

५४६. मनुष्यायुका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँचज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा तथा मनुष्यगतिसे लेकर उच्चगोत्र तक और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, चार नोकषाय, स्थिर आदि तीन युगल और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् देवायुका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्ष कहना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यहाँ पर देवायुके जघन्य प्रदेशबन्धके साथ बन्धको प्राप्त होनेवालीं प्रकृतियाँ जाननी चाहिए। यह देवायुका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव आहारकद्विकका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है।

५४७. मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थानसन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार अर्थात् मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये उक्त सन्निकर्षके समान नामकर्मकी अन्य प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि देवगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता।

---

[1] ता०प्रतौ 'पुरि०···दोवेद०' आ०प्रतौ० 'पुरिस० भय दु०···उच्चा० पंचंत० णि० बं० णि० ज० दोवेद०' इति पाठः। [2] ता०प्रतौ 'जह० णामायं' इति पाठः।

सिया० जह० । णामाणं सत्थाण०भंगो । एवं [वेउव्वि०-] वेउव्वि०अंगो०-देवाणु० । आहारदुगं[1]ओघं । एवं ओधिदं०-सम्मादि० ।

५४८. मणपज्ज० आभिणि० जह० पदे०बं० चदुणा०-छदंसणा०-सादा०-चदुसंज०[2]-पुरिस०-हस्स-रदि-भय दुगुं०-देवाउ०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० जह० । देवगदि०-पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा० -क० - समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-वण्ण०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्थ०[3]-तस०४-थिरादिछ०-णिमि० णि० तं०तु० संखेंज्जदिभागब्भहियं० । आहारदुगं सिया० तं० तु० संखेंज्जदिभागब्भहियं । तित्थ० सिया० जह० । एवं चदुणा०-छदंसणा०-सादा०-चदुसंज०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दुगुं०-उच्चा०-पंचंत० ।

५४९. असादा० जह० पदे०बं० पंचणा०-छदंस०-चदुसंज०-पुरिस०-भय-दु०-

यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार अर्थात् देवगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये उक्त सन्निकर्षके समान वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीरआङ्गोपाङ्ग और देवगत्यानुपूर्वीका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्ष कहना चाहिए। आहारकशरीरद्विकका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्षका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार अर्थात् आभिनिबोधिकज्ञानी आदिके समान अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए।

५४८. मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें आभिनिबोधिकज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवायु, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीरआङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। आहारकद्विकका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् आभिनिबोधिकज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये उक्त सन्निकर्षके समान चार ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्ष कहना चाहिए।

५४९. असातावेदनीयका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह

---

[1] ता०प्रतौ 'देवाणु० आहार०२' इति पाटः। [2] ता०प्रतौ 'सम्मादि० मणु०···चदुसंज०' आ०प्रतौ 'सम्मादि० मणु०······चदुसंज०' इति पाठः। [3] ता०प्रतौ 'वेउ० [तेजाक० समचदु० वेउव्वि० अंगो० वण्ण० ४]······देवाणु०अगु०४ पसत्थ' आ०प्रतौ 'वेउव्वि० तेजाक० समचदु० वेउव्वि० अंगो० वण्ण०४ देवाणु०' अगु०४ पसत्थ० इति पाठः।

देवग०-पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० अजह० संखेंज्जभागब्भहि०। हस्स-रदि-थिर-सुभ-जस०-तित्थ० सिया० संखेंज्जदिभा०। अरदि-सोग० सिया० जह०। वेउव्वि०अंगो० णि० बं० सादिरेयं दुभागब्भ०। अथिर-असुभ-अजस० सिया० तं०तु० संखेंज्जदिभागब्भ०। एवं अरदि-सोगाणं।

५५०. देवगदि० जह० पदे०बं० पंचणा०-छदंसणा०-सादा०-चदुसंज०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दुगुं०-देवाउ०-उच्चा०[1]-पंचंत० णि० बं० णि० जह०। णामाणं सत्थाणभंगो।

५५१. अथिर० जह० पदे०बं० पंचणा०-छदंस०-चदुसंज०-पुरिस०-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० अजह० संखेंज्जभागब्भ०। सादा०-हस्स-रदि-सुभ-जस० सिया० संखेंज्जभागब्भ०। असादा०-अरदि-सोग-असुभ-अजस० सिया० जह०। एवं

दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रस चतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। हास्य, रति, स्थिर, शुभ, यशःकीर्ति और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। अरति और शोकका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे साधिक दो भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् असातावेदनीयका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये उक्त सन्निकर्षके समान अरति और शोकका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिए।

५५०. देवगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवायु, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।

५५१. अस्थिर प्रकृतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। सातावेदनीय, हास्य, रति, शुभ और यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। असातावेदनीय, अरति, शोक, अशुभ और अयशःकीर्तिका कदाचित्

---

[1] आ०प्रतौ 'भय दुगु' उच्चा०' इति पाठः।

असुभ-अजस०। सेसाणं तित्थयरेण सह णि० बं० णि० अजह० संखेंज्जभागब्भ०। एवं संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०। सुहुमसंप० उक्कस्सभंगो।

५५२. संजदासंजदेसु आभिणि० जह० पदे०बं० चदुणा०-छदंस०-सादा०-अट्ठक०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दुगुं०-देवाउ०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० जह०। देवग०-पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-वण्ण०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि० णि० बं० तं०तु० संखेंज्जदिभागब्भ०। तित्थ० सिया० जह०। एवमेदेण कमेण परिहार०भंगो।

५५३. असंदेसु मूलोघं। चक्खु०-अचक्खु०-सण्णि० मूलोघं। किण्ण-णील-काउ० मूलोघं। केण कारणेण ? दव्वलेस्सा तस्स तिण्णि वि भावलेस्सा[1] परियत्तं तेण कारणेण०। तित्थ० जह० पदे०बं० देवगदि०४ णि० बं० णि० अजह० असंखेंज्जगुणब्भ०।

बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् अस्थिरका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये उक्त सन्निकर्षके समान अशुभ और अयशःकीर्तिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिए। शेष प्रकृतियोंका तीर्थङ्कर प्रकृतिके साथ नियमसे बन्ध करता है जो इनका संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत और परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें जानना चाहिए। सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें अपने उत्कृष्ट सन्निकर्षके समान भङ्ग है।

५५२. संयतासंयत जीवोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, आठ कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवायु, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यात भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इसका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इस प्रकार इस क्रमसे परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके समान संयतासंयत जीवोंमें सन्निकर्ष भङ्ग जानना चाहिए।

५५३. असंयतोंमें मूलोघके समान भङ्ग है। चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले और संज्ञी जीवोंमें मूलोघके समान भङ्ग है। कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावाले जीवोंमें मूलोघके समान भङ्ग है। किस कारणसे ? क्योंकि जो द्रव्यलेश्या है उसकी तीनों ही भावलेश्याएँ परावर्तमान हैं-इस कारणसे। यहाँ तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव देवगतिचतुष्कका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे असंख्यातगुणा अधिक अजघन्य

---

[1] ता०प्रतौ, दव्वा लेस्सा ? तस्स तिण्णि विभाग (व) लेस्सा' इति पाठः।

सेसाओ पगदीओ धुवियाओ परियत्तमाणिगाए असंखेँज्जगुणाओ। किण्ण-णीलाणं देवगदि०४ जह० पदे०बं० तित्थकरं णत्थि।

५५४. तेऊए आभिणि० जह० पदे०बं० चदुणा०-पंचंत० णि० बं० णि० जह०। थीणगिद्धि०३ -दोवेद० - मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-आदाव-दोगो० सिया० जह०। छदंसणा०-बारसक०-भय-दु० णि० बं० तं०तु० अणंतभागब्भहियं०। पंचणोक० सिया० तं०तु० अणंतभागब्भहियं०। तिण्णिगदि-दोजादि-दोसरीर-छस्संठा०-दोअंगो०-छस्संघ०-तिण्णिआणु०-उज्जो०-दोविहा०-तस०-थावर - थिरादिछयुग०[1]-तित्थ० सिया० तं०तु० संखेँज्जदिभागब्भहियं०। [तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णि० तं०तु० संखेँज्जदिभागब्भ०।] एवं चदुणा०-दोवेद०-पंचंत०।

५५५. णिद्दाणिद्दाए जह० पदे०बं० पंचणा०-अट्ठदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-

प्रदेशबन्ध करता है। शेष ध्रुव प्रकृतियोंको परावर्तमान प्रकृतियोंके साथ असंख्यातगुणा बाँधता है। मात्र कृष्ण और नीललेश्यामें देवगतिचतुष्कका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता।

५५४. पीतलेश्यावाले जीवोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, आतप और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। पाँच नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तीन गति, दो जाति, दो शरीर, छह संस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, स्थावर, स्थिर आदि छह युगल और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता हैं। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो नियमसे इनका संख्यात भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् आभिनिबोधिकज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये उक्त सन्निकर्षके समान चार ज्ञानावरण, दो वेदनीय और पाँच अन्तरायका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये।

५५५. निद्रानिद्राका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, आठ दर्शना-

---

[1] ता०आ०प्रत्योः 'तसथावरादिछयुग०' इति पाठः।

भय-दु०-पंचंत० णि० बं० णि० जह०। दोवेद०-सत्तणोक०-आदाव-दोगो० सिया० जह०। तिरिक्ख०-दोजादि-छस्संठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-तिरिक्खाणु०-उज्जो०-दोविहा०-तस-थावर०-थिरादिछयुग०[1] सिया० तं० तु० संखेंज्जदिभागब्भहियं०। मणुसग०-मणुसाणु० सिया० संखेंज्जदिभागब्भहियं०। ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णि० तं०तु० संखेंज्जदिभागब्भहियं०। एवं अट्ठदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०-छण्णोक०-णीचा०। इत्थि[2]-पुरिसाणं पि तं चेव। णवरि एइंदियसंजुत्ताओ णिय०। दोआउ०[3] देवभंगो। देवाउ० ओघं०।

५५६. तिरिक्ख० जह० पदे०बं० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुं०-णीचा०-पंचंत० णि० बं० णि० जह०। दोवेदणी०-सत्तणोक०-छस्संठा०-छस्संघ०-

वरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, सात नोकषाय, आतप और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तिर्यञ्चगति, दो जाति, छह संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, स्थावर और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यात भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यात भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यात भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थात् निद्रानिद्राका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये उक्त सन्निकर्षके समान आठ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, छह नोकषाय और नीचगोत्रका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिए। स्त्रीवेद और पुरुषवेदका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके भी वही भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि यह एकेन्द्रियसंयुक्त प्रकृतियोंका नियमसे प्रदेशबन्ध करता है। दो आयुओंका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका भङ्ग देवोंके समान है। तथा देवायुका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका भङ्ग ओघके समान है।

५५६. तिर्यञ्चगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, सात नोकषाय, छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगति और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध

---

[1] ता०आ०प्रत्योः 'थिरादितिण्णियुग०' इति पाठः। [2] ता०प्रतौ 'णीचा०२ इत्थि०' इति पाठः। [3] ता०आ०प्रत्योः 'संजुत्ताओ जह०। दोआउ०' इति पाठः।

दोविहा०-थिरादिछयुग० सिया० जह० । पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०-अंगो०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-उज्जो०-तस०४-णिमि० णि० बं० णि० जह० । एवं तिरिक्खगदिभंगो संठाणं सम्माणं मिच्छादिट्ठिपाओग्गाणं ।

५५७. मणुस० जह० पदे०बं० पंचणा०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० जह० । छदंस०-बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुं० णि० बं० णि० अजह० अणंतभागब्भ० । दोवेदणी०-थिरादितिण्णियुग०[1] सिया० जह० । चदुणोक० सिया० अणंतभागब्भं० । णामाणं सत्थाण०भंगो । एवं मणुसाणु०-तित्थ० ।

५५८. देवग० जह० पदे०बं० हेट्ठा उवरिं मणुसगदिभंगो । णामाणं सत्थाण०-भंगो । मणुस० जहण्णयं देवगदि० ४ ।

५५९. पंचिंदि० जह० पदे० बं० पंचणा०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालिअंगो०-वण्ण०४-अगु-४-तस०४-णिमि०-पंचंत० णि० बं० णि० जह० । थीणगिद्धि०३-

करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, उद्योत, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इस प्रकार अर्थात् तिर्यञ्चगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये उक्त सन्निकर्षके समान मिथ्यादृष्टिप्रायोग्य संस्थान आदि जो भी प्रकृतियाँ हैं उन सबका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका सन्निकर्ष जानना चाहिए।

५५७. मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय और स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार अर्थात् मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये उक्त सन्निकर्षके समान मनुष्यगत्यानुपूर्वी और तीर्थङ्करका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये।

५५८. देवगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका नामकर्मसे पूर्वकी और बादकी प्रकृतियोंका भङ्ग मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके इन प्रकृतियोंका कहे गये सन्निकर्षके समान भङ्ग है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। मात्र देवगतिचतुष्कका जघन्य प्रदेशबन्ध मनुष्यके होता है।

५५९. पञ्चेन्द्रियजातिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य

---

[1] ता०-आ०प्रत्योः 'दो वेद० थिरादितिण्णियुग' इति पाठः।

दोवेद०-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-दोगदि-छस्संठा०-छस्संघ०-दोआणु०-उज्जो०-दोविहा०-थिरादिछयुग०-तित्थ०-दोगो० सिया० जह०। छदंस०-बारसक०-भय-दुगुं० णि० तं०तु० अणंतभागब्भहियं०। पंचणोक० सिया० तं०तु० अणंतभागब्भंहियं०। एवं पंचिंदियभंगो ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-वण्ण०४-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-थिरादितिण्णियुग०-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमिण त्ति। सेसाणं तीसंसंजुत्ताणं तिरिक्खगदिभंगो। एवं णेदव्वाओ[1] सव्वाओ पगदीओ।

५६०. एवं पम्माए सुक्काए वि। सुक्काए आभिणि०[2] जह० पदे०बं० चदुणा०-पंचंत० णि० बं० णि० जह०। थीणगिद्धि०३-दोवेद०-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादें०-दोगोद० सिया० जह०।

प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, दो गति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, उद्योत, दो विहायोगति, स्थिर आदि छह युगल, तीर्थङ्कर और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। पाँच नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्त भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियजातिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके कहे गये उक्त सन्निकर्षके समान औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रस चतुष्क, स्थिर आदि तीन युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिए। तीस संयुक्त प्रकृतियोंका भङ्ग तिर्यञ्चगतिके समान है। इसी प्रकार सब प्रकृतियोंको ले जाना चाहिए।

५६०. पीतलेश्यावालोंके समान पद्मलेश्यावाले और शुक्ललेश्यावाले जीवोंमें भी ले जाना चाहिए। मात्र शुक्ललेश्यावाले जीवोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय,

---

[1] ता०आ०प्रत्योः णिमिण त्ति। सेसाणं तीसं संजुत्ताणं ‘तिरिक्खगदिभंगो। देवगदि० जह० पदे० बं० वेउव्वियस० वेउव्वि० अंगो० देवाणु० उच्चा० णाणंतरायं पंचंत० णि० बं० णि० जह०। सेसाओ णामपगदीओ संखेज्जभागब्भदियं। एवं णेदव्वाओ’ इति पाठः। [2] ता०प्रतौ ‘सुक्काए वि। आभिणि०’ इति पाठः।

छदंस०-बारसक०-भय-दुगुं० णि० बं० णि० तं०तु० अणंतभागब्भहियं०। पंचणोक० सिया० तं०तु० अणंतभागब्भहियं०। दोगदि-दोसरीर-समचदु०-दोअंगो०-वज्जरि०-दोआणु०-पसत्थवि०-थिरादितिण्णियुग०-सुभग-सुस्सर-आदें०-तित्थ० सिया० तं०तु० संखेंज्ज-भागब्भहियं०। पंचिंदि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णि० तं०तु० संखेंज्जभागब्भहियं०। एवमेदेण कमेण णेदव्वं।

५६१. भवसिद्धिया० ओघं। वेदगे आभिणि०भंगो। उवसमस० ओधि०भंगो। णवरि देवगदि०४-आहारदुग० घोलमाणगस्स याओ पगदीओ आगच्छंति ताओ असंखेंज्जगु०।

५६२. सासणे आभिणि० जह० पदे०बं चदुणा०-णवदंसणा०-सोलसक०-भय-दुगुं०-पंचंत० णि० बं० णि० जह०। दोवेद०-छण्णोक०-मणुस०-मणुसाणु०-उज्जो०-दोगोद० सिया० जह०। सेसाओ णामपगदीओ[1] णि० तं० तु० सिया० तं०तु०

भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्त भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। पाँच नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे अनन्तभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो गति, दो शरीर, समचतुरस्र-संस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, दो आनुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, स्थिर आदि तीन युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यात भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यात भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इसी प्रकार इसी क्रमसे शेष सन्निकर्ष ले आना चाहिए।

५६१. भव्योंमें ओघके समान भङ्ग है। वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें आभिनिबोधिकज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें अवधिज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। इनमें इतनी विशेषता है कि घोलमान योगसे बँधनेवाली देवगतिचतुष्क और आहारकद्विकके साथ जो प्रकृतियाँ आती हैं वे नियमसे असंख्यातगुणे प्रदेशबन्धको लिए हुए होती हैं।

५६२. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, छह नोकषाय, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उद्योत और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। शेष नामकर्मकी जो प्रकृतियाँ नियमसे बँधती हैं उनका जघन्य

---

[1] ता०प्रतौ 'सेसदि णामपगदीओ' इति पाठः।

संखेंज्जदिभागब्भ० । एवं[1] णेदव्वं । दोआउ० णिरयभंगो । देवाउ० पंचिंदियतिरिक्खजोणिणिभंगो ।

५६३. सम्मामि० आभिणि० जह० पदे०बं० चदुणा०-छदंसणा०-बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुं०-उच्चागो०-पंचंत० णि० बं० णि० जह० । दोवेद०-चदुणोक०-देवगदि०४ सिया० जह० । मणुस०-मणुसाणु०[2] सिया० जह० । पंचिंदियादि याव णिमिण त्ति णि० तं०तु० संखेंज्जदिभागब्भहियं० ।

५६४. देवगदि० जह० पदे०बं० पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुं०-उच्चा०-पंचंत० णि० बं० णि० जह० । दोवेद०-चदुणोक० सिया० जह० । पंचिंदियजादि याव णिमिण त्ति णि० बं० णि० संखेंज्जभागब्भहियं । वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-देवाणु० णि० बं० णि० जह० । सव्वाओ णामपगदीओ मणुसगदि-

प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो उनका नियमसे संख्यात भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। तथा जो कदाचित् बँधती हैं और कदाचित् नहीं बँधतीं, उनका भी जघन्य प्रदेशबन्ध करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो उनका नियमसे संख्यात भाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। इस प्रकार आगे भी ले जाना चाहिए। दो आयुओंका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका सन्निकर्ष नारकियोंके समान है। देवायुका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवका सन्निकर्ष पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंके समान है।

५६३. सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय, चार नोकषाय और देवगतिचतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजातिसे लेकर निर्माण तककी प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु इनका जघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है और अजघन्य प्रदेशबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है तो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है।

५६४. देवगतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। दो वेदनीय और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। पञ्चेन्द्रियजातिसे लेकर निर्माण तक की प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे संख्यातभाग अधिक अजघन्य प्रदेशबन्ध करता है। वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग और देवगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है जो इनका नियमसे जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। सब नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग

---

१. ता०प्रतौ 'तं तु० संखेज्ज०भा० एवं' इति पाठः । २. ता०प्रतौ 'जह० मणुसाणु०' इति० पाठः ।

भंगो। देवगदि०४[1] मोत्तूण।

५६५. सण्णि० मणुसभंगो। असण्णि० तिरिक्खोघं। णवरि वेउव्वियछक्कं जोणिणिभंगो। आहार० ओघं। अणाहार० कम्मइगभंगो।

एवं जहण्णपरत्थाणसण्णिकासं समत्तं।

एवं सण्णिकासं समत्तं।

भंगविचयपरूवणा

५६६. णाणाजीवेहि भंगविचयं दुविधं-जहण्णयं उक्कस्सयं च। उक्कस्सए पगदं। तत्थ इमं अट्ठपदं—मूलपगदिभंगो। सव्वपगदीणं उक्कस्साणुक्कस्सं मूलपगदिभंगो। तिण्णिआउ० उक्कस्साणुक्कस्सं अट्ठभंगो। एवं ओघभंगो तिरिक्खोघं कायजोगि-ओरालि०-ओरालियमि०-कम्मइ०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खु०-किण्ण०-णील०-काउ०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि०-आहार०-अणाहारग त्ति। णवरि ओरालियमि०-कम्मइ०-अणाहार देवगदिपंचग० उक्क० अणु० अट्ठभंगो।

मनुष्यगतिके समान है। मात्र देवगतिचतुष्कको छोड़ देना चाहिए।

५६५. संज्ञी जीवोंमें मनुष्योंके समान भङ्ग है। असंज्ञी जीवोंमें सामान्य तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें वैक्रियिकषट्कका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंके समान है। आहारक जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। अनाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है।

इस प्रकार जघन्य परस्थान सन्निकर्ष समाप्त हुआ।

इस प्रकार सन्निकर्ष समाप्त हुआ।

भङ्गविचयप्ररूपणा

५६६. नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। उसमें यह अर्थपद है—जो मूलप्रकृतिके समय कहे गये अर्थपदके अनुसार है। सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट भङ्गविचय और अनुत्कृष्ट भङ्गविचय मूलप्रकृतिके भङ्गके समान है। तीन आयुओंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्टके आठ भङ्ग होते हैं। इस प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यञ्चोंमें तथा काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिक मिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें देवगतिपञ्चकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्टके आठ भङ्ग होते हैं।

विशेषार्थ—यहाँ सब उत्तर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंके भङ्गोंका संकलन किया गया है। इस विषयमें यह अर्थपद है कि जो जिस प्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करते हैं वे उस समय उस प्रकृतिका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध नहीं करते। तथा जो जिस प्रकृतिका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करते हैं वे उस समय उस प्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध नहीं

---

[1] ता०प्रतौ 'मणुसगदिभंगो देवगदि०४' इति पाठः।

५६७. णिरएसु सव्वपगदीणं मूलपगदिभंगो। एवं सव्वपुढवीणं संखेँज्ज-असंखेँज्जरासीणं णिरयगदिभंगो। णवरि मणुस०अपज्ज०-वेउव्वि०मि०-आहार०-आहार०-मि०-अवगद०-सुहुम०-उवसम०-सासण०-सम्मामि० सव्वपगदीणं अट्ठभंगो।

करते। इस अर्थपदके अनुसार उत्कृष्ट बन्धकी अपेक्षा सब उत्तर प्रकृतियोंके भङ्ग लाने पर वे तीन भङ्ग प्राप्त होते हैं—सब उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा १ कदाचित् सब जीव उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले नहीं होते। २ कदाचित् बहुत जीव उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले नहीं होते और एक जीव उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला होता है। ३ कदाचित् अनेक जीव उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करवाले नहीं होते और अनेक जीव उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले होते हैं। इस प्रकार सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धकी मुख्यतासे ये तीन भङ्ग होते हैं। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धकी अपेक्षा भङ्ग लाने पर ये तीन भङ्ग प्राप्त होते हैं—१ कदाचित् सब जीव अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले होते हैं। २ कदाचित् अनेक जीव अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले होते हैं और एक जीव अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला नहीं होता। ३ कदाचित् अनेक जीव अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले होते हैं और अनेक जीव अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले नहीं होते। इस प्रकार अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धकी अपेक्षा ये तीन भङ्ग होते हैं। मूलप्रकृतिप्रदेशबन्धकी अपेक्षा उत्कृष्ट और अनुत्कृष्टके ये ही तीन-तीन भङ्ग प्राप्त होते हैं, इसलिए यहाँ उसके समान जाननेकी सूचना की है। ओघसे यहाँ अन्य सब प्रकृतियोंके तो ये सब भङ्ग बन जाते हैं। मात्र तीन आयु अर्थात् नरकायु, मनुष्यायु और देवायु इसके अपवाद हैं। कारण कि इन आयुओंका बन्ध कदाचित् होता है, इसलिए बन्धाबन्ध और एक तथा नाना जीवोंकी अपेक्षा इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्टके आठ भङ्ग होते हैं। यथा—१ कदाचित् एक जीव उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। २ कदाचित् एक भी जीव उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध नहीं करता। ३ कदाचित् नाना जीव उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करते हैं। ४ कदाचित् नाना जीव उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध नहीं करते। ५ कदाचित् एक जीव उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है और एक जीव उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध नहीं करता। ६ कदाचित् एक जीव उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध नहीं करता और नाना जीव उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करते हैं। ७ कदाचित् एक जीव उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है और नाना जीव उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध नहीं करते। ८ कदाचित् नाना जीव उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करते हैं और नाना जीव उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध नहीं करते। इस प्रकार तीनों आयुओंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका विधि-निषेध करनेसे ये आठ भङ्ग होते हैं। इसी प्रकार अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धको मुख्य कर आठ भङ्ग कहने चाहिये। यहाँ सामान्य तिर्यञ्च आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें यह व्यवस्था बन जाती है, इसलिए उनकी प्ररूपणा ओघके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र जिस मार्गणामें जितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता हो उसीके अनुसार वहाँ भङ्गविचयकी प्ररूपणा करनी चाहिए। किन्तु औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक मार्गणामें देवगतिपञ्चकका बन्ध कदाचित् एक या नाना जीव करते हैं और कदाचित् नहीं करते, इसलिए यहाँ भी पूर्वोक्त प्रकारसे उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धके आठ भङ्ग होते हैं।

५६७. नारकियोंमें सब प्रकृतियोंके मूल प्रकृतिके समान भङ्ग होते हैं। इसी प्रकार सब पृथिवियोंमें जानना चाहिये। संख्यात और असंख्यात संख्यावाली अन्य जितनी मार्गणाएँ हैं, उनमें नारकियोंके समान भङ्ग जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्य अपर्याप्त, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, सूक्ष्मसाम्परायसंयत, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सब प्रकृतियोंके आठ भङ्ग होते हैं।

विशेषार्थ—नारकियोंमें सब उत्तर प्रकृतियोंका विचार अपनी-अपनी मूलप्रकृतिके अनुसार जाननेकी सूचना की है सो इसका यही अभिप्राय है कि जिस प्रकार आयुकर्मको

५६८. एइंदिय-बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त० सव्वपगदीणं उक्क० अणु० अत्थि बंधगा य अबंधगा य। मणुसाउ० ओघं। एवं पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ० तेसिं च बादर-बादरअपज्ज०-सव्वसुहुम-पज्जत्तापज्जत्तयाणं च। सव्ववणप्फदि-णियोद०-बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्तयाणं बादरवणप्फदिपत्तेय० तस्सेव अपज्ज० एइंदियभंगो। सेसाणं णिरयभंगो।

छोड़कर सब मूल प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्टकी अपेक्षा तीन-तीन भङ्ग होते हैं, उसी प्रकार यहाँ भी जानने चाहिए। तथा आयुकर्मका बन्ध कादाचित्क है, इसलिए इसकी अपेक्षा मूल-प्रकृतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्टका आश्रय कर जिस प्रकार आठ-आठ भङ्ग होते हैं, उसी प्रकार यहाँ तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुकी अपेक्षा आठ-आठ भङ्ग जानने चाहिए। इन भङ्गोंका खुलासा पहले कर आये हैं। यहाँ सातों पृथिवियोंमें तथा संख्यात संख्यावाली और असंख्यात संख्यावाली अन्य मार्गणाओंमें भी यह व्यवस्था बन जाती है, इसलिए उनकी प्ररूपणा सामान्य नारकियोंके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र मनुष्य अपर्याप्त आदि जितनी सान्तर मार्गणाएँ हैं, उनमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्टकी अपेक्षा आठ-आठ भङ्ग होते हैं, क्योंकि इन मार्गणाओंमें कदाचित् कोई जीव होता है और कदाचित् कोई जीव नहीं होता। यदि होता है तो कदाचित् एक जीव होता है और कदाचित् नाना जीव होते हैं। इसी प्रकार सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट बन्धकी अपेक्षा भी बन्धाबन्ध तथा एक और नाना जीवोंकी अपेक्षा विकल्प बन जाते हैं, इसलिए उत्कृष्ट और अनुत्कृष्टकी अपेक्षा आठ-आठ भङ्ग कहे हैं। यहाँ विशेष बात यह कहनी है कि यद्यपि अपगतवेद मार्गणा निरन्तर होती है, पर इसका यह नैरन्तर्य सयोगकेवली गुणस्थानकी अपेक्षासे ही है। किन्तु बन्धका विचार दसवें गुणस्थान तक ही किया जाता है, इसलिए दसवें गुणस्थान तक तो यह भी सान्तर मार्गणा है, अतः यहाँ पर इसकी भी अन्य सान्तर मार्गणाओंके साथ परिगणना की है।

५६८. एकेन्द्रिय, बादर और सूक्ष्म तथा बादर और सूक्ष्मोंके पर्याप्त और अपर्याप्त इनमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव भी हैं और अबन्धक जीव भी हैं। मात्र मनुष्यायुका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक जीव तथा इनके बादर और बादर अपर्याप्त तथा सब सूक्ष्म और इनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंमें जानना चाहिए। सब वनस्पतिकायिक और सब निगोद तथा इनके बादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंमें तथा बादर वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर और उनके अपर्याप्तकोंमें एकेन्द्रियोंके समान भङ्ग है। शेष सब मार्गणाओंमें नारकियोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रिय और उनके अवान्तर भेदोमें एक मनुष्यायुको छोड़कर अन्य जितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है, उनका उत्कृष्ट बन्ध करनेवाले भी नाना जीव निरन्तर पाये जाते हैं और अनुत्कृष्ट बन्ध करनेवाले भी नाना जीव निरन्तर पाये जाते हैं, इसलिए उत्कृष्ट की अपेक्षा नाना जीव उसके बन्धक हैं और नाना जीव उसके बन्धक नहीं हैं—यही एक भङ्ग पाया जाता है। तथा इसी प्रकार अनुत्कृष्ट की अपेक्षा भी यही एक भङ्ग पाया जाता है। मात्र मनुष्यायुका भङ्ग कदाचित् होता है। उसमें भी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट बन्ध कदाचित् एक जीव और कदाचित् नाना जीव करते हैं। इसलिए ओघके समान यहाँ उत्कृष्ट और अनुत्कृष्टके आठ-आठ भङ्ग बन जाते हैं। पृथिवी आदि चार तथा उनके बादर, बादर अपर्याप्त, सूक्ष्म और सूक्ष्मोंके सब अवान्तर भेदोमें भी ये ही भङ्ग बन जाते हैं, इसलिए इनकी प्ररूपणा एकेन्द्रियोंके समान जाननेकी सूचना की है। आगे सब वनस्पति, सब निगोद तथा इनके बादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त तथा बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक

५६९. जहण्णए पगदं। तं चेव अट्ठपदं—मूलपगदिभंगो। ओघेण तिण्णिआउ०-वेउव्वियछ०-आहार०२-तित्थ० जह० अजह० उक्कस्सभंगो। सेसाणं सव्वपगदीणं ज० अज०[1] अत्थि बंधगा य अबंधगा य। एवं ओघभंगो तिरिक्खोघो सव्वएइंदि०-पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ० तेसिं चेव[2] बादरअपज्जत्त-सव्वसुहुम०—सव्ववणप्फदि-णियोदाणं बादरपत्ते० तस्सेव अपज्ज० कायजोगि-ओरालि०-ओरालि०मि०-कम्मइ०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खु०-किण्ण०-णील०-काउ०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि०-आहार-अणाहारग[3] त्ति। णवरि ओरालि०मि०-कम्मइ०-अणाहार० देवग०पंचग० उक्कस्सभंगो। सेसाणं सव्वेसिं उक्कस्सभंगो।

एवं णाणाजीवेहि भंगविचयं समत्तं[4]।

और उनके अपर्याप्तक जीवोंमें भी यही व्यवस्था बन जाती है, इसलिए उनमें भी एकेन्द्रियोंके समान जाननेकी सूचना की है। इस प्रकार यहाँ एकेन्द्रियादि अनन्त संख्यावाली और असंख्यात संख्यावाली जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं, उनके सिवा संख्यात और असंख्यात संख्यावाली जिन मार्गणाओंका अलगसे उल्लेख नहीं किया है, उनमें सब प्रकृतियोंके सब भङ्ग नारकियोंके समान जाननेकी पुनः सूचना की है।

५६९. जघन्यका प्रकरण है। मूलप्रकृतिके समान वही अर्थपद है। ओघसे तीन आयु, वैक्रियिकषट्क, आहारद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धका भङ्ग उत्कृष्ट अनुयोगद्वारके समान है। शेष सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव हैं और अबन्धक जीव भी हैं। इसी प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यञ्च, सब एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक तथा इन पृथिवीकायिक आदिके बादर अपर्याप्त और सब सूक्ष्म जीव, सब वनस्पतिकायिक, सब निगोद, बादर प्रत्येक वनस्पति कायिक, बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिक मिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें देवगतिपञ्चकका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। शेष सब मार्गणाओंमें उत्कृष्टके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—ओघसे नरकायु, मनुष्यायु और देवायुके उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धकी अपेक्षा आठ-आठ भङ्ग बतला आये हैं। यहाँ इनके जघन्य प्रदेशबन्ध और अजघन्य प्रदेशबन्धकी अपेक्षा भी वे ही आठ-आठ भङ्ग प्राप्त होते हैं, इसलिए इनका भङ्ग उत्कृष्टके समान कहा है। तथा वैक्रियिकषट्क, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धकी अपेक्षा तीन-तीन भङ्ग बतला आए हैं। वे ही यहाँ इनके जघन्य प्रदेशबन्ध और अजघन्य प्रदेशबन्धकी अपेक्षा प्राप्त होते हैं, इसलिए इनका भङ्ग भी उत्कृष्टके समान कहा है। इनके सिवा शेष जितनी प्रकृतियाँ हैं, उनका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले नाना जीव निरन्तर पाये जाते हैं और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले नाना

---

[1] आ०प्रतौ 'सव्वपगदीयं अज्ज०' इति पाठः। [2] ता०आ०प्रत्योः 'वाउ० ओघो तेसिं चेव' इति पाठः। [3] ता०प्रतौ असण्णि० आहारेण अणाहारग' इति पाठः। [4] ता०प्रतौ 'एवं णाणाजीवेहि भंगविचयं समत्तं' इति पाठो नास्ति।

भागाभागपरूवणा

५७०. भागाभागं दुविधं—जह० उक्कस्सयं च। उक्कस्सए पगदं०। दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० सव्वपगदीणं उक्कस्सपदेसबंधगा जीवा सव्वजीवाणं केवडियो भागो ? अणंतभागो। अणु० सव्वजी० अणंता भागा[1]। णवरि तिण्णिआउ०-वेउव्वि०छ०-तित्थ० उक्क० पदे०बं० सव्वजी० केव० ? असंखेँज्जदिभागो। अणु० पदे०बं० सव्वजी० केव० ? असंखेँज्जा भागा। आहार०२ उक्क० पदे०बं० सव्वजीवाणं केव० ? संखेँज्जदिभागो। अणु० पदे०बं० सव्वजी० केव० ? संखेँज्जा भागा। एवं ओघभंगो तिरिक्खोघं कायजोगि-ओरालि०-ओरालि०मि०-कम्मइ०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-

जीव निरन्तर पाये जाते हैं, इसलिए इनके भङ्गविचयका विचार स्वतन्त्र रूपसे किया है। यहाँ मूलमें सामान्य तिर्यञ्च आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं, उनमें यह ओघप्ररूपणा अविकल बन जाती है, इसलिए उनकी प्ररूपणा ओघके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारकमार्गणामें वैक्रियिकपञ्चकका जघन्य प्रदेशबन्ध और अजघन्य प्रदेशबन्ध कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं होता। तथा कदाचित् इनका बन्ध करनेवाला कोई जीव नहीं पाया जाता और कदाचित् इनका बन्ध करनेवाले एक व नाना जीव पाये जाते हैं, इसलिए यहाँ इनके उत्कृष्टके समान जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्धकी अपेक्षा आठ-आठ भङ्ग बन जाते हैं, इसलिए इन तीन मार्गणाओंमें इस प्ररूपणा को उत्कृष्टके समान जाननेकी सूचना की है। यहाँ जिन मार्गणाओंका नामनिर्देश करके भङ्गविचयकी प्ररूपणा की है, उनके सिवा अन्य जितनी मार्गणाएँ शेष रहती हैं, उनमें उत्कृष्टके समान भङ्ग है, ऐसा कहनेका यही तात्पर्य है कि जिस प्रकार उत्कृष्ट प्ररूपणाके समय इन मार्गणाओंमें तीन आयुओंके सिवा शेष सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धके तीन-तीन भङ्ग कहे हैं और तीन आयुओंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धकी अपेक्षा आठ आठ भङ्ग कहे हैं, उसी प्रकार यहाँ भी जानने चाहिए।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय समाप्त हुआ।

भागाभागप्ररूपणा

५७०. भागाभाग दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? अनन्तवें भागप्रमाण हैं। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव सब जीवोंके अनन्त बहुभाग प्रमाण हैं। इतनी विशेषता है कि तीन आयु, वैक्रियिकषट्क और तीर्थङ्करप्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं। आहारकद्विकका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यातवें भागप्रमाण हैं। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यात बहुभागप्रमाण हैं। इसी प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यञ्च, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत,

---

[1] ता०आ०प्रत्योः 'अणंतभागा' इति पाठः।

अचक्खु०-किण्ण०-णील०-काउ०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छा० - असण्णि० - आहार०-अणाहारग त्ति । णवरि ओरालि०मि०-कम्मइ०-अणाहारगेसु देवगदिपंचगं आहारसरीरभंगो । एवं इदरेसिं सव्वेसिं । असंखेँज्जरासीणं ओघं देवगदिभंगो । एवं संखेँज्जरासीणं तेसिं आहारसरीरभंगो कादव्वो ।

५७१. जहण्णए पगदं । दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० आहारदुगं[1] उक्कस्सभंगो । सेसाणं सव्वपगदीणं जह० पदे०बं० सव्वजी० केव० भागो ? असंखेँज्जभागो । अजह० पदे०बं० केवडि० ? असंखेँज्जा भागा । एवं याव अणाहारग त्ति

अचक्षुदर्शनी, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें देवगतिपञ्चकका भङ्ग आहारकशरीरके समान जानना चाहिए। इसी प्रकार अन्य सब मार्गणाओंमें जानना चाहिए। उसमें भी असंख्यात संख्यावाली मार्गणाओंमें ओघसे कहे गये देवगतिके समान भङ्ग जानने चाहिए। तथा इसी प्रकार जो संख्यात संख्यावाली मार्गणाएँ हैं, उनमें आहारकशरीरके समान भङ्ग जानने चाहिए।

विशेषार्थ—सामान्यसे नरकायु, मनुष्यायु और देवायु तथा वैक्रियिकषट्क और तीर्थङ्कर प्रकृतिके बन्धक जीव असंख्यात हैं, इसलिए इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव असंख्यातवें भागप्रमाण और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण कहे हैं। आहारकद्विकके बन्धक जीव संख्यात हैं, इसलिए इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव संख्यात बहुभागप्रमाण कहे हैं। तथा इनके सिवा अन्य जितनी प्रकृतियाँ शेष रहती हैं, उनके बन्धक जीव अनन्त हैं। उसमें भी उनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध अपनी-अपनी अन्य योग्यताके साथ संज्ञी जीव ही करते हैं। शेष सब अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करते हैं, इसलिए उनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव अनन्तवें भागप्रमाण और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव अनन्त बहुभागप्रमाण कहे हैं। यहाँ सामान्य तिर्यञ्च आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं, उनमें अपनी-अपनी बन्धको प्राप्त होनेवाली प्रकृतियोंके अनुसार यह व्यवस्था बन जाती है, इसलिए उनका भागाभाग ओघके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें वैक्रियिकपञ्चकका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले कुल जीव संख्यात ही होते हैं, इसलिए इनमें इन पाँच प्रकृतियोंका भागाभाग आहारकशरीरके कहे गये भागाभागके समान जाननेकी सूचना की है। इसके सिवा एकेन्द्रिय आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ हैं, उनमें अपनी-अपनी बन्धको प्राप्त होनेवाली प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। मात्र असंख्यात संख्यावाली मार्गणाओं में ओघ से देवगतिके समान भङ्ग है और संख्यात संख्यावाली मार्गणाओं में आहारकशरीरके समान भङ्ग है, यह स्पष्ट ही है।

५७१. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे आहारकद्विकका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। शेष सब प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं। इसी

---

[1] आ०प्रतौ 'ओघे० उक्क० आहारदुगं' इति पाठः ।

णेदव्वं । णवरि एसिं संखेज्जरासी[1] तेसिं आहारसरीरभंगो कादव्वो ।

एवं भागाभागं समत्तं[2] ।

परिमाणपरूवणा

५७२. परिमाणं दुविहं—जहण्णयं उक्कस्सयं च । उक्क० पगदं । दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० तिण्णिआउ०-वेउव्वियछ० उक्कस्साणुक्कस्सपदेसबंधगो केवडियो ? असंखेँज्जा । आहारदुगं उक्क० अणु० केव० ? संखेँज्जा । तित्थ० उक्क० पदे०बं० केव० ? संखेँज्जा । अणु० केव० ? असंखेँज्जा । सेसाणं उक्क० केव० ? असंखेँज्जा । अणु० केत्ति० ? अणंता । णवरि पंचणा०-चदुदंसणा०-सादा०-चदुसंज०-पुरिस०-जस०-उच्चा०-पंचंत० उक्क० पदे०बं० केत्ति० ? संखेँज्जा । अणु० केत्ति० ? अणंता ।

प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि जिनकी राशि संख्यात है, उनमें आहारकशरीरके समान भङ्ग है ।

विशेषार्थ—यहाँ ओघसे असंख्यातका भाग देने पर एक भागप्रमाण जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवालोंका प्रमाण आता है और बहुभागप्रमाण अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवालोंका प्रमाण आता है, इसलिए आहारकद्विकको छोड़कर शेष सब प्रकृतियोंकी अपेक्षा असंख्यातवें भागप्रमाण जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कहे हैं और असंख्यात बहुभागप्रमाण अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कहे हैं । मात्र आहारकद्विकका बन्ध करनेवाले जीव ही संख्यात होते हैं, इसलिए इनकी अपेक्षा भागाभाग उत्कृष्टके समान जाननेकी सूचना की है । नरकगतिसे लेकर अनाहारक तक अनन्त संख्यावाली और असंख्यात संख्यावाली जितनी मार्गणाएँ हैं, उनमें ओघके समान प्ररूपणा बन जानेसे उसे ओघके समान जाननेकी सूचना की है । तथा जो संख्यात संख्यावाली मार्गणाएँ हैं, उनमें आहारकशरीरकी अपेक्षा कहा गया भागाभाग ही घटित हो जाता है, इसलिए उनमें सब प्रकृतियोंके भागाभागको आहारक शरीरके समान जाननेकी सूचना की है ।

इस प्रकार भागाभाग समाप्त हुआ ।

परिमाणप्ररूपणा

५७२. परिणाम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे तीन आयु और वैक्रियिक छहका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । आहारकद्विकका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । तीर्थङ्कर प्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । शेष सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । इतनी विशेषता है कि पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । इसी प्रकार ओघके

---

[1] ता०प्रतौ 'ए संखेज्जरासी०' इति पाठः । [2] ता०प्रतौ 'एवं भागाभाग' समत्तं' इति पाठो नास्ति ।

एवं ओघभंगो तिरिक्खोघं कायजोगि-ओरालि०ओरालि०मि०-कम्मइ[1]०-णवुंस०-कोधादि ४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खु०-किण्ण०-णील०-काउ०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि०-आहार०-अणाहारग त्ति। णवरि ओरालि०मि०-कम्मइ०-अणाहारगेसु देवगदिपंचग० उक्क० अणु० के०? संखेँज्जा। पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर-आदे० उक्क० पदे० बं० के०? संखेँज्जा। अणु० केव०? अणंता। सेसाणं च विसेसो जाणिदव्वो सामित्तेण।

समान सामान्य तिर्यञ्च, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें देवगतिपञ्चकका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं? संख्यात हैं। प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं? संख्यात हैं। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं? अनन्त हैं। शेष प्रकृतियोंकी अपेक्षा जो विशेषता है वह स्वामित्वके अनुसार जान लेनी चाहिए।

विशेषार्थ—दो आयु और वैक्रियिकषट्कका बन्ध असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय और संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव ही करते हैं। उसमें भी सब नहीं करते। तथा मनुष्यायु के बन्धक पाँचों इन्द्रिय के जीव होते हुये भी असंख्यात ही हैं, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण असंख्यात कहा है। आहारकद्विकका बन्ध अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण जीव करते हैं, इसलिए इनका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है। ओघसे तीर्थङ्कर प्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्यग्दृष्टि मनुष्य करते हैं, इसलिए इसका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है। इसका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं, यह स्पष्ट ही है। शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध अपनी-अपनी योग्य सामग्रीके सद्भावमें संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव करते हैं, इसलिए शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव असंख्यात कहे हैं और इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव अनन्त हैं, यह स्पष्ट ही है। यहाँ इतनी विशेषता है कि पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध अपने-अपने योग्य स्थानमें उपशमश्रेणिवाले या क्षपकश्रेणिवाले जीव करते हैं, इसलिए इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है। अन्य प्रकृतियोंके समान इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण अनन्त है, यह स्पष्ट ही है। यहाँ अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं, उनमें भी अपनी-अपनी बन्ध योग्य सब प्रकृतियोंकी अपेक्षा यह परिमाण बन जाता है, इसलिए उनमें ओघके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें देवगतिपञ्चकका ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव ही बन्ध करते हैं जो या तो देव और नरक पर्यायसे च्युत होकर मनुष्योंमें आकर उत्पन्न होते हैं या जो मनुष्य पर्यायसे च्युत होकर उत्तम भोगभूमिके तिर्यञ्चों और मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं। यतः इन सबका परिमाण संख्यात है, अतः इन मार्गणाओंमें देवगतिपञ्चकका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण

---

[1] ता० प्रतौ 'ओरा .मि०) कम०' इति पाठः।

५७३. णिरएसु [1] सव्वपगदीणं उक्क० अणु० के० ? असंखेज्जा। मणुसाउ० उक्क० अणु० संखेंज्जा। एवं सव्वणिरय-सव्वपंचिंदियतिरिक्खा सव्वअपज्जत्ता सव्व-विगलिंदिय-सव्वपंचकायाणं वेउव्वि०-वेउव्वियमिस्सकायजोगीणं च।

५७४. मणुसेसु दोआउ०-वेउव्वियछ०-आहारदुग-तित्थ० उक्क० अणु० के० ? संखेंज्जा। सेसाणं उक्क० के० ? संखेंज्जा। अणु० के० ? असंखेंज्जा। मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सव्वपगदीणं उक्क० अणु० के० ? संखेंज्जा। एवं मणुसिभंगो सव्वट्ठ०-आहार०-आहारमि०-अवगदवे०-मणपज्ज०-संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुहुमसंप०।

संख्यात कहा है। मात्र तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध करनेवाले भोगभूमिमें जन्म नहीं लेते, इतना विशेष जानना चाहिए। यहाँ इन तीनों मार्गणाओंमें प्रशस्त विहायोगति आदि कुछ अन्य प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी उक्त जीव ही करते हैं, इसलिए इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण भी संख्यात कहा है। समचतुरस्रसंस्थान भी प्रशस्त विहायोगतिके साथ गिना जाना चाहिए, क्योंकि इसका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी उक्त जीव ही करते हैं। इसी बातको सूचित करनेके लिए शेष प्रकृतियोंके विषयमें विशेषता जान लेनी चाहिए, यह कहा है।

५७३. नारकियोंमें सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। मात्र मनुष्यायुका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, सब अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय प्रारम्भके चार और प्रत्येक वनस्पति ये सब पाँच स्थावरकायिक, वैक्रियिककाययोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—ये सब राशियाँ असंख्यात हैं, इसलिए इनमें अपने-अपने स्वामित्वको देखते हुए मनुष्यायुके सिवा शेष सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण असंख्यात बन जाता है। तथा सब प्रकारके नारकियोंमेंसे आकर यदि मनुष्य होते हैं तो गर्भज मनुष्य ही होते हैं, इसलिए इनमें मनुष्यायुका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है। यहाँ सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं, उनमें नारकियोंके समान मनुष्यायुका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव तो संख्यात ही हैं, पर अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं—इतना विशेष जानना चाहिए। यद्यपि मूलमें इस विशेषताका निर्देश नहीं किया है, पर प्रकृतिबन्ध आदिके देखनेसे यह ज्ञात होता है।

५७४. मनुष्योंमें दो आयु, वैक्रियिकषट्क, आहारकद्विक और तीर्थङ्करप्रकृतिका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। इसी प्रकार मनुष्यिनियोंके समान सर्वार्थसिद्धिके देव, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—मनुष्योंमें दो आयु आदि ग्यारह प्रकृतियोंका बन्ध लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य नहीं करते, इसलिए इनमें इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव

---

[1] ता०प्रतौ 'जाणिदव्वो। सामित्तेण णिरयेसु' इति पाठः।

५७५. देवेसु सव्वपगदीणं उक्क० अणु० के० ? असंखेँज्जा। णवरि मणुसाउ० उक्क० अणु० के० ? संखेँज्जा। एवं सव्वदेवाणं।

५७६. एइंदिय-बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्ज०-सव्ववणप्फदि-णियोद० सव्वपगदीणं उक्क० अणु० के० ? अणंता। णवरि मणुसाउ० उक्क० अणु० केव० ? असंखेँज्जा।

५७७. पंचिंदि०-तस०२ पंचणा०-चदुदंसणा०-सादा०-चदुसंज०-पुरिस०-जस०-तित्थ०-उच्चा०-पंचंत० उक्क० के० ? संखेँज्जा। अणु० के० ? असंखेँज्जा। आहार०२ उक्क० अणु० के० ? संखेँज्जा। सेसाणं उक्क० अणु० के० ? असंखेँज्जा। एवं पंचिंदियभंगो पंचमण०-पंचवचि०-चक्खु०-सण्णि त्ति।

संख्यात कहे हैं। तथा शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य नहीं करते, इसलिए इनमें शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण संख्यात और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाल जीवोंका परिमाण असंख्यात कहा है। शेष कथन सुगम है।

५७५. देवोंमें सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण कितना है? असंख्यात है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यायुका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण कितना है? संख्यात है। इसी प्रकार सब देवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—देवोंमें नारकियोंके और उनके अवान्तर भेदोंके समान स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए। मात्र सर्वार्थसिद्धिमें संख्यात देव होते हैं, इसलिए उनका विचार मनुष्यिनियोंके समान पूर्वमें ही कर आये हैं।

५७६. एकेन्द्रिय तथा उनके बादर और सूक्ष्म तथा इन दोनोंके पर्याप्त और अपर्याप्त, सब वनस्पतिकायिक और सब निगोद जीवोंमें सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं? अनन्त हैं। इतनी विशेषता है कि मनुष्यायुका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं? असंख्यात हैं।

विशेषार्थ—ये सब राशियाँ अनन्त हैं, इसलिए इनमें मनुष्यायुके सिवा सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण अनन्त बन जाता है। मात्र कुल मनुष्य ही असंख्यात होते हैं, इसलिए उक्त मार्गणाओंमें मनुष्यायुका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण असंख्यात कहा है।

५७७. पञ्चेन्द्रियद्विक और त्रसद्विक जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, यशःकीर्ति, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं? संख्यात हैं। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। आहारकद्विकका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं? संख्यात हैं। शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय जीवोंके समान पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, चक्षुदर्शनवाले और संज्ञी जीवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—उक्त मार्गणावाले जीव असंख्यात होते हैं, इसलिए इनमें पाँच ज्ञानावरणादिका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण और शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण असंख्यात कहा है। पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण और आहारकद्विकका उत्कृष्ट और

५७८. इत्थिवेदेसु [पंचणाणा०-] चदुदंस०-[सादा०-] चदुसंज०-पुरिस०-जस०-[·उच्चा०-पंचंत०] उक्क० के० ? संखेँज्जा। अणु० के० ? असंखेँज्जा । आहार०२-तित्थ० उक्क० अणु० के० ? संखेँज्जा । सेसाणं दो वि पदा असंखेँज्जा । एवं पुरिस० । णवरि० तित्थ ओघं ।

५७९. विभंग[1]०-संजदासंजद०-सासण०-सम्मामि० सव्वपगदीणं उक्क० अणु० केव० ? असंखेँज्जा । णवरि संजदासंजदेसु तित्थ० उक्क० अणु० केव० ? संखेँज्जा । सासणे मणुसाउ० उक्क० अणु० केव० ? संखेँज्जा ।

अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण जो संख्यात कहा है सो इसका स्पष्टीकरण ओघके समान जान लेना चाहिए ।

५७८. स्त्रीवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । आहारकद्विक और तीर्थङ्करप्रकृतिका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । शेष प्रकृतियोंके दोनों ही पदवाले जीव असंख्यात हैं । इसी प्रकार पुरुषवेदी जीवोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है ।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरण आदिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध गुणस्थानप्रतिपन्न मनुष्यिनी जीव स्वामित्वके अनुसार यथायोग्य स्थानमें करते हैं, इसलिए इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले स्त्रीवेदियोंका परिमाण संख्यात कहा है । किन्तु इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सभी स्त्रीवेदी जीव करते हैं, इसलिए इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण असंख्यात कहा है । स्त्रीवेदियोंमें आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध मनुष्यिनी जीव ही करते हैं, इसलिए इनका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवालोंका परिमाण संख्यात कहा है । तथा इनके सिवा यहाँ जितनी प्रकृतियाँ बँधती हैं, उनका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध स्वामित्वके अनुसार यथायोग्य सर्वत्र सम्भव है, इसलिए इस अपेक्षासे दोनों पदवालोंका परिमाण असंख्यात कहा है । पुरुषवेदी जीवोंमें भी यह व्यवस्था बन जाती है, इसलिएं उनमें स्त्रीवेदियोंके समान जाननेकी सूचना की है । मात्र तीर्थङ्कर प्रकृतिके विषयमें ओघमें जो प्ररूपणा की है वह पुरुषवेदियोंमें बन जाती है, इसलिए पुरुषवेदियोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान जाननेकी सूचना की है ।

५७९. विभङ्गज्ञानी, संयतासंयत, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने होते हैं ? असंख्यात होते हैं । इतनी विशेषता है कि संयतासंयतोंमें तीर्थङ्करप्रकृतिका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने होते हैं ? संख्यात होते हैं । तथा सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें मनुष्यायुका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने होते हैं ? संख्यात होते हैं ।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोंमें तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध नहीं होता, इसलिए संयतासंयतोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है । तथा

---

[1] ता० आ० प्रत्योः 'णवरि तित्थ० ओघं । णपुंसके । पंचणा० सादा० उच्चा० पंचंत० उ० के० ? असंखेज्जा । अणु० के० ? असंखेज्जा । अणु० के० ? अणंता० । सेसं ओघं । एवं तिण्णिक० । विभंग०' इति पाठः ।

५८०. आभिणि-सुद-ओधि० पंचणा०-चदुदंसणा०-सादा०-चदुसंज०-पुरिस०-जसगि०-तित्थ०-उच्चा०-पंचंत० उक्क० केव० ? संखेंज्जा। अणु० केव० ? असंखेंज्जा। मणुसाउ०-आहार० दोपदा० केव० ? संखेंज्जा। सेसाणं उक्क० अणु० के० ? असंखेंज्जा। एवं ओधिदं०-सम्मादि०-वेदग०। णवरि[1] वेदगे चदुसंज०-मणुसाउ०-आहार०२-तित्थय० ओधिभंगो। सेसाणं दोपदा असंखेंज्जा। तेउ-पम्माए वि एसो चेव भंगो।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मरकर लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंमें नहीं उत्पन्न होते, इसलिए इनमें संख्यात जीव ही मनुष्यायुका बन्ध करते हैं। इस कारण यहाँ मनुष्यायुके दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण भी संख्यात कहा है। शेष कथन सुगम है ?

५८०. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, यशःकीर्ति, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। मनुष्यायु और आहारकद्विकके दो पदोंका बन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं ? शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार संज्वलन, मनुष्यायु, आहारकद्विक और तीर्थङ्करप्रकृतिका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। शेष प्रकृतियोंके दो पदोंका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं। पीतलेश्या और पद्मलेश्यामें भी यही भङ्ग है।

विशेषार्थ—आभिनिबोधिक आदि तीनों ज्ञानोंमें पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव संख्यात होनेका जो कारण ओघ प्ररूपणामें बतला आये हैं, वही यहाँ भी जान लेना चाहिए। तथा ये तीनों ज्ञानवाले जीव असंख्यात होते हैं, इसलिए यहाँ पाँच ज्ञानावरणादिका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण असंख्यात बतलाया है। यहाँ मनुष्यायु और आहारकद्विकके दो पदोंका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात होते हैं तथा शेष प्रकृतियों के दो पदोंका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात होते हैं, यह स्पष्ट ही है। यहाँ कही गई अवधिदर्शनी आदि तीन मार्गणाओंमें यह प्ररूपणा घटित हो जाती है, इसलिए उनमें आभिनिबोधिकज्ञानी आदिके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र वेदकसम्यक्त्वमें चार संज्वलन, मनुष्यायु, आहारकद्विक और तीर्थङ्करप्रकृतिके दोनों पदोंके बन्धक जीवोंका भङ्ग तो अवधिज्ञानी जीवोंके समान ही है, क्योंकि जिस प्रकार अवधिज्ञानियोंमें चार संज्वलन और तीर्थङ्कर प्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव संख्यात और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव असंख्यात तथा मनुष्यायु और आहारकद्विकके दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात बतलाये हैं, उसी प्रकार वेदकसम्यक्त्वमें भी इन प्रकृतियोंकी अपेक्षा उक्त परिमाण प्राप्त होता है। अब रहीं शेष प्रकृतियाँ सो उनके दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यात ही होते हैं, इसलिए आभिनिबोधिकज्ञानी आदिसे वेदकसम्यग्दृष्टिमें जो विशेषता है उसका सूचन अलगसे किया है। तात्पर्य यह है कि वेदकसम्यक्त्वकी प्राप्ति सातवें गुणस्थान तक ही होती है, इसलिए इसमें चार संज्वलन और तीर्थङ्कर प्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवालोंका परिमाण संख्यात तो बन जाता है, पर पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, पुरुषवेद, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और

---

[1] ता०प्रतौ 'सम्मादिट्ठि० देवग०-(वेदग०) णवरि' इति पाठः।

५८१. सुक्काए पढमदंडओ चक्खुदंसणिभंगो। दोआउ०-आहार०२ उक्क० अणु० केव० ? संखेंज्जा। सेसाणं उक्क० अणु० केव० ? असंखेंज्जा। एवं खइग०। उवसम० पढमदंडओ आभिणि०भंगो। णवरि आहार०२-तित्थ० उक्क० अणु० केव० ? संखेंज्जा। सेसाणं उक्क० अणु० के० ? असंखेंज्जा।

५८२. जहण्णए पगदं। दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-णवदंसणा०-दोवेदणी०-मिच्छ[1]०-सोलसक०-णवणोक०-तिरिक्खाउ०-सव्वणामपगदीओ दोगोद-पंचंत० जह० अज० पदे०बं० केव० ? अणंता। णवरि तिण्ण०आउ०-णिरयगदि-णिरयाणु०

पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवालोंका परिमाण स्वामित्व बदल जानेसे संख्यात न होकर असंख्यात हो जाता है। अवधिज्ञानी जीवोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें मात्र इतनी ही विशेषता है। पीतलेश्या और पद्मलेश्या भी सातवें गुणस्थान तक होती हैं, इसलिए इनमें वेदकसम्यग्दृष्टियोंके समान प्ररूपणा बन जानेसे वेदकसम्यग्दृष्टियोंके समान जाननेकी सूचना की है।

५८१. शुक्ललेश्यामें प्रथम दण्डकका भङ्ग चक्षुदर्शनी जीवोंके समान है। दो आयु और आहारकद्विकका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। इसी प्रकार क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए। उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें प्रथम दण्डकका भङ्ग आभिनिबोधिकज्ञानी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं।

विशेषार्थ—चक्षुदर्शनी जीवोंमें प्रथम दण्डकका भङ्ग ओघके समान कहा है। उसी प्रकार शुक्ललेश्यामें भी बन जाता है, अतः यहाँ प्रथम दण्डकका भङ्ग चक्षुदर्शनी जीवोंके समान जाननेकी सूचना की है। यहाँ मनुष्यायु और देवायु इन दो आयुओं तथा आहारकद्विकका बन्ध संख्यात जीव ही करते हैं, इसलिए इनके दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है। तथा यहाँ शेष प्रकृतियोंके दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं,यह स्पष्ट ही है। शुक्ललेश्याके समान क्षायिकसम्यक्त्वमें भी व्यवस्था बन जाती है। उपशमसम्यक्त्व ग्यारहवें गुणस्थान तक होता है, इसलिए इसमें प्रथम दण्डकका भङ्ग आभिनिबोधिकज्ञानी जीवोंके समान बन जानेसे उनके समान कहा है। मात्र तीर्थङ्कर प्रकृति इसका अपवाद है, क्योंकि उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात ही होते हैं, इसलिए इसकी प्ररूपणा आहारिकद्विकके साथ की है। यहाँ भी शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीव असंख्यात हैं,यह स्पष्ट ही है।

५८२. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, तिर्यञ्चायु, नामकर्मकी सब प्रकृतियाँ, दो गोत्र और पाँच अन्तरायका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने होते हैं ? अनन्त होते हैं। इतनी विशेषता है कि तीन आयु, नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने होते हैं ?

---

[1] ता०प्रतौ 'दोखेत्त [वेद०] मिच्छ' इति पाठः।

जह० अज० केव० ? असंखेज्जा । देवग०-वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-देवाणु०-तित्थ० जह० केव० ? संखेज्जा । अजह० केव० ? असंखेज्जा । आहारदुगं जह० अजह०[1] केव० ? संखेज्जा । एवं ओघभंगो तिरिक्खोघं कायजोगि-ओरालि०-ओरालि०मि०-कम्मइ०-णवुंस०-कोधादि०४ - मदि-सुद०-असंज० अचक्खुदं०-किण्णले०-णील०-काउ०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि०-आहार०-अणाहारग त्ति । णवरि ओरालि०मि०-कम्मइ०-अणाहारगेसु देवगदिपंचग० जह० अजह० के० ? संखेज्जा । मदि-सुद०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि त्ति तिण्णिआउ०-वेउव्वियछक्कं जह० अजह० के० ? असंखेज्जा ।

असंख्यात होते हैं। देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी और तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने होते हैं? संख्यात होते हैं। अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने होते हैं? असंख्यात होते हैं। आहारकद्विकके दो पदोंका बन्ध करनेवाले जीव कितने होते हैं? संख्यात होते हैं। इस प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यञ्च, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें देवगतिपञ्चकका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं? संख्यात हैं। तथा मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें तीन आयु और वैक्रियिकषट्कका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं? असंख्यात हैं।

विशेषार्थ—जिन प्रकृतियोंका 'णवरि' पद द्वारा अलगसे उल्लेख किया है, उन्हें छोड़कर शेष सब प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध सूक्ष्म, निगोद, अपर्याप्त जीव भवके प्रथम समयमें योग्य सामग्रीके सद्भावमें करते हैं। तथा इन प्रकृतियोंका एकेन्द्रियादि सभी जीव बन्ध करते हैं, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य प्रदेशोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण अनन्त कहा है। तीन आयु और नरकगतिद्विकका बन्ध असंज्ञी आदि जीव करते हैं, इसलिए इनके दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण असंख्यात कहा है। देवगति आदि पाँच प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध प्रथम समयमें तद्भवस्थ हुए मनुष्य योग्य सामग्रीके सद्भावमें करते हैं। ऐसे मनुष्योंका परिमाण संख्यात है, अतः इन प्रकृतियोंके उक्त पदका बन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है। तथा इनका अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण असंख्यात है, यह स्पष्ट ही है। आहारकद्विकका बन्ध करनेवाले ही संख्यात हैं, इसलिए इनके दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है। यह ओघप्ररूपणा तिर्यञ्चगति आदि अन्य निर्दिष्ट मार्गणाओंमें भी यथासम्भव बन जाती है, अतः उनमें ओघके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें देवगतिपञ्चकका बन्ध करनेवाले जीव ही संख्यात होते हैं, इसलिए इनमें उक्त प्रकृतियोंके दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है। तथा मत्यज्ञानी आदि पाँच मार्गणाएँ ऐसी हैं जिनमें देवगतिचतुष्कके जघन्य

---

[1] ता० आ०प्रत्योः 'आहारदुगं दो० अज०' इति पाठः ।

५८३. णिरएसु सव्वाणं जह० अजह० के० ? असंखेंज्ञा । णवरि मणुसाउ० दो-पदा संखेंज्ञा । तित्थ० जह० के० ? संखेंज्ञा । अजह० के० ? असंखेंज्ञा । एवं पढमाए । बिदियाए याव सत्तमा त्ति उक्कस्सभंगो ।

५८४. पंचिंदि०तिरिक्ख-पंचिंदि०तिरिक्खपज्जत्त० सव्वपगदीणं जह० अजह० के० ? असंखेंज्ञा । णवरि देवगदि०४ जह० के० ? संखेंज्ञा । अजह० के० ? असंखेंज्ञा । एवं जोणिणीसु वि । णवरि वेउव्वि०छक्कं० जह० अजह० के० ? असंखेंज्ञा । पंचिंदि०तिरि०अपज्ज० सव्वपगदीणं जह० अजह० के० ? असंखेंज्ञा । एवं मणुस०-

---

प्रदेशबन्धका स्वामी ओघके समान नहीं बनता, इसलिए इन मार्गणाओंमें तीन आयु और वैक्रियिकषट्कका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण असंख्यात कहा है। यद्यपि तीन आयु और नरकगतिद्विकके दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण असंख्यात ओघ प्ररूपणामें भी कहा है। उससे यहाँ कोई विशेषता नहीं आती पर यहाँ इसे देवगति-चतुष्कके साथ दुहरा दिया है।

५८३. नारकियोंमें सब प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। इतनी विशेषता है कि मनुष्यायुके दोनों पदवाले जीव संख्यात हैं। तथा तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। इसी प्रकार प्रथम पृथिवीमें जानना चाहिए। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें उत्कृष्टके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—नरकमें अधिकसे अधिक संख्यात जीव ही मनुष्यायुका बन्ध करते हैं, इसलिए यहाँ मनुष्यायुके दोनों पदवालोंका परिमाण संख्यात कहा है। जो सम्यग्दृष्टि मनुष्य मर कर प्रथम नरकमें उत्पन्न होते हैं, उनमेंसे कुछके ही प्रथम समयमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य प्रदेशबन्ध होता है, अतः यहाँ तीर्थङ्करप्रकृतिके उक्त पदका बन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है। तथा निरन्तर असंख्यात जीव नरकमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाले पाये जाते हैं, इसलिए यहाँ इसके अजघन्य प्रदेशोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण असंख्यात कहा है। इनके सिवा अन्य सब प्रकृतियोंके दोनों पदवाले जीव वहाँ असंख्यात होते हैं, यह स्पष्ट ही है। सामान्य नारकियोंके समान प्रथम नरकमें प्ररूपणा बन जाती है, इसलिए प्रथम नरकमें सामान्य नारकियोंके समान प्ररूपणा जाननेकी सूचना की है। उत्कृष्ट प्ररूपणाके समय सब प्रकृतियोंके दोनों पदवालोंका परिमाण असंख्यात और मनुष्यायुके दोनों पदवालोंका परिमाण संख्यात बतला आये हैं। यहाँ द्वितीयादि नरकोंमें यह कथन अविकल बन जाता है, इसलिए इन नरकोंमें उत्कृष्टके समान परिमाण जाननेकी सूचना की है।

५८४. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त जीवोंमें सब प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। इतनी विशेषता है-देवगतिचतुष्कका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंमें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें वैक्रियिकषट्कका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ?

अपज्ज०-सव्वविगलिंदि०-पंचिंदि०-तसअपज्ज[1]० चदुण्णं कायाणं बादरपत्तेगाणं च।

५८५. मणुसेसु दोआउ०-वेउव्वियछ०-आहार०२-तित्थ० जह० अजह० बं० केव० ? संखेज्जा। सेसाणं जह० अजह[2]० केव० ? असंखेँज्जा। मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सव्वपगदीणं जह० अजह० के० ? संखेँज्जा[3]। एवं सव्वट्ठ०-आहार०-आहारमि०-अवगदवे०-मणपज्ज०-संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुहुमसंप०।

५८६. देवेसु णिरयभंगो। एवं भवण०-वाणवें०-जोदिसि०। सोधम्मीसाणं० [एवं चेव। णवरि] मणुस०-मणुसाणु[4]०-तित्थ० जह० के० ? संखेँज्जा। अजह० के० ? असंखेँज्जा। एवं याव सहस्सार त्ति। आणद याव णवगेवज्जा त्ति सव्वपगदीणं

असंख्यात हैं। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त पृथिवी आदि चारों स्थावरकायिक और बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तकोंमें प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ असंयतसम्यग्दृष्टि जीव योग्य सामग्रीके सद्भावमें देवगतिचतुष्कका जघन्य प्रदेशबन्ध करते हैं, इसलिए इनमें उक्त प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है। परन्तु पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनियोंमें वैक्रियिकषट्कका जघन्य प्रदेशबन्ध योग्य सामग्रीके सद्भावमें असंज्ञी जीव करते हैं, इसलिए इनमें उक्त प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण असंख्यात बन जानेसे उसका विशेषरूपसे निर्देश किया है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

५८५. मनुष्योंमें दो आयु, वैक्रियिकषट्क, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। शेष प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें सब प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदवाले, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—दो आयु आदि ग्यारह प्रकृतियोंका मनुष्य अपर्याप्त बन्ध नहीं करते, इसलिए मनुष्योंमें उनके दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है। शेष प्ररूपणा स्पष्ट ही है।

५८६. देवोंमें नारकियोंके समान भङ्ग है। इसी प्रकार भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिए। तथा सौधर्म और ऐशान कल्पमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। मात्र यहाँ मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और तीर्थङ्करप्रकृतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। इस प्रकार सहस्रार कल्प तक जानना चाहिए। आनतकल्पसे लेकर नौ ग्रैवेयकतकके देवोंमें सब प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। अजघन्य प्रदेश-

---

[1] ता०प्रतौ 'पंचिंदि० तस्स (स)० अपज०' आ०प्रतौ 'पंचिंदि० तस्सेव अपज०' इति पाठः। [2] आ०प्रतौ 'सेसाणं बं० अजह०' इति पाठः। [3] ता०आ०प्रत्योः 'असंखेज्जा०' इति पाठः। [4] आ०प्रतौ 'सोधम्मीसाणं० मणुसाणु०' इति पाठः।

जह० के० ? संखेंज्ञा । अजह० के० ? असंखेंज्जा । एवं अणुदिस-अणुत्तर० ।

५८७. सव्वएइंदि०-सव्ववणप्फदि-णियोद० ओघभंगो । पंचिंदि०-तस०२ देवगदि०४-तित्थ० जह० के० ? संखेंज्जा । अजह० के० ? असंखेंज्जा । आहार०२ ओघं । सेसाणं जह० अजह० केव० ? असंखेंज्जा ।

५८८. पंचमण०-तिण्णिवचि० दोगदि-वेउव्वि०-तेजा०-क०-वेउव्वि०अंगो०-दो-आणु०-तित्थ० जह० के० ? संखेंज्जा । अजह० के० ? असंखेंज्जा । [आहारदुगं ओघं] ।

बन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार नौ अनुदिश और चार अनुत्तरके देवोंमें जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—जिस प्रकार नारकियोंमें परिमाणकी प्ररूपणा की है, उसी प्रकार सामान्य देवोंमें भी उसकी प्ररूपणा बन जाती है, इसलिए उसे नारकियोंके समान जाननेकी सूचना की है । भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें भी इसी प्रकार वह प्ररूपणा घटित कर लेनी चाहिए । मात्र जहाँ जो प्रकृतियाँ हों, उनके अनुसार ही वहाँ उसका विचार करना चाहिए । सौधर्म और ऐशान कल्पमें अन्य प्ररूपणा तो इसी प्रकार है, मात्र इन कल्पोंमें मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीका भङ्ग तीर्थङ्कर प्रकृतिके समान होनेसे तीर्थङ्कर प्रकृतिके साथ इन दो प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण अलगसे कहा है । सनत्कुमारसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंका भङ्ग सौधर्म-ऐशान कल्पके समान होनेसे इसे उनके समान जाननेकी सूचना की है । आनतसे लेकर चार अनुत्तर तकके आगेके देवोंमें यद्यपि देवराशि असंख्यात है, फिर भी इनमें सब प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव संख्यात और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव असंख्यात ही प्राप्त होते हैं । कारणका विचार स्वामित्वको देखकर कर लेना चाहिए ।

५८७. सब एकेन्द्रिय, सब वनस्पतिकायिक और निगोदके जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है । पञ्चेन्द्रियद्विक और त्रसद्विक जीवोंमें देवगतिचतुष्क और तीर्थङ्करप्रकृतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । आहारकद्विकका भङ्ग ओघके समान है । शेष प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं ।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें बँधनेवाली प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध ओघसे भी एकेन्द्रियोंमें ही होता है, इसलिए यहाँ सब एकेन्द्रिय, सब वनस्पतिकायिक और निगोदके जीवोंमें ओघके समान प्ररूपणा जाननेकी सूचना की है । पञ्चेन्द्रियद्विक और त्रसद्विक असंख्यात होते हैं, इसलिए इनमें देवगतिचतुष्क, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिको छोड़कर अन्य प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण असंख्यात बन जानेसे वह उतना कहा है । तथा देवगतिचतुष्क आदिका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पष्टीकरण जिस प्रकार ओघमें किया है, उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिए, क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है ।

५८८. पाँच मनोयोगी और तीन वचनयोगी जीवोंमें दो गति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, दो आनुपूर्वी और तीर्थङ्करप्रकृतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । आहारकद्विकका भङ्ग ओघके समान है । शेष प्रकृतियोंका जघन्य

सेसाणं जह० अजह[1]० बं० के० ? असंखेंज्ञा। वचि०-असच्चमोसवचि० सव्वपगदीणं जोणिणिभंगो। णवरि आहार०२-तित्थ० ओघं। वेउव्वि०-वेउव्वि०मि० देवोघभंगो।

५८९. इत्थि-पुरिसेसु पंचिंदियभंगो। णवरि इत्थि० तित्थयरं जह० अजह० के० ? संखेंज्ञा। विभंगे सव्वपगदीणं जह० अजह० केव० ? असंखेंज्ञा।

५९०. आभिणि-सुद-ओधि० पंचणा०-छदंस०-सादासाद०-बारसक०-सत्तणोक०-

और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। वचनयोगी और असत्यमृषावचनयोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि आहारकद्विक और तीर्थङ्करप्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। वैक्रियिककाययोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सामान्य देवोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—पाँच मनोयोगी और तीन वचनयोगी जीवोंमें संख्यात जीव ही दो गति आदिका जघन्य प्रदेशबन्ध करते हैं, इसलिए यहाँ इनका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंमें सब प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण पहले असंख्यात बतला आये हैं। अपने स्वामित्वको देखते हुए उसी प्रकार यहाँ वचनयोगी और असत्यमृषावचनयोगी जीवोंमें भी वह घटित हो जाता है, इसलिए इन मार्गणाओंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंके समान प्ररूपणा जाननेकी सूचना की है। मात्र इन दोनों मार्गणाओं में आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भी बन्ध होता है, इसलिए इनके विषयमें अलगसे सूचना की है। वैक्रियिककाययोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवों में सामान्य देवोंके समान भङ्ग है, यह स्पष्ट ही है। मात्र इनमें मनुष्यगतिद्विकका जघन्य प्रदेशबन्ध प्रथम समयमें तद्भवस्थ हुए सम्यग्दृष्टि देव नारकी करते हैं– इतना जानकर मनुष्यगतिद्विकका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण कहना चाहिए।

५८९. स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें पञ्चेन्द्रियोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदी जीवोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। विभङ्गज्ञानी जीवोंमें सब प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं।

विशेषार्थ—स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें पञ्चेन्द्रियोंकी मुख्यता है, इसलिए इनमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रियोंके समान बन जानेसे वह उनके समान कहा है। मात्र स्त्रीवेदी जीवोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध मनुष्यिनी करती हैं और मनुष्यिनी संख्यात होती हैं, इसलिए स्त्रीवेदियोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव संख्यात कहे हैं। विभङ्गज्ञानमें सब प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जो स्वामी बतलाया है, उसे देखते हुए इसमें सब प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण असंख्यात बन जाता है, यह स्पष्ट ही है।

५९०. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, बारह कषाय, सात नोकषाय, देवायु, उच्चगोत्र

---

[1] आ०प्रतौ 'सेसाणं अजह०' इति पाठः।

देवाउ०-उच्चा०-पंचंत० जह० अजह० के० ? असंखेंज्जा। मणुसाउ०-आहार०२ जह० अजह० केव० ? संखेज्जा[1]। सेसाणं जह० के० ? संखेंज्जा। अजह० के० ? असंखेंज्जा। एवं ओधिदं०-सम्मा०-खइग०-वेदग०-उवसम०।

५९१. संजदासंजद०[2] सव्वपगदीणं जह० अजह० के० ? असंखेंज्जा। णवरि सव्वाणं णामाणं जह० के० ? संखेंज्जा। अजह० के० ? असंखेंज्जा। णवरि तित्थ० जह० अजह० के० ? संखेंज्जा।

५९२. चक्खु० पंचिंदियभंगो। तेउ-पम्माणं दोगदि-वेउव्वि०-तेजा०-क०-वेउव्वि-

और पाँच अन्तरायका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। मनुष्यायु और आहारकद्विकका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। शेष प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—चारों गतिके असंयतसम्यग्दृष्टि जीव प्रथम समयमें तद्भवस्थ होकर पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य प्रदेशबन्ध करते हैं। यथा—देवायुका दो गतिके जीव योग्य सामग्रीके सद्भावमें जघन्य प्रदेशबन्ध करते हैं। अतः इनका परिमाण असंख्यात है, इसलिए यहाँ पाँच ज्ञानावरणादिके जघन्य प्रदेशोंका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात कहे हैं। तथा इन मार्गणाओंमें असंख्यात जीव होते हैं, इसलिए पाँच ज्ञानावरणादिका अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव भी असंख्यात कहे हैं। मनुष्यायु और आहारकद्विकका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं, यह स्पष्ट ही है। अब रहीं शेष प्रकृतियाँ सो इनका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव संख्यात होते हैं, अतः यहाँ इनका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है और इनका अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव असंख्यात होते हैं, यह स्पष्ट ही है। अवधिदर्शनी आदि मार्गणाओंमें अपने-अपने स्वामित्वके अनुसार यह प्ररूपणा इसी प्रकार बन जाती है, इसलिए उनमें आभिनिबोधिकज्ञानी आदिके समान जाननेकी सूचना की है।

५९१. संयतासंयत जीवोंमें सब प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। इतनी विशेषता है कि नामकर्मकी सब प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। उसमें भी इतनी विशेषता है कि तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं।

विशेषार्थ—यहाँ पर नामकर्मकी अन्य सब प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध तीर्थङ्कर प्रकृतिके बन्धके समय होता है, इसलिए इनका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है, क्योंकि संयतासंयत गुणस्थानमें मनुष्य ही तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करते हैं, और इसी कारणसे तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण भी संख्यात कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

५९२ चक्षुदर्शनवाले जीवोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रियोंके समान है। पीतलेश्या और पद्मलेश्यामें दो गति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग,

---

[1] आ०प्रतौ 'असंखेज्जा' इति पाठः। [2] ता०प्रतौ 'ओधिदं०। सम्मा० खइग० वेदग० उवसम० संजदासंजद०' इति पाठः।

अंगो०-दोआणु०-तित्थ जह० के० ? संखेँज्जा। अजह० के० ? असंखेँज्जा। मणुसाउ०-आहार०२ मणुसि०भंगो। सेसाणं जह० अह० अजह० के०? असंखेँज्ञा। सुक्काए पंचणा०-णवदंसणा०-सादासाद०-मिच्छ-सोलसक०-णवणोक०-दोगो०-पंचंत० जह० के० ? संखेँज्ञा[1]। अजह० के०। असंखेँज्जा। एवं सव्वपगदीणं जाणिदूण णेदव्वा।

५६३. सासणे मणुसाउ० मणुसि०भंगो। सेसाणं जह० अजह० असंखेँज्ञा। सम्मामि० सव्वपगदीणं जह० अजह० के०। असंखेँज्ञा। सण्णीसु देवगदि०४-तित्थ० जह० के० ? संखेँज्ञा। अजह० के० ? असंखेँज्ञा। सेसाणं पंचिंदियभंगो।

एवं परिमाणं समत्तं।

दो आनुपूर्वी और तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं? संख्यात हैं। अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। मनुष्यायु और आहारकद्विकका भंग मनुष्यिनियोंके समान है। शेष प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। शुक्ललेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, दो गोत्र और पाँच अन्तरायका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं? संख्यात हैं। अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। इसी प्रकार सब प्रकृतियोंको जानकर ले जाना चाहिए।

विशेषार्थ—पीत और पद्मलेश्यामें अपने स्वामित्वके अनुसार दो गति आदिका जघन्य प्रदेशबन्ध संख्यात जीव ही करते हैं, इसलिए इनका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है। यही बात शुक्ललेश्यामें पाँच ज्ञानावरण आदिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंके परिमाणके विषयमें जाननी चाहिए। शेष कथन सुगम है।

५९३. सासादनसम्यक्त्वमें मनुष्यायुका भंग मनुष्यिनियोंके समान है। शेष प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं। सम्यग्मिथ्यात्वमें सब प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। संज्ञियोंमें देवगतिचतुष्क और तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं? संख्यात हैं। अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। शेष प्रकृतियोंका भंग पञ्चेन्द्रियोंके समान है।

विशेषार्थ—सासादन सम्यक्त्व आदि उक्त मार्गणाओंमें भी अपने-अपने स्वामित्वके अनुसार सब प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण घटित कर लेना चाहिए।

इस प्रकार परिमाण समाप्त हुआ।

संस्थान 4673

---

[1] आ० प्रतौ 'असंखेज्जा' इति पाठः।

भारतीय ज्ञानपीठ

स्थापना : सन् 1944

उद्देश्य

ज्ञान की विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्री का अनुसन्धान
और प्रकाशन तथा लोकहितकारी मौलिक साहित्य का निर्माण

संस्थापक

स्व. साहू शान्तिप्रसाद जैन
स्व. श्रीमती रमा जैन

अध्यक्ष

श्रीमती इन्दु जैन

कार्यालय : 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110 003